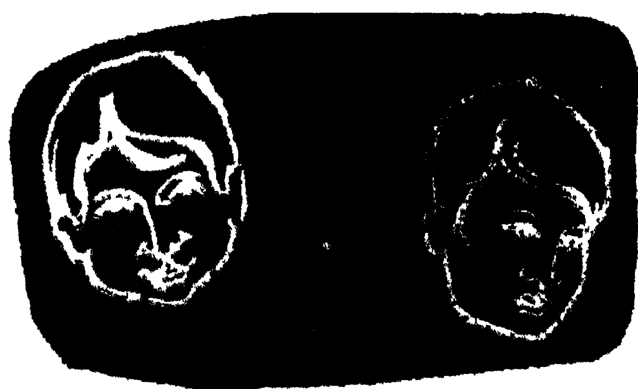
बाँधो न नाव इस ठाँव

तकलीफ़ और तनाव

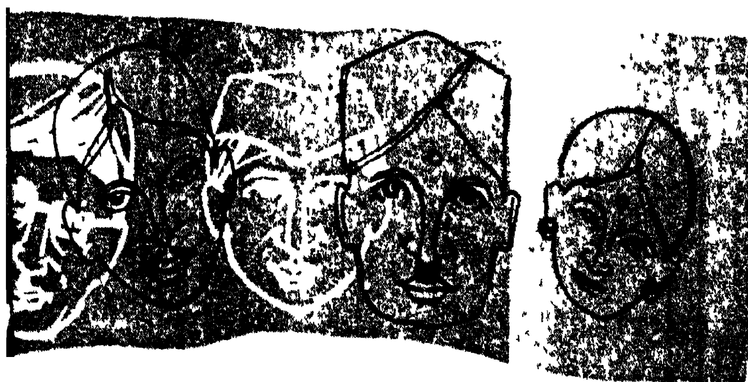


नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद



बाँधो न नाव इस ठाँव

पहला भाग



उपेन्द्रनाथ अश्क

BANDHO NA NAV IS THANV - 1

novel by Upendra Nath Ashk

आवरण तथा सज्जा . इम्पेक्ट, इलाहाबाद

मूल्य 250 00
दोनो भाग 500 रुपये

प्रकाशक : नीलाभ प्रकाशन
5, खुसरोबाग रोड, इलाहाबाद – 1

मुद्रक : सुपरफाइन प्रिंटर्स
1–सी, बाई का बाग, इलाहाबाद

भाई धर्मवीर जी के लिए

बँगलोर प्रवास की याद में

अपने पाठकों और मित्रों से



बड़े-से-बड़ा लेखक भी शून्य में नहीं लिख सकता और न मैं ही ऐसा करता हूँ। अन्तःप्रेरणा और ऑब्सेशन की बात अपनी जगह पर है, लेकिन बिना किसी प्रेरणा, प्रोत्साहन अथवा चुनौती के, एक चौथाई सदी तक, वर्ष-दर-वर्ष इतना वृहद उपन्यास लिखते चले जाना, लगभग असम्भव है। मेरे कुछ साथी-लेखक और आलोचक, जिन्होंने शुरू ही से मेरे उपन्यास को सनद नहीं दी, कभी-कभी बड़े हैरान होते हैं कि उनकी सनद के बिना, मैं कैसे इस थका देने वाले काम में, वर्षों से व्यस्त हूँ। उपन्यास की बात चलने पर अपनी हैरत और नापसन्दगी कई बार वे बड़े दिलचस्प ढंग से प्रकट करते हैं :

● मोमना-सा मुँह बना कर, मेरी 'हितचिन्ता' ही में, वे पूछते हैं : "अश्क जी, 'बड़ी-बड़ी आंखें' आपका एक-मात्र सफल उपन्यास है। लम्बे उपन्यास लिखने की बजाय, आप चार-छै वैसे उपन्यास और क्यों नही लिखते ?"...."अश्क जी, आप जैसे सफल एकांकी हिन्दी में किसी दूसरे ने नहीं लिखे, आपने एकांकी लिखना क्यों छोड़ दिया ?"...."इस वक्त, जब रंगमंच को नाटकों की सख्त जरूरत है, आप यह किस बेकार के काम मे लगे हैं।"...."अश्क जी, आपने सिर्फ नाटक लिखे होते तो आज हिन्दी साहित्य में आपका स्थान शीर्षस्थ होता।"...."अश्क जी, आप मूलतः संस्मरणकार हैं। 'मंटो : मेरा दुश्मन' हमारे निकट हिन्दी की दस उत्कृष्ट पुस्तकों में से एक है। एन० बी० टी० की सूची में हिन्दी की दस श्रेष्ठ पुस्तकों में उसी को स्थान मिला है। आपको वैसे दो-चार संस्मरण और लिखने चाहिएँ !"

● या फिर वे सीधे हमला करते हैं :...."आप यह क्या चेतन के पीछे पड़े हुए हैं ? कोई नया जीवन्त पात्र दीजिए !"...."आप आज भी तीस साल पहले की जिन्दगी के बारे में क्यों उपन्यास लिखते हैं ? स्वातन्त्र्योत्तर भारत में क्या आपको कुछ भी ऐसा नहीं लगता, जिसे आप कलम की नोक पर रखें ?"...."आप नही समझते कि आप के अनुभव अतीत हो गये हैं

और आज के युग में उनकी कोई प्रासंगिकता नही है।"...."अश्क जी आप के पास नया कहने को कुछ नहीं। वही चेतन और वही उसकी ऊबाऊ गाथा। आपको महादेवी वर्मा की तरह लिखना बन्द कर देना चाहिए...."

● कई बार उनकी प्रतिक्रिया और भी दिलचस्प ढंग से प्रकट होती है और लुत्फ भी दे जाती है—

पिछले दिनों मै नरेश मेहता के यहाँ बैठा था कि सर्वेश्वर (जो बीस वर्ष पहले 'सोया हुआ जल' लिख कर, उसके साथ जो सोये तो आज तक नही जगे) साही (श्री वी० डी० एन०) के साथ आ गये। बात-बात मे नरेश ने कहा—"अश्क जो का तो एक मोटा उपन्यास हर, चौथे-पाँचवें साल आ जाता है।"....

"आ जाता है ? कहिए, फट पड़ता है।"... और जिस तरह सर्वेश्वर, दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँध कर, उन्हे हवा मे झटकते हुए फट पडे, मुझे लुत्फ आ गया। उस लेखक की खिजलाहट पर मन-ही-मन दया भी आयी, जिसे अपने ही पत्र के अपने ही स्तम्भ में, अपने ही हाथों (बिना अपना नाम दिये) लगातार अपनी प्रशंसा करनी पड़ती है।

● नये युवा साथियों की प्रतिक्रिया और भी तीखे और आक्रामक रूप मे व्यक्त होती है—

मैं 'एक नन्ही किन्दील' लिख रहा था। एक दिन मैंने उसका मसौदा अपने एक पडोसी युवा-कथाकार-मित्र को दिया कि ज़रा पढ कर राय दो। कुछ दिन बाद वे नीलाभ प्रकाशन के दफ्तर मे फाइल देने आये तो कॉफी हाउस में अपने युवा-मित्रों मे बैठ गये। एक दूसरे साथी ने फाइल की ओर संकेत कर पूछा कि इसमे क्या है ? उन्होने बताया कि अश्क जी का नया उपन्यास है। उसने पूछा—'कैसा लगा ?' तब उन्होंने मुँह से तो कुछ नही कहा, तीली जलायी और फ़ाइल की ओर संकेत कर के, जमीन पर फेंक दी।....उपन्यास छप गया तो एक दूसरे युवा-कथाकार-मित्र अपने दोस्तों मे बैठे, दिल्ली के कुछ युवा-मित्रों को एण्टरटेन कर रहे थे; शराब का दौर चल रहा था कि 'एक नन्ही किन्दील' की बात चली। मित्र ने कहा—'अश्क जी ने आठ सौ पृष्ठों में सिर्फ घास भर दिया है।'....

इलाहाबाद हिन्दी लेखकों और साधकों का गढ़ है और मेरी 'हित-

चिन्ता' मे परेशान, मेरे ऐसे मित्रों की कोई कमी यहाँ नही। यहाँ की कठिन जिन्दगी की ताब न ला कर, पुरानी, बीच की और नयी पीढ़ी के कई लेखक, सुख-सुविधा की तलाश मे, दिल्ली और बम्बई चले गये है और मेरे बारे मे अपनी शुभचिन्ताएँ भी साथ ही ले गये है।

मै यदि अपने इन हितचिन्तक और आलोचक-मित्रो की बातो का असर लेता तो कभी अपने इस उपन्यास को यूँ जारी न रख सकता, क्योंकि कटु आलोचना बड़े-से-बड़े दिग्गज की कमर तोड़ देती है, लेकिन साथी-लेखकों और आलोचकों के इस वर्ग के अलावा एक दूसरा वर्ग भी है—प्रबुद्ध पाठकों का—जो सृजन-रत लेखक के लिए कही ज्यादा महत्व रखता है और अन्तत. किसी लेखक के भविष्य का निर्णय करता है। इसे मै अपना सौभाग्य समझता हूं कि इस वर्ग ने मुझे निराश नही किया। गत तीस वर्षो मे मुझे मेरे पाठकों ने सतत प्रोत्साहन दिया है। जब-जब उन्होने मेरे उपन्यास के विभिन्न खण्डो को सराहा, उनके मर्म को पकड़ा मै दूसरी विधाओं को छोड़, फिर उपन्यास को आगे बढाने मे निरत हो गया।

किसी भी उपन्यासकार के लिए अपने उपन्यास की रचना-प्रक्रिया, उसकी बारीकियो और उसके मर्म को पूरी तरह बता पाना (अपनी रचना से पूरी तरह सन्तुष्ट होने के बावजूद) लगभग असम्भव है। वह जो भी बतायेगा, चेतन मन से अपने लिखे हुए के बारे मे सोच कर ही बतायेगा (जो कई बार सही नही भी होगा) जबकि उपन्यास की रचना-प्रक्रिया उसके अचेतन अथवा अर्ध-चेतन मे चलती रहती है। अपने भोगे या भेले यथार्थ को, जब उसका अर्ध-चेतन, कल्पना के समावेश से, कला का यथार्थ बना कर, उसके चेतन मन को सौपता है—दूसरे शब्दो मे वह कि जब यथार्थ दुनिया के प्रत्यक्ष अनुभव उसकी कल्पना के रसायन मे से गुजर कर, वास्तविक अनुभव के रूप मे नही, बल्कि कलात्मक अनुभूति के रूप मे व्यक्त होते है और लेखक को सन्तुष्ट कर जाते है तो वह सब कैसे हुआ, यह बता पाना, कई बार लेखक के लिए सम्भव नही होता। वह रचना से क्यो सन्तुष्ट है, यह तक बता पाना उसके लिए कठिन होता है, लेकिन यह भी सच है कि यदि लेखक का अन्तर्मन जो कहना चाहता है, उसकी रचना अपने अन्तिम रूप मे वह कह देती है तो प्रायः प्रबुद्ध पाठक उसके मर्म पर उँगली

रख देते हैं।

● 'गिरती दीवारें' जब छपा था तो उसकी प्रशंसा और निन्दा में काफ़ी लिखा गया था, लेकिन शमशेर बहादुर सिंह ने 'प्रतीक' के एक लेख में उसके मर्म पर उँगली रख दी थी। उन्होंने मुख्यतः दो बातें लिखी थीं :

(१) 'चेतन असल में 'गिरती दीवारें' का हीरो नहीं। इस का असली हीरो, एक-के-पीछे-एक लगा, कड़ियों का (भरे-पूरे सजीव व्यक्तियों का) वह सिलसिला है, जिनके बिना चेतन महज़ हवा में हाथ-पाँव मारने वाली एक छाया-सा रह जाता है।'

(२) 'इन सब लोगों का पूरा फ़िल्म जिस पर्दे पर चलता है, चेतन वह पर्दा है।....'गिरती दीवारें' इस कैनवस पर हर उस घटना-दुर्घटना, आशा-आकांक्षा, सफलता-असफलता, प्यार और चोट का—उनकी ऊहा-पोह का उपन्यास है....अश्क ने खुद उसे (चेतन को) एक कैनवस का स्थान और दर्जा दिया है।'

हालाँकि शिवदान सिंह चौहान ने अपनी समीक्षा में 'गिरती दीवारें' को यथार्थवादी परम्परा का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास घोषित किया था, पर सन्तोष मुझे शमशेर के लेख ही को पढ़ कर हुआ था, क्योंकि उन्होंने मेरे मन की बात कह दी।

(अब इस तथ्य की रोशनी मे, यह शिकायत कि मैं क्यों चेतन के पीछे पड़ा हूँ, उस बे-समझ दर्शक की शिकायत के समान है, जो किसी कलाकार की चित्र-प्रदर्शनी मे जाय और रंगा-रंग चित्रों और उनके पूरे प्रभाव को न देख कर, इस बात की शिकायत करे कि कलाकार ने क्यों एक ही तरह के कैनवस पर अपने सारे चित्र उतारे हैं ? सच्ची बात यही है कि मैंने चेतन को ऐसे कैनवस-सा ही बना दिया है, जिस पर मैं अपने मन के मुताबिक उस ज़िन्दगी और युग के चित्र उतार सकूँ, जिसे मैंने अपने उपन्यास का विषय बनाया है, साथ ही उस ज़िन्दगी के रंगो से चेतन की कहानी भी कह सकूँ और इस प्रक्रिया में ज़िन्दगी के बुनियादी और गहरे जज़्बों के बारे में जो कुछ मैं व्यक्त करना चाहता हूँ, कर सकूँ !)

● उपन्यास का दूसरा खण्ड—'शहर में घूमता आईना,' जब १९६३ में छपा तो उसकी प्रशंसा और आलोचना में ढेरों लिखा गया, लेकिन उस सब के मुकाबिले में मेरे निकट उस एक पत्र का महत्व कहीं ज़्यादा है, जो

श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने मुझे लिखा :

"आपका भटकता हुआ नायक, दो तरह की दृष्टियाँ फेंकता है। एक मे तो वह समेट लेता है—मुखडो और मुखौटो को, गलियो और भवनो को, रंगीनियो और संघर्षो को—और दूसरी, अँधेरे मे खोये उस धागे को थामती चलती है, जो व्यक्ति की अनुभूतियो मे अकुलाहट, उदासी और चुनौती को जोडे हुए है, पर जिसके जोडने वाले रेशो का आसानी से पता नहीं चलता।"

मित्रो ने उस उपन्यास को कई तरह व्याख्यायित किया है। उनकी व्याख्याएं गलत है, यह मै नही कहता, लेकिन मै समझता हूँ कि माथुर साहब ने उपन्यास के मर्म पर उँगली रख दी और जैसे मेरे अर्ध-चेतन मे चलने वाली रचना-प्रक्रिया को मेरे लिए भी व्याख्यायित कर दिया।

उस उपन्यास के सन्दर्भ मे अपनी ओर से मैं इतना और कहना चाहूँगा कि 'गिरती दीवारें' के कैनवेस (चेतन) ने यहाँ एक ऐसे आईने का रूप ले लिया है, जिस पर शहर और उसके वासियो के विभिन्न चित्र उभरते है, लेकिन शहर (और उसके वासी) भी अलग-अलग आईने है जो चेतन को उघाडते चलते है।

● 'एक नन्ही किन्दील' १९६९ मे छपा। 'शहर मे घूमता आईना' को काफी आलोचना भी मिली थी। 'विवेचना' (इलाहाबाद) की गोष्ठी मे मित्रों ने उसकी काफी धुनायी की थी। लेकिन उपन्यास के इस तीसरे खण्ड तक पहुचते-न-पहुँचते, आलोचक प्राय. मौन हो गये। क्योकि पहले दोनो उपन्यास-खण्डो के बारे मे उन्होने जो कहा—जो स्थापनाएँ रखी या फ़तवे दिये—'एक नन्ही किन्दील' ने उन सबको गलत साबित कर दिया। तब उन्होने यही उचित समझा कि उपन्यास के तमाम खण्ड छप जायँ तभी वे उसके बारे मे कुछ कहे। लोग ऐसे मौन साध गये, जैसे मेरा उपन्यास छपा ही न हो।

लेकिन दिल्ली-वासी मेरे कुछ 'शुभचिन्तको' ने एक दूसरे स्तर पर आक्रमण किया, उन्होने इसे अश्लील घोषित करवा, 'दिल्ली पब्लिक लायब्रेरी' की सभी शाखाओ मे निषिद्ध करार दे दिया। तब दिल्ली के एक अजाने युवा-पाठक (डॉक्टर नागपाल) ने, न सिर्फ़ वहाँ विरोध किया, वरन मुझे भी लिखा कि मै चुप न रहूँ और उन्हे बता दूँ कि 'बुढ़ापे के कारण

मैं ने अपनी ज़िम्मेदारी भुलायी नहीं है, बल्कि यह जनता की नैतिकता के उन स्व-नियुक्त विशेषज्ञों की ज़्यादती है और इसे बर्दाश्त नहीं किया जा सकता !' मैं अपने इलाहाबादी दोस्तों का एहसानमन्द हूँ कि दो-तीन लेखकों को छोड़ कर, इलाहाबाद के सभी मित्रों ने (उपन्यास के बारे में भिन्न मत रखने के बावजूद) 'दिल्ली पब्लिक लायब्रेरी' के उस कुकृत्य का विरोध किया और फिर तो वह बवण्डर मचा कि ख़ुदा की पनाह और यूँ, एक पाठक ही के प्रयास से 'एक नन्हीं किन्दील' ध्यानाकर्षण का केन्द्र बन गया।

पिछले खण्डों के मुकाबिले में, मुझे 'एक नन्हीं किन्दील' पर, पाठकों के सर्वाधिक पत्र आये हैं। पाठकों ने अपनी-अपनी दृष्टि और रुचि से उसे सराहा, लेकिन एक पत्र ऐसा भी आया, जिसने उपन्यास के मर्म पर उँगली रख दी और माथुर साहब के पत्र ही की तरह, चन्द पंक्तियों में उपन्यास को व्याख्यायित कर दिया।

ख़ुर्रम शहर (ईरान) से श्रीराम विद्यार्थी ने लिखा :

"किन्दील—जन सामान्य के स्व का संघर्ष—सृष्टि के पटल पर अपने 'स्व' को मान्यता दिलवाने, उसे एक एण्टिटी के रूप में स्थापित करने की, जन-सामान्य की चेष्टाओं का सम्वेदनशील चित्रण है ! प्रेरक भी और मोहक भी। क्योंकि यह सारी कृति, आईनों की मीनाकारी से तैयार किया गया, एक ऐसा गुम्बद लगती है, जिसके आईनों में भटकते हुए बिम्ब, हम सबके अपने ही बिखरे हुए बिम्ब हैं; छितरी हुई संज्ञाएँ हैं। हम सब इनमें से कुछ को चुन कर अपनी मनमानी तस्वीर खड़ी कर सकते हैं और अपने आपको महत्वपूर्ण महसूस कर सकते हैं—क्योंकि हम इन टुकड़ों को पढ़ कर महसूस करते हैं कि जो कुछ हम रोज़ाना भोगते हैं, उसके कुछ अर्थ होते हैं।"

मैं पाठकों के पत्र उद्धरित करता चला जा सकता हूँ और इस भूमिका का कलेवर, पुस्तक-जितना बड़ा हो सकता है, लेकिन इस प्रसंग को ख़त्म करने से पहले, अब तक छपे तीनों खण्डों के सम्मिलित प्रभाव के बारे में तीन पाठकों की प्रतिक्रिया देना चाहूँगा—

● कुछ वर्ष पहले चण्डीगढ़ से एक पाठिका, शान्ता राय ने कुछ ऐसी बात लिखी—"आप कहते हैं कि आप इस उपन्यास को पाँच खण्डों में

समाप्त कर देंगे। मुझे लगता है कि 'गिरती दीवारें' कभी खत्म नहीं होगा, क्योंकि जिन्दगी कभी खत्म नहीं होती।"

(जब मैं पाँच या सात खण्डों में उपन्यास खत्म करूँगा तो निश्चित रूप से पाठकों को महसूस होगा कि उपन्यास खत्म हो गया है, लेकिन शान्ता की बात तथ्य से बहुत दूर नहीं। मुझे एक उम्र और मिले तो जिन्दगी का मेरा अनुभव इतना विस्तृत है और अभिव्यक्ति की ऐसी शक्ति मेरे पास है कि पाँच खण्डों की ऐसी ही उपन्यास-माला मैं और लिख सकता हूँ।)

● मैं श्री धर्मवीर (मैसूर के भूतपूर्व गवर्नर) के साथ खाने की मेज पर बैठा था कि मैंने पूछा . "भाई साहब, आपने तीनों उपन्यास एक साथ पढ़े हैं, आपको इनमें कौन सबसे अच्छा लगा ?"

"एक नन्ही किन्दील।"

"क्यों ?"

"वह सब से मेच्योर है।"

"उसके बाद ?"

".. आईना, फिर.. दीवारें !"

"लोग कहते हैं कि 'गिरती दीवारें' के बाद मुझे लिखना ही नहीं चाहिए था।"

"गलत है, जो ऐसा कहते हैं।"

"लोग शिकायत करते हैं कि इसमें कोई कहानी नहीं.."

"जो कहानी ढूँढते हैं, मूर्ख हैं—यह तो जिन्दगी का दरिया है, बहे जा रहा है।"

● हिन्दी उपन्यासों पर शोध करने वाले एक अध्यापक ने विदेश से लिखा "आपने कहीं चण्डीगढ़ की किसी छात्रा का उल्लेख किया है, जिसने कहा कि 'गिरती दीवारें' कभी खत्म नहीं होगा, क्योंकि जिन्दगी कभी खत्म नहीं होगी। मैं भी कमो-बेश यही महसूस करता हूँ। लेकिन कभी-कभी जो रूपक मेरे दिमाग में आता है, वह किसी अजगर का है, जो धीरे-धीरे अपनी कुण्डली खोल रहा है, समय के किसी बिन्दु पर आ कर वह पूरी तरह अपनी कुण्डली खोल देगा और बस सीधा पसर जायगा—आक्षितिज पसरा हुआ विराट और भयोत्पादक, शक्तिशाली और चमकीला ! न वह

और बढ़ेगा, न रहस्यपूर्ण रहेगा !—यह रूपक ज़िन्दगी की मेरी अव-धारणा से मेल तो नहीं खाता, लेकिन मैं समझता हूँ—ऐसा साहित्य में सम्भव है ।"

और मुझे लगता है कि प्रो० फ़य्याज़ महमूद की बात से प्रेरणा ले कर (मैंने इस घटना का उल्लेख 'गिरती दीवारें' के दूसरे संस्करण की भूमिका में किया है) यदि मैंने पहले से गढ़ा-गढ़ाया उपन्यास नहीं लिखा और 'गिरती दीवारें' को ज़िन्दगी ही की तरह बढ़ने और फैलने दिया तो ग़लत नहीं किया और यदि मैं पाँचवें खण्ड मे इसे खत्म कर दूँगा—याने अगर मैं और दस बरस जिया—तो भी ग़लत नहीं करूँगा ।

इस सब के बाद, यह कहने की ज़रूरत नही कि मेरे स्वतन्त्र, फक्कड़ और मुँह-फट स्वभाव की ताब न लाने वाले, हिन्दी के गुट-बन्द लेखकों और आलोचकों ने अगर मेरे उपन्यासों को उनका जायज़ हक नहीं दिया और इनके मुकाबिले में, इस या उस उपन्यास को उछालते रहे या मेरे उपन्यास के अस्तित्व को सिरे से ही नकारते रहे और उपन्यासों की चर्चा करते हुए, इसे एकदम नज़र अन्दाज़ कर देते रहे तो मुझे बुरा नहीं लगा, उल्टे उन पर दया ही आयी ।

(मेरे इस वक्तव्य को कि मै इस उपन्यास को नौ भागों में लिखना चाहता था, जिन लोगों ने अज्ञेय की नकल मे, उनसे कुछ बढ कर किया गया दावा समझा और जिनका यह ख्याल था कि अज्ञेय ने तो दो खण्ड लिखे भी, मैं एक ही खण्ड लिख कर चुप जाऊँगा, उन्होंने हम दोनों की प्रेरणा के स्रोतों पर ध्यान नहीं दिया । अज्ञेय अपनी प्रारम्भिक योजना के अनुसार, अपने उपन्यास के शेष भाग क्यो नहीं लिख पाये और दस वर्ष बाद भी मैं क्यों 'गिरती दीवारें' को आगे बढ़ाने में जुट गया ? अज्ञेय क्यों अपना मौलिक लेखन छोड़, बार-बार सम्पादन अथवा पत्रकारिता मे अपनी शक्तियाँ लगाते रहे और मैं क्यों, पत्रकारिता मे कुछ वर्ष गुज़ारने के बाव-जूद, अपने मौलिक लेखन की ओर पलट आया ? उसका कारण शायद यही है कि अज्ञेय की मूल प्रवृत्ति पत्रकार की है और मेरी, मौलिक लेखक की । यही कारण है कि मैं पत्रकारिता को छोड़ कर, मौलिक लेखन की ओर पलटा तो मैंने फिर उधर झाँक कर नहीं देखा, जबकि अज्ञेय अपना मौलिक लेखन छोड़ कर बार-बार पत्रकारिता की ओर पलटते रहे हैं । हम

दोनो के लेखन मे मूल-प्रवृत्तियों का यही अन्तर हमे अन्तत. दो विभिन्न रास्तो पर ले गया ।)

लेकिन किसी रचना की सराहना लेखक को प्रोत्साहित तो कर सकती है, निरन्तर रचना-रत उसे उसकी अन्त प्रेरणा ही रख सकती है । यदि मूल-प्रेरणा मे दोष होता है या वह चुक जाती है, तो लेखक भी, सडक पर रपट जाने वाले कमजोर घोडे की तरह, पसर जाता है और साथियो की लाख 'हलाशेरी' के बावजूद नही उठता । बाह्य प्रोत्साहन ही सब कुछ होता तो अज्ञेय 'शेखर' को लगातार लिखते रहते और उसे खत्म करके ही दम लेते । या किसी कारण अवरोध आ गया था तो उसे फिर उठाते । लेकिन शायद अन्त प्रेरणा और अनुभूतियो के अभाव मे, वे ऐसा नही कर पाये ।

अज्ञेय की तरह रोमा रोलाँ के उपन्यास—ज्याँ क्रिस्तोफी—से मैंने भी प्रेरणा ली—लेकिन सिर्फ अपनी अनुभूतियो को व्यक्त करने के पैटर्न की खातिर । मेरी मूल-प्रेरणा तो १९३४ से '३६ के बीच की जिन्दगी के वे अनुभव थे, जिन्हे कलम की नोक पर रखे बिना, मै आज तक चैन नही पा सका । 'गिरती दीवारे' माला के उपन्यास जिस काल-खण्ड की अनुभूतियो को चित्रित करते है उसके बाद मैने जिन्दगी को उसकी तमाम रंगा-रंगी मे देखा है और मै चाहूँ तो आठ-दस अत्यन्त दिलचस्प उपन्यास लिख सकता हूँ, लेकिन मै यह समझता हूँ कि अपने तमाम अनुभवो मे लेखक को उन्ही पर लिखना चाहिए, जिन्हे वह बेशकीमत समझता हो । १९३४ से '३६ तक—इन दो वर्षो मे जिन्दगी को मैने पहली बार ऐसे नगे रूप मे देखा कि मेरी सारी रोमानियत उड़न्छू हो गयी और मुझे वे आँखे मिल गयी, जो प्रकट दिखायी देने वाली चीजो के पीछे छिपी यथार्थता को देख सके । मैने मौत को देखा और निर्धनता का स्पर्श भी पाया और अपने उस घनघोर संघर्ष की नितान्त व्यर्थता भी मेरे सामने उजागर हो गयी जो मै सब-जज बनने के लिए कर रहा था । मैने दुख तकलीफ गरीबो, लोगो—विशेषकर नेताओ—की बेईमानी और शोषण, और अपने माहौल की विवशता को देखा और मुझे वह दृष्टि मिल गयी, जो पहले मेरे पास नही थी । इस संघर्ष से मुझे अपने पिता की व्यावहारिक-शिक्षा को यथार्थ की कसौटी पर परखने और उसकी व्यर्थता जानने और प्रकारान्तर से अपनी माँ के आदर्शों

की सचाई को समझने का अवसर मिला। मुझे अपनी माँ के इस उपदेश की माहीयत पहली बार समझ मे आयी कि—पेट तो कुत्ते और गधे भी भरते है और धन-वैभव वेश्याओ के पास भी होता है।—याने जिन्दगी का तमाम संघर्ष अगर खाने-पीने और सुख-सुविधा से रहने के लिए ही है (और उसके साथ कोई महत आदर्श या मूल्य नही जुड़ता) तो वह महज पशु अथवा वेश्या का संघर्ष है। यही वजह है कि तमामतर सफलता के बावजूद, मै बडी-से-बडी नौकरियां पलक झपकते छोड आया और मौत के सन्दर्भ मे जिन्दगी की घोर व्यर्थता जान कर, मैने उसके बावजूद जीने का जो उद्देश्य बनाया उसमे तमाम बाधाओं के चलते, मै रत्ती-मात्र नही भटका।

जिन अनुभवो के बल पर मै बडे-से-बडा प्रलोभन छोड कर, अपनी तरह से (भले ही संघर्ष-भरी और कठिन) जिन्दगी जी सका, उन्हे कलम की नोक पर न रखना, न केवल कायरता, वरन बददयानती भी होती। यही कारण है कि जब-जब मैने कोई दूसरा उपन्यास लिखने की सोची, वे अनुभव मेरे रास्ते की दीवार बन गये और बिना उन्हे पूरी तरह अभिव्यक्त किये, मेरे लिए आगे बढना कठिन हो गया और मै बार-बार दूसरी विधाओ मे भटक कर, फिर उन्ही अनुभवो और उन्हे व्यक्त करने वाली सक्षम विधा—उपन्यास—पर वापस आ गया।

विदेश मे रह कर शोध करने वाले एक विद्वान ने मुझे पिछले वर्ष, इस उपन्यास-माला को ले कर लगभग सौ प्रश्न भेजे। मै प्रस्तुत उपन्यास लिखने मे व्यस्त था, इसलिए उत्तर देने से घबराता था, लेकिन प्रश्न इतने सूझ-बूझ-भरे, बुनियादी और गहरे थे कि मै धीरे-धीरे उनके उत्तर देने लगा; इस उपन्यास-माला के सम्बन्ध मे शायद ही कोई ऐसी बात हो जो मैने उन प्रश्नो के उत्तर मे न कही हो। वह सब मै यहा नही दोहराऊँगा। सिर्फ यही कहूगा कि मै 'गिरती दीवारे' के मुकम्मल पाच खण्डो मे उन बुनियादी जज्बो को, उनकी तमाम पेचीदगियो और ग्रन्थियों के साथ, उकेरना चाहता हूं, जो आदमी के कार्य-व्यापार के पीछे प्रचालन-शक्तियो का काम करते है—अर्थ, काम और अहं, मौत और नियति, जिन्दगी के सघर्षो की घोर व्यर्थता और उसके बावजूद आदमी की प्रबल जिजीविषा; जिन्दगी की व्यावहारिकता के लिए दिये गये सूत्र और उनका

मत्य, सौन्दर्य का आकर्पग और वामना और प्रेम—इन सब के बारे मे, शास्त्रो के सूत्रों और दार्शनिको के विचारो की रोशनी मे नही, मैं अपनी अनुभूतियो के प्रकाश मे अपनी बात कहना चाहता हूँ।

यहाँ मै इतना और कहना चाहूंगा कि उपन्याम के नायक को भले ही मैने अपनी जिन्दगी की घटनाएँ और संघर्ष दिये है, लेकिन, जैमा कि मै पहले भी कह चुका हू, चेतन मै नही हू। क्योकि उपन्याम मेरी जीवनी नही है। मैने चेतन को अपना व्यक्तित्व नही दिया। मैने उमे अपनी बात कहने का मिर्फ एक माध्यम बनाया है और इमी उद्देश्य मे बहुत कुछ अपना और कुछ दूसरो का दे कर, उमे इस तरह गढा कि जो बात मै कहना चाहता हूँ, वह कह मकूं अथवा जो जिन्दगी मैं चित्रित करना चाहता हूँ, वह उमके माध्यम मे चित्रित हो सके। चेतन को ही नही, मैने दूसरे पात्रों को भी अपना बहुत कुछ दिया ह। जिन्दगी के यथार्थ को कला के यथार्थ मे परिणत करने के लिए यह जरूरी था।

o

मुझे स्वयं भी कई बार खयाल आया है कि इम उपन्याम को दो-चार वर्षो के लिए अलग हटा कर क्यो न मै चार-छै लघु उपन्यास लिख डालूं, जिनके विचार मेरे दिमाग मे पक चुके है। जब कभी मैने इनमे से किसी का थीम अपने युवा-साथियो को सुनायी है, उन्होने कहा है कि मुझे 'गिरती दीवारे' छोड कर पहले उन्हे लिखना चाहिए, क्योकि वे न मिर्फ 'गिरती दीवारे' पर भारी पडेगे, वरन आधुनिक भाव-बोध के भी करीब होगे। मझे कई बार मोह भी हुआ है, क्योकि कोई थीम जब दिमाग मे पक जाती है तो अभिव्यक्ति के लिए परेशान करती है। हो मकता ह, मै रास्ते से भटक ही जाता और यह उपन्यास-खण्ड पूरा करने के बाद मै दो-तीन छोटे उपन्यास लिखता, लेकिन एक पाठक ने फिर मुझे भटकने से बचा लिया। मेरे एक पत्र के उत्तर मे उन्होने लिखा

"२४ तारीख के पत्र की अन्तिम पंक्तियो मे आपने अपने-आप पर कुछ खीझ-सी प्रकट की है कि क्यो आपने यह वृहद उपन्याम लिखने की योजना बना ली ? मुझे इनकार नही कि आप इस अरसे मे बहुत-से छोटे-छोटे उपन्यास लिख ले जाते... प्रश्न पृष्ठ-संख्या का नही, प्रश्न उपन्यास मे अंकित segment of humanity की cumulative heartbeats

का है। पिछले तीस वर्षों मे उन धडकनो को आपके पाठक सुनते आ रहे हैं। आप अपनी ओर मे चुक भी जायँगे तो वे धडकने सुनायी देती रहेंगी—पिटे हुए बच्चे के हृदय की धडकने, पागल बाप और गमजदा माँ की गमखोर बेटी चन्दा के हृदय की धडकन अपने प्रति उपेक्षा का बदला, तिल-तिल आत्म-हत्या करके लेने वाली हठीली चम्पा के हृदय की धडकने हफ्तो बाद घर आये हुए शराबी पति के हाथो घर भर की खैर मनाती हुई लाजवती के हृदय की धडकने—ऐसे बीसियो हृदय आपके उपन्यास के पन्नो मे धडक रहे है और आप अन्तिम उपन्यास का अन्तिम पृष्ठ लिख कर कलम रख भी देंगे तो आपके मनस-सृजित जीव गालियाँ बकते रहेंगे, प्यार करते रहेंगे झूठ बोलते रहेंगे, लानते भेजते रहेंगे, अपने समाज के प्रति अपना देय चुकाते रहेंगे और उसके मुँह पर थूकते भी रहेंगे, एक-दूसरे को लूटते रहेंगे, खीझते रहेंगे कुढते रहेंगे....कहना मै इतना ही चाहता हूँ कि छोटे-छोटे दिलचस्प उपन्यास आप नही भी लिख पायेंगे तो वैसी हानि नही होगी। काश ऐसे दो-चार और अभिशप्त लेखक आपकी पीढी मे होते। आपके लिए जो अभिशाप है वही पाठक के लिए वरदान है जो उसकी अभिशप्त जिन्दगी को कुछ राहत बख्शता है।"

और मै अपने इस पाठक का ही नही अपने तमाम पाठको का आभारी हूँ जिनकी सराहना, आलोचना और सुझावों ने सदा मेरा पथ प्रशस्त किया है मुझे बल दिया है कि मै इतना वृहद उपन्यास लिख सकूँ। उनकी दुआएँ मेरे साथ रही तो मै निश्चय ही अब इधर-उधर ज्यादा नही भटकूँगा और यदि आठ-दस वर्ष भी मुझे और मिल गये तो उपन्यास का अन्तिम खण्ड लिख कर ही दम लूँगा। यह बात मै अच्छी तरह जानता हूँ कि यदि मै अपनी रचना से सन्तुष्ट हो गया तो पाठक भी सन्तुष्ट हो जायँगे और देर-सवेर आलोचक भी।

इधर मेरे कुछ पाठकों को पिछले तीनो उपन्यास पढ कर, तॉल्स्ताय के उपन्यास, 'वार एण्ड पीस' की याद आयी है। मैने जब वह उपन्यास पढा था, मै न केवल मन मे अपने उपन्यास की पूरी रूप-रेखा बना चुका था, वरन 'गिरती दीवारें' लिख भी चुका था। मै नही जानता, मैने वह उपन्यास पहले पढा होता तो मुझ पर क्या प्रतिक्रिया होती? सम्भव है, मै

आतंकित हो जाता और अपना उपन्यास न लिख पाता। ऐन मुमकिन है कि इसका पैटर्न यह न रहता। लेकिन आज, जब मैं इस उपन्यास-माला के चार खण्ड लिख चुका हूँ, मैं यही कह सकता हूँ कि तॉल्स्तॉय मेरी स्थिति में होते तो शायद ऐसा ही उपन्यास लिखते।

प्रस्तुत खण्ड—बाँधो न नाव इस ठाँव—दो हिस्सों में है। यह अजीब बात है कि इन में से दूसरा भाग मैंने पहले लिखा—या ठीक कहूँ कि उसका तीन-चौथाई पहले लिखा। हुआ यूँ कि मै १९६३ मे कुछ आर्थिक कठिनाई मे फँस गया। दिसम्बर '६२ में दिल्ली गया हुआ था, जब मैंने 'राजकमल प्रकाशन' के तात्कालिक मैनेजिंग-डायरेक्टर, श्री ओंप्रकाश और 'नयी कहानियाँ' के यशस्वी सम्पादक, श्री भैरवप्रसाद गुप्त से कहा (तब उन से मेरे बहुत अच्छे सम्बन्ध थे) कि चाहे मुझ से एक उपन्यास धारावाहिक ले लें या मुझ से 'मेरी प्रिय कहानी' या ऐसे ही किसी शीर्षक के अन्तर्गत लेख-माला लिखवा लें और मुझे १००० रु० पेशगी दिलवा दें। भैरव लेख-माला पसन्द करते थे। वे 'नयी कहानियाँ' मे रहते तो शायद मै १९६३ के वर्ष, विभिन्न कथाकारो की दस-बारह प्रिय कहानियों पर लेख ही लिखता और उपन्यास न जाने फिर कब आगे बढता। लेकिन उन्ही दिनो भैरव 'नयी कहानियाँ' छोड़ गये और ओंप्रकाश ने धारावाहिक उपन्यास ही छापना पसन्द किया। मैंने ओंप्रकाश से कहा कि यूँ तो मै उन्हें छोटे उपन्यासों के चार-पाँच कथानक सुना सकता हूँ और जो वे पसन्द करें, लिख दे सकता हूँ; लेकिन यदि वे छाप सकें तो मै उन्हे 'गिरती दीवारें' के अगले खण्डों से एक ऐसा प्रसंग लिख देता हूँ, जो बहुत मनोरंजक है और किसी पत्रिका मे मजे से धारावाहिक छप सकता है। मैंने प्रस्तुत उपन्यास के दूसरे भाग की कथा सुनायी। उन्हें पसन्द आ गयी।

जहाँ तक मुझे याद पड़ता है, मार्च या अप्रैल, '६३ मे उपन्यास 'नयी कहानियाँ' मे छपना शुरू हुआ। नायक का नाम उन्होंने 'रोशन' कर दिया, जो प्रूफ़-रीडर की बेपरवाही से एक-दो किस्तों मे 'चेतन' भी छप गया। दो-एक किस्तें मैंने इलाहाबाद से भेजी, फिर मै कसौली चला गया और शेष उपन्यास मैंने वही से भेजा।

बहरहाल, ओंप्रकाश का मैं बहुत आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे अपने

उपन्यास को आगे बढ़ाने का अवसर दिया। उस वक्त मुझे रुपये की बहुत जरूरत थी। वे जोर देते तो शायद मैं कोई लघु-उपन्यास ही लिख देता और यह उपन्यास लिख लेने पर शेष को पूरा करने की जो प्रबल उत्कण्ठा जगी, वह न होती। कौन जाने, उपन्यास कभी लिखा भी जाता या नहीं!

जब 'नयी कहानियाँ' के बहाने बीच का एक खण्ड लिख गया तो मेरे मन में उससे पहले के अंश को पूरा करने की इच्छा जगी। 'नयी कहानियाँ' में जो खण्ड छपा, उसमें 'शहर में घूमता आईना' के बाद चेतन के संघर्ष की कहानी मैंने संक्षेप में पहली किस्त में दे दी थी। १९६४ का साल मैं बीमार रहा। '६५ में फिर कौसानी गया तो मैंने '....आईना' के बाद के खण्ड—'एक नन्ही किन्दील' को हाथ लगा दिया और लगातार लिखता रहा। १९६९ में वह उपन्यास छप गया।

१९७० में फिर मैं मुसीबत में फंस गया। मेरे लड़कों ने दो अन्य प्रकाशकों के साथ मिल कर 'पुस्तक केन्द्र' की एक योजना बनायी। वह असफल रही और वे लगभग चालिस हजार का घाटा खा गये। तभी १९७१ में मैसूर के भूतपूर्व गवर्नर, श्री धर्मवीर ने नये साल की शुभ-कामनाएँ भेजी। वे मेरे पुराने मेहरबान हैं। तब मैंने उन्हें उत्तर में लम्बा पत्र लिखा। उन्होंने कहा, आप और कौशल्या कुछ दिनों के लिए बंगलौर क्यों नहीं आ जाते? मैंने लिखा कि मैं उपन्यास का चौथा खण्ड लिखना चाहता हूँ, यहाँ एकाग्रता मयस्सर नहीं! हफ़्ते-पन्द्रह दिन के लिए इतनी दूर नहीं आ सकता। तीन महीने के लिए बुलायें तो आ जाऊं। उन्होंने कहा कि आप छै महीने के लिए आ जाइए। ..धर्मवीर जी से पत्र-व्यवहार तो था, लेकिन घनिष्टता नहीं थी। वर्षों पहले की एक दो-मिनटी मुलाकात थी। लेकिन वे मेरे नाटक पसन्द करते हैं, यह मैं जानता था। लिख तो दिया, उन्होंने बुला भी लिया, पर मन में संकोच हो आया। बहुत सेंसिटिव आदमी हूं। बड़े आदमी के यहां रहने में जाने कब कहां अहं आहत हो जाय और ज़िन्दगी भर तकलीफ़ देता रहे, इसी का भय था। कौशल्या को साथ ले गया कि मन न लगा तो उसी के साथ वापस आ जाऊंगा।

मैं तीन महीने का प्रोग्राम बना कर बंगलौर गया था, लेकिन धर्मवीर जी ने इतने आदर, सम्मान, आत्मीयता और स्नेह से मुझे वहां रखा कि मैं पूरे पाँच महीने बंगलौर में उनके यहाँ रह आया। मैं नहीं जानता, मेरे

किसी सम्बन्धी या मित्र ने, मुझे कभी इतना आदर-सम्मान, स्नेह और अण्डरस्टैण्डिंग दी है। मैंने वहां पहले अपना नाटक 'लौटता हुआ दिन' पूरा किया, फिर प्रस्तुत उपन्यास का पहला भाग शुरू कर दिया। दस परिच्छेद मैंने वहां लिखे। जब उपन्यास अटक गया तो मैं चला आया। लेकिन अंग्रेजी कहावत है—'वेल बिगन इज हाफ डन'। नया उपन्यास शुरू करने ही में दिक्कत होती है। बंगलौर में उपन्यास शुरू हो गया तो मैं तब से इसे लगातार लिखता आ रहा हूं। १९७२ में मुझे 'सोवियत लण्ड नेहरू पुरस्कार' मिला था और मई '७३ में रूस जाने का निमन्त्रण भी आया। मैंने पासपोर्ट भी बनवा लिये लेकिन उपन्यास ऐसे नाजुक मरहले पर था कि यदि मैं छोड़ कर चला जाता तो फिर कौन जाने कब लिख पाता। सो उस लोभ का संवरण कर, उन से क्षमा मांग, मैं इसी पर जुटा रहा और अन्ततः जुलाई '७३ में मैंने इसका पहला भाग समाप्त कर दिया।

जब उपन्यास की कथा 'गिरती दीवारें' में ले कर 'नयी कहानियां' में छपे खण्ड तक पहुँच गयी, तो मैंने उसी खण्ड को उठाया। उसे रिवाइज किया और अन्त के परिच्छेद लिख कर उसे पूरा कर दिया। वही प्रस्तुत उपन्यास का दूसरा भाग है।

अब इस उपन्यास-माला का सिर्फ पांचवां और अन्तिम खण्ड लिखना शेष है। वह सर्वाधिक कठिन भी है। मेरी उम्र बढ़ गयी है, शक्ति घट गयी है और यह अजीब बात है कि जब-जब मैंने इस उपन्यास माला का कोई खण्ड समाप्त किया है, मेरा पुराना रोग सक्रिय हो आया है—'गिरती दीवारें' खत्म कर, मैं दो वर्ष सेनेटोरियम में पड़ा रहा था, '. . . प्राईना' की समाप्ति पर साल भर बीमार रहा, 'एक नन्ही किन्दील' लिख कर दिल्ली गया और तीन महीने वहां पड़ा रहा और ये पंक्तियां लिखने से पहले एक्स-रे करवा कर आया हूं और मालूम हुआ है कि इस बार बायें फेफड़े में फिर फ्लेयर-अप हो गया है—शरीर मेरा चाहे थक गया हो, लेकिन न मेरा दिमाग थका है, न अन्तर की आग बुझी है। जिन्दगी ने मोहलत दी और मेरे पाठकों मित्रों और स्नेहियों की दुआएं साथ रहीं तो जिन्दगी को खैरबाद कहने से पहले मैं इसे जरूर पूरा कर दूंगा।

०

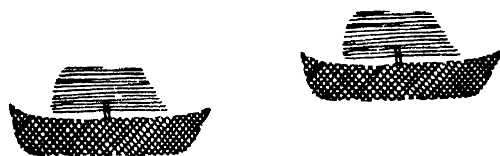
प्रस्तुत उपन्यास के बारे में अपनी ओर से मैं कुछ नहीं कहूंगा। वह सहृदय

पाठकों के हाथों में है। मैं उनकी प्रतिक्रिया और सुझावों की बाट देखूंगा। यहां सिर्फ़ इतना ही कि प्रस्तुत उपन्यास के दोनों खण्ड अपने में पूरे हैं। पाठक ध्यान से पढ़ेंगे तो पायेंगे कि एक सूत्र में बँधे होने के बावजूद इस माला के पहले तीनों उपन्यासों की तरह, ये भी अपने मे मुकम्मल उपन्यास हैं। इन दोनों खण्डों के लेखन-काल मे दस वर्षों का अन्तराल है और इनकी विषय-वस्तु ही नही—शैली, शिल्प और भाषा भी थोड़ी भिन्न है। मैंने उपन्यास को बीच से न लिखा होता और ये क्रमशः छपते तो अलग-अलग नामों से छपते, लेकिन अब ये एक ही नाम से छप रहे हैं—इसलिए भी कि वस्तु और परिवेश भिन्न होने के बावजूद, वे एक ही थीम से जुड़े हैं और उपन्यास का नाम दोनों पर पूर्णतः उपयुक्त उतरता है।

इन पंक्तियों को लिखते हुए मुझे अपने दिवंगत साथी, सुरेन्द्रपाल सिंह की बेहद याद आयी है। क्योंकि उपन्यास का नाम उन्ही का दिया हुआ है। वे मेरे मित्र भी थे, सहयोगी भी और कड़े आलोचक भी। 'शहर में घूमता आईना' हम दोनों ने इकट्ठे मिल कर रिवाइज़ किया था, काटा-छाँटा था और उसके एक-एक शब्द और वाक्यांश पर बहस की थी। यह ठीक है कि अब मेरे पास मेरा योग्य बेटा है, जो यह काम उतने ही सुचारु रूप से करता है, लेकिन वह तो मेरा ही अंग है। सुरेन्द्रपाल मुझसे निकट हो कर भी दूर थे और अपनी बात कहने में निर्मम हो सकते थे। मैंने सारा-का-सारा उपन्यास, न जाने कितनी बार उन्हें सुनाया होगा। वे लगातार मुझे कोंचते थे कि मै नाटक-वाटक लिखना छोड़ कर इसे खत्म करूँ। कभी यदि आठ-दस वर्ष बाद मै इसका पाँचवाँ और अन्तिम खण्ड लिख कर उपन्यास खत्म कर पाया तो मै मानूंगा कि उसके पीछे इस उपन्यास मे उनकी आस्था और इसे खत्म करने मे उनके अनुरोध का भी हाथ होगा। अपने तमाम पाठकों और मित्रों के साथ मै अपने उस दिवंगत साथी का अत्यन्त आभारी हूं।

उपेन्द्रनाथ अश्क

पहला घाट



बाँधो न नाव इस ठाँव

पहला खण्ड



एक

सवेरे चेतन की आँख खुली और उसने लेटे-लेटे बत्ती जलायी तो सामने मेज़ पर रखे टाइम-पीस में छै बजे थे।

उसके बराबर ही चन्दा गहरी नींद में सो रही थी। कोहनी के बल ज़रा-सा उठ कर चेतन ने अपनी पत्नी के चेहरे पर निगाह डाली—किंचित बासी, लेकिन मुरझाया या कुम्हलाया ज़रा नहीं। बड़ी-बड़ी आँखें शान्त भाव से मुँदी हुई। न पलकों पर कोई सिलवट, न माथे पर कोई लकीर। एकदम तनावहीन, शान्त और स्थिर!—उसे कोई फ़िक्र नहीं कि पति की नौकरी छूट गयी है और घर में दो जून का आटा नहीं। अपना पूरा विश्वास उसे सौंप कर, नितान्त चिन्ता-मुक्त हो, वह सो रही थी।

पिछली शाम क्रोध के आवेग में 'भूँचाल' की सम्पादकी महाशय जीवनलाल कपूर के मुँह पर मार कर, जब चेतन दफ़्तर की सीढ़ियाँ उतरा था तो घर की ओर चलते वक्त चन्दा की प्रतिक्रिया के भय से उसके पैर मन-मन भर के हो आये थे; लेकिन उसकी पत्नी ने पल भर में उसे आश्वस्त कर दिया था। 'फिर क्या हुआ! और दस नौकरियाँ मिल जायेंगी।'—चन्दा के इस एक वाक्य ने चिन्ता और निराशा के बदले चेतन के मन में अदम्य उत्साह भर दिया था।....

चाय पी कर जब वे घूमने निकले थे तो चन्दा ने फिर उससे कहा था, "चलिए जमुना के चलते हैं; आपका मन बहल जायगा।"

चेतन ने रुक कर क्षण भर को उसकी ओर देखा था—अपार भोला-पन और अपने पति को प्रसन्न करने की इच्छा से उत्फुल्ल चेहरा—आँखें

मिलते ही चन्दा ने अपनी बत्तीसी खिला दी थी और हल्के-से आँखें नचाते हुए कहा था : "सच, चलिए ग्वाल मण्डी चलते हैं।"

उस भंगिमा में कुछ ऐसा चोंचला था कि चेतन का जी हुआ, वहीं सरे-बाज़ार उसे बाँह में भर कर चूम ले। ठहाका मार कर हँसते और उसके कन्धों को बायी बाँह में ले कर जोर से आगे ठेलते हुए उसने कहा था, "मेरी जान, क्यों घी को आग के पास ले जाती हो! चलो, अनारकली में घूमते हुए गोल बाग़ तक चलते हैं।"

चन्दा ने बड़े प्यार से उसकी ओर देखा था और दोनों हस्पताल रोड पर हो लिये थे।

शाम का वक्त। अनारकली पूरी जवानी पर थी। साज़ो-सामान से भरी, जगमगाती दुकानें और ख़रीदारों और तमाशाइयों की बेपनाह भीड़। चेतन की जेबें खाली थीं। दो पैसे की गजक या मूँगफली या खजूरें तक लेने को भी उसके पास पैसे नहीं थे, लेकिन अनारकली में घूमते हुए चेतन को कुछ अजीब-सी पूर्णता का एहसास हुआ था। उसे लगा था, जैसे सारी दुनिया की दौलत उसके पास है और कोई ग़म या फ़िक्र उसे नहीं है।

अपनी पत्नी के साथ-साथ, उसे बाँह के घेरे में लिये हुए, भीड़ में रास्ता बनाता, औरतों को चिकोटी काट कर या कोहनी मार कर मजा लेने वाले गुण्डों से उसे बचाता और दुनिया-जहान की बातें करता हुआ चेतन अनारकली पार कर, कचहरी रोड वाले चौरस्ते पर पहुँच गया था। बाँह उसने हटा ली थी और वे टहलते हुए भाई साहब की दुकान पर पहुंच गये थे।

सर्दी जोरों पर थी। पेशावरी चप्पल और तहमद में चेतन के पाँव और टाँगें ठण्डी-यख़ हुई जा रही थीं, लेकिन ओवरकोट को उसने सीने पर कस लिया था और बातों की गर्मी ने उसके पैरों की सर्दी भुला दी थी। चन्दा ने साड़ी पर पूरी बाँह का वही धारीदार, लाल कार्डीगन पहन रखा था, जो चेतन ने पार साल आठ रुपये में उसे ख़रीद कर दिया था और जिसके कारण चेतन की भाभी ने ईर्ष्या से मुँह फुला लिया था। पत्नी को वही

सड़क पर रुकने का संकेत कर, चेतन लपकता हुआ भाई साहब की दुकान के अन्दर गया था। वे डेण्टल इंजिन पर पैर रखे, किसी पेशेण्ट के डेंचर पर पालिश कर रहे थे। पार्टीशन के दरवाजे ही में खड़े-खड़े चेतन ने उन्हें बताया था कि वह महाशय जीवनलाल कपूर (सम्पादक और मालिक, साप्ताहिक 'गुरु घण्टाल' और 'भूँचाल') की नौकरी छोड़ आया है। संक्षेप में उसने महाशय जी से होने वाली झोंट का भी जिक्र किया था, दो-चार शुद्ध पंजाबी 'मधुर वचन' महाशय जीवनलाल की भेंट किये थे और भाई साहब से कहा था कि वे फ़िक्र न करें, वह पांच-सात दिन में कोई-न-कोई काम ढूँढ लेगा।

भाई साहब ने किसी तरह की चिन्ता प्रकट न की थी। वे निर्विकार भाव से डेंचर पर पालिश करते रहे थे। चेतन कोई-न-कोई काम ढूँढ लेगा, इस बात का उन्हें पक्का विश्वास था। हाँ, जब उसने उन्हें बताया कि वह चन्दा को साथ ले कर जरा लाला लाजपत राय की मूर्ति तक जा रहा है तो उन्होंने कहा था कि वे तो शाम को एक मित्र के साथ निस्बत रोड के नये खुले रेस्तराँ—'ताज'—में खाना खायेंगे, फिर 'रत्तन' में सिनेमा देख कर घर आयेंगे, वह चन्दा से कह दे कि उनकी प्रतीक्षा न करे।

चन्दा सड़क पर खड़ी-खड़ी थक कर डाक्टर साहब के वेटिंग-रूम में कौच पर आ बैठी थी। चेतन अपनी बातों में भूल ही गया था कि वह पत्नी को सड़क पर प्रतीक्षा करते छोड़ आया है। भाई साहब की बात सुन कर उसे सहसा चन्दा की याद आयी। वह पलटा और उसे कौच पर बैठे देख कर खिसियानेपन से हँसता हुआ बोला, 'अच्छा हुआ तुम अन्दर आ गयी!'

चन्दा उठी। दोनों बाहर निकले। दुकान की सीढ़ियाँ उतरते हुए चेतन ने उसे बताया कि भाई साहब रात का शो देखने जा रहे हैं और खाना बाहर खायेंगे और दोनों इत्मीनान से खरामा-खरामा चलते हुए लाजपत राय की मूर्ति तक गये थे। गर्मियों में तो उस वक्त वहाँ बड़ी भीड़ होती थी, लेकिन सर्दी उतर आयी थी, कोहरा पड़ने लगा था। बेंच और घास उन्हें जरा भीगी मालूम हुई। चेतन ने तहमद के छोर से बेंच को पोंछा। दोनों

थोड़ी देर बैठे। लेकिन सर्दी बढ़ रही थी और सड़क पर सन्नाटा था। वे उठे थे और नीला गुम्बद की ओर से मेयो हस्पताल रोड की चढ़ाई पार कर, घर वापस आ गये थे....

०

अपनी पत्नी के मुख से निगाहें हटा कर चेतन ने रोशनदान की ओर देखा। बाहर मटमैला-सा उजेला हो आया था। पहले उसने चाहा कि झकझोर कर चन्दा को जगा दे। लेकिन पिछली शाम की लम्बी सैर के बाद वे थक गये थे। खाना पकाने और खाने में देर हो गयी थी। वे भाई साहब के आने का इन्तजार करते रहे थे, बातें करते रहे थे, प्यार करते रहे थे और डेढ़-दो बजे के बाद चेतन अपनी पत्नी की बाँह पर सिर टिकाये, उसके गर्म-गुदाज सीने से लगा-लगा, सो गया था।

रात के सुख की मीठी याद, होंटों पर उदय हो कर शरीर की नस-नस मे फैल जाने वाली मुस्कान की तरह, चेतन के रोम-रोम में बस गयी। अपनी उस भोली-भाली, गोल-गुलगोथनी पत्नी के लिए उसका मन कुछ अजीब-से दया-भरे प्यार से उमड़ आया। उसने झुक कर उसकी बन्द पलकों मे बारी-बारी अपने होंट छुला दिये। ज़रा-सा सिर हिला कर चन्दा ने करवट बदल ली। चेतन का जी हुआ, उसे बरबस अपनी ओर करके बाँहों मे भर ले और चूम-चूम कर उसे पूरी तरह जगा दे....लेकिन उसने कुछ नहीं किया। क्षण भर प्यार से उसके बालों पर हाथ फेरता रहा। फिर वह सँभल कर लिहाफ मे बाहर आ गया और लिहाफ़ को उसने अपनी पत्नी के गिर्द अच्छी तरह कस दिया।

'सो ले बेचारी अभी एकाध घण्टा और!' उसने जोर की अँगड़ाई लेते हुए मन-ही-मन कहा, 'जाने ज़िन्दगी में कितनी मुसीबतें झेलना और रातें जागना इसके भाग्य मे बदा है!—सो ले, जब तक गहरी नींद आती है और मेरी तरह परेशानियाँ इसकी नींद हराम नहीं करतीं।'—पलट कर उसने फिर एक नज़र अपनी सोयी हुई पत्नी पर डाली और कुर्सी मे लोई[1]

---

१. करघे की बुनी, पतली, गर्म चादर।

उठा कर, अच्छी तरह उसकी बुक्कल मारते हुए कमरे से बाहर निकल गया।

यह अजीब बात है कि शादी के इन दो वर्षों में अपनी पत्नी के लिए ऐसा प्यार और स्नेह चेतन के मन में पहले कभी नहीं उमगा। उसे याद आया—शुरू-शुरू में तो दिन के उजेले में उसके साथ बाहर कहीं जाते हुए उसे झिझक होती थी। एक शाम वह चन्दा के साथ जा रहा था कि सामने से उसके सम्पादक, (वह उन दिनों दैनिक 'वन्दे मातरम' में काम करता था) महाशय धनपत राय, बी० ए० (नेशनल), अपनी परी-सी सुन्दर पत्नी के साथ आते मिल गये थे....वह कितना सकपका गया था, उसे कैसी शर्म आयी थी....वह पतला-छरहरा, नफ़ासत-पसन्द, शायर-मिजाज लड़का और चन्दा मोटी-मुटल्ली, गोल-गुलगोथनी युवती! हालाँकि वह उमर में चेतन से एक वर्ष ही कम थी—चेतन तब इक्कीस का होने जा रहा था तो वह बीस की होगी—लेकिन उसे देख कर लड़की कहना चेतन से किसी तरह न होता था। वह लड़की नहीं, भरी-पुरी युवती थी। चेतन को वह अपने से बड़ी लगती थी, बड़ी और मेच्योर! अपने जोड़ की तो उसे कुन्ती लगती थी—पतला-छरहरा, चलने में कई-कई बल खाता शरीर, सुलोचना[1]-सा नुकीला गोरा मुख, बड़ी-बड़ी कँटीली आँखें और चौड़े माथे पर आधे चाँद-सा किसी चोट का निशान....नीला लगती थी—गोरी-गुटकनी, चंचल-चपल और चुलबुली! और इसीलिए उन दोनों को ले कर अब तक वह इतना परेशान रहा था। लेकिन कब उसके मन से उन दोनों को परे हटा कर चन्दा ने अपने लिए इतनी जगह बना ली, चेतन जान नहीं पाया।....

रसोई-घर का दरवाजा खोल, उसने एक गिलास बासी पानी पिया। फिर गुसलखाने से लोटा भर कर नित्य-कर्म से निबटने तिमंज़िले पर चला गया।

पिछले वर्षों की स्मृतियों में उलझा, कब वह निबट-निबटा कर वापस

---

१. ख़ामोश फ़िल्मों की प्रसिद्ध नायिका

आ गया, उसे पता नहीं चला। गुसलखाने को जाते हुए उसने एक नज़र भाई साहब के दरवाज़े पर डाली। वे प्रायः तड़के उठ जाते थे, लेकिन रात देर में सोने के कारण उनके कमरे का दरवाजा बन्द था। गुसलखाने में अच्छी तरह हाथ और लोटा माँज-धो कर चेतन रसोई-घर में गया। पानी के एक गिलास में फुलाही[1] की पतली, टेढ़ी-मेढ़ी दातुनें भीग रही थीं। चेतन ने एक दातुन उठायी। उसकी खाल ज़रा लसीली हो आयी थी। पानी का भरा लोटा ले कर वह दहलीज़ पर बैठ गया और रसोई-घर के बाहर बहने वाली नाली में दातुन करने लगा। फुलाही की दातुन का स्वाद पहले किंचित कसैला होता है, फिर वह मजा देने लगती है। बबूल या नीम की अपेक्षा फुलाही की दातुन की कूची भी बेहतर बनती है। दातुन के सिरे को अच्छी तरह चबा कर उसकी कूची से चेतन ने दाँत साफ किये। फिर उसे चीर कर उसने जीभ साफ़ की और उसे बाहर गली में फेंक आया। वापस आ कर उसने मिट्टी के कूजे में रात भर के भीगे आमलों के पानी को शीशे के गिलास में छाना। खट्टा, सर्द पानी। दायें हाथ में भर कर उसने आँखों पर छींटा मारा तो उसका सारा शरीर झनझना आया। लेकिन उस तीखे, ठण्डे, खट्टे पानी से होने वाले कष्ट की परवाह न करके, आँखें खोल, पै-दर-पै वह छींटे मारता गया। आँखें उसकी ऐसे साफ हो गयीं, जैसे उनमें ज़रा भी थकन न हो। एकदम सुबह-सी ताज़ी!

छींटे मार कर और कूज़े को शाम के लिए दोबारा भर कर वह रसोई-घर को बन्द करने जा रहा था कि भाई साहब के कमरे का दरवाज़ा खुला। चेतन ने उन्हें 'नमस्ते' की और रसोई-घर की कुण्डी लगाये बिना अपने कमरे में आ गया। दराज़ में उसने मैडम रिक्की वाला लेख और अपना एक पेज का वह अनुवाद निकाला, जो उसने पिछले दिन नौकरी छोड़ने से पहले 'भूँचाल' के लिए किया था। सहसा उसके साथ लगा एक कटिंग फ़र्श पर जा गिरा। उसने जब सारे कटिंग उठा कर महाशय जीवनलाल के सामने पटक दिये थे तो यह शायद मैडम रिक्की वाले लेख के साथ

१. बबूल की जाति का एक पेड़

चिपका रह गया था और उसके साथ ही चला आया था।

चेतन ने झुक कर उसे उठाया और पढ़ने लगा :

ऐन अनएम्प्लॉयड, हू हैल्प्ड मिलियन्ज़

चेतन ने शीर्षक पढ़ा—एक बेकार, जिसने लाखों की मदद की !—मैडम रिक्की वाला लेख छोड़ कर, वह उसे पढ़ने लगा।

लेख अमरीका के एक प्रसिद्ध लेखक के बारे में था, जिसने गरीब घर में जन्म लिया, घोर संघर्ष किया और फिर अपने अनुभव के बल पर एक किताब लिखी—'हाउ टु विन फ्रेण्ड्स एण्ड इन्फ्लूएन्स पीपल।' लेखक का नाम डेल कार्नेगी था और लेख में उसके सिद्धान्तों का सार दिया गया था।

डेल कार्नेगी का कहना था कि बुरे-से-बुरे व्यक्ति में भी कुछ ऐसा होता है, जिसकी प्रशंसा आप मन से कर सकते हैं। जब आप किसी से मिलने जाते हैं तो देखिए कि आप किस चीज की तारीफ कर सकते हैं और अपनी बात करने से पहले, पूरे मन के साथ उसकी तारीफ कीजिए।

अपने अनुभवों में कार्नेगी ने पाया था कि हर आदमी को अपना नाम पसन्द होता है; हर आदमी की कोई-न-कोई कमजोरी होती है; हर आदमी को कोई-न-कोई सनक या शौक होता है, हर आदमी अपने बारे में बात करना चाहता है—किसी को अपना पहनावा या रुकावट पसन्द होता है या कमरे की बनावट-सजावट; उसमें लगे किसी चित्र पर गर्व होता है या अपने सजे-सँवरे बागीचे पर; वह अपने नये मकान की बात करना चाहता है, या अपने किसी अन्य प्रिय शौक की।

डेल कार्नेगी का सुझाव था : अगर आप चाहते हैं, कोई आदमी आप में दिलचस्पी ले तो पहले आप उसमें दिलचस्पी लीजिए। बातों-बातों में जानिए कि उसका क्या शौक है, उसे क्या पसन्द है, उसे किस बात पर गर्व है। यह जान कर आप मन से उसकी प्रशंसा कीजिए। कठोर-से-कठोर आदमी पिघल जायगा, आप में दिलचस्पी लेने लगेगा और आप जो चाहते हैं, हो जायगा।

'स्साला, जो चाहते हैं, हो जायगा का,' चेतन ने कटिंग को हाथ में मसलते और मुट्ठी में उसका गोला बनाते हुए मन-ही-मन कहा, 'इस साले कार्नेगी का पाला लाला जीवनलाल कपूर जैसे किसी आदमी से नहीं पड़ा, वरना दूसरों के शौक जानने का सारा जोश उसका ठण्डा हो जाता—गन्दे लतीफे और छत-फाड़ ठहाके सुनते-सुनते उसके कान फट जाते और निहायत रद्दी फ़िल्मों की तारीफ़ करते-करते ज़बान सीठी हो जाती।—हाउ टु विन फ्रेण्ड्स एण्ड इन्फ्लूएन्स पीपल!' चेतन ने व्यंग्य और वितृष्णा से जैसे दाँतों में किताब का नाम दोहराया। क्या छल-कपट ही से लोगों को प्रभावित किया जाता है और उनकी दोस्ती जीती जाती है? 'तेल तमा जिसको मिले, तुरत नरम हो जाय' तो यहाँ का हर आदमी जानता है। लोगों को तेल लगा कर तो मूर्ख-से-मूर्ख भी सफलता पा सकता है। समस्या तो यह है कि आदमी अपनी खुदी को बरकरार रखते हुए गधों को तेल लगा कर नहीं, अपनी शक्ति और योग्यता के बल पर आगे बढ़े!

और उसने मुट्ठी मे मुड़ा-तुड़ा कागज़ कोने में फेंक दिया, तख़्ती आगे खिसकायी और मैडम रिक्की के लेख का अनुवाद करने लगा।

लेकिन उसका पहला शब्द लिख कर वह उठा। वह कटिंग तो उसका नहीं है, उसने सोचा, उसे नष्ट करने का उसे क्या अधिकार है? वह लाला जीवनलाल कपूर का है और वह उन्हीं को दे आयेगा।....उसने जा कर कोने से कटिंग का गोला उठाया और मेज़ पर फैला कर, उस पर हाथ फेर, उसकी सिलवटें निकालीं; फिर उस पर फ़ाइल रख कर अलमारी में किताबें उठा लाया और फ़ाइल को उनसे दबा दिया ताकि मुड़ा-तुड़ा कागज सीधा हो जाय। फिर वह इत्मीनान से अनुवाद करने लगा।

अभी उसने मुश्किल से एक पैरा लिखा होगा कि चन्दा अपने आप उठ बैठी। साड़ी के पल्लू से सिर और सीने को ढँकते हुए उसने कहा, "आपने मुझे जगाया क्यों नहीं।" लेकिन चेतन ने कोई जवाब नहीं दिया। शायद उसने सुना भी नहीं। उसका सारा ध्यान अनुवाद में लगा था।

चन्दा धीरे-धीरे उठी और बिना शोर किये, बाहर निकल गयी।

साढ़े नौ बजने वाले थे। भाई साहब कब के तैयार हो कर दुकान चले गये थे। सर्दियों की धूप खिड़की के बाहर खिल आयी थी, जिसका एक सुनहरा चकत्ता अतीत की किसी मीठी स्मृति-सा डेवढ़ी में बढ़ आया था। तभी चन्दा खाना-वाना पका कर और खा कर विद्यालय जाने के लिए तैयार हो कर आ गयी।

"अब उठिए! लस्सी तो पी आइए! साढ़े नौ बज गये हैं।"

चेतन ने बिना उत्तर दिये, अनुवाद की अन्तिम पंक्ति लिखी और कलम रख कर थकी उँगलियाँ चटखाता हुआ उठा। लोई उसने वहीं कुर्सी पर रख दी और बढ़ कर खूँटी से अपना ओवरकोट उतार कर बोला, "चलो, मैं हलवाई की दुकान तक तुम्हारे साथ चलता हूँ। मैं वहाँ लस्सी पिऊँगा, तुम उधर से स्कूल चली जाना।"

ओवरकोट पहन और बैठक को ताला लगा कर वह चन्दा के आगे-आगे गली से निकल गया।

"मैं तुम्हें विद्यालय पहुँचा कर वापसी पर लस्सी पीता, पर मुझे भूख लग आयी है।" चेतन ने कहा।

"आप तो आठ बजे ही लस्सी पी आते हैं। आज तो साढ़े नौ बज गये। चलिए, आपको दुकान पर छोड़ कर मैं उधर ही से चली जाऊँगी।"

दोनों कृष्णा गली से निकल कर रेलवे रोड पर बायें हाथ को बाज़ार के किनारे-किनारे चल दिये।

वे अभी चन्द ही कदम चले होंगे कि बाज़ार की दूसरी ओर बिजली के मिस्त्री की दुकान पर बैठे किसी दिलफेंक माझे ने चन्दा को देख कर ज़ोर से सीटी मारी और अपने साथी को सुना कर आवाज़ा कसा :

"ओए गामे, कोई जवानी ऐ भाप्पे,[1] समन्दर दी तुरियानी ऐ, तुरियानी।"[2]

चन्दा का रंग लाल हो आया। चेतन ने एक उड़ती नज़र उधर

---

१. भाई। २. तूफ़ान

डाली।—सख्त सर्दी के बावजूद खुले तहमद और मैली कमीजें पहने, दो मज़दूर-मिस्त्री, प्रकट अपने काम में मगन, पर दरअसल राह चलती औरतों को देख और आवाज़े कस कर गर्मी पा रहे थे। लाहौर के गली-बाजारों की यह आम घटना थी। उनके मुँह लगना अपनी हेठी कराना था। आवाज़ा वे लड़की या औरत पर कसते थे, पर सम्बोधन अपने साथी से करते थे कि कोई पकड़ न सके। अनपढ मिस्त्री-मजदूर ही नहीं, कॉलेज के पढ़े-लिखे लौंडों का भी यही वतीरा[1] था।

वे चुपचाप आगे बढ़ गये कि तभी उन दिनों की एक लोकप्रिय ग़ज़ल का शे'र मस्त और सोज़-भरी आवाज में लहराता हुआ उनका पीछा करने लगा :

> **जवानी है जवानी लाख दोहराओ दुपट्टे को**
> **यह तुग़ियानी समन्दर की भला यूँ रुकने वाली है**

खुद चेतन को वह ग़ज़ल बहुत पसन्द थी और उसके अगले दो शे'र तो वह अपनी तन्हा सैरों में प्रायः गुनगुनाया करता था :

> **यही हैं तफ़रके[2] दैर-ओ-हरम[3] में डालने वाले**
> **जरा सूरत तो इनकी देखना क्या भोली-भाली है**
> **ज़रा देखो तो दरवाज़े पे दस्तक कौन देता है**
> **झिझकते क्यों हो, यह 'हसरत' नहीं कोई सवाली है**

लेकिन उस वक्त उस गामे या माझे के मुँह से यह शे'र सुन कर उसे बेहद गुस्सा आया। 'साले आती-जाती औरतों को परेशान करते हैं, इन्हें कोई पूछने वाला नहीं!' उसने मन-ही-मन कहा। लेकिन दूसरे क्षण उसे अच्छा भी लगा। उसने साथ चलती हुई पत्नी पर एक निगाह डाली। उसका रंग निखर आया था। विद्यालय जाने के लिए बदन पर साफ़-सुथरी साड़ी, बीच से निकली मांग, दोनों कान बालों से ढँके हुए—उसका गोल-गुल-गोथना मुख सुन्दर लगता था और वह खुद चाहे उसे कुछ न गिनता हो,

---

१. दस्तूर, ढंग। २. वैमनस्य। ३. मन्दिर-मस्जिद।

पर उसकी जवानी की सनद वह बाज़ार में लहराता हुआ शे'र दे रहा था। सहसा उसने कहा :

"सुनो चन्दो, तुम जवान हो, सुन्दर हो। अकेली विद्यालय जाती-आती हो। मैं तुम्हे ताले मे तो रख नहीं सकता, न जंजीरों मे बाँध सकता हूं। फिर शरीर को तो आदमी बाँध सकता है, मन को तो नही बाँध सकता।...."

वह चुप हो गया। मन की बात किन शब्दों मे पत्नी से कहे—चलते-चलते वह लगातार यही सोचने लगा।

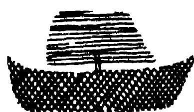
वह क्या कहना चाहता है, यह जानने को उत्सुक, चन्दा अपने पति की ओर सिर झुकाये चुपचाप चलती रही।

"मैं तुम्हे एक तजरुबे की बात बताता हूं," सहसा चेतन ने उसकी ओर मुड़ कर कहा, "किसी से किसी की आँख लगी हो तो बात दूसरी है, लेकिन बिना इसके अगर कोई सरे-बाजार किसी लड़की को छेड़ता है और वह उतार कर दो जूते उसे जमा देती है तो पठान का बच्चा भी क्यों न हो, उसके पाँव पड़ जायगा।"

चन्दा चुप सुनती रही। कुछ क्षण रुक कर चेतन फिर बोला, "आवाजों या फब्तियों पर कान देना बेवकूफी है। लेकिन कोई बढ कर छेड़े या चुटकी काटे तो पकड़ कर दो जूते उसके लगा दो। बड़े-से-बड़े जवाँमर्द का पित्ता पानी हो जायगा और ऊपर से बाज़ार के राह चलते उसकी मरम्मत कर देंगे। चुपचाप सह जाओगी तो दूसरी बार वह और भी बदतमीजी करेगा।"

हलवाई की दुकान आ गयी थी। पत्नी का कन्धा थपथपाते हुए उसने कहा, "अच्छा तुम जाओ। मै मज़मून ले जा कर देखूँगा, महाशय जीवन-लाल कुछ देते है या नहीं? अब तो जाने कब तक दिन-दिन भर काम की तलाश करनी होगी। अव्वल तो तुम्हारे आने तक मैं लौट आऊंगा, देर भी हो गयी तो तुम नाश्ता वगैरा कर लेना। चाबी मै ऊपर मालकिन-मकान को देता जाऊँगा।"

"जी अच्छा !" कहती हुई चन्दा मन्थर गति से बढ़ गयी। चेतन क्षण भर वहीं खड़ा उसे जाते हुए देखता रहा, फिर उसने बढ़ कर हलवाई को पाव भर दही की लस्सी बनाने के लिए कहा।



दो

हलवाई की दुकान से लस्सी पी कर चेतन जब लौटा तो अपने ध्यान मे मगन वह डेवढी के अन्दर पैर रखने ही जा रहा था, जब बैठक के सामने बाँसो के टाल के बराबर खुली जगह मे उसे कुछ सरगर्मी दिखायी दी। उसका ध्यान उधर चला गया—मैले तहमद या पायजामे और धारीदार बोस्की या गबरून की वैसी ही मैली कमीजे और उन पर गर्म वास्केटें अथवा स्वेटर पहने हुए उठाईगीर किस्म के कुछ लोग वहा एक अस्थायी स्टॉल बना रहे थे। वे न मजदूर लगते थे, न मालिक। शक्ल उनकी दल्लालो जैसी थी। जाने कहाँ से वे कुछ बडे-बडे खोखे, तख्ते, लोहे की तीन कुर्सिया, एक स्टूल और काली-सी सन्दूकची ले आये थे। चेतन के देखते-देखते सडक से जरा हट कर उन्होने खोखे और उन पर तख्ते जमा दिये, फिर उन पर बड़ा-सा कपड़ा बिछा दिया, जिसने खोखो को बिल्कुल ढँक दिया। तब लोहे की तीनो कुर्सियाँ उन्होने स्टॉल के तीनो ओर लगा दी और सडक की ओर उसे खुला रहने दिया। दायी कुर्सी के निकट स्टूल रख कर उस पर लोहे की काली सन्दूकची रख दी। तभी अपेक्षाकृत सभ्य दीखने वाला एक आदमी मैली-सी गर्म अचकन और चूडीदार पायजामा पहने, शाह-आलमी दरवाजे की ओर से नमदार हुआ—गले में गुलूबन्द लपेटे और सिर पर गर्म कश्मीरी टोपी सजाये!—उसके पीछे-पीछे एक पतला-दुबला मदकूक-सा[1] अधेड़ शख्स सिर पर बड़ी-सी गठड़ी उठाये आ रहा था।

एक कुर्सी पर गठडी टिका कर, उसमे से कुछ गर्म कम्बल, टाइमपीस,

---

१. दिक का मारा

घड़ियाँ, पत्थरों के बड़े-बड़े मनकों की मालाएँ और ऐसा ही फुटकर सामान उन्होंने स्टॉल पर सजा दिया। वह मरियल-सा अधेड़ व्यक्ति दायीं ओर लाल बही ले कर बैठ गया। बड़ी-बड़ी मूँछों वाला पहलवान-सिफ़त एक गुण्डा बायीं ओर बैठ गया। और वह अचकनपोश हाथ में लकड़ी का हथौड़ा लिये, स्टॉल के पीछे चेतन के मकान की ओर पीठ करके खड़ा हो गया। वे लोग, जो खोखे और सामान लाये थे, स्टॉल के आगे भीड़ लगा कर खड़े हो गये। उनमें से दो व्यक्ति रत्नचन्द रोड पर दायें-बायें (कदाचित शिकार की तलाश में) चले गये।....तब अचकनपोश ने एक टाइमपीस बायें हाथ में उठाया और जोर से नारा लगाते हुए बोला :

"आइए-आइए! बढ़िया टाइमपीस सस्ते में जाता है। दस रुपये का टाइमपीस सस्ते में जाता है। आइए! जो ऊँची बोली देगा, टाइमपीस पायेगा, जो न पायेगा, इनाम पायेगा।"

और उसने लकड़ी के हथौड़े से दो बार तख्ते पर ठक-ठक की, "बोलिए भाई, पहली बोली—पाँच रुपये।"

"चार आने।" सामने वालों में से एक ने कहा।

चेतन सीढ़ियों से उतर कर गली में ज़रा इधर को जा खड़ा हुआ। उसका ख़याल था—नीलामकार हँसेगा या मज़ाक करेगा। लेकिन उस पर कोई वैसी प्रतिक्रिया नहीं हुई। सहज भाव से हथौड़े से हवा को ठकोरे देता हुआ अचकनपोश अपने कण्ठ की पूरी आवाज से बोली दोहराने लगा— "चार आने....दस रुपये के टाइमपीस की पहली बोली चार आने....चार आने....चार आने एक....चार आने...."

"छै आने।" सामने वालों में से एक दूसरा बोला।

"आठ आने।" पहला चिल्लाया।

दो-एक राह-चलते तमाशा देखने को आ खड़े हुए। चेतन समझ गया कि उठाईगीर नीलामकार हैं। सरक्यूलर रोड पर उनका अड्डा था। लम्बी काली दाढ़ी वाले एक मौलवी-नुमा बुज़ुर्ग उसके मालिक थे और स्टेशन से आने वाले, भोले-भाले, अनजान परदेसियों को लूटा करते थे।....

चेतन ने सोचा था कि नहा-धो कर 'गुरु घण्टाल' का दफ़्तर खुलते ही वह अनूदित लेख महाशय जीवनलाल कपूर को दे कर उसका पारिश्रमिक और अपने वेतन के शेष रुपये ले आयेगा, लेकिन अन्दर जाने के बदले, वह अपनी डेवढ़ी की चौखट में कन्धा लगा कर खड़ा हो गया और तमाशा देखने लगा।

बोली इस बीच एक रुपये तक जा पहुँची थी। चेतन ने देखा कि उन लोगों का साथी, जो मेयो हस्पताल की ओर गया था, उधर से आने वाले एक गोरखा फौजी के कानों में कुछ खुसफुसाता हुआ चला आ रहा है। स्टॉल के करीब पहुंच कर उसने गोरखे की कमर में बाँह दे कर पुराने यार की तरह उसे भीड़ में ठेल दिया और खुद उसके साथ लगा-लगा, जैसे तमाशा देखने लगा। गोरखा कुछ न समझ पाने वाला भाव चेहरे पर लिये, उजबक-सा खड़ा हो गया।

"एक रुपया।"....अचकनपोश उसे देख कर अतिरिक्त उत्साह से चिल्लाया, "दस रुपये के टाइमपीस की बोली एक रुपया! बोलो भाई, कोई बोली बढ़ाता है.. .एक रुपया एक....एक रुपया....एक रुपया....एक रुपया एक... हमको बोली जंचेगी तो टाइमपीस देंगे, नहीं तो चार आना इनाम देंगे...."

"सवा रुपया....हमारी बोली सवा रुपया।" उस शख्स ने अपने सीने पर हाथ मारते हुए और फिर उसी हाथ को गोरखे के सीने पर रखते हुए कहा।

"एक रुपया छै आने।" उसी व्यक्ति ने कहा।

अचकनपोश ने बोली रोक दी। हथौड़ा तख्त पर रख दिया और दोनों हाथों में टाइमपीस ले कर उसके अलारम की चाबी घुमाता हुआ बोला, "गज़ब खुदा का यारो, दस रुपये का विलायती टाइमपीस और तुम दो-दो आने बोली बढ़ाते हो!"

अलारम की पूरी चाबी घुमा कर उसने अलारम की सुई घुमायी तो वह टनटनाने लगा। जब अलारम बज चुका तो उसने फिर उसे बायें हाथ

में उठा लिया और हथौड़े से हवा को ठकोरते हुए बोला, "एक रुपया छै आने....बढ़िया विलायती टाइमपीस की बोली—एक रुपया छै आने.... हमारे दाम मिलेंगे तो टाइमपीस देंगे, वरना बोली देने वाले को चार आने इनाम देंगे....एक रुपया छै आना....एक रुपया छै आना एक....एक रुपया...."

तब गोरखे को घेर कर लाने वाला उसके कान में फुसफुसाया, फिर अपने सीने पर हाथ मारते और इशारा गोरखे की ओर करते हुए बोला, "हमारी बोली एक रुपया आठ आना।"

लेकिन अचकन वाला कितनी ही देर चिल्लाता रहा, किसी ने बोली नहीं बढ़ायी। तब उसने पास बैठे मुन्शी को आदेश दिया—"दीजिए मुन्शी जी इसे चार आने।"

मुन्शी ने सन्दूकची खोल कर उसमें से चवन्नी निकाल कर उस आदमी की ओर फेंक दी। लपक कर उसे लोकते हुए उसने चवन्नी गोरखे को देनी चाही, पर गोरखे ने लेने से इनकार कर दिया। तब उसने चवन्नी अपनी जेब में रख ली।

इस बीच नीलामकार ने बड़े-बड़े पत्थरों का हार उठाया।

"बेशकीमत पत्थरों का निहायत ख़ूबसूरत हार—रूठी हुई बीवी के हाथ में दीजिए तो वह सारा गुस्सा भूल कर आपकी बगल में आ बैठे, माशूका को दीजिए तो आप पर सौ जान से निछावर हो जाय। बोलिए, बेशकीमत हार के लिए पहली बोली—दस रुपये।"

"चार आने," सामने वाले उसी के गुट के आदमी ने फिर कहा।

"चार आने," अचकनपोश हथौड़े को तख्त पर मार कर चिल्लाया, "इतने कीमती हार की पहली बोली चार आने....चार आने एक....चार आने दो....अगर हमको परता नही खायेगा तो जिसकी बोली सबसे ज़्यादा होगी, उसे आठ आने इनाम देंगे। हमारा दाम मिलेगा तो हार देंगे। बोलिए दोस्तो, बढ़ के बोलिए। चार आने....पहली बोली चार आने.... चार आने एक....चार आने...."

"छै आने," एक दूसरा बोला ।

"शाबाश !" अचकनपोश चिल्लाया, "बोलिए ! बढ़-बढ़ कर बोलिए । इतना बेशकीमत हार दस रुपये में भी समझिए मुफ़्त जायगा । छै आने.... एक....छै आने...."

तब चेतन ने देखा कि वह व्यक्ति, जो गोरखे के साथ चिपका खड़ा था, उसके कान में कुछ खुसफुसाया और बोला, "इनकी बोली—आठ आने !"

और इस बार बोली बढ़ कर ढाई रुपये तक चली गयी । ढाई रुपये की बोली भी गोरखे फ़ौजी की रही और उसकी ओर से उसी शख़्स ने दी । चेतन को वह हार छै-आठ आने से ज़्यादा का न लगता था और उसका खयाल था कि उन्होंने उस ग़रीब को ठग लिया है और वे बोली ढाई रुपये पर तोड़ कर फ़ौरन वह हार उसे जड़ देंगे ।

लेकिन नीलामकार ने वैसा नहीं किया । उसने व्यंग्य से कहा, "पास में रुपये भी हैं, या बढ़-बढ़ कर बोली दिये जा रहे हो ।"

तब वह ठग, जो गोरखे को घेर कर लाया था, चिल्लाया, "क्या कहते हो, हमारे कैप्टन साहब के पास रुपये नहीं हैं ? दिखाइए कैप्टन साहब इसे एक मज़्ज़ा !" (और उसने हाथ से इशारा किया कि दिखाइए जेब से निकाल कर इसे नोट ।)

गोरखे ने, जो प्रकट ही मामूली सिपाही था, लेकिन अपने लिए कैप्टन की उपाधि पा कर खुश हो गया था, जेब से पाँच का एक नोट निकाल कर उसे दे दिया कि लो, दिखा दो ।

"ठीक है । इस कीमती हार के हमें ढाई रुपये लेना मंज़ूर नहीं," अचकनपोश ने कहा, "नोट को अपने पास रखिए ।" और उसने मुन्शी से कहा, "मुन्शी जी, दीजिए कैप्टन साहब को आठ आने !"

मुन्शी ने आठ आने निकाल कर बढ़ा दिये और उसके उस ठग साथी ने लपक कर उससे आठ आने ले लिये और नोट के साथ गोरखे को वापस कर दिये ।

गोरखा प्रकट ही आठ आने मुफ़्त पा कर प्रसन्न हो गया।

तब अचकनपोश ने एक भूरे रंग का कम्बल उठाया और पहलवान की तरफ़ बढ़ा दिया। उसने खोल कर एक सिरा मुन्शी की ओर फेंका और दोनों ने उसे पूरा खोल कर सबको दिखाया और अपनी-अपनी ओर का कोना पकड़ कर स्टॉल के आगे खड़े हो गये। तब नीलामकार ने हथौड़े को दो बार तख़्त पर मार कर ठक-ठक करते हुए कहा :

"बोलिए मेहरबान, कद्रदान, असली ऊनी कम्बल के लिए बोली। सर्दियों का मौसम है और यह कम्बल रज़ाई से हल्का और उससे कहीं ज़्यादा गर्म है। सफ़र पर निकलिए तो भारी बिस्तर के बदले एक कम्बल साथ रख लीजिए—देखिए कितना चौड़ा है। आधा ऊपर और आधा नीचे बिछाइए और मज़े से सारे हिन्दुस्तान की सैर करते घूमिए। बोलिए, इस कम्बल के लिए पहली बोली—दस रुपये!"

"आठ आने।" सामने वाली उनकी टोली से एक आदमी ने कहा।

"आठ आने।" नीलामकार ने लकड़ी के हथौड़े से मेज़ को बजाते हुए आवाज़ लगायी, "इस असली ऊनी कम्बल की पहली बोली आठ आने। हमे दाम पुसायेगा तो बेचेंगे, नहीं सब से ज़्यादा बोली देने वाले को एक रुपया इनाम देंगे।"

इस बार गोरखे ने जोश से एक रुपया बोली दे दी।

चेतन को वे तमाम कम्बल मिलिट्री के नीलाम मे थोक भाव से एक-एक रुपये में ख़रीदे और धो कर तहाये गये लग रहे थे, लेकिन गोरखे ने कम्बल लेने के ख़याल से नहीं, उसके इनाम के लालच मे बोली दी थी और इस बार उन ठगों ने बोली पाँच रुपये तक बढ़ा दी। पाँच रुपये की बोली भी गोरखे को घेर कर उधर लाने वाले उसके साथी ही ने उसे उकसा कर दिलवायी थी। चेतन उस ठग की हरकतें बड़े ध्यान से देख रहा था। वह कुछ इस तेज़ी से हाथ और आँखें चला रहा था और खुसफुसाता हुआ, गोरखे को बढ़ावा दे रहा था, जैसे उसका पुराना यार हो। सोचने का मौका वह उसे ज़रा भी न दे रहा था।

"पाँच रुपये एक, पाँच रुपये दो...." अचकनपोश चिल्लाया—"बोली हमें पुसाये तो इतना बढ़िया असली ऊनी कम्बल, वरना एक रुपया इनाम.... पाँच रुपये... ऐसे बढिया कम्बल की बोली सिर्फ़ पाँच रुपये....जो बोली दे, रुपये हाथ में दिखाये, तभी इनाम पाये....पाँच रुपये...."

तब गोरखे ने इनाम पाने के लालच में पाँच का नोट निकाल, मध्यमा और अँगूठे की चोंच में पकड़ कर आगे कर दिया और ऐन उसी वक्त अचकनपोश ने "पांच रुपया एक....पाँच दो....पांच रुपया तीन!" कहते हुए आगे बढ़ कर हथौड़े वाले हाथ से नोट झटक लिया और बायें से कम्बल गोरखे पर फेंक दिया।

उस वक्त, जब कम्बल ने गोरखे सिपाही का चेहरा ढंक लिया था, उसका वह साथी किसी नये शिकार की तलाश में खिसक गया और गोरखा, जो रुपया इनाम पाने के बदले, वह पुराना कम्बल पा गया था, कुछ अजीब-सा खिसियानापन चेहरे पर लिये, उसका निरीक्षण करने लगा। अचानक क्या घटित हो गया है, वह समझ न पा रहा था। कम्बल की तह लगाता हुआ, अजीब-से आश्चर्य, क्रोध, बेबसी और दयनीयता से वह नीलामकार की ओर क्षण भर देखता रहा, जिसने फिर वही टाइमपीस उठा लिया था और उसका नीलाम करने लगा था।

गोरखा कुछ क्षण उसी तरह किंकर्त्तव्यविमूढ खड़ा रहा, फिर उसने एक निगाह उन सब पर डाली। क्षण भर उसकी निगाह मूँछों वाले पहलवान पर टिकी रही, फिर उसने सिर को झटका दिया, कम्बल को बग़ल में दबाया और चुपचाप रत्नचन्द रोड की ओर सरक गया।

चेतन जानता था कि वह गोरखा जरा भी चीं-पीं करता तो पहलवान गुण्डा उसे गर्दनी दे कर आगे ठेल देता। वहीं खड़े-खड़े चेतन के सामने वह घटना घूम गयी, जब बिल्कुल इसी तरह सरक्युलर रोड के उस लम्बी दाढ़ी वाले मौलवी-नुमा नीलामकार ने अनन्त से पाँच रुपये झटक लिये थे।

वे दोनों कांग्रेस अधिवेशन में शामिल होने लाहौर आये थे। शीतला माता के मन्दिर के आगे, जहाँ सरक्युलर रोड की दुकानें एक तिकोन-सा बनाती हुई शुरू होती हैं, टीन की चादरों से घिरे और छाये, खासे चौडे अहाते में कबाड़ी के गोदाम-सी उस नीलामकार की दुकान थी। अनन्त और चेतन मच्छीहट्टा की ओर से लाहौर की सैर करते हुए पैदल घूमते-घामते उधर से गुजर रहे थे कि वहां भीड़-सी जमा देख कर फ़ुटपाथ से नीचे उतर आये। इससे पहले कि अनन्त कुछ समझ पाता, इसी तरह के एक ठग ने बाँह से उसके कन्धे को घेर कर उसे आगे ठेल दिया था, उसकी ओर से बोली दे दी थी और दूसरे क्षण इनाम की चवन्नी अनन्त को पकड़ा दी थी। फिर एक टाइमपीस की नीलामी होने लगी थी। पाँच रुपये तक बोली चढ़ गयी थी और वही ठग, जो अनन्त को घेरे हुए था, उसकी ओर से बोली चढ़ाये जा रहा था। तब उस मौलवी ने ताना दिया था कि यूँ ही बोली दिये जा रहे हो या रुपये भी जेब में हैं। अनन्त को बाँह से घेरे उसी दलाल ने कहा था कि नोट दिखा दो, रुपया इनाम ले लो। अनन्त ने कुछ समझे बिना जेब से नोट निकाला ही था कि उसने नोट उससे ले कर मौलवी को दे दिया था और टाइमपीस उसकी ओर बढ़ा दिया था।

चेतन का ध्यान दूसरी ओर था। उसने सिर्फ़ यह देखा कि दो-एक गुण्डे अनन्त को धकिया रहे हैं और वह प्रतिरोध कर रहा है।

अनन्त लम्बा-तगड़ा युवक था। शातिर और चालाक। चेतन को तो वह चुग़द और कायर समझता था—इसलिए उसके सामने यूँ मूर्ख बनना उसे स्वीकार न था। फिर उसके पास वही पाँच रुपये का नोट था और उन्हें वापस जालन्धर भी जाना था। धकियाये जाने के बावजूद अनन्त वहीं जमा, चिल्लाये जा रहा था—"बोली वह दे रहा था, मैंने नहीं दी। मुझे टाइमपीस नहीं चाहिए, मेरा नोट मुझे वापस दो!"

तभी दो पहलवान-से दीखने वाले गुण्डे आगे बढ़े और उन्होंने शुद्ध पंजाबी गालियाँ देते हुए उन दोनों को सड़क की ओर धकेल दिया था।

दोनों नये-नये स्कूल से कॉलेज गये थे। कांग्रेस के अधिवेशन में आये

थे। अपने आप को इस तरह लुटते हुए देख कर उन्हे बड़ा क्रोध आया था। लेकिन परदेस का मामला था। वे सोच न पा रहे थे कि क्या करे ? तभी चेतन ने उन सब को सुनाते हुए अंग्रेजी मे कहा था "डोण्ट टेक द टाइमपीस, लेट अस गो टु द पुलिस स्टेशन, वी'ल सेट देम राइट।"

और तैश खा कर वे दोनो उनके चंगुल से निकल, फुटपाथ पर आ गये थे।

उनका खयाल था कि पुलिस के नाम से शायद वे डर कर नोट वापस दे देंगे। लेकिन उनके अलावा पुलिस वालो की माँ-बहन से भी निकटतम सम्बन्ध स्थापित करते हुए उन गुण्डो ने उनको दसियो गालियाँ सुना दी थी।

चेतन और अनन्त के पास वाफर रुपये होते तो शायद वे गम खा जाते, पर उनके पास रुपये नही थे और शाम की गाडी उन्हे पकडनी थी, फिर कांग्रेस मे आने के कारण उनमे अन्याय का प्रतिरोध करने का अतिरिक्त जोश था। चेतन के पिता जिस स्टेशन पर जाते थे, थानेदारो से उनकी खूब छनती थी, इसलिए थाने से उसे भय नही था। पता पूछ कर वे दोनो अनारकली के थाने पहुँचे थे।

अनन्त बिल्कुल घबरा गया था। लेकिन चेतन ने उसे तसल्ली दी थी। 'तुम फिक्र नही करो। किसी-न-किसी तरह रुपये इनसे निकालेंगे," उसने कहा था। 'तुम यह कभी न मानना कि तुम ने बोली दी थी। कहना कि हम तो यूँ ही चीजे देखने के खयाल से खडे थे। इन्होने कहा कि वैसे ही भीड लगा रखी है या जेब मे कुछ टके भी है। मैने नोट दिखाया तो लडका समझ कर इन्होने छीन लिया। जबरदस्ती हमको टाइमपीस जडने लगे। हमारे घर मे तो दो-दो टाइमपीस है। हम सेकण्ड-हैण्ड टाइमपीस क्या करते ?"

लेकिन जब वे थाने पहुचे तो मेज पर बैठे हेड कॉन्स्टेबल ने कहा कि दीवान साहब नही है। वे आयेगे तो रिपोर्ट लिखेगे।

वहाँ न कुर्सी थी, न बेच। वे घण्टा भर वहा फर्श पर उकडूँ बैठे रहे, लेकिन दीवान साहब नही आये। तब चेतन ने अनन्त से अंग्रेजी मे कहा

कि तुम तहसीलदार के बेटे हो (हालांकि वह कानूनगो का बेटा था, वह भी रिटायर्ड कानूनगो का।) चलो डिप्टी कमिश्नर के चलते है। ये लोग उनसे मिले हुए है रिपोर्ट नही लिखेगे।

और वह तमक कर उठा था। अनन्त भी उठा था। तब मेज पर बैठे हेड कॉन्सटेबल ने कहा था कि मुझे बताओ कहा का वाकया है। दीवान साहब शायद देर मे आये, मै तुम्हे रुपये दिलवाता हू।

अनन्त के तो होश-हवास गुम हो गये थे, उसके मुँह मे बात न निकलती थी। तब चेतन ने वही किस्सा फिर से बताया, जिसे सुन कर भी हेड कान्स्टेबल ने नही सुना था।

"इनाम दे लालच च तुसा बोली दित्ती होवेगी[1]।" उसने मुस्कराते हुए कहा।

"बोली तो हमने दी ही नही। वही लोग कुछ बोली दे रहे थे। हम तो अपनी पसन्द का कोई चीज लेना चाहते थे। उस दाढी वाले मौलवी ने कहा—पैसे भी पास है या यूँ ही भीड लगा रहे हो।—इस ने नोट दिखाया तो उसने छीन लिया। हिज फादर इज अ तहसीलदार एट जालन्धर, चेतन ने अग्रेजी मे कहा, 'एण्ड वी हेव टु कैच द ईवनिंग ट्रेन।'

हेड कॉन्स्टेबल को प्रकट ही उन ठगो के कार्य-कलाप का इल्म था। उसने मसागम नाम के एक सिपाही को बुला कर कहा, "जा, जरा ओस मुलण्टे न बुला लया। साले बच्चेयाँ नूँ ठगद ने। आदमी-कु-आदमी वी नई वेखदे[2]।"

वे आधा घण्टा फिर उसी तरह बैठ रहे थे। तब वही मौलाना दाढी पर हाथ फेरते हुए नमदार हुए थे और चौखट ही मे उन्होने सलाम किया था।

---

१. इनाम के लालच मे तुम लोगो ने बोली दी होगी।

२. जरा उस मुल्ले को बुला ला। साले बच्चों को ठगते है। आदमी-आदमी भी नहीं देखते।

"मौलाना साहब, आप आदमी-आदमी को तो देख लिया कीजिए।" कुर्सी पर बैठे हेड कॉन्स्टेबल ने कहा था, 'तहसीलदार के साहबजादे है, इन्हे पाँच रुपये लौटा दीजिए।"

मौलाना ने चुपचाप अचकन की जेब से पाच रुपये का नोट निकाल कर अनन्त को दे दिया था। उन लोगों को रुपये मिलने की कतअन उम्मीद नही थी और रास्ते में ही उन्होंने मन पक्का कर लिया था कि रुपये न मिले तो बे-टिकट ही सफर करेंगे। पकड़े भी जायेंगे तो अपने शहर और स्टेशन पहुच कर। वहा घर सदमा भजने मे मुश्किल नही होगी। यह भी उन्होंने सोच लिया था कि लाइन-लाइन रेलवे फाटक तक चले जायेंगे और वहाँ अड्डा होशियारपुर से ताँगा ले कर घर जा पहुँचेंगे। उन्हे रुपये मिल गये तो अपने सौभाग्य पर उन्हे विश्वास न हुआ था और अनन्त इतना खुश हुआ था कि उसने अनारकली के चौरस्ते पर न केवल चेतन को अपने पैसों से बढ़िया खाना खिलाया था, बल्कि जब उसने अपने रुपयों की बाँसुरी ली थी तो उसके टिकट के पैसे भी अनन्त ही ने खर्च किये थे।

पाच-छः वर्ष पहले की वह घटना पलक झपकते चेतन के दिमाग मे कौंध गयी। उन ठगों पर उसे बेहद गुस्सा आया। अन्दर जाने का खयाल छोड़, वह उनके पास गया और उसने कड़ककर कहा कि किससे पूछ कर उन्होंने वहा अड्डा जमाया है। बहू-बेटियों वाली गली है और उन लोगों ने वहा भीड़ जमा कर रखी है। उठायें वे अपना सब भुग-तगड़ी[1]।

तब उस अचकनपोश ने निहायत मिस्कीन सूरत बना कर कहा था, "ठीक है बाबू जी, आज तो स्टाल लगा लिया है। अब इतना सामान ले आये है। कल नही लगायेंगे।"

अब चेतन क्या कहे उसकी समझ में नही आया। वे छँटे हुए बदमाश थे। उनके मुँह लगना उसे मुनासिब नही लगा। 'ठीक है। आज लगा

१. बोरिया-बिस्तर।

लिया सो लगा लिया। कल अपना स्टॉल किसी दूसरी जगह लगाइएगा।"

और यह कह कर वह वापस आ गया। अन्दर जा कर उसने दरवाजा खोला। तौलिया-साबुन ले कर नहाने गया। आ कर कपड़े बदल, वह अपना लेख दोबारा देखने के खयाल से कुर्सी पर बैठने जा रहा था कि उसका ध्यान फिर उधर चला गया। उसके देखते-देखते उन्होंने फिर एक फ़ौजी को ठग लिया था। असल में वह जगह स्टेशन और हस्पताल के रास्ते में थी, अपने साथी अथवा सम्बन्धी मरीज़ों को देखने के लिए परदेसी सिपाही उधर से गुजरते थे। उन लोगों की नज़र फ़ौरन अपने शिकार को ताड़ लेती थी और वे मिनटों में उसकी जेब हल्की कर देते थे।

चेतन चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया और अपना लेख दोबारा देखने लगा। पूरा देख कर और उसमें जरूरी संशोधन करके उसने अंग्रेज़ी लेखों की कतरनें और अपना अनुवाद जेब में डाला और 'गुरु घण्टाल' के दफ़्तर को चल दिया।

महाशय जीवनलाल कपूर मेज पर टाँगें पसारे, कुर्सी पर पीछे को लेटे, कोई अंग्रेजी अख़बार पढ़ रहे थे। वह जा कर होंटों-ही-होंटों में 'नमस्ते जी' करके चुपचाप खड़ा हो गया।

महाशय जी ने उसे देख कर भी नहीं देखा और लेख पढ़ते रहे। चेतन उनके व्यवहार से उनकी मन्शा समझ गया था। लेकिन बड़े धैर्य के साथ वह चुपचाप खड़ा रहा। काफ़ी देर बाद लेख पढ़ कर उन्होंने टाँगें नीचे कीं, सीधे हो कर बैठ गये और चेतन की ओर देख कर उन्होंने पूछा, "कहिए!"

उसे कुर्सी पर बैठने के लिए उन्होंने नहीं कहा। चेतन ने जेब से दोनों लेखों की कतरनें और मैडम रिक्की वाले लेख का अनुवाद निकाला और उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "मैं कल जो लेख ले गया था, उसका तरजुमा कर लाया हूँ। ग़लती से एक और कतरन साथ चली गयी थी, उसे भी ले आया हूँ।"

लाला जी ने लेख उससे नहीं लिया। बिना उससे आँखें मिलाये बोले :

"मैं इसका क्या करूँगा। 'भूँचाल' को मैंने बन्द करने का फ़ैसला कर लिया है। आपके लिए मैंने उसे निकाला था। आपको नही मंज़ूर तो मैं कहाँ यह चर्खा चलाऊँगा ! 'गुरु घण्टाल' ही मेरा बहुत वक्त ले जाता है।"

"इसे 'गुरु घण्टाल' में दे दीजिएगा।"

" 'गुरु घण्टाल' के लिए अगले कई हफ़्तों का मसाला मेरे पास तैयार पड़ा है।"

"आपने इस लेख की बड़ी तारीफ़ की थी। मैं कर लाया हूँ। कभी आपके काम आ जायगा।" उसने लेख और तराशे मेज़ पर रख दिये और कुछ रुक कर बोला, "मुमकिन हो तो मुझे इसका एक रुपया दिलवा दीजिए और मेरा हिसाब करा दीजिए।"

"हिसाब काहे का !" लाला जी ने बिना उससे आँखें मिलाये, बायी ओर खिड़की में देखते हुए कहा, "पेशगी जो रुपया आपको दिया गया, वह भी आपको वापस करना चाहिए। जिस काम के लिए आपको दिया गया था, उसे आपने बिना किसी नोटिस के छोड़ दिया। मेरा जो इतना नुकसान हुआ, उसे कौन भरेगा !"

"ठीक है," चेतन ने तमक कर कहा, "इस लेख को छाप लीजिएगा, कुछ तो घाटा आपका पूरा हो ही जायगा। अभी तो मेरे पास दो दिन के गुज़ारे लायक भी पैसे नही, लेकिन कभी हुए तो आपका यह घाटा भी पूरा कर जाऊँगा और नोटिस के पैसे भी दे जाऊँगा। नमस्ते !"

और चेतन पलटा।

"तुम काम करना चाहो तो...."

लेकिन तो क्या....यह सुनने को चेतन नही रुका। खट-खट दफ्तर पार कर वह सीढियाँ उतर गया।



तीन

चेतन को महाशय जीवनलाल कपूर से कुछ ज्यादा उम्मीद नहीं थी, पर वे ऐसा कमीनापन करेंगे और थोड़े-से रुपये यूँ दबा जायेंगे, यह भी उसने नहीं सोचा था। कुछ क्षण तक वह असमंजस में वहीं गली में खड़ा रहा। इतनी जल्दी घर जाने को उसका मन नहीं था। वह अपनी आदत जानता था। घर जायगा तो लिखना-पढ़ना दूर, किसी चीज़ में उसका मन नहीं लगेगा। वह लगातार महाशय कपूर की उस क्षुद्रता के बारे में सोच-सोच कर भुनभुनाता रहेगा। क्यों न वह अभी से किसी और काम की तलाश करे।

वहीं खड़े-खड़े उसकी नजर गली में ज़रा आगे, दोमंज़िले पर लगे 'वीर भारत' के बोर्ड पर गयी। कितना अच्छा होता जो वह 'वीर भारत' की नौकरी छोड़ कर केवल दस रुपये की खातिर 'भूचाल' का सम्पादक न बना होता। ठीक है वहाँ रात का काम था और तीस रुपये उसे मिलते थे, लेकिन उसका सारा दिन तो अपना था। फिर 'लक्ष्मी' बहुत भला आदमी था। महाशय कपूर जितना फूहड़ और कमीना नहीं था। क्षण भर के लिए उसके मन में आया कि बढ़ कर 'वीर भारत' के दफ्तर की सीढ़ियाँ चढ़ जाय और 'लक्ष्मी' से कहे कि वे उसे फिर अपनी छत्र-छाया में ले लें। लेकिन वह अच्छी तरह जानता था कि महाशय जीवनलाल कपूर को नाराज़ करना न 'लक्ष्मी' के बस की बात थी, न अख़बार के मालिक, पण्डित गणेशलाल के बस की।....तब उसने सोचा, क्यों न पण्डित रत्न के यहाँ जाय? लेकिन जाने क्यों उसे 'भूंचाल' की नौकरी छोड़ने के बाद पण्डित

रत्न के यहाँ जाना स्वीकार नहीं था। उन्हें मालूम था कि वह महाशय जीवनलाल को पसन्द नहीं करता, यह भी मालूम था कि वह 'वीर भारत' में खुश है, फिर भी उन्होंने उसे महाशय जी के यहाँ नौकरी करने पर एक तरह से विवश कर दिया था। वह यह भी जानता था कि इस तरह 'भूंचाल' की नौकरी छोड़ देना उन्हें उसी की ग़लती लगेगी। वे कभी महाशय जी को दोष नही देंगे।....नही, वह पण्डित रत्न से नही मिलेगा.... कविराज रामदास....क्यों न वह उन्हीं को खटखटाये....?

और बिना कुछ ज़्यादा सोचे-विचारे, वह पलट कर उधर को चल दिया। चल तो दिया, लेकिन उसकी चाल में उत्साह नहीं था। और कुछ न सूझ पाने के कारण वह उधर को चल पड़ा था। लेकिन कविराज को इस अर्से में वह अच्छी तरह जान गया था। ग़रज़ पड़ने पर वे गधे को भी बाप बना सकते थे और काम निकल जाने पर पहचानने तक से इनकार कर सकते थे या पहचानने के बावजूद मीठी-मीठी, प्यारी-प्यारी बातें करके साफ़ टाल दे सकते थे....पुट्ठे पर हाथ वे नही रखने देंगे, चेतन जानता था, लेकिन फिर भी वह उनके औषधालय की ओर जा रहा था।

उन दिनों चेतन के मन मे एक और ग्रन्थि भी जड़ पकड़ रही थी। उसे लगता था कि यह उसका महज़ वहम है, लेकिन इस वहम को दूर कर पाना उसके बस मे नहीं था।....कहीं किसी दिन सुबह चेतन का पहला काम न बनता तो लाख टक्करें मारने पर भी उसका दिन बेकार चला जाता और उस दिन उसका कोई काम सिरे न चढता। अगर वह घर से चार-पाँच आदमियों को मिलने के विचार से निकलता और पहले ही से मुलाकात न होती तो (उसने अक्सर देखा था) फिर उसे कोई भी न मिलता और वह थक-थका कर, खीझा और चिढा वापस आ जाता। महाशय जीवनलाल कपूर उसे कुछ रुपये दे देते तो उसे पूरा विश्वास था कि वह कहीं-न-कही और काम पा जाता, लेकिन 'गुरु घण्टाल' के दफ़्तर से निराश लौटने पर, उसे लगता था कि आज उसका कोई काम न सधेगा। लेकिन यह भी सच है कि जब कभी ऐसा होता था, अपना शेष समय नष्ट न करके वह उसे

किसी दूसरे उपयोगी काम में कभी न लगा पाता, बल्कि अपने हठी स्वभाव के कारण वह बाकी लोगों से मिलने अथवा शेष काम निबटाने के खयाल से दिन-दिन भर टक्करें मारता घूमा करता। कभी-कभी वह सोचता, वह इस ग्रन्थि को निकाल फेंकेगा—वह एक दिन घर से चार-पाँच लोगों से मिलने निकलेगा, और अगर पहला न मिलेगा और शेष भी न मिलेंगे तो वह फिर पहले से मिलने चल देगा। फिर भी न मिलेगा तो तीसरी बार जायगा और चाहे रात ही को क्यों न सही, वह मिल कर ही दम लेगा और यूँ इस दुश्चक्र को तोड़ देगा। लेकिन अभी तक वह ऐसा नहीं कर सका था। उसकी ग्रन्थि बदस्तूर बनी हुई थी और उसकी ज़िद भी बरकरार थी। उसे शंका थी कि कविराज के यहाँ भी उसका काम न बनेगा, तो भी वह उनसे मिलने की ठाने हुए था।

कविराज हमेशा की तरह जालीदार पर्दे के पीछे बैठे थे और बाहर बेंचों पर रोगी अपनी बारी का इन्तजार कर रहे थे। चेतन चुपचाप जा कर बैठ गया। उसके बाद भी कुछ रोगी आ कर बैठ गये थे। जैसा कि कविराज जी का नियम था, एक रोगी के निबट जाने पर वे घण्टी पर हाथ मारते और हाथ से आने का इशारा करते हुए कहते, 'हाँ भई—' जिसका मतलब था कि अगला रोगी अन्दर आये। उसे किसी रोग का निदान तो कराना नहीं था, न कोई औषधि ही लेनी थी। वह चाहता तो यही था कि सब रोगी निबट जायें, तभी अन्दर जाय ताकि विस्तार से अपनी बात कह सके, लेकिन जब उसकी बारी आयी तो बिना यह तय किये कि वह उनसे क्या कहेगा, चेतन उठा और अन्दर चला गया।

"आओ अजीज़, बैठो!" कविराज जी मूँछों में मुस्कराये, "कहो खुश तो हो?"

चेतन कुछ उत्तर दे, इससे पहले, नख़-से-शिख तक एक नज़र उस पर डाल कर, वे बोले, "सेहत तो तुम्हारी पहले से अच्छी लग रही है। मैंने सुना था कि तुमने 'वीर भारत' की नौकरी छोड़ कर 'भूँचाल' की एडीटरी

सँभाल ली है। यह तुमने बहुत अच्छा किया। रात सोने के लिए है और दिन काम करने के लिए। मजबूरी की बात दूसरी है, पर जहाँ तक हो सके, आदमी को ऐसा काम अपनाना चाहिए, जिसमें वह चाहे पूरा-पूरा दिन काम करे, पर रात को समय से सो सके। वो किसी ने जो कहा है कि अर्ली टू बेड एण्ड अर्ली टू राइज मेक्स अ मैन हेल्दी, वेल्दी ऐण्ड वाइज—बिल्कुल ठीक कहा है। मैं सुबह चार बजे उठता हूं और नौ बजे के बाद कभी काम नहीं करता .. और देख लो. ."

कविराज बिना उसे कुछ कहने का अवसर दिये, प्रवचन दिये जा रहे थे कि चेतन जरा हँसा : "मैंने तो दिन की नौकरी भी छोड़ दी है वैद जी, और अब मैं बिल्कुल बेकार हूं।"

और बिना कुर्सी पर बैठे इस एक ही वाक्य से उसने उनका प्रवचन-प्रवाह भंग कर दिया।

कविराज जी की मुस्कान विलुप्त हो गयी, प्रवचन रुक गया, उनके माथे पर सोच और नामालूम-से क्रोध की एक क्षीण-सी रेखा भ्रू-भंग की सूरत में उभर आयी, लेकिन दूसरे क्षण सायास उसे मिटा कर उन्होंने मुस्कराने का प्रयास-सा करते हुए कहा, "लेकिन क्यों छोड़ दी अजीज़?"

"अब यह लम्बा किस्सा है। आपके मरीज बैठे हैं। मेरी ही जूदहिसी[1] समझ लीजिए।"

"हाँ, तुम बहुत हस्सास हो, लेकिन मेरे अजीज, ज़ूदहिसी से काम नहीं चलता...."

वे फिर कोई प्रवचन देने जा रहे थे कि चेतन ने कहा, "कोई काम मेरे लायक हो तो देखिएगा। मैं ऐसे में आऊँगा जब आपको थोडी फ़ुर्सत हो।"

"हाँ-हाँ, जरा फ़ुर्सत से आना। इस बीच में सोचूंगा। मैं नौजवानों के लिए एक माहनामा 'फिक्र-ो-अमल' निकालने की सोच रहा हूँ। अगर

---

१. भावप्रवणता

उसके लिए छोटी-छोटी, नसीहत-भरी कहानियाँ लिख सको—यही कोई दो-दो सफ़ों की—तो बहुत अच्छा हो। दो-तीन रुपये एक कहानी के मैं दे दूँगा। और तो कोई काम इस वक्त मेरे ज़ेहन में नही।"

"कोई सूझ गयी तो जरूर लिखूंगा। बल्कि खुद ले कर हाज़िर हूँगा।"

चेतन 'नमस्कार' कर के मुड़ा और कविराज जी ने अगले मरीज़ के लिए घण्टी पर हाथ मारा और ज़रा सिर उठा कर हाथ का इशारा करते हुए कहा, "हाँ भाई।"

चेतन नीचे उतरा तो उसका मन विक्षुब्ध नही था। वह कविराज के सामने कुर्सी पर बैठता, गिडगिड़ाता, कविराज टालते तो उसे बुरा लगता और उसका मन विक्षुब्ध होता। पर उसने अपनी बात भी कह दी और वे क्या कर सकते है, यह भी जान लिया। कविराज जी फ़ौरन कुछ नही कर सकते थे और उसे तत्काल कोई काम चाहिए था। वह कोई छोटी-सी कहानी लिखेगा, कविराज जी पर्चा निकालेंगे, उसमे वह छपेगी, तब वे पैसा देंगे। लेकिन उसे तो 'इस हाथ ले उस हाथ दे' के अनुसार काम के पैसे दरकार थे। चेतन वापस मुड़ा और कहाँ जाय, यह तय न कर पाने के कारण, अचानक चातक जी के दफ्तर की ओर चल पडा।

चातक जी अपने दफ्तर में दूध-धुली खादी के कुर्ते-धोती में सुशोभित, मेज़ पर बैठे, किसी मसौदे को देख रहे थे। उनके बालों की लट माथे पर आ गयी थी। सीढ़ियों ही से चेतन ने उन्हें 'नमस्कार' किया। तब दायें हाथ मे बालों की लट को पीछे हटाते हुए, थकी-सी मुस्कान के साथ उन्होंने कहा, "आओ...आओ!"

चेतन उनके सामने कुर्सी पर जा बैठा तो मसौदा अलग हटा कर उन्होंने कहा, "कहो, कैसे समाचार हैं!"

"अच्छे नही हैं," चेतन ने कहा, "कल गुस्से में 'भूंचाल' की नौकरी

छोड़ आया हूँ। महाशय जीवनलाल कपूर से कुछ रुपये मैंने पेशगी ले रखे थे, आज बाकी तनख्वाह लेने गया तो उन्होंने देने मे इनकार कर दिया। अब खासी तंगी का सामना है।''

उसके घर दो जून का आटा भी नही—चेतन यह बात उनसे न कह सका। हो सकता है, वह यह कहता तो चातक जी जेब से दो-चार रुपये निकाल कर उसे दे देते। ऐसे मे वह जमीन मे गड़ जाता।....वह रुपये जरूर चाहता था, पर उधार नही। किसी काम के सिलसिले मे। लेकिन चातक जी उसकी कहानी छापने से इनकार कर ही चुके थे। वे कहानी छापने को तैयार होते तो चेतन कहता कि इसके जो भी थोड-बहुत पैसे हो, मुझे पेशगी दे दीजिए। लेकिन उन्हे अपनी पत्रिका जमानी थी और चेतन हिन्दी के लिए नया-नया ही था। इसलिए उसने सिर्फ तंगी का जिक्र किया। कवि उससे नौकरी छोड़ने की बाबत पूछने वाले थे कि चेतन ने कहा ''कहिए, कोई नयी कविता लिखी ?''

''एक नही, दो-दो !'' चातक जी के चेहरे से थकान तिरोहित हो गयी, दराज मे उन्होने स्लिप निकाली और बोले, ''निम्मो ने मेरे यहाँ कुछ दिन गुजार कर मेरे काव्य की मन्थर गति मे बहने वाली नदी को तूफानी बना दिया है।'' वे हँसे और बालो की लट उन्होने हाथ मे पीछे की, ''पहली कविता का शीर्षक है—सहोदरा !'' उन्होने कहा और कविता पढ़ने लगे

''लिया नहीं है जन्म कोख से इक माता की हमने बाले
ख़ूब पिये पर बहिन-भ्रात की गहन प्रीति के हमने प्याले
तुम मेरे जीवन में आयी, चली गयी तब रात अचानक
तिमिर-भरे मेरे अम्बर मे, उदय हुआ नव-प्रात अचानक

तुम हो स्नेहमयी, ममता से
भरा हुआ है हृदय तुम्हारा
अंक तुम्हारे आन लगा हूँ
शिशु-सा, निष्ठुर जग का मारा।''

कविता चातक जी एक ही छन्द में लिखते थे। उनका हिन्दी का ज्ञान भी, उनके अंग्रेज़ी-ज्ञान की तरह, ज्यादा नहीं था, पिंगल-विंगल और छन्द-अलंकार उन्होंने पढ़ा नही था, लेकिन हिन्दी उनकी मातृ-भाषा थी, लिखने की प्रेरणा जन्मजात थी और एक छन्द को उन्होंने साध लिया था। उसी में वे अपनी तमाम कविताएँ लिखते थे। चेतन को उनकी कविता उर्दू मुसद्दस[1] की याद दिलाती थी। यूँ तो उनकी कविता के प्रत्येक बन्द में बत्तीस-बत्तीस मात्राओं की छै पंक्तियाँ होती थीं और वह मुसद्दस के बन्द-सा लगता था, पर पाँचवीं और छठी पंक्ति की दो-दो पंक्तियाँ बना कर वे पहली चार के नीचे लिखा करते थे। चेतन को उनकी कविताएं शुरू में बहुत अच्छी लगती थीं। 'बेचैनी के बीज' तो उसे कण्ठस्थ भी हो गयी थी, लेकिन अब वे उसे नितान्त भावुक, बचकानी, रोमानी, अयथार्थ और समरस प्रतीत होने लगी थीं।....

अपनी पत्नी की कुरूपता और फूहडता, लेकिन उसके बावजूद हर दूसरे-तीसरे वर्ष चले आने वाले बच्चों की 'रीं-रीं,' 'पीं-पीं' से भाग कर, जिस-तिस के प्रति आकृष्ट हो, वे काल्पनिक प्रेम के संसार बसाते थे। चूँकि परिवार, परम्परा, कर्त्तव्य और धर्म के बन्धनों में जकड़े निम्न-मध्यवर्ग के दम-घोंटू वातावरण से उन्ही की तरह भागने वाली लड़कियों की कमी न थी, जो न खुल कर प्रेम कर सकती थीं, न प्रेम का शारीरिक प्रतिदान दे सकती थीं, इसलिए कवि चातक का प्रेम और उनकी कविताएँ हाड़-माँस की न हो कर नितान्त वायवी और कोरी काल्पनिक हो जाती थी। .. 'सहोदरा' में भी उन्होंने अपने जाने एक ही माँ के पेट मे जन्म न लेने के बावजूद, अपने मुँह-बोले भैया को बहन का अगाध प्रेम देने वाली युवती की लम्बी, ऊबाऊ गाथा कही थी। भाई उसके स्नेह-भरे अंक से लग-लग जाता है; उसकी प्यार-भरी आँखों में डूब-डूब जाता है; जग को उनके प्रेम पर सन्देह भी है; वह उन दोनों पर लांछनों की वर्षा भी करता है, पर कवि सन्तुष्ट है कि

१. छै-छै पंक्तियों के बन्दों वाली कविता।

उसकी स्नेहमयी, ममतामयी सहोदरा उसे निष्ठुर जग के प्रहारों से बचाये, अपने ममतामय अंक से लगाये और उसके अँधेरे संसार को अपने पवित्र प्रेम से आलोकित किये, नये प्रभात-सी जगमगा रही है।

कविता सुनते हुए चेतन के सामने बार-बार वे दृश्य आते रहे, जो निम्मो और कवि चातक के साहचर्य में उसने देखे थे, जिनमें एक ओर वय-प्राप्त उदमाती लड़की थी और दूसरी ओर अपनी कर्कशा, कुरूपा पत्नी से दबा डरा, लेकिन बँधा एक कवि, जो बड़े प्यार से अपनी मुँह-बोली 'सहोदरा' का हाथ अपने बे-हड्डी के-से हाथों में लिये, उसकी आँखों में डूबने की कोशिश में उसे प्यार से घण्टों सहलाता था, 'बहिन-बहिन' कहते हुए उसे गोद में भर कर उसका प्यार ले लेता था और वह उदमाती 'भैया-भैया' कहती हुई उससे चिमट-चिमट जाती थी।

कवि बड़े तन्मय भाव से कविता सुनाते रहे। चेतन कविता से उभरने वाले दृश्यों के साथ-साथ कवि के घर देखे गये दृश्य कल्पना में दोहराता रहा। कई पंक्तियों को सुन कर उसने मन-ही-मन कहा, 'अरे मियाँ, प्यार करना है तो सीधी तरह करो, यह क्या 'बहन-बहन' की रट लगाये हो।'....चातक जी की जगह उसका कोई बेतकल्लुफ दोस्त होता और उसने ऐसी मूर्खतापूर्ण कविता सुनायी होती, तो वह यही कहता, बल्कि मियाँ के बदले 'चुग़द' शब्द का इस्तेमाल करता।....लेकिन चातक जी से उसकी ऐसी बेतकल्लुफ़ी नहीं थी। उन्हे वह गुरू के समान मानता था। फिर वह यह भी जानता था कि यह कवि चातक ही का नहीं, पूरे-के-पूरे निम्न-मध्यवर्ग का सत्य था। गली-मुहल्ले में वय-प्राप्त युवतियाँ अपने पड़ोसी युवकों की ओर आकृष्ट होती थीं, उनकी बहनों को सहेलियाँ बना लेती थीं, जहाँ बहनें न होतीं, वहाँ उनकी माताओं को मौसियाँ, चाचियाँ या फूफियाँ कहने लगतीं। (जहाँ लड़कियाँ पहल न करतीं, वहाँ लड़के यही करते) और दबी-छिपी दृष्टियों का विनिमय धीरे-धीरे उन्हें निकट ले आता, लेकिन जब प्यार मन की हदों से बढ़ कर शरीर की हदों को छूने लगता, वे झट उनकी कलाइयों में राखियाँ बाँध देतीं और लड़के

सहर्ष और विवश बँधवा लेते और निम्न-मध्यवर्ग का यह 'पवित्र', लिज-लिजा, लिसलिसा प्रेम उस वक्त तक चलता रहता, जब तक लड़कियाँ अपने माता-पिता द्वारा चुने हुए वरों के पल्ले बँध कर दूसरे ठौर न जा लगती और लडके, विवाह में मिलने वाले दहेज की तुला पर तुल कर, किसी और के न हो जाते। फिर पति रूपवान और कमाऊ होता तो लडकी अपने पहले प्यार को भूल कर घर-गिरस्ती में रम जाती और यदि पत्नी अच्छे धनी-मानी परिवार की होने के साथ-साथ रूपवती भी होती तो लड़का अपनी प्रेयसी को भुला देता। कुछ देर राखियाँ आती रहती। फिर उनका सिलसिला बन्द हो जाता। ऐसा न होता तो बहन-भाई का यह आत्मिक, आध्यात्मिक, पवित्र प्रेम निरन्तर सुलगता रहता। पत्नियाँ भाई बनाती रहती और पति, बहने।

कविता सुना कर चातक जी ने कहा, "क्यों! है हिन्दी में इस विषय पर ऐसी भावनामयी और प्रवहमान कविता!"

चेतन कहना तो वही चाहता था, जो मन-ही-मन कविता के दौरान वह कई बार दोहरा चुका था, लेकिन जब कवि ने दाद चाहने वाली निगाहों से उसकी ओर देखा तो चेतन ने कहा, "आपने अपने स्तर को खूब बनाये रखा है।" और हालाँकि उसका यह कथन 'मेरी हाँ को हाँ न समझो, मेरी ना को ना न समझो' जैसा ही था, पर कवि प्रसन्न हो गये।

"हम अपने स्तर को गिरने देते है!" उन्होंने सोत्साह कहा और दूसरी कविता सुनाने लगे।

चेतन एक ही कविता से ध्वस्त हो चुका था। वह अपनी बात कहना चाहता था, लेकिन कवि अपनी कहने लगे थे और बात चूंकि कविता में थी, इसलिए शबे-फिराक की तरह लम्बी हो गयी थी। वह चाहता था, उनसे छुट्टी ले और घर जाय। उसका काम आज बनेगा नही, वह बेकार चला आया है—बोर होने। लेकिन उन्होंने उसे मौका ही नही दिया।

हालांकि उतने जोश से उतनी लम्बी कविता सुनाने पर उनके होंट

सूख गये थे और उनके कोनों पर फिचकू आ गया था, लेकिन उसकी परवाह न कर, वे दुगुने जोश से सुनाये जा रहे थे। कविता का शीर्षक था 'भावना का मोल।' शब्द चाहे दूसरे हों, पर भाव वही थे। वही लिजलिजा प्रेम उसकी हर पंक्ति से टपकता था। चेतन मन मार कर बैठा अपने मन-मस्तिष्क पर यह अत्याचार सहता रहा। कई बार उसका ध्यान भटक गया, लेकिन जब-जब बन्द समाप्ति पर आये, उसने 'वाह्-वाह्' कर दी।

वह नीलामकारों को भोले-भाले गोरखा सिपाहियों को ठगते हुए छोड़ आया था। जाने कितनों की जेबें उन्होंने हल्की कर दी होंगी! चातक जी कविता सुनाते रहे और उसके सामने कम्बलों का नीलाम होता रहा। फिर उसने मन-ही-मन किसी नये काम के सिलसिले में महाशय धनपत राय, बी० ए० नेशनल और महाशय देवदर्शन से मिलने की सोची। कल्पना-ही-कल्पना में उनसे मुलाकात भी कर ली, लेकिन उन काल्पनिक मुलाकातों का अन्त अपनी शंकाओं के अनुरूप पा कर वहाँ जाने का विचार तज भी दिया।.... वह कोई और रास्ता सोच रहा था, जब कवि चातक ने कविता खत्म कर दी और पूछा, "कैसी रही ?"

उसने कविता सुनी नहीं, उन पर यह प्रकट न हो जाय, इसलिए उसने अतिरिक्त उत्साह से कहा, "आप जज़्बात के बादशाह हैं।"

कवि का चेहरा खिल उठा। लेकिन इससे पहले कि वे दून की लेते और हिन्दी के समस्त कवियों के मुकाबिले में अपनी महानता का उल्लेख करते, चेतन ने कहा, "नौकरी तो मैंने छोड़ दी है और काम कोई हाथ में है नहीं चातक जी। कुछ मेरे बारे में भी सोचिए। कोई अस्थायी काम ही मिल जाय तो चन्द दिन गुजारा चले। मैं इतने में कोई दूसरी नौकरी ढूँढ लूँगा।"

कवि ने बालों की लट को पीछे हटाया, पैर कुर्सी पर कर लिये, कुछ देर सोचते रहे, फिर बोले, "तुमने वह कहानी हिन्दी में की थी, उसे कहीं भेजा ?"

"मुन्शी चन्द्रशेखर को भेजी थी। लेकिन वह उनकी पत्रिका के अनुकूल नहीं।"

"वहाँ छपती भी तो पैसे नहीं मिलते। इधर सुना है कि कलकत्ते के 'विशाल-भारत' में कुछ पारिश्रमिक मिलने लगा है। तीन-चार रुपये वे कहानी के देने लगे हैं। वहाँ क्यों नहीं भेजते? सम्पादक कुछ अक्खड़ हैं, मन के मौजी! पर रचना उन्हें पसन्द आ जाय तो प्रचार भी ख़ूब करते हैं। एक भी कहानी वहाँ छप गयी तो रास्ता खुल जायगा। फिर तो मैं बिना-झिझक छाप सकूँगा।"

चेतन ने बिना उत्साह के कहा, "भेज दूँगा। लेकिन वह तो बाद की बात है। काम तो मुझे आज चाहिए।"

"मैं इन लोगों से (कवि का संकेत 'मंजरी' के मालिकान, नागपाल बन्धुओं की ओर था) एक सहयोगी के लिए कह रहा हूँ, जो प्रूफ़ पढ़ने और प्रेस के काम मे भी मेरी मदद करे। मान जाते तो तुम्हे रख लेता और प्रूफ़ पढ़ना सिखा देता। लेकिन पत्रिका घाटे पर चल रही है, इसलिए तीन-तीन प्रूफ़ स्वयं पढ़ता हूं और ज़ोर नहीं देता।"

और वे कोहनी घुटने पर टिका, हाथ पर ठोड़ी रख कर सोचने की मुद्रा बना कर बैठ गये।

चेतन चुपचाप उनके मुँह की तरफ़ तकता रहा। कुछ देर सोच कर उन्होंने कहा, "तुम एक ड्रामा क्यों नहीं लिखते?"

"ड्रामा!" चेतन की समझ में कुछ नहीं आया।

"दो वर्ष बाद यहाँ 'रत्न,' 'भूषण' और 'प्रभाकर' की परीक्षाओं का पाठ्यक्रम बदलने वाला है। तुम्हारी लघु-गल्प तो मैंने काव्य-संकलन के माध्यम से इण्ट्रोड्यूस कर ही दी है। नाटक लिखोगे तो आगे के लिए मैदान बन जायगा। 'प्रभाकर' में तो नीरव जी का ही नाटक लगेगा, लेकिन 'रत्न' अथवा 'भूषण' के लिए मुझसे नाटक लिखने को कहा जा रहा है। मुझे 'मंजरी' के काम से इतना अवकाश नहीं मिलता कि एकाग्रता से नाटक लिख सकूँ। हिन्दी में अभी तुम्हारा नाम नहीं है, इसलिए तुम्हारे नाम से

तो नाटक नहीं लग सकता। पर तुम नाटक लिखो तो मैं उसे देख लूँगा। उस पर अपना नाम दे दूँगा। भूमिका लिख दूँगा, उसमें उल्लेख कर दूँगा कि इसे लिखने में तुमने मेरी मदद की है। रॉयल्टी मिलेगी, वह आधी-आधी बाँट लेंगे।"

चेतन चुपचाप उनकी ओर देखता रहा। वह कभी सपने में भी न सोच सकता था कि चातक जी उससे ऐसा प्रस्ताव कर सकते हैं। कविराज रामदास कर सकते थे कि वे भारी ठग थे, लेकिन यह सरल-हृदय, भावुक कवि उससे ऐसे प्रेत-लेखन के लिए कह सकता है, उसे अपने कानों पर विश्वास न आया। लेकिन कवि उसके सामने बैठे थे और उसकी प्रतिक्रिया की बाट देख रहे थे। चेतन के मन में आया कि उन्हें ज़ोर की एक गाली दे और उठ कर चला जाय और फिर कभी उनका मुँह न देखे। लेकिन अपना क्रोध वह मन में ही दबा गया। उसने सिर्फ़ इतना कहा : "मैंने तो कभी नाटक नहीं लिखा।"

"अरे इसमें क्या है, द्विजेन्द्रलाल राय और जयशंकर प्रसाद के दो-एक नाटक पढ लो। मैं तुम्हें टॉड का 'राजस्थान' दे दूँगा। उसमें दो-तीन घटनाएँ ऐसी हैं, जिनको अभी किसी ने नहीं छुआ। जो तुम्हें पसन्द आये, उसे नाटक का विषय बनाओ और लिख डालो। थोड़ा-बहुत दोष होगा तो मैं देख लूँगा। हिन्दी में तुम्हारा नाम हो जायगा।"

"पर नाम तो आप कहते हैं, उस पर मेरा जायगा नहीं।"

"न सही, भूमिका में तो उल्लेख होगा। फिर तुम्हारा हाथ खुल जायगा। तुम में आत्म-विश्वास पैदा हो जायगा। अगला नाटक अपने नाम से लिखना।"

"देखूँगा।" चेतन ने उसी उदासीन भाव से कहा, "एकाध महीने के काम का कुछ जुगाड हो जाय तो इसकी भी सोचूँगा।"

और वह उठ खड़ा हुआ।

"तुम दो-चार दिन में आना। मैं इस बीच शुक्ला जी से बात करके कोई सूरत निकालूँगा।"

और उठ कर वे चेतन को सीढियों तक छोड़ने आये। उसे विदा करते और उसके कन्धे को थपथपाते हुए उन्होंने कहा, "मेरे प्रस्ताव पर विचार करना। एक बार हाथ मे ले लोगे तो कुछ भी मुश्किल नही लगेगा।"

"देखूंगा।" चेतन ने फिर वही शब्द दोहरा दिया और सीढ़ियाँ उतर आया।

अपने क्रोध मे उसने उन्हे 'नमस्कार' भी नही किया।



चार

जब रत्न चन्द रोड के ऊपर से हो कर, बामो के टाल के साथ वाली खुली जगह से वह अपने घर की ओर बढ़ा तो नालामकार पूर्ववत भीड़ लगाये नीलामी कर रहे थे। चेतन ने एक तेज निगाह उन पर डाली। उसकी क्रोध-भरी आँखें अचकनपोश से चार भी हुईं। उस एक ही निगाह में उसने यह भी देखा कि स्टॉल पर कम्बलों का ढेर छोटा हो गया है। काफी खोज-बीन के बाद लगता है, उन ठगों ने अपने लिए यह जगह चुनी थी। दो बजने को आ गये थे। चेतन ने बैठक की कुण्डी खोली। ओवरकोट उतार कर लोई का फेंटा मारा। प्रायः क्रोध और विक्षोभ में उसकी भूख सूख जाया करती थी, लेकिन इतना पैदल घूमने के कारण उसे भूख लग आयी थी। रसोई-घर में जा कर उसने अंगीठी जलायी। सालन गर्म किया। खाना खाया और आ कर कमरे में लेट गया। उसका मन कुछ भी करने को नहा था। गर्मियों में यथासम्भव वह एक-दो घण्टे सो जाता था, लेकिन सर्दियों में दोपहर को उसे कभी नींद न आती। अगर वह कभी सो जाता तो उसका जी भारी हो जाता और ऐसा लगता, जैसे सारा खाया-पिया उसके सीने में उखड़ूँ बैठा है। चेतन ने टांगों पर लिहाफ नहीं लिया कि गर्म होने पर कहीं उसे नींद न आ जाय। उसने ओवरकोट उठा कर टांगों पर डाल लिया और दीवार से पीठ लगा कर अधलेटा-सा बैठ गया।

उसका दिमाग बेहद परेशान था। वह चातक जी को भोला, भावुक और किंचित मूर्ख समझता था, लेकिन वे तो कविराज के भी चचा निकले। दुनिया में यह कैसी आपा-धापी मची है, एक-दूसरे को समूचा निगल जाने

के लिए सभी कितने व्यग्र हैं ! आदमी ही नहीं, निरीह-से दीखने वाले पशु-पक्षी अपने से कमज़ोरों को निगल जाते हैं । जब 'अनन्त के पथ पर' जैसा खण्ड काव्य और प्रेम-भरी कविताएँ लिखने वाला सहृदय कवि निःसंकोच अपने ही जैसे दूसरे कवि का यूँ शोषण करने के लिए तैयार हो सकता है, तो फिर शक्तिशालियों और जन्मजात ठगों की तो बात ही दूर रही । दुनिया में क्या छोटी मछली के लिए कोई जगह नहीं ? क्या आखिरकार बड़ी के पेट में समाना ही उसकी नियति है, भगवान का यह कैसा न्याय है ? उसने यह कैसी दुनिया बनायी है ? चेतन कुछ भी न समझ पाता । चातक जी के प्रस्ताव में छिपे स्वार्थ और शोषण और रोज़ प्रकृति में होने वाले ज़ुल्म की बात सोचते-सोचते, वह इतिहास के पन्नों में खो गया । उसने महान लोगों की जीवनियों में जो पढ़ा था, वही साकार हो कर उसके सामने आने लगा ।....सिकन्दर मेसेडोनिया से उठा और लाखों निर्दोष लोगों को मौत के घाट उतारता हुआ, कत्ल और गारतगरी मचाता, गाँव और शहर जलाता, भारत की सीमा तक आ पहुँचा । अपनी विजय-यात्रा में उसने न जाने कितने लाखों निरीह लोगों की हत्याएँ की, कितने गाँव-कस्बे-शहर वीरान कर डाले, तो भी वह महान कहलाया और उसकी विजय-गाथा इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में लिखी गयी ।....ज़ार पीटर ने रूस को आधुनिक बनाने के अपने स्वप्न को साकार करने के लिए लाखों नागरिकों को गुलामों की तरह अपनी महत्वाकांक्षा की गाड़ी में जोत दिया —केवल सेण्ट पीटर्ज़बर्ग बनाने में बीस लाख मज़दूर काम करते-करते खत्म हो गये । उसने सेण्ट पीटर्ज़बर्ग बसाया । रूस को शक्तिशाली बनाया । अपनी पागल आकांक्षाओं के मार्ग में लाखों विरोधियों ही को नहीं, अपने इकलौते बेटे और अपनी प्रेमिका तक को अगणित यातनाएँ दे कर मौत के गर्त में सुला दिया । दुनिया आज उसे महान मानती है ।.... चंगेज़ खाँ और नेपोलियन भी महान कहलाते हैं ।....और चेतन का दिमाग उन महान लोगों के साथ-साथ, उन निरीह, ग़रीब, भोले-भाले लोगों के बारे में सोचने लगता जो उनकी जय-यात्रा के मार्ग में चींटियों की तरह

पिस गये। भगवान का अंश सब में है। तब वे क्यों महान है, जिन्होंने इतने अत्याचार किये और वे क्यों महान नहीं है, जो चुपचाप मौत के मुँह मे चले गये? उनकी बात कोई क्यों नहीं सोचता? इतिहास उनके बारे में दो शब्द भी क्यों नही कहता?....संसार में न्याय कहाँ है, धर्म कहाँ है, प्रेम कहाँ है? उसे तो कहीं नजर नही आता। एक भयानक आपा-धापी है, जिसमें कुछ लोग पीस रहे है, शेष पिस रहे है। जो पिस रहे हैं, उनके लिए धर्म, प्रेम, न्याय, शक्ति, श्रद्धा, आस्था, भक्ति, कर्त्तव्य और न जाने कौन-कौन मीठे, भुलावे-भरे शब्द ईजाद कर दिये जाते है। जिसे दो जून पेट भरने का जुगाड़ करने के लिए इस स्वार्थी दुनिया मे लोहा लेना पड़ता है, वह अपने शोषकों से प्रेम कैसे करे? और यह सब भगवान ने रचाया है तो वह ऐसे भगवान मे कैसे आस्था रखे? कैसे शान्ति पाये, सुख पाये, आनन्द पाये? इस दुनिया की जद्दो-जेहद मे—इसके काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से—दूर भाग कर किसी शान्त जगह मे बैठ, भगवान की आराधना करते हुए, कुण्डलिनी जगा कर आत्मा को परमात्मा मे मिला, परमानन्द की प्राप्ति शायद हो सकती हो, पर सभी यह करने लगे तो इस दुनिया का काम कैसे चले? मोक्ष....मोक्ष....मोक्ष....सारे धर्म-शास्त्र उसी की प्राप्ति की दुहाई देते हैं। पर यदि भगवान ने मोक्ष की प्राप्ति ही व्यक्ति का चरम-ध्येय बनाया है तो उसने यह दुनिया बनायी ही क्यों, आवागमन का चक्कर चलाया ही क्यों?....दुनिया के दुखों और मुसीबतों से भाग कर आदमी ने ही कहीं मुक्ति की कल्पना तो नही की है और उसे भगवान के मुँह मे रख दिया है?....उसे उत्तर न मिलता....

चेतन के लिए बैठे रहना कठिन हो गया। वह उठ कर कमरे में घूमने लगा। उसके विचारों ने पलटा खाया। संसार ने सिकन्दर, पीटर, चंगेज़ खाँ और नेपोलियन को ही तो महान नहीं माना, बुद्ध और ईसा को भी तो महान माना है। बुद्ध और ईसा को संसार ने भगवान का पद दे दिया है और ये दोनों तो न्याय, दया, प्रेम और क्षमा के अवतार हैं।....गहराई से सोचने पर चेतन को लगता कि भगवान को क्रूर और दयामय दोनों

माना गया है। एक ओर शिव है, जिनका रौद्र रूप ताण्डव नृत्य कर उठता है और संसार भस्मीभूत हो जाता है, दूसरी ओर विष्णु है, जो संसार का पालन-पोषण करते हैं। मानव भी यदि भगवान का अंश है तो जब वह क्रूरता की सीमा पर पहुंच कर सिकन्दर और पीटर बन जाता है तो उसे महान मान लिया जाता है और यदि क्षमाशीलता और दया की सीमा पर पहुंच कर वह बुद्ध और ईसा बन जाता है तो भी उसे महान मान लिया जाता है....तब वे लाखों-करोड़ों लोग, जो सीमाओं पर नहीं पहुंच पाते, वे भगवान के कौन-से अंश हैं ? उनमें भगवान का कौन-सा रूप है—वे जो पिसते-पिसते चुपचाप मर जाते हैं, या जो लोभ, मोह, क्रोध, अहंकार में लिपटे, अपनी छोटी-छोटी जरूरतें पूरी किये जाते हैं और उनसे ऊपर नहीं उठ पाते, वे क्या हैं ? न महान, न नगण्य . ये बीच के करोड़ों-करोड़ों लोग। जिनमें से वह भी एक है।

चेतन को लगा, उसमें कभी इतनी क्रूरता और निर्ममता नहीं आ सकती कि वह परम शक्तिशाली बन कर महान कहलाये, न इतनी दया, क्षमाशीलता और आध्यात्मिकता कि वह बुद्ध और ईसा की तरह महान बने—तब क्या उसके सामने कोई रास्ता नहीं, क्या वह इतने लाखों-करोड़ों लोगों की तरह बिना कोई महत्त्वपूर्ण काम किये, मौत के मुंह में समा जायगा ? अगर उसकी यही नियति है तो उसे यह स्वीकार नहीं है। कोई तीसरा मार्ग जरूर होगा, जिस पर चल कर वह संसार के उन दैनन्दिन कर्मों की हेयता से ऊपर उठ सके। अपनी इस अपार व्यग्रता और जलन और कुढ़न को किसी ठीक रास्ते लगा सके।

वहीं घूमते-घूमते अचानक चेतन का ध्यान अपने माता-पिता की ओर चला गया। तमाम मुसीबतों, तकलीफों, यन्त्रणाओं के बावजूद उसने मां को कभी बेचैन और व्यग्र नहीं पाया। अजीब बात है कि उसने कभी उसकी आंखों में आंसू नहीं देखे। भगवान में अपनी गहरी आस्था के कारण अपने सब भले-बुरे को उसके अर्पण कर, सुबह-शाम छोटे-से आले में जोत जगा, 'ओ जय जगदीश हरे' गा कर और भगवान के चरणों में माथा टेक

कर वह स्वस्थ और आश्वस्त हो जाती। दया, धर्म, न्याय और कर्त्तव्य-परायणता में उसका अडिग विश्वास था और अपने बेटों को उसने यही सिखाया था।

और उसके पिता, जो शक्ति के उपासक थे, बुद्धि के उपासक थे, 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' में जिनका परम विश्वास था; जो आये दिन लड़ाइयाँ करते थे, फौजदारियाँ और मुकदमेबाजियाँ करते थे और अपने बुद्धि-कौशल से सदा जीत जाते थे; जो अपने अफ़सरों को, डिवीजनल हेड-क्वार्टर के क्लर्कों को पटाये रखते थे, 'तेल नमक जिसको मिले तुरत नरम हो जाय' में जिनका अटूट विश्वास था; जो नेपोलियन की तरह 'असम्भव' को मूर्खों और कमजोरों की डिक्शनरी का शब्द मानते थे; खाते-पीते मौज उड़ाते और चरम में जीते थे और जिन्होंने अपने बेटों को शक्ति की उपासना करना सिखाया था; जो उन्हें शारीरिक शक्ति प्राप्त करने के गुर बताते थे और चेतन को (जो शरीर में कमजोर था) चाणक्य के उदाहरण से दिमागी शक्ति प्राप्त करने की सीख देते थे और जो सख्त-से-सख्त मुसीबत में कभी न घबराते थे, जरा दिमाग लड़ा कर सदा उससे पार पा जाते थे और मौज-मस्ती, मलंगई और फक्कड़ई में निर्द्वन्द्व भाव से जीते थे, मजे की बात यह है कि कभी-कभी दो-एक पेग चढ़ा कर और मौज में आ कर वे गा उठते थे :

शामा, मेरे अवगुण चित्त न धरो।

और आश्वस्त हो जाते थे कि श्याम ने उनके सब गुनाह माफ़ कर दिये हैं।

लेकिन वह—उन दोनों का बेटा—न माँ की तरह सारे सत्कर्म करता हुआ अपने आप को मूर्ख और खल मान कर भगवान से अपने अनकिये कुकर्मों की माफ़ी माँग सकता था। न पिता की तरह सारे गुनाह करते हुए उन्हें बख्शवा सकता था। उसके मन में माँ की बेबसी के प्रति भी अपार क्रोध था और पिता की बेगैरती के प्रति भी। वह न उतना नीतिवान हो सकता था, न उतना अनैतिक—उसका व्यक्तित्व बुरी तरह से खण्डित हो कर दो सीमाओं के मध्य टामकटोये मार रहा था। तब उसके

लिए कोई राह नहीं क्या ?....लाख सोचने पर भी कोई रास्ता न पा कर वह घूमता हुआ खिड़की में जा खड़ा हुआ ।....

नीलामकारों ने इस बार टाइमपीस किसी को जड़ दिया था और उसे वहाँ से खदेड़ रहे थे । चेतन जानता था कि उनमें जो मुसलमान है, वे शाम को नमाज़ पढ़ कर अल्लाह से अपने गुनाह बख्शवा लेंगे । हिन्दू कृष्ण की मूर्ति के आगे 'ओ जय जगदीश हरे' का पाठ कर, अपने सारे कर्म भगवान को अर्पित कर, इत्मीनान मे सो जायेंगे और कोई ईसाई हुआ तो वह पादरी के सामने कन्फ़ेशन कर, सन्तुष्ट हो जायगा ।....वे, जो इन ठगों का शिकार हुए, वे भी अपनी हानि को अपने कर्मों का फल मान कर सन्तोष कर लेंगे । और ये सब-के-सब दूसरे दिन फिर यही कुकर्म करने के लिए ताज़ा-दम हो जायेंगे । जब भगवान उनके सब पाप अपने ऊपर लेने को तैयार है तो वे क्यों चिन्ता करें....चेतन को सब मे ईर्ष्या हो आयी । काश, उसे भी ऐसी आस्था प्राप्त होती ! काश, वह भी बुद्धि और तर्क का साथ छोड़ सकता !! काश, वह अपने अहं को मार कर भगवान की शरण जा सकता !!! इकबाल का एक शेर उसके दिमाग़ में घूम गया :

अच्छा है दिल के साथ रहे पासबाने-अक़्ल
लेकिन कभी-कभी इसे तन्हा भी छोड़ दे

लेकिन वह अपने दिल को कभी तन्हा न छोड़ पाता था । वह प्रायः गीता पढ़ता था । उसमें समस्या का समाधान था, पर हर समाधान को ले कर दसियों प्रश्न उसके दिमाग़ में उठ आते थे । कभी उसके मन मे भक्ति नही जगती थी, क्योंकि भक्ति की पहली शर्त है – तर्क को छोड़ कर, बुद्धि को छोड़ कर, अहं को छोड़ कर, परम आस्था से भगवान की शरण जाना । और वह इनमें से किसी को भी छोड़ न पाता था । जब भगवान ने उसे दिमाग़ दिया है, और वह कुन्द नहीं है, निरन्तर सोचता है, प्रश्न उठाता है, तो वह क्यो उससे काम न ले ! क्यों उसका साथ छोड़े !....चेतन ने अलमारी से गीता उठायी और फिर ओवरकोट टाँगों पर ले कर चारपाई पर जा बैठा । कितनी ही देर तक वह दूसरा अध्याय पढ़ता रहा । चेतन

को लगता था कि इस अध्याय मे कुछ ऐसे सूत्र है, जिन्हे वह अपना सकता है। अपनी न्याय-बुद्धि से अपने कर्त्तव्य को जान कर कर्म करना, उसमे अपनी पूरी इच्छा-शक्ति लगाना और फलाफल की चिन्ता न करना—यह उसे ठीक लगता था। दुख-सुख से ऊपर उठ जाना—कितना भी मुश्किल क्यो न हो, उसे रुचना और संसार के समस्त शुभ-अशुभ मे स्थित-प्रज्ञ हो कर जीना उसे आकर्षित करता। उसे अपने माता-पिता, दोनो से प्रबल इच्छा-शक्ति मिली है। भगवान को जानने से पहले वह अपने आप को जानेगा, अपनी शक्ति और सीमा को जानेगा, अपना कर्म और धर्म निश्चित करेगा और न्याय-अन्याय का विचार करेगा। अपना उद्देश्य उसने निश्चित कर लिया है—वह लॉ कॉलेज मे दाखिल होगा, सब जजी के कम्पीटीशन मे बैठेगा और अपनी पूरी शक्ति अपने उद्देश्य के लिए लगा देगा। इस सब के बावजूद असफल रहा तो दुख नही मनायेगा। उसे विश्वास था वह असफल नही होगा। वह माता-पिता के रास्ते से अलग एक तीसरा रास्ता अपनायेगा। देखेगा कि उस रास्ते पर चल कर वह कोई बडा काम कर सकता है या नही।

उसने गीता को बन्द करके अलमारी मे रख दिया। ला कॉलेज मे दाखिल होना दूर की बात है, अभी उसके सामने घर मे आटा-दाल लाने की समस्या है। उसकी पत्नी ने ऊपर वालो से कुछ आटा उधार ले लिया था, पर कै दिन ऐसे चलेगा? क्यो न वह भाई साहब से कहे कि उसे कुछ रुपये अभी दे दे। फिर वह उन्हे दे देगा।. .'यथेव विधाता वधीयति तथेव शुभाय।' उसने सोचा। चातक जी ने उससे जो प्रस्ताव किया और उससे जो बवण्डर उसके हृदय मे मचा कौन जाने इससे कुछ शुभ ही निकले, कभी वह नाटक लिख ही डाले और अपने नाम ही से छपाये। बीज तो उन्होने उसके मन मे डाल ही दिया है—कौन जाने वह कभी अंकुरित हो कर पेड़ बन जाय!

चेतन ने बैठक बन्द की और तेज़-तेज भाई साहब की दुकान की तरफ़ चल दिया।

लेकिन आध घण्टे बाद ही वह निराश वापस लौट आया था। उसने उनसे पाँच रुपये उधार माँगे थे, लेकिन उन्होंने एक रुपया तक देने से इनकार कर दिया था। भाई साहब ने जितने रुपये महीने में बचाये थे, वे सब दुकान के किराये में दे दिये थे और अब उनके पास दुकान का सामान लाने के लिए पैसे नहीं थे। (सच्ची बात उसे मालूम नहीं थी, पर उन्होंने कहा यही था।) जब चेतन ने अपनी स्थिति बतायी थी तो भाई साहब ने यह प्रस्ताव किया था कि वे पुरानी अनारकली के ढाबे में खाना खा लेंगे कि वहाँ उधार चलता है और चेतन तथा उसकी पत्नी अपने लिए कोई प्रबन्ध कर लें। चाहें तो (जब तक चेतन को कोई काम नहीं मिलता) वे भी वहीं आ कर खा लें। चेतन बिना कुछ कहे, झल्लाया हुआ वापस आ गया था और हताश-सा आ कर चारपाई पर लेट गया था।

तभी चन्दा विद्यालय से आ गयी। "क्यों, ऐसे क्यों लेटे हुए हैं?" उसने कमरे में दाखिल होते ही तद्रे चिन्ता-भरे स्वर में कहा।

"सुबह से काम की तलाश में घूमता रहा हूँ। लेकिन काम नहीं मिला। भाई साहब ने दो रुपये तक देने से इनकार कर दिया और तुम आटा ऊपर वालों से लायी थीं।"

"कोई बात नहीं," चन्दा ने मुस्करा कर कहा, "आज नहीं मिला तो कल मिल जायेगा। आप घबराते क्यों हैं? आटे की आप चिन्ता न कीजिए। आप कहिए तो मैं दस दिन का प्रबन्ध कर दूँगी। आप थक गये होंगे। रजाई ले लीजिए। मैं चाय लाती हूँ।"

और किताबें मेज पर रख कर वह तेज-तेज चली गयी। चेतन को हैरत हुई कि उसकी पत्नी तेज भी चलने लगी है। लेकिन वह नहीं उठा। न उसने रजाई ही ली, वैसे ही निःस्पन्द लेटा रहा। तभी उसने देखा कि बैठक के दरवाजे के सामने अचकनपोश नीलामकार खड़ा है।

चेतन उचक कर उठ बैठा, "क्या बात है भई?" उसने रुखाई से कहा। उसे लगा, जैसे वह चन्दा के पीछे ही अन्दर आ गया है।

अचकनपोश ने जेब से रुपये-रुपये के दो नोट निकाल कर दहलीज़ के अन्दर रख दिये—"बाबू साहब यह आपका हिस्सा है।"

"नही-नही, ये मुझे नही चाहिएँ," चेतन ने कहा, "तुम इन्हे ले जाओ !"

"अरे बाबू साहब, दिन भर की खिट-खिट मे, बिके हुए सामान के पैसे और कुली-मजदूरो का खर्च चुका कर, हमे दस रुपये कमीशन के बचे है। हम आठ आदमी है। एक-एक रुपया हम बाँट लेगे। दो रुपये आपको दे दिये है। आपके तुफल हमारे बाल-बच्चे भी दो रोटी खा लेगे।"

और बिना रुपये उठाये, सलाम करके वह चला गया। चेतन उचक कर चारपाई मे उठा। उसने रुपये उठाये और भाग कर डेवढी मे आया। लेकिन वह चौखट के बाहर नही जा सका। नीलामकार अपने साथियो मे जा मिला था। वे सब अपने तख्ते-खोखे और दूसरा सामान उठा रहे थे।

पहले उसने सोचा, जा कर उसे रुपये दे दे और डाटे कि उसने यह जुर्रत कैसे की। लेकिन वे सब-के-सब छँटे हुए गुण्डे थे। उनसे दुश्मनी मोल लेना उसे दानाई नही लगी। निश्चय ही वे फिर दूसरे दिन वहाँ स्टॉल लगायेगे। उसे अपने कुकर्म का भागीदार जो बना गये है। 'इनसे किसी दूसरी तरह सुलटना होगा,' उसने सोचा। वह उनको वहाँ रोज स्टॉल नही लगाने देगा। न उनसे रुपये लेगा। न ये रुपये अपने पास रखेगा। उनको देने से क्या लाभ है ? हस्पताल के जिन रोगियो के रिश्तेदारो से उन्होने ये छीने है, उन्ही मे मे किसी जरूरतमन्द को दे देगा।

वह अन्दर आया। रुपये उसने मेज की दराज मे रख दिये। चन्दा चाय ले आयी थी। वह चुपचाप चाय पीने लगा।

बाहर जल्दी ही सर्दियो की शाम उतर आयी। चेतन वही बैठा रहा। चन्दा नाश्ता करके रसोई मे चली गयी। दिये जल गये। ऊपर मालिक-मकान का परिवार परम भक्ति-भाव से भगवान की आरती उतारने लगा

ओम् जय जगदीश हरे
स्वामी जय जगदीश हरे
भक्त जनन के संकट छिन में दूर करे

जो ध्यावे फल पावे, दुख विनसे मन का
स्वामी दुख विनसे मन का
सुख-सम्पति घर आवे कष्ट मिटे तन का
ओम् जय जगदीश हरे

तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्ता
स्वामी तुम पालन कर्ता
मैं मूरख, खल-कामी, कृपा करो भर्ता
ओम् जय जगदीश हरे

और चेतन के सामने गीता के बारहवें अध्याय में भक्ति-योग के कुछ श्लोक घूम गये :

—मुझ में मन को लगा और मुझी में बुद्धि को लगा और तू मुझी में निवास करेगा, इसमें कुछ संशय नहीं।

—यदि तू मन को मुझ में स्थिर रखने में असमर्थ है तो अभ्यास-योग द्वारा मुझे पाने की इच्छा कर।

—यदि तू अभ्यास भी नहीं कर सकता तो सारे कर्म मेरे निमित्त ही कर, तू मुझे पा लेगा।

चेतन ने लम्बी साँस ली—काश, उसके पास ऐसी आस्था होती कि वह अपने कर्म भगवान को अर्पित कर सकता। गीताकार ने ये सारे श्लोक इसलिए लिखे हैं कि आदमी किसी तरह शान्ति पाये—मन-बुद्धि भगवान में लगा कर, अभ्यास द्वारा भगवान में ध्यान लगा कर, कुछ नहीं तो अपने सारे कर्म उसको अर्पित करके।....पहले दो के लिए चेतन के पास समय नहीं था और तीसरे के लिए आस्था नहीं थी। उसे शान्ति कैसे मिलती!

स्कूल के दिनों में हितोपदेश का एक श्लोक पढ़ कर उसने यह तो मान लिया था कि भगवान जो करता है, उसी के लाभ हेतु करता है और बुरी-से-बुरी स्थिति मे भी वह विधाता का अच्छा मन्तव्य ढूंढ लेता था, लेकिन वह अपने सारे कर्म भगवान के निमित्त करे, यह उससे कभी नही हुआ।

ऊपर आरती के अन्तिम चरण गूंज रहे थे :

विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा
स्वामी पाप हरो देवा
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ सन्तन की सेवा
ओम् जय जगदीश हरे

काश, उसके पास ऐसी आस्था होती, श्रद्धा होती, वह भी शान्ति पा सकता।




दूसरा खण्ड



पाँच

दूसरे दिन शाम को चेतन अनारकली मे बेपरवाही मे घूमता हुआ ज़ोर-ज़ोर मे आवाज़ लगा कर रूमाल बेच रहा था।

ओवरकोट के नीचे उसने वही ठण्डा सूट पहन रखा था, जो उसने पागलखाने में अपने ससुर को देखने के लिए जाते वक्त (डॉक्टर पर रोब जमाने की गरज से) सिलवाया था। उसके सिर पर भाई साहब का फ़ेल्ट हैट ज़रा तिरछा टिका था। जूते नये पॉलिश से चमचमा रहे थे। गले में टूटल टाई और पैरों में मोजे थे। बायी बाँह को मोड़ कर उसने दो डिब्बों में दो दर्जन मर्दाने और दो दर्जन जनाने—चार दर्जन रूमाल सँभाल रखे थे और दायें हाथ की उँगलियों मे एक ज़नाना और एक मर्दाना रूमाल पकड़े, वह ऐसी बेपरवाही से आवाज़ लगा रहा था, जैसे यह उसका पुराना पेशा हो :

अ हैंकी फ़ॉर यो'र हब्बी
(एण्ड) अ हैंकी फ़ॉर यो'र वाइफ़
इट गिव्ज़—ओ माई फ्रेण्ड्ज़
अ पेप टु यो'र लाइफ़

अनारकली पूरी बहार पर थी। सर्दी और धुएं के बावजूद भीड़ थी कि उमड़ी पड़ती थी। बढ़िया सूट और बढ़िया साड़ियाँ पहने, मर्द-औरतें, युवक-युवतियाँ, कॉलेजों के लडके और लड़कियाँ और इस सब रौनक का तमाशा देखने वाले और 'दीदारबाज़ी ते रब राज़ी' में विश्वास करने वाले मस्त-मलंग, सख्त सर्दी के बावजूद तहमदों और कमीज़ों पर स्वेटर या गर्म वास्केटें पहने, नंगे सिर बाल लहराते, ग़रीब तबके के मनमौजी नौजवान;

फिर ताँगे और हथगाड़ियाँ—रेवड़ियों और खजूरों और मूँगफलियों से लदी और उन्हें बेचने वालों की (कण्ठ या पेट के न जाने किन कोनों से निकलने वाली) आवाज़ें—'कड़ा-कड़ बोलदियाँ ओ कि मुखड़े खोलदियाँ !' (रेवड़ियाँ)....'आने पा (पाव) लवौ (लो) छोहारे बसरे दे !'....(खजूरें).... 'खस्ता मूँगफली—पिस्ते बादाम से भला!'....एक बेपनाह शोर, जो कानों को खाता भी था और दिल को भरमाता भी था। और इस सब शोर में एक तीखी, तेज़ और खनखनाती आवाज़ :

अ हैंकी फ़ॉर यो'र हब्बी
एण्ड अ हैंकी फ़ॉर यो'र वाइफ़

रात चेतन को बहुत देर तक नींद न आयी थी। उसकी पत्नी ने उसे तसल्ली दी थी, उसके सिर में तेल लगाया था, उसकी कनपटियाँ सहलायी और पपोटे भी दबाये थे और उसे बाँह में ले कर अपने गर्म-गुदाज़ सीने से लगाया था, लेकिन थकी-हारी चन्दा गहरी नींद सो गयी थी और चेतन दिन भर की थकन के बावजूद जागता रहा था।—उसके सामने तीन प्रश्न थे, जिनका वह कोई समाधान खोज न पा रहा था :

- वह उन गुण्डे-उठाईगीर नीलामकारों को कैसे अपने घर के सामने से हटाये, जिन्होंने वहाँ अड्डा जमा लिया था और अपने कुकृत्यों में उसे भी साझीदार बनाना चाहते थे।
- उन दो रुपयों का क्या करे, जो वे चुप रहने के लिए बतौर-रिश्वत उसकी दहलीज़ पर रख गये थे।
- फिर सबसे टेढ़ा प्रश्न—वह अपनी बेकारी का क्या करे ? कैसे तत्काल काम पाये ?

और इन्हीं तीनों प्रश्नों का हल सोचते हुए उसकी नींद उड़ गयी थी।....

....चेतन के दादा चण्डी के उपासक थे। माँ हर देवी-देवता में विश्वास रखती थी। उनकी मिट्टी की मूर्तियाँ घर में सजी रहती थीं और हर

त्योहार पर उनके यहाँ पूजा-पाठ, जप-तप होता रहता था। लेकिन चाहे उन तमाम अनुष्ठानों का कोई स्पष्ट सुफल न देख पाने के कारण, अथवा प्राइमरी से ले कर कालिज तक आर्य समाजी संस्था से शिक्षा पाने के कारण, भगवान के सगुण रूपों मे चेतन का विश्वास नहीं था....। राम हों या कृष्ण, उन्हें वह इन्सान—भले ही ऊँचे दर्जे के इन्सान—मानता था, भगवान नहीं। जन्म-मरण की सीमाओं मे बँधे, अपने स्वभाव, प्रकृति और संस्कारों से घिरे किसी इन्सान को उस शक्ति का प्रतीक मान लेना चेतन को कभी स्वीकार नही हुआ—जिसे उपनिषदकार शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध से व्यक्त नहीं कर सके। जिसे समझने के लिए 'नेति-नेति' कहते हुए उन्होंने यही बताया कि सीमाओं से घिरा इन्सान सीमाहीन को नही पा सकता। उसका अन्तःकरण और इन्द्रियां उसे नहीं जान सकतो। इसलिए किसी मन्दिर की चौखट पर अपनी माँ या दादा की तरह चेतन ने कभी माथा नही टेका। लेकिन इसके वावजूद संसार की अनेकरूपता में ऐसी एकरूपता थी, तमाम विश्रृंखलताओं मे ऐसी शृंखला-बद्धता थी कि उसे नही लगता था, इस संसार का संचालन करने वाली कोई शक्ति नही है और यह ऐसे ही अकारण, अनर्गल रूप पा गया है और निष्प्रयोजन चला जा रहा है। भले ही वह प्रयोजन उसकी सीमित बुद्धि की समझ मे न आता हो। 'यथेव विधाता वर्धीयति तथेव शुभाय,' वह हर मुसीबत के वक्त सोच लेता था।....

....करकराती आँखे और भारी सिर लिये हुए, अपनी पत्नी के वक्ष के साथ लगे, उसने उस श्लोक की यही पंक्ति दोहरायी। और स्वभाववश उसमे 'मह्यम्'—मेरे लिए—भी जोड़ लिया; फिर वह सोचने लगा कि इस स्थिति मे क्या शुभ है, यह कैसे जाने ?....क्या ऐसे में, जब उसे कही काम नही मिला, जो दो रुपये यों उसकी दहलीज़ पर नीलाम-कार ने फेंक दिये, इसमें विधाता ने उसे कोई संकेत दिया है। वह ये रुपये न अपने पास रख सकता है, न इन्हे खुद इस्तेमाल कर सकता है। फिर वह इनका क्या करे ?

सोच-सोच कर उसने यही तय किया कि वह पहले सुबह उठ कर अपने मालिक-मकान से मिलेगा और उसे समझा कर पड़ोसी मालिक-मकान के यहाँ ले जायगा और उन दोनों से कहेगा कि वे मिल कर, सम्भव हो तो अन्य एकाध पड़ोसी को साथ ले कर उन नीलामकारों का अड्डा वहाँ से उठवायें। जवान लड़कियों और बहुओं को आने-जाने में दिक्कत होगी और उन्होंने वहाँ अड्डा जमा लिया तो हमेशा के लिए एक मुसीबत खड़ी हो जायगी और आख़िरकार इससे बुराई ही निकलेगी। वह मालिक-मकान को यह भी समझायेगा कि वह किरायेदार है, उसकी बात का उतना महत्व नहीं। उसने टोका था, लेकिन उन्होंने परवाह नहीं की। वे सब मिल कर कार्रवाई करेंगे तो उनका अड्डा उठ जायगा।

फिर उसने उन दो रुपयों की समस्या पर ग़ौर करना शुरू किया। वह रुपये उन्हें लौटा सकता है, लेकिन उन्हें लौटाना उसे श्रेयस्कर न लगता था। वह उन्हें किसी गरीब को दे कर फ़ौरन उस बोझ से छुट्टी पा सकता था। लेकिन ऐसे में, जब उसके घर दो जून का आटा नहीं था और उसके हाथ में कोई काम नहीं था, क्या कोई ऐसी सूरत नहीं निकल सकती कि वह इन दो रुपयों का ऐसा उपयोग करे, जिससे उसका काम भी चल जाय और रुपये वह किसी ग़रीब को वापस भी कर दे। सोचते-सोचते उसकी आँखें भारी होने लगी और आदत के मुताबिक उसे प्यास लग आयी। वह उठा। उसने बिजली जलायी, सिरहाने रखे लोटे से पानी का गिलास पिया फिर वह लघुशंका के लिए बाहर जा रहा था कि उसकी निगाह खूँटी पर टंगे बन्द छाते पर चली गयी और अचानक उसके दिमाग़ में पण्डित रत्न के उस इंजीनियर मित्र की घटना घूम गयी, जिसने अनारकली में एक सुन्दर मुसलमान लड़के को छाते की तीलियों से रूमाल टाँगे, बेचते हुए देखा था और न केवल उसके सारे रूमाल ले लिये थे, वरन उस लड़के को भी उसके पिता से माँग लिया था। उसे पढ़ाया-लिखाया और विलायत भेज दिया था।....बिजली की कौंध-सा यह ख़याल उसके दिमाग़ में आया, क्यों न वह इन दो रुपयों के रूमाल थोक में खरीद

कर अनारकली में बेचे और छै-आठ आने बचा ले। हफ़्ता भर यदि वह शाम को यही काम करेगा तो न केवल घर के राशन की समस्या हल कर लेगा, बल्कि इन दो रुपयों के चार करके इन्हे किसी ग़रीब को दे आयेगा। न केवल इससे उस पाप का प्रायश्चित भी हो जायगा, जो पाप की कमाई हाथ में ले कर उससे अनजाने हो गया है, वरन वह इस समस्या को भी हल कर लेगा, जो अचानक नौकरी छूटने और तत्काल कोई काम न मिलने से उसके सम्मुख आ खड़ी हुई है। सुबह से दोपहर तक वह काम की तलाश करेगा और शाम को अनारकली में रूमाल बेचेगा। उसे पूरा विश्वास था कि वह हफ़्ते भर में कोई-न-कोई काम ढूंढ लेगा और हठात उसे यकीन हो गया, विधाता ने ये रुपये इसीलिए उसके रास्ते में डाल दिये हैं और उसकी यही इच्छा है।

गुसलख़ाने से वापस आ, बत्ती बुझा कर वह लेटा तो गर्म होते ही उसकी पलकें भारी हो गयीं और वह गहरी नींद सो गया था।

सुबह उठ कर वह दोनों मकान-मालिकों से मिला था। अपनी व्यस्तता में उनका ध्यान तो उधर न गया था, लेकिन जब चेतन ने उनसे बहू-बेटियों की बात की तो वे अचानक चिन्तित हो उठे। दोनों जा कर अन्य पड़ोसियों से मिले थे और धूप चढ़ते ही जब नीलामकार स्टॉल लगाने आये तो पूरी गली वहाँ इकट्ठी हो गयी। चेतन नहीं गया। खिड़की में खड़ा तमाशा देखता रहा। थोड़ी देर खिट-खिट हुई, लेकिन जमीन के उस टुकड़े का मालिक भी उन्हीं में था, जिससे बिना पूछे उन्होंने स्टॉल लगा लिया था, इसलिए वे भुनभुनाते-बड़बड़ाते और उन्हें गालिया देते हुए चले गये।

तब नाश्ता करके और नहा-धो कर चेतन अनारकली गया। जीवन-दास एण्ड सन्ज़, थोक-फरोश की दुकान से वह आठ आने दर्जन के हिसाब से दो दर्जन मर्दाने और दो दर्जन ज़नाने बढ़िया विलायती रूमाल ख़रीद लाया। आ कर उसने खाना खाया, डायरी लिखी। रूमाल बेचने के सिल-सिले में पहले अंग्रेज़ी में और फिर उर्दू में तुकबन्द नारे बनाये और सन्तुष्ट हो कर हार्मोनियम निकाल, पैरों से बेलो में हवा देता हुआ दोनों

हाथों से बजाने लगा :

स ग म प ध स नी ध प म ग
बैयाँ न पकड़ मोरी नरम कलाई रे

मध्यान्ह का सन्नाटा उसकी कर्कश, लेकिन हार्मोनियम के सुरों के साथ मिल कर किंचित सुरीली हो जाने वाली आवाज़ से गूँज उठा। चेतन को अपनी आवाज़ की कर्कशता का आभास था। इस बात का दुख भी उसे था कि उसके पिता का लोच और सोज़-भरा सुरीला कण्ठ छहों भाइयों में से किसी को भी नहीं मिला, लेकिन चेतन अपने लिए न गाता था, वह तो गाने का अभ्यास केवल इसलिए करता था कि अपनी पत्नी को सिखा सके। चन्दा ने बड़ा सुरीला कण्ठ पाया था। अभी उसके पास समय नहीं था। अभी जिन्दगी का संघर्ष उनका बहुत कठिन और दुर्वार था, लेकिन उस तमाम संघर्ष मे चेतन उन दिनों के सपने लेता था, जब वह कानून पास कर लेगा; कहीं सब जज हो जायगा; चन्दा बी० ए० कर लेगी; हार्मोनियम और सितार और दिलरुबा (जो शिमले से आने के बाद उसी तरह बन्द पड़ा था) सीख जायगी। वह पार्टियाँ देगा, जिनमें कभी-कभी वह गाया करेगी। अवकाश के समय में वह साहित्य की साधना करेगा।.... इन सुख-सपनों में रमा, वह अपने वर्तमान का तमाम दुख-दर्द और संघर्ष भूल जाता था। ये सपने ही थे, जो उसके अंगों में अद्भुत स्फूर्ति भर देते थे कि उसे कुछ भी कठिन, कुछ भी असम्भव न लगता था।

बड़ी देर तक वह बाजे पर अभ्यास करता रहा। जितने गीत उसे आते थे, न केवल उन्हें उसने हार्मोनियम पर गाया, बल्कि 'संगीत-शिक्षक' की सहायता से एक-दो नयी धुनें भी निकालीं। तीन बजने को आ गये। चन्दा के आने का समय हो गया था। चेतन ने ट्रंक से नया ठण्डा सूट निकाला। जूते पॉलिश किये। भाई साहब के कमरे से उनका पुराना फ़ेल्ट हैट निकाल कर उसे ब्रश किया। फिर हाथ-मुंह धो कर अपने लम्बे-घुंघराले बालों पर पानी का हाथ फेर कर उन्हें सँवारा, कपड़े बदले, ओवरकोट पहना, हैट लगाया, रूमालों के डिब्बे उठाये और बैठक को ताला लगा,

चाबी ऊपर दे कर वह घर से बाहर निकल गया।

कुछ महीने पहले इस तरह रूमाल बेचने की बात क्या वह सोच भी सकता था !—अनारकली को जाते हुए उसे हठात खयाल आया। सेठ वीरभान के यहां खाना पकाने वाली के रूप में अपनी सास का नौकरी करना, चौका-बर्तन साफ करना उसे कितना बुरा लगा था ! वह अपनी मान-प्रतिष्ठा की बात को ले कर कितना परेशान हो उठा था ! लेकिन उसकी सास ने अपनी कर्मठता और स्वाभिमान की रक्षा के लिए वह छोटा काम करने की तत्परता में उसके मिथ्या अहं को झकझोर दिया था। चेतन को अपनी माँ का कथन फिर याद आ गया—'अपने पैर धोती कोई बाँदी नहीं कहाती'—उसकी सास द्वारा सेठ वीरभान के बर्तन मलना या खुद उसका रूमाल बेचना, अपने ही पैर धोने के बराबर है। दयानतदारी से किये गये श्रम में उसे क्यों शर्म आये। वह झूठ नहीं बोलता, चोरी नहीं करता, डाका नहीं डालता, वह दयानतदारी से मेहनत करता है और तब तक करेगा, जब तक वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो जाता।. इसी बात का डर है न उसे कि कोई उसका परिचित अनारकली में उसे रूमाल बेचते देख लेगा। देख लेगा तो क्या होगा, वह उसी के हाथ रूमाल बेचेगा।....

यही सब सोचते हुए वह हस्पताल रोड से अनारकली में दाखिल हुआ। एक जनाना और एक मर्दाना रूमाल उँगलियों में पकड़ कर उसने हवा में लहराया और जोर से नारा लगाया था .

अ हैंकी फ़ॉर यो'र हब्बी
एण्ड अ हैंकी फ़ार यो'र वाइफ़

अनारकली में इस सिरे से उस सिरे तक और उस सिरे से इस सिरे तक, कभी अंग्रेजी में और कभी उर्दू में आवाज लगा कर घूमते हुए छै बजते-न-बजते उसने चारों दर्जन रूमाल बेच दिये। सूट-बूट और बढ़िया साड़ी-जम्पर या कमीज़-शलवार पहने किसी अकेले पुरुष या स्त्री या जोड़े को वह देखता तो

अंग्रेजी नारा लगाता। देशी कपड़े पहने किसी सम्भ्रान्त व्यक्ति को देखता तो हाथ और सिर हिलाता हुआ हाव-भाव के साथ हाँक लगाता :

शौहर को खुश करना चाहो
बीवी को खुश करना चाहो
दोस्त को खुश करना चाहो
दुश्मन को खुश करना चाहो
बढ़िया उसे रूमाल दो
सभी बलायें टाल दो।

और यह गा कर दायां जबड़ा नीचे को बढ़ा, मुंह टेढ़ा करके कण्ठ के दायें भाग में आवाज निकालता हुआ चिल्लाता :

"लीजिए, खरीदिए, बढ़िया और सस्ते विलायती रूमाल, आने में एक दस आने में बारह।"

उसे रूमाल बेचते हुए मुश्किल से एक-डेढ़ घण्टा हुआ था और उसने अभी दो दर्जन ही रूमाल बेचे थे, जब उसने देखा—बढ़िया सूट-बूट पहने एक नवयुवक अपनी नव-परिणीता पत्नी के साथ आ रहा है। तब चेतन ने अंग्रेजी में आवाज लगायी थी और टोपी को जरा-सा उठा कर आदाब करते हुए सिर झुका कर उसने रूमाल उनके आगे कर दिये थे—वह रूमाल बेचते-बेचते ऐसा तन्मय हो गया था कि भूल गया था, वह डेढ़ वर्ष तक लाहौर ही के प्रसिद्ध दैनिक में काम करता रहा है, कवि और कथाकार है। अपने पूरे व्यक्तित्व के साथ वह फेरी लगा कर रूमाल बेचने वाला बन गया था और अपनी इस भूमिका में उसे रस भी आने लगा था—जैसे अनारकली विशाल मंच था और वह एक कुशल अभिनेता, जिसे रूमाल बेचने वाले की भूमिका निभानी थी और वह जी-जान से उसे सफलतापूर्वक निभाने में तल्लीन था।

जाने उसके पहरावे में कुछ ऐसा था अथवा उसकी आवाज में अथवा भंगिमा में या फिर वह जोड़ा ही अपने नव-परिणय के कारण अतिरिक्त प्रसन्न था कि वह चेतन के रूमाल देखने लगा और उसके शेष रूमाल उन्होंने

खरीद लिये। यही नही, युवक ने उसे अपना कार्ड दिया और कहा कि कभी वह उनकी कोठी पर आये तो वे उसके द्वारा जरूरत की चीज़े खरीद सकते है। और 'थैंक्स' कह कर वह आगे बढ गया।

चेतन ने कार्ड देखा :

आकाश लाल खन्ना, पी० सी० एस०

सब जज

दयाल सिंह मैन्शन्ज, द माल, लाहौर

चेतन क्षण भर उस कार्ड को देखता रह गया। वह आते वर्ष जरूर लॉ कॉलिज मे प्रवेश लेगा और तीसरे साल पी० सी० एस० की प्रतियोगिता मे बैठ कर सब जज हो जायगा। तभी वह आकाश लाल के यहा जायगा। हो सकता है, कचहरी मे जजो के कमरे म ही उनसे मुलाकात हो जाय और वे उसे पहचान न पाये। तब वह उन्हे बतायेगा कि खाकसार वही रूमाल बेचने वाला है, जिससे तीन साल पहले एक शाम आपने दो दर्जन रूमाल खरीदे थे—और चेतन का मुख उस काल्पनिक मुलाकात से उद्भासित हो आया। गर्व से उसका सिर ऊँचा हो गया। उसने वह कार्ड सभाल कर ओवरकोट की अन्दर की जेब मे रख लिया और जीवनदास एण्ड सन्ज थोक-फरोश की दुकान की तरफ चल दिया।

इस बार अपने लाभांश को साथ मिला कर उसने पाँच दर्जन रूमाल खरीद लिये और दुगुने जोश से आवाज लगा कर रूमाल बेचने लगा।

उस जमाने मे आज-कल की तरह दुकाने आठ बजे शाम बन्द नही होती थी और अनारकली मे तो रात के दस-दस बजे तक चकाचौंध रहती थी। चेतन अनारकली के कई फेरे लगा चुका था, वह नये-खरीद रूमालो मे से भी तीन दर्जन बेच चुका था और अनारकली के चौरस्ते की ओर को जा रहा था, जब उसे सूट-बूट मे लैस पण्डित धर्मदेव वेदालंकार सामने से तेज़-तेज आते दिखायी दिये। चेतन ने पूरी दबंगई से अंग्रेजी मे आवाज़ लगायी :

अ हैंकी फ़ॉर यो'र हब्बी
एण्ड अ हैंकी फ़ॉर यो'र वाइफ़

और 'वाइफ़' कहते हुए उसने जरा-सा टोपी उठा कर सिर झुका कर रूमाल वाला हाथ उनके आगे कर दिया।

सूट-बूट पहने और हैट लगाये वेदालंकार जी अपने ध्यान मे मग्न चले जा रहे थे। सहसा उनकी दृष्टि उस पर पड़ी और वे ऐसे चौक गये, जैसे उन्होंने कोई भूत देख लिया हो।

"अरे आप!" उनके मुँह से सिर्फ इतना निकला।

"दो-एक रूमाल खरीदिए। देवीचाद्स के है—विलायती!"

"रूमाल तो मैं कमर्शियल बिल्डिग्ज, माल से लेता हूँ," उन्होंने किंचित गर्व-भरे स्वर मे बेपरवाही से कहा, "इनमे जरा बढ़िया किस्म के।"

"अपने नौकर के लिए ही ले लीजिए।" चेतन ने हँसते हुए सव्यंग्य कहा, "खुश हो जायगा।"

वेदालंकार जी ने उसके व्यग्य की ओर ध्यान नही दिया, "यह आप क्या करने लगे है?" उन्होंने साश्चर्य पूछा।

चेतन उनके साथ-साथ चलने लगा और उसने संक्षेप मे उनको अपनी स्थिति का परिचय दे दिया।

"आप मुझसे क्यों नही मिले? मै 'विश्व साहित्य कथा-माला' के लिए आपको ट्रासलेशन दे देता। कल-वल मे मुझसे मिलिए।"

"आपकी बड़ी मेहरबानी," चेतन ने कहा, "हफ्ते-पखवाड़े का जुगाड कर लूँ तो हाजिर हूँगा। ये दो दर्जन रूमाल रह गये हैं। इन्हे जरा बेच डालूँ।" और उसने दाये हाथ मे हैट को जरा-सा उठाया।

"लेकिन आप....मेरा मतलब है, आप साहित्यकार है, यह आप क्या करने लगे है?"

"साहित्यकार के पेट नही होता क्या?" चेतन ने जरा तीखे स्वर मे कहा, "और छोटी ही क्यों न हो, उसकी भी गिरस्ती है। फिर यह कोई बुरा काम नही है, ऑनेस्ट लेबर है; आप काम दिला देंगे तो छोड़ दूँगा।"

वेदालंकार जी चलते-चलते रुक गये थे। चेतन के उत्तर के बावजूद, वैसे ही चकित, बाजार में खड़े थे, जैसे उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास न आ रहा हो। लेकिन चेतन ने उनका सम्भ्रम तोड़ते हुए, हैट जरा-सा उठा कर और सिर झुका कर विदा ली और मुड़ कर और भी जोर से आवाज लगायी

अ हैंकी फॉर यो'र हब्बी

०

चेतन रूमाल बेचता हुआ अनारकली के चौरस्ते पर पहुँच गया था, जब सहसा उसने दूर से पण्डित रत्न को आते देखा। बजाय शर्माने या लजाने के, उसने उसी फक्कड़ ढर्रे से ऊँचे में हाँक लगायी

शौहर को खुश करना चाहो
बीवी को खुश करना चाहो
दोस्त को खुश करना चाहो
दुश्मन को खुश करना चाहो
नौकर को खुश करना चाहो
अफसर को खुश करना चाहो
बढ़िया उसे रूमाल दो
आयी मुसीबत टाल दो

उन्होंने उसे देख लिया। चेतन ने रूमाल उनके आगे कर दिये। बाँह उसकी कमर में डाल कर उसे साथ ही लेते हुए बदस्तूर चलते-चलते उन्होंने पूछा, "यह क्या स्वाँग बनाया है?"

"स्वाँग नहीं, रूमाल बेच रहा हूँ।"

"लेकिन क्यों?"

चेतन ने संक्षेप में उन्हें 'भूचाल' की नौकरी छोड़ने का किस्सा सुना दिया।

"तुम मेरे पास क्यों नहीं आये?"

चेतन कोई जवाब नहीं दे सका।

६

"चलो मेरे साथ।" और वे शीशमहल रोड की तरफ़ बढ़े।

"मुझे अभी ये दो दर्जन रूमाल बेचने हैं।"

"कितने के है ?"

"आने-आने बेचता हूं, पर कोई दर्जन लेगा तो दस आने के दे दूँगा।"

उन्होने जेब मे डेढ रुपया निकाल कर उसे दिया। "लाओ, दोनो दर्जन मुझे दे दो।"

चेतन ने उन्हे चार आने वापस करने चाहे।

"रखो-रखो।" उन्होंने कहा, "जाने कब से घूम रहे हो। चार आने भी तुम्हे मुनाफ़े के न मिलें तो बात ही क्या हुई।"

"अब आप मे क्या मुनाफा लूँगा।"

"ठीक है, रखो इन्हे।" उन्होने किंचित तीखेपन से कहा। फिर बजाय घर को जाने के, उन्होने अनारकली की तरफ को मुँह मोड लिया, "तुम्हे काम चाहिए ना, चलो तुम्हे आज ही काम दिला देता हूँ।"

और वे उसे ले कर 'भण्डू फार्मेसी' आये। एक पतला-छरहरा, तीखी नाक वाला गुजराती, आँखों पर चश्मा लगाये, छोटी-सी मेज के पीछे कुर्सी पर बैठा था।

"केम छे चुन्नी भाई," पण्डित जी ने दुकान पर चढ कर उससे हाथ मिलाते हुए कहा।

"सारो छे।" दाँत निकोसते हुए और पण्डित जी के हाथ को दोनो हाथो मे दबोचते हुए चूनी भाई ने कहा, "तुम बोलो रत्न सेठ केम छे ?"

"हम भी सारो छे।" पण्डित जी हँसे। फिर उन्होने कहा, "चुन्नी भाई, तुम मुझसे जैण्डो फार्मेसी की लिस्ट का उर्दू मे ट्रांसलेशन करने को कहते थे। ये मेरे दोस्त है—चेतन। डेढ बरस 'बन्दे मातरम' म एडीटर रहे है। बी० ए० है। बहुत अच्छे ट्रासलेटर है। इन्हे अंग्रेजी या हिन्दी की लिस्ट दे दो, ये उसे उर्दू में कर देगे। एक ही शर्त है, इन्हे अभी पाँच रुपये पेशगी दे दो। तीन-चार दिन मे तुम्हे उर्दू में फ़ेहरिस्त बना देंगे।"

यह सुन कर चूनी भाई कुछ झिझकते हुए-से खड़े हाथ मसोसने लगे तो पण्डित जी ने ज़रा जोर से कहा, "झिझको मत सेठ ! ये फौरन काम कर देंगे, यह गारण्टी मेरी है। इन्हें ज़रूरत है, रुपये अभी दे दो। काम ये वायदे के मुताबिक बहुत बढ़िया कर देंगे। और जो इश्तिहार तुम मुझे बनाने को कहते थे, वह भी बना देंगे।"

पण्डित जी ने कुछ ऐसे अधिकार-पूर्ण स्वर मे यह बात कही कि चूनी भाई ने, "जइसा हुकुम तुम देंगा रतन सेठ, वइसा हम करेंगा" कहते हुए अंग्रेजी का एक मोटा-सा सूचीपत्र चेतन को थमा दिया और जेब से पाँच का एक नोट निकाल कर उसके सामने कर दिया।

"पाच रुपये का एक रसीद हमको माँगता है, हिसाब रखने को !" उन्होंने कहा।

चेतन ने रसीद बना दी। फिर क्षण भर वही खडे-खड़े 'ज़ैण्डो फार्मेसी' का सूची-पत्र देखने लगा। उसके मुख-पृष्ठ पर तो अंग्रेज़ी में 'जैण्डो फार्मेसी' ही लिखा था, लेकिन दुकान के बाहर उर्दू में जो बोर्ड लगा था, उसमे 'झण्डू फ़ार्मेसी' लिखा था। 'यह शब्द शायद सैण्डो का जैण्डो और जैण्डो का गुजराती में झण्डू बन गया है,' उसने मन-ही-मन कहा और चूनी भाई से बोला, "कोई हिन्दी की लिस्ट नही चुन्नी भाई ?"

"यहां तो हिन्दी नही चलता। बनारस ब्राच का मैनेजर आया था, एक लिस्ट छोड़ गया है, बेसो, लाता हूँ।"

और वे दुकान के भीतरी भाग मे चले गये।

वे दोनों बैठे नही। चेतन ने बताया कि वह लेख का अनुवाद ले कर लाला जीवन लाल कपूर के गया था। अनुवाद के तो पैसे उन्होंने नही ही दिये। उसकी तनख़्वाह भी मार ली।

पण्डित जी कुछ क्षण चुप रहे। फिर उन्होंने कहा, "नौकरी छोड़ने से पहले तुमने मुझसे पूछ तो लिया होता।"

"पण्डित जी, मैं उस क्रूड आदमी की गुलामी नहीं कर सकता।"

"खैर, तुम्हारा चार-छै दिन का काम तो इससे चल जायगा। कल

इतवार है, सुबह आओ तो तुम्हें सूफी हनुमान परशाद, एडीटर 'मस्ताना जोगी' के यहाँ ले जाऊँगा। वो मुझसे जड़ी-बूटियों पर दो-तीन मजमून माँग रहे हैं। मसाला वो देंगे, उसके बल पर मजमून तैयार करने होंगे। कर लोगे ना?"

"जरूर कर लूँगा।"

"इतना कर लो। तब तक कोई दूसरी सूरत निकल आयेगी।"

तभी चूनी भाई अन्दर से हिन्दी का सूची-पत्र ले आये। चेतन ने उसे एक नजर देखा। बहुत अच्छा नहीं छपा था। 'जैण्डो फार्मेसी' को उस पर भी 'झण्डू फार्मेसी' लिखा था। बहरहाल, उसका तो केवल यही उपयोग उसके निकट था कि उसकी मदद से वह औषधियों का उच्चारण जान ले। उसने दोनों सूची-पत्र ओवरकोट की बाहरी जेबों में ठूँसे, पाँच रुपये का नोट अन्दर की जेब के हवाले किया और पण्डित जी के पीछे-पीछे 'झण्डू फार्मेसी' की सीढ़ियाँ उतरा।

पण्डित रत्न को घर छोड़ कर वह लौटा तो उसे बहुत देर हो गयी थी। उसने सोचा था कि वापसी पर यदि मेयो हस्पताल का दरवाजा खुला होगा और कोई गरीब रोगी उसे दिखायी देगा तो वह न सिर्फ वे दो रुपये उसे दे देगा जो नीलामकारों ने उसे दिये थे, बल्कि उस शाम की मेहनत से उसने जितना कमाया था, वह भी दे आयेगा। अब, जब विधाता ने उसे रुपये और काम दिला दिया है, वह पाप की कमाई न रखेगा। लेकिन हस्पताल बन्द हो गया था। घर जा कर खाना-वाना खा कर उसने चन्दा को पाँच रुपये देते हुए नीलामकारों के रुपयों और उनके उपयोग की सारी घटना सुना दी और अपनी इच्छा भी बता दी।

"यह ठीक है कि बाजार में घूमते-घूमते मेरे पैर थक गये हैं," उसने कहा, "और आवाज लगाते-लगाते मेरा गला दुखने लगा है, और यह कमाई बड़ी मेहनत की है पर जो पूँजी मैंने उसमें लगायी, वह तो पाप की है और उसके बल पर मैंने जो पैसे कमाये हैं, वे दागी हैं, मैं उन्हें पास रख लूँगा तो जिन्दगी भर मुझे उलझन रहेगी।"

"आप ठीक कहते है," चन्दा ने कहा, "इन्हे किसी जरूरतमन्द को दे दीजिए !"

दूसरे दिन सुबह पण्डित रत्न के घर जाने से पहले उसने यह किया कि वह मेयो हस्पताल के जनरल वार्ड मे गया, वे रुपये और उनका मुनाफा—सब वहाँ के एक गरीब गोरखे रोगी को दे आया।

जब वह पण्डित जी के घर की तरफ जा रहा था तो अपने आप को इतना हल्का महसूस कर रहा था, जैसे उसके कन्धो से भारी बोझ उतर गया हो।





छः

जब पण्डित रत्न ने चेतन को सूफ़ी हनुमान प्रसाद से मिलाने के लिए कहा था तो सिर पर बड़ा-सा पग्गड बाँधे, खादी का लम्बा अचकन और चूड़ीदार पायजामा पहने, फ़र्श पर जाजम और गाव तकिया लगाये, अधबैठे या अधलेटे किसी बुज़ुर्ग की कल्पना चेतन ने की थी।

वह सूफ़ी साहब से कभी मिला न था। उनकी ऐसी कल्पना उसने इसलिए की थी कि उनके सम्पादन में निकलने वाले रिसाले (पत्रिका) 'मस्ताना जोगी' को उसने अनारकली के चौरस्ते में 'फ़ज़ल बुक डिपो' के स्टॉल पर प्रायः देखा था। उसे देख कर चेतन को कई बार हैरत होती थी कि कोई पाठक उसे खरीदता भी है। लेकिन एक नहीं, बहुत-से खरीदते होंगे, क्योंकि हर महीने उसका थब्बे-का-थब्बा स्टॉल पर जाता था और महीने के अन्त में चन्द प्रतियाँ ही रह जाती थी। मामूली ३० पाउण्ड का डबल डिमाई काग़ज़, हरे रंग के साधारण पोस्टर पेपर का मुख-पृष्ठ, टेप सिलाई और फ़्लश कटिंग। आर्ट पेपर का स्पर्श तक पत्रिका को न मिला था। न मुख-पृष्ठ को, न अन्दर किसी चित्र को। किताबत भी साधारण थी। मटियाले-से हरे कवर पर उर्दू में 'मस्ताना जोगी' लिखा रहता था, पृष्ठ के बीचों-बीच मालिक और एडीटर—राय साहब सूफ़ी हनुमान परशाद—और पृष्ठ के नीचे हीरामण्डी के दफ़्तर का पता। चेतन ने दो-एक बार पत्रिका को उठा कर वहीं खड़े-खड़े उलट-पलट कर देखा भी था। प्रकट ही सूफ़ी साहब उसके सम्पादन में कैंची और गोंद का काफ़ी इस्तेमाल करते थे। उसने कभी उसमें कोई मौलिक कहानी न देखी थी। जो कहानियाँ

लोकप्रिय होतीं और ज़रा चटखारेदार भी होतीं, उनमें से कोई-न-कोई वे उसमें छाप देते। कभी उस पत्रिका का नाम दे देते, जहाँ से उन्होंने उसे लिया होता, कभी वह भी गोल कर जाते और 'मस्ताना जोगी' के पाठक यही समझते कि कहानी उसी पत्रिका के लिए लिखी गयी है। कहानी के अलावा स्वास्थ्य पर कुछ लेख होते। एक-आध लेख विभिन्न सब्ज़ियों या फलों के गुणों पर, लेकिन अधिकांशतः उसमें 'मस्ताना जोगी कार्यालय' से मिलने वाली औषधियों का प्रचार अथवा विज्ञापन रहता। उस परचे को देख कर चेतन की आँखों के सामने किसी सड़क के किनारे बड़ा-सा गेरुआ छाता लगाये उसके नीचे विभिन्न जड़ी-बूटियाँ फैलाये, बड़ी-बड़ी जटाओं वाले किसी डेरादेगीर जोगी का चित्र खिंच जाता।

चेतन मेयो हस्पताल के गोरखे रोगी को पैसे दे कर पैदल ही शीश-महल रोड, पण्डित रत्न के घर पहुँचा था। छुट्टी का दिन था और छुट्टी के दिन वे प्रायः स्वयं गोश्त पकाया करते थे—कभी रोगन जोश, कभी कोफ़्ते, कभी गोश्त वाला पुलाव और कभी कीमा। चूँकि उनकी पत्नी न गोश्त को छूती थी, न उसे चौके में आने देती थी, इसलिए पण्डित जी निपट-निपटा कर आँगन में अँगीठी जला कर, बड़ी तन्मयता से मसाला भूनते, फिर गोश्त डाल कर पकाते। जब तक गोश्त पक न जाता, वे पीढ़ा डाले वहीं बैठे रहते, करछुल हिलाते या देखते कि पक गया है या नहीं। जब पक जाता तो वे कटोरी में एक बोटी निकाल कर चखते। ठीक पका होता तो उनका चेहरा खिल उठता। फिर वे पतीला उतार कर नहाने जाते।.... नहा कर खाना खाते। कुछ देर आराम करते और मित्रों से मिलने-मिलाने निकल जाते।. चेतन का ख़याल था कि पण्डित जी आँगन की सुहानी धूप में रंगीन पीढ़े पर बैठे हुए गोश्त पका रहे होंगे। लेकिन जब उसने जा कर डेवढ़ी का दरवाज़ा खटखटाया और उन्होंने खोला तो उसने देखा कि वे सलवार-कमीज़ पहने, सिर पर कुल्लेदार मुसद्दी पठानी साफ़ा बाँधे और चमचम करते पम्प शू पैरों में डाले, बाहर जाने को तैयार हैं।

"तुमने ख़ासी देर कर दी," उन्होंने बाहर निकल कर उसे बग़ल में

ले कर चलते हुए कहा, 'सूफी साहब सवेरे ही मिलते हैं। बाहर निकल जायें तो फिर उनसे मिलने का कोई इमकान नहीं रहता।"

चेतन ने भिनमिन करते हुए नीलामकारों का किस्सा सुनाया—कैसे वे दो रुपये दे गये थे, कैसे उसने दो रुपयों के रूमाल खरीद कर, लगातार घूम-घूम कर उन्हें बेचा और साढ़े तीन रुपये बनाये और जब उन्होंने चूनी भाई से पाँच रुपये दिला दिये तो कैसे वह सुबह उनकी तरफ आते वक्त सारी रकम एक गोरखे रोगी को दे आया।

पण्डित जी कद्रे तेज-तेज चलते हुए चुपचाप उसकी बात सुनते रहे। फिर वे अपनी विशेष हँसी हँसे, जो दाँतों और तालू के बीच शुरू हो कर तालू में होती हुई कण्ठ तक पहुँच कर खुलती थी और ठहाके का रूप ले लेती थी और उन्होंने फतवा दिया कि वह निहायत चुग़द और कमजोर आदमी है। उसके घर कौन-सा हुन[1] बरसता है और वह किधर का धन्ना सेठ है कि उसने इतनी मेहनत से कमाये अपने पैसे भी जा कर गोरखे को दे दिये। गोरखों को उसने तो ठगा नहीं था। नीलामवालों ने ठगा था। उसने तो उस ठगाई में हिस्सा नहीं लिया। उसके घर के आगे उन्होंने स्टॉल लगाया था और वे पैसे उस असुविधा के एवज उन्होंने उसे दिये थे, जो उनके स्टॉल के कारण उसे हुई थी। उन्हें लेने में उसने कौन-सा अपराध किया? रही ठगी की बात तो सारी दुनिया इसी ठगी पर चलती है—यह सारा कारबार, यह सारा निजामे-हुकूमत[2] यह सब ठगी पर ही तो टिका है और गरीब और हकीर[3] और सीधा-सादा कहाँ नहीं ठगा जाता। अपनी मेहनत की कमाई जो वह दे आया तो क्या उससे वह सारे निजाम को बदल देगा!

चेतन चुपचाप उनकी बातें सुनता रहा। उसने उनकी किसी बात का प्रतिवाद नहीं किया। वह जानता था कि वह अपने मन की बात उन्हें किसी तरह समझा नहीं सकता। पण्डित जी की जगह उसके पिता होते तो शायद

१. सोना २. सरकारी व्यवस्था ३. नगण्य

वे भी उसे कमजोर और मूर्ख ही कहते, लेकिन वह जानता था कि उसकी माँ उसके काम से बहुत खुश होती। चेतन के व्यक्तित्व का एक हिस्सा उसके पिता का था और दूसरा माँ का। पिता से उसने बड़े-बड़े सपने देखना, अपने उद्देश्य के लिए एकनिष्ठ हो कर श्रम करना और असम्भव को मूर्खों की डिक्शनरी का शब्द समझना सीखा था; और माँ से सीखा था—किसी का दिल न दुखाना, दूसरों की बुराई देख कर खुद बुरा न बनना; किसी गरीब की आह न लेना और दूसरे क्या करते हैं, इसकी चिन्ता छोड़ कर अपनी तोड़ निभाना। वह जानता था कि वे दो रुपये अगर वह रख लेता तो कभी अपने आप को क्षमा न कर पाता और उसकी अन्तरात्मा उसे हमेशा कोसती रहती। पिता की शहजोरी और माँ की कमजोरी (यदि उसे कमजोरी कहा जाय) उसके स्वभाव का अंग थी और वह उसके हाथों मजबूर था। उसने पण्डित जी के फतवे को चुपचाप मान लिया और चुगद-सा बना उनके साथ चलता रहा, लेकिन दिल-ही-दिल में उनकी इस फिलासफी पर उसे क्रोध भी आया और दया भी। चूँकि दुनिया में बेहद ठगी है, इसलिए दिल-दिमाग रखने वाला और इन्सान कहाने वाला व्यक्ति स्वयं भी ठग बन जाय—यह कहाँ की दलील है! आदमी पशु से इन्सान बना है तो किन्हीं मूल्यों के कारण ही। चूँकि दुनिया में भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता है, इसलिए आदमी स्वयं भी भ्रष्ट और मूल्यहीन हो जाय या आपद्धर्म में अगर उसे कुछ ऐसा करना पड़े, जिसे उसकी आत्मा गवारा न करती हो तो उसे गलत न माने और बार-बार वही करे, यह कहाँ का तर्क है!

कुछ ऐसी ही बात उसके मन में आयी लेकिन उसने पण्डित जी से बहस नहीं की। वे बातें करते हुए रावी रोड पर आ गये थे। दूसरा वक्त होता तो पण्डित जी भाटी में से हो कर बाजार-दर-बाजार और गली-दर-गली हीरा मण्डी पहुँचते, क्योंकि उन्हें पैदल चलना और रास्ते में अपने यार-दोस्तों से सलाम-दुआ करते जाना पसन्द था। ताँगा उन्होंने कभी लिया न था और रोज जब वे घर से निकलते तो मीलों टहलते थे। फिर

अपनी-अपनी रुचि की बात है। वेदालंकार जी थे कि मोहनलाल रोड जैसे खुले बाज़ार से हो कर ब्रेडला हॉल जाने की बजाय, माल से घूम कर जाना पसन्द करते थे, क्योंकि उन्हें गलियों-बाजारों की भीड़-भब्भड़, गन्दगी-गलाज़त से नफ़रत थी; पण्डित जी रावी रोड की खुली सड़क के बदले तंग बाजारों-गलियों में यार-दोस्तों से मिलते हुए जाना पसन्द करते थे। उन्हें बाज़ारों की गहमा-गहमी, रंगारंगी और भीड़ का शोर-शराबा अच्छा लगता था और वे उससे लुत्फ़ हासिल करते थे।

लेकिन उस वक्त देर हो चुकी थी, उन्होंने भाटी गेट की ओर से आते हुए एक तांगे को रोका और चेतन के साथ हीरा मण्डी के अड्डे पर आ उतरे।

ताँगा वहीं अड्डे पर छोड़ कर, ज़रा आगे बढ, वे रणजीत सिंह के किले को जाने वाली सड़क पर हो लिये। फसील के बड़े गेट से इधर ही वे बायीं ओर को एक गली में मुड़े। सामने बड़े-से चौक के चारों तरफ़ नये मकान बने थे। चेतन पहले कभी इधर न आया था। शायद यहाँ खाली जगह रही होगी और नगरपालिका ने वहाँ प्लाट बना कर नयी आबादी बसा दी थी। चौक के सामने की पंक्ति के मकान पर उर्दू में 'मस्ताना जोगी' का बोर्ड लगा था और दरवाज़े की दायी तरफ़ अंग्रेजी में छोटी-सी नेम-प्लेट थी—राय साहब सूफ़ी हनुमान परशाद।

पण्डित जी ने दस्तक दी तो एक नौकर ने दरवाज़ा खोला और उन्हें बैठने का संकेत किया। दरवाज़े के अन्दर प्रवेश करते ही चेतन ने देखा कि एक दरम्याने आकार का कमरा है और उसमें एक बहुत बड़ी मेज़ लगी है। चेतन देर तक तय न कर पाया कि उस कमरे में इतनी बड़ी मेज़ लायी कैसे गयी है और यदि उसे कभी कमरे के बाहर निकालना पड़ा तो निकाली कैसे जायगी। मेज और दीवारों के बीच सिर्फ़ कुर्सियों के लिए ही जगह थी। सामने एक गद्देदार कुर्सी पड़ी थी, जो शायद सूफ़ी साहब की थी। इधर की तरफ़ चार कुर्सियाँ रखी थीं। और अजीब बात है कि मेज़ पर न कोई किताब थी, न फ़ाइल, न कागज़-पत्रों की ट्रे, न पत्र रखने का

पिजन-होल ।

वे दोनों बड़ी मुश्किल से उन चारों में से दो कुर्सियों पर बैठ गये तो कितनी ही देर तक चेतन सोचता रहा कि इतनी लम्बी-चौड़ी मेज का उपयोग सूफ़ी साहब क्या करते होंगे ? उस वक्त तो नहीं, लेकिन बाद में, जब वह राय साहब सूफी हनुमान प्रसाद को कुछ जान गया तो उसे मालूम हुआ कि दिन को वह दफ़्तर के काम आती है और रात को अफ़सरों की दावतों या उनके पीने-पिलाने और खाने-खिलाने के ।

बहरहाल, उस वक्त तो वे चुपचाप मेज के इधर की कुर्सियों पर बैठ गये । दीवार और मेज के बीच ज्यादा जगह न होने के कारण उन्हें तंग हो कर बैठना पड़ा । कुछ देर बाद सामने, शायद आँगन को जाने वाले, दरवाज़े का पर्दा उठा और पचास-पचपन के एक सज्जन, बढ़िया सूट पहने नमूदार हुए । पण्डित जी ने उठ कर 'आदाब अर्ज़ सूफ़ी साहब' कहा । चेतन ने 'आदाब अर्ज' कहा और सूफ़ी साहब अपनी कुर्सी पर बैठ गये और पण्डित जी से बातें करते हुए जेब से चिलगोजे निकाल, छील-छील कर खाने लगे ।

चेतन चुपचाप उन्हें देखता रह गया । उसकी कल्पना से वे कितने भिन्न थे । बहुत बढ़िया सूट और टाई और सिल्क की कमीज पहने हुए, वे न सूफ़ी लगते थे, न 'मस्ताना जोगी' जैसे रिसाले के मालिक-सम्पादक और न हनुमान प्रसाद (जो उर्दू में परशाद हो जाता है) । मँझला कद; न पतला, न मोटा शरीर; चौड़ा मुख, आँखों के नीचे मोटी थिगलियाँ; बाल, जो कभी बहुत घने रहे होंगे, अब छिदरे हो रहे थे; कन्धे जरा झुक गये थे । सूफ़ी साहब सरकारी दफ़्तर के कोई बहुत ऊंचे अफ़सर लगते थे । सिर्फ़ एक बात थी कि वे लगातार चिलगोजे खाते थे और उनकी चाल-ढाल में किंचित ढीलापन था ।

पण्डित जी ने चेतन का परिचय दिया और अपने आने का मन्तव्य प्रकट किया । सूफ़ी साहब ने एक नजर चेतन पर डाली । उसने महसूस किया कि उन मोटी-मोटी थिगलियों वाली आँखों की निगाह तेज़ है । जैसे ये

आँखें उसके आर-पार देख रही हैं। क्षण भर वे उसे अपलक देखते रहे, फिर वे उठे। अलमारी से उन्होंने तीन अंग्रेज़ी पत्रिकाएँ निकालीं और चेतन के सामने फेंक दीं।

"इन तीनों रिसालों में हिन्दुस्तानी जड़ी-बूटियों और उनके फ़ायदों पर एक-एक मज़मून है," उन्होंने कहा, "देख लो, अगर तुम इनका तरजुमा उर्दू में कर सकते हो।"

और उसकी ओर से ध्यान हटा कर वे पण्डित जी से राय बहादुर छोटूराम, दीवान महेन्द्रनाथ, सर सिकन्दर हयात ख़ाँ और सर गोकुलचन्द नारंग, आदि, लाट साहब की कौंसिल के मेम्बरों की बातें करने लगे।

चेतन ने वहीं बैठे-बैठे एक नजर उन लेखों पर डाली। फिर उसने कहा कि जड़ी-बूटियों के नाम अंग्रेजी में दिये हैं, इन्हें हिन्दी या उर्दू में क्या कहते हैं, इसका पता उसे चल जाय तो वह तरजुमा कर देगा।

"पब्लिक लाइब्रेरी में हर तरह की डिक्शनरियाँ हैं," सूफ़ी साहब ने कहा, "इन मजमूनों को पढ़ कर, जिन अल्फ़ाज़ के मतलब तुम्हें समझ में नहीं आते, कागज़ पर लिख कर वहाँ ले जाना और मतलब लिख लाना। फिर तुम्हें कोई दिक्कत पेश न आयेगी।"

"तो भी, दो-तीन बार पब्लिक लाइब्रेरी जरूर जाना पड़ेगा।"

"मैं तो आम तौर पर एक रुपया एक मज़मून का देता हूँ।" उन्होंने कहा, "पर ठीक कर लाओगे तो तीन रुपये फ़ी मज़मून दे दूँगा। और मिलते रहोगे तो आगे की भी कोई-न-कोई सबील कर दूँगा, ताकि तुम्हें हर महीने कुछ-न-कुछ आमदनी होती रहे।"

"आप तीनों मज़मूनों के इसे दस रुपये दे दीजिएगा," पण्डित रत्न ने उठते हुए कहा, "काम यह मेहनत से करेगा। पसन्द न आये तो दोबारा कर देगा। न होगा तो मैं कर दूँगा, लेकिन अगर इसे कुछ पेशगी दे दें तो इसे तसल्ली हो जायगी।"

"क्या मुझ पर एतबार नहीं?" और उन्होंने गहरी आँखों से पण्डित जी की ओर देखा।

"इसे ज़रा ज़रूरत है।" पण्डित जी ने कुछ झेंप-भरे स्वर में कहा, "वरना आपका कह देना ही काफ़ी है।"

सूफ़ी साहब ने बटुआ निकाल कर तीन रुपये चेतन के हाथ में रख दिये।

"ये एक मज़मून के पैसे पेशगी रहे।" उन्होंने कहा, "एक कर लाये तो दूसरे के पैसे ले जाय।"

पण्डित जी ने शुक्रिया अदा करते हुए हाथ बढ़ाया। चेतन ने 'आदाब' किया और दोनों सूफ़ी साहब से विदा ले कर बाहर निकले।

"पण्डित जी, सूफ़ी साहब न सूफ़ी लगते हैं, न वैद। उनकी हस्ती मुझे तो बड़ी भेद-भरी लगती है।" वापसी पर चेतन ने सहसा पण्डित रत्न से कहा।

चूँकि अब कोई जल्दी नहीं थी। सूफ़ी साहब से वे मिल ही लिये थे, इसलिए वापसी पर पण्डित जी ने ताँगा नहीं लिया और हीरा मण्डी से बाहर निकल कर रावी रोड से वापस आने के बदले, वे दोनों शहर-पनाह के बाहर, सर्दियों की प्यारी धूप का आनन्द लेते हुए, गोल बाग़ के बीचों-बीच बनी रविश पर ख़रामा-ख़रामा चले आ रहे थे। पण्डित रत्न ने चेतन की बात का कोई जवाब नहीं दिया। कुछ क्षण वे चुपचाप चलते रहे, फिर बोले, "तुम्हें उनके सूफ़ीपन या वैदकी से क्या लेना है! उनका काम करके दे दो। पैसे देने में वे कंजूसी नहीं करेंगे। बड़े-बड़े अफ़सरों तक उनकी पहुँच है। चाहे तो इस तरह फ़ायदा पहुँचा सकते हैं।"

चेतन कहना चाहता था, 'फिर भी....' लेकिन वह चुपचाप पण्डित जी के साथ चलता गया।

थोड़ी देर बाद पण्डित जी ख़ुद ही बोले, "मैं भी उन्हें ज़्यादा नहीं जानता। उनके पिता सूफ़ी हर परशाद, सूफ़ी भी थे और वैद भी। उन्होंने 'मस्ताना जोगी' शुरू किया था और वे दवाओं के साथ-साथ उसमें सूफ़ी-इज़्म पर मज़मून भी देते थे, मशहूर वैद होने के साथ-साथ वे फ़िलॉसफ़र

भी थे और ज़िन्दगी का उनका अपना फ़लसफ़ा था। बहुत ही भले और सीधे-सादे आदमी थे, उनकी बड़ी इज़्ज़त भी थी। उनके हाथ में शफ़ा थी, हुक्काम तक पहुँच थी। रुपया भी उन्होंने खूब कमाया और यह मकान भी बनवाया। हनुमान परशाद कॉलेज में बी० ए० तक पढ़े और वहीं से अफ़सरों के लड़कों के साथ उठने-बैठने लगे। कहाँ तक सच है, मैं नहीं कह सकता, लेकिन लोग कहते हैं कि उनका ताल्लुक खुफ़िया पुलिस से है, सरकार के खैरख्वाह हैं। 'मस्ताना-जोगी' अब सिर्फ़ एक आड़ है, जिसके पीछे बैठे वे सरकार के बहुत-से काम संवारते हैं। बदले में उन्हें राय साहबी मिली है। पर तुम्हें इस सब से क्या लेना है! उनका काम करके उन्हें दो, पैसे लो और मौज करो! तुम्हें आम खाने से मतलब है, पेड़ गिनने के पीछे क्यों पड़ते हो!"

चेतन चुपचाप उनकी बात सुनता रहा। उसने फिर कोई सवाल नहीं किया। पण्डित जी भी चुपचाप चलते रहे, फिर उन्होंने कहा, "कुछ दिन का गुज़ारा तो तुम्हारा चुन्नी भाई और सूफ़ी साहब के काम से चल जायगा, अखबार-नवीसी तुम करना नहीं चाहते, कोई ऐसा काम क्यों नहीं करते, जिससे कुछ मुस्तक़िल[1] गुज़ारे की सबील हो जाय?"

"मैं तो खुद सोच-सोच कर थक गया हूं पण्डित जी," चेतन ने कहा, "लेकिन मुझे कुछ सुझायी नहीं देता।"

"तुम 'लिट्रेरी लीग' की तरह की कोई सोसाइटी क्यों नहीं चलाते?" सहसा उन्होंने उसकी ओर पलट कर कहा।

०

'लिट्रेरी लीग' लाहौर के ऊँचे तबके के लोगों की एक संस्था थी। दीन दयाल नाम के एक खासे बदसूरत साहब, जो लाहौर में 'डी० डी०' या 'चौधरी' के नाम से मशहूर थे, संस्था के सेक्रेट्री थे। माल पर उसका दफ़्तर था, जिसमें एक बड़ा-सा हॉल-नुमा कमरा था। दोनों ओर छते बरामदे थे। सामने मंच बना था। दरवाज़े से मंच तक बीचों-बीच रंगीन टाट बिछा रहता

---

१. स्थायी

था, जिसके दोनों ओर पचास-पचास कुर्सियाँ रखी रहती थीं। मंच के पीछे बरामदे में पिंग-पाँग टेबल रखी रहती थी। हर हफ़्ते-पखवाड़े 'लीग' की बैठकें वहाँ होती थीं। शहर में कोई बड़ा लेखक, कवि, गायक, दार्शनिक अथवा प्रोफ़ेसर आता तो उसके स्वागत में वहाँ सभा होती। यूँ कहा जाय कि बिना शहर के मध्यवर्गीय लोगों के बीच गये, 'लीग' के उच्चवर्गीय मेम्बर चौधरी साहब के प्रयत्नों से अपनी संस्था के हॉल में, अपने वातावरण में, उन नामवर हस्तियों से मिल-मिला लेते थे। कभी 'लीग' के सदस्य किसी विषय पर कोई लेख आदि पढते। गिने-चुने मेम्बर थे। सब ऊँचे तबके से—लाट साहब की कौंसिल के मेम्बर, हाईकोर्ट के जज, बैरिस्टर, प्रसिद्ध एडवोकेट, आर्मी के अफ़सर आदि।....बीस रुपये मासिक उसका चन्दा था। हॉल का किराया, पत्र-व्यवहार और दूसरे खर्च निकाल कर इतना बच जाता था, जिससे संस्था, सेक्रेटरी और उनके परिवार का खर्च बखूबी चल सके।

चेतन दो-तीन बार 'लिट्रेरी लीग' की मीटिंगों में शामिल हुआ था। वहाँ के एक मुशायरे में वह एक ग़ज़ल भी पढ आया था। एक बार उसने अपनी कहानी भी पढ़ी थी, लेकिन उसे कभी मजा न आया था। क्योंकि लीग के सदस्य निहायत गम्भीर, मतीन और सम्भ्रान्त चेहरा बनाये बैठे रहते, जैसे किसी शोक-सभा में बैठे हों और कभी किसी बात पर हँसते भी थे तो यूँ, जैसे दूसरे पर ही नहीं, अपने आप पर भी एहसान कर रहे हों। कितना भी बोगस लेख या कविता या प्रोग्राम क्यों न हो, वे चुपचाप सुनते थे और फ़रमायशी[1] दाद भी देते थे।

'लीग' के कुछ सम्भ्रान्त सदस्य साहित्य-वाहित्य का भी शौक रखते थे और शौकिया शे'र-ो-शायरी भी करते थे। एक राय बहादुर मेम्बर को पंजाबी लोकगीत इकट्ठे करने का शौक था। एक रिटायर्ड कर्नल डाक के टिकट इकट्ठे करते थे। एक तीसरे, पुरानी छड़ियाँ....! अपने-अपने शौक

---

१. औपचारिक

पर उन्होंने लेख भी लिखे थे और 'लीग' के सदस्यों ने उसी तन्मयता से सुने थे। खाने की मेज़ों पर बैठे, वे लोग जैसे बिना आवाज़ किये, छुरी-काँटे से खाना खाते थे; रोटी खाते समय मुँह न खोलते थे; पानी पीते वक्त आवाज़ न करते थे; कभी हड्डी न चूसते, न सालन गिराते थे; इसी तरह बिना किसी तीव्र प्रतिक्रिया के, भाषण या कविता या कहानी या लेख भी सुनते थे। उन्हे हर वक्त अपनी पोज़ीशन, प्रोटोकोल, आभिजात्य और शिष्टाचार का ख़याल रहता था। चेतन के निम्न-मध्यवर्गीय संस्कारो को वे सभाएँ, ज़िन्दा लोगो की सभाएँ न लगती थीं। चौधरी साहब ने उन सब के लिए एक मंच जुटा रखा था। जब लीग का कोई जज, बैरिस्टर, एडवोकेट अथवा लाट साहब की कौंसिल का मेम्बर सदस्य कुछ सुनाना चाहता तो चौधरी साहब विशेष मीटिंग रख देते। उस मीटिंग में वे लाहौर के कुछ चुने हुए बौद्धिकों को ज़रूर आमन्त्रित करते। बार-बार उनके घर जा कर इस बात को पक्का कर लेते कि वे ज़रूर मीटिंग मे भाग ले। लाहौर के दोनों अंग्रेजी दैनिकों—'ट्रिब्यून' और 'सिविल एण्ड मिलिट्री गजेट' के प्रतिनिधियों को भी उसी मनुहार-अधिकार से बुलाते और दूसरों की रचनाओं के बाद लीग के सदस्य की रचना का विशेष उल्लेख करते हुए उसे सुनवाते और अंग्रेज़ी समाचार-पत्रो मे उसका विशेष ज़िक्र करवा देते।....सो इस तरह लीग के सदस्यों का शौक भी पूरा हो जाता, हफ़्ते-पखवाड़े उनकी बँधी-टकी ज़िन्दगी मे एक परिवर्तित शाम थोड़ी दिलचस्पी पैदा कर देती, थोड़ा सम्पर्क उपस्थित कर देती और इस खाते चौधरी साहब की रोज़ी-रोटी चलती रहती।

लेकिन 'लिट्रेरी लीग' के उस अभिजात वातावरण मे चेतन को सबसे ज्यादा खलने वाली चीज़ चौधरी का व्यक्तित्व ही लगता था—उस उल्टी हांडी-सा, जिस पर चुड़ैल की शक्ल बनी रहती है जो सुन्दर नये मकान को कुदीठि मे बचाने के लिए उस पर लटकी रहती है—और सबसे पहले ध्यान खीचती है। चौधरी लिट्रेरी लीग के उस सुन्दर, सुसंस्कृत, सुसभ्य और सम्भ्रान्त वातावरण मे अपनी कुरूपता से चेतन का ध्यान खींचते थे

और उसे बडी कोफ्त होती थी—मँझला कद, ज़रा-सा बढ़ा पेट, निहायत काला रंग, बन्दर की तरह का जबड़ा और बाहर को बढ़ी ठोड़ी—चेतन ने उन्हे कभी जोर से बोलते नही सुना था, चुपचाप वे अपना काम करते थे और साइकिल लिये, लाहौर की लम्बाई-चौडाई नापा करते थे।

चेतन कभी-कभी सोचा करता था कि उनमे कौन-सा गुण है, जिससे वे इतने ऊंचे दर्जे के लोगो को प्रभावित किये रहते है। 'ट्रिब्यून' मे उसने उनके दो-एक लेख भी पढे थे, जिनका लिखने वाला साधारण बुद्धि और मेधा का व्यक्ति लगता था। प्रतिभा उसे उन लेखो मे नही लगी थी। लेकिन कोई तो गुण उस व्यक्ति मे था ही, जिसके चलते वह लगातार इतने बडे-बडे लोगो से, उनकी व्यस्तताओ के बावजूद, इतना समय ले लेता था। हफ्ते-पखवाडे प्रोग्राम भी रखता था, जिनमे उतनी कुर्सियाँ जरूर भर जाती थी, दोनो अग्रेजी अखबारो मे उनकी चर्चा हो जाती थी और लाहौर के उच्च-मध्यवर्गीय सास्कृतिक जीवन मे उसने 'लिट्रेरी लीग' का एक स्थान बना दिया था।

जब पण्डित रत्न ने चेतन को 'लिट्रेरी लीग' जैसी कोई सस्था चलाने के लिए और उसके बल पर अपनी रोजी का स्थायी प्रबन्ध करने के लिए कहा तो चेतन के सामने 'लिट्रेरी लीग' का सारा वातावरण और उसके मंत्री, डी० टी० चौधरी की सूरत घूम गयी। उसने कहा

"जब 'लिट्रेरी लीग' एक जमी-जमायी सोसाइटी शहर मे मौजूद है, तो वैसी ही दूसरी अजुमन कायम करने की क्या जरूरत है?"

"मैने कई बार सोचा है," पण्डित जी ने कहा, "कि चाहे हम लोग 'लिट्रेरी लीग' मे चले जाते है, लेकिन वह हमारी अजुमन नही है। लाहौर मे एक ऐसी सोसाइटी की यकीनन जरूरत है, जिसमे औसत दर्जे के लोग आ सके। 'लीग' के मेम्बर हजारो कमाने वाले लोग है। उनका माहौल ऊँचे दर्जे का माहोल है। तुम एक ऐसी सोसाइटी शुरू कर सकते हो, जिसका चन्दा पाँच रुपये महीना हो। शहर मे उसका दफ्तर ले सकते

हो। लाजपत राय हॉल या किसी ऐसी जगह उसकी बैठकें हो सकती है, जिनमें हमारे जैसे लोग हिस्सा ले सकें।"

"लेकिन पण्डित जी, आखिर सोसाइटी खुलेगी तो उसके कोई कायदे-कानून होंगे, उन्हें छापना और बाँटना पडेगा। उसका चन्दा होगा तो रसीद बुकें भी होंगी और हिसाब-किताब के लिए रजिस्टर लेना पडेगा और मेरे पास तो इस सब के लिए एक पैसा भी नही।"

"यार तुम कमाल के आदमी हो।" पण्डित जी हँसे, "जब चन्दा इकट्ठा करोगे तो उसमें से रसीदें और ब्रोशर ही न छपेंगे!"

"बिना रसीदों के चन्दा कैसे इकट्ठा होगा?"

"हो जायगा। मै बिना रसीद के चन्दा दे दूंगा। तुम उससे रसीदे और ब्रोशर छपवा लेना।"

चेतन आश्वस्त हो गया। कुछ क्षण चुप चलते रह कर उसने पूछा, "उर्दू में या अंग्रेजी में?"

"ब्रोशर तो अंग्रेज़ी में ही तैयार करना पड़ेगा। तुम पक्का सोच लो मैं लिख दूँगा।"

"यह हाथ का काम खत्म कर लूँ, तो सोचूँगा।"

पण्डित जी को शीशमहल रोड पर छोड़ कर, उनके जोर देने पर उनके साथ दोपहर का खाना खा कर, जब चेतन वापस, कृष्णा गली की ओर चला तो उसका मन बड़ा प्रसन्न था। दो दिन पहले 'भूँचाल' की नौकरी छोड़ देने पर उसे कुछ भी सुझाई न दे रहा था और अब न सिर्फ़ उसे काम मिल गया था, उसके हाथ में महीने भर के राशन के पैसे आ गये थे, बल्कि उसके सामने अनन्त सम्भावनाएँ खुल गयी थीं। शायद 'भूँचाल' की नौकरी के यूँ छूटने में उसकी कोई भलाई ही निहित हो। विधाता इस माध्यम से उसकी बेहतरी चाहता हो। उसने वही हितोपदेश का श्लोक मन-ही-मन दोहराया और तेज-तेज़ चलने लगा।





सात

चेतन 'भगत फार्मेसी' का सूची-पत्र बना कर दे आया था। सूफी हनुमान प्रसाद को दो लेख दे आया था। उनसे एक और लेख के रुपये भी ले आया था और अब, अन्तिम लेख तयार कर रहा था। इतवार था। भाई साहब उस दिन आधी छुट्टी मनाते थे। 'पटियाला हाउस' में 'ऑल इण्डिया एग्जि-बिशन' लगी थी। मकान-मालिक का परिवार जा रहा था और भाई साहब ने वहाँ चलने का प्रस्ताव किया था। चन्दा का मन भी नुमायश देखने को था, लेकिन चेतन लेख खत्म करके दे आना चाहता था। उसने भाई साहब से अनुरोध किया था कि वे उन्हीं के साथ चले जायं और चन्दा को भी प्रदर्शनी दिखा लायें। वह किसी और दिन उसे फिर ले जायगा। वे लोग चले गये थे तो चेतन अपने कमरे में बैठा, एकाग्र भाव से अंग्रेज़ी लेख का अनुवाद करने लगा था।

वह लाहौर की पब्लिक लाइब्रेरी में जा कर शब्दकोशों की सहायता से कठिन शब्दों के अर्थ लिख लाया था। फिर उसने यूनीवर्सिटी के बॉटनी विभाग में जा कर सम्बन्धित अध्यापक से सम्पर्क स्थापित किया था और उनसे पूछा था कि जो अर्थ उसने ढूँढे हैं, वे ठीक और प्रचलित हैं या नहीं उनकी राय में उसने कोश के शब्दों के स्थान पर कई प्रचलित शब्द रख लिये थे और अब वह फर्राटे से अनुवाद किये जा रहा था।

सिनेमा, सैर-तमाशे, सिगरेट-शराब—चेतन को किसी बात का चस्का नहीं था। कभी-कभी उसके मित्र मजाक उड़ाते थे कि तुम कैसे कथाकार या कवि हो, जो न शराब पीते हो, न सिगरेट (चातक जी की मण्डली

शराब की जगह विजया देवी का उल्लेख करती थी ।) चेतन यही कहता कि वह कविता या कहानी अपने दिल-दिमाग़ से लिखता है, सिगरेट, शराब या भाँग मे तो नही लिखता, फिर उनकी ज़रूरत उसे क्यो हो । दिल उसका हस्सास और दिमाग़ बेहद क्रियाशील था । अपने काम के आगे उसे सारे मज़े फीके लगते थे । जो काम सामने हो, उसे पहले निबटाना चेतन को सैर-तमाशे से कही ज्यादा महत्वपूर्ण लगता था, इसलिए जब भाई साहब ने प्रदर्शनी देखने की बात की थी तो उसने पहले हाथ का काम निबटाना जरूरी समझा था । जब चन्दा मुँह-हाथ धो कर कपड़े बदलने लगी थी तो वह उसे दिलचस्पी से देखता रहा था—धुला-निखरा मुँह, रंगली दातुन से साफ़ किये, चमचमाते दाँत और गहरे लाल होंट । उसे यह जान कर सन्तोष हुआ था कि वह अपने शरीर और कपड़ो की सफ़ाई पर ज़्यादा ध्यान देने लगी थी । भले ही घर का धुला और इस्त्री किया हुआ, लेकिन साफ ब्रेजियर, ब्लाउज, अण्डरवेयर, साया और साड़ी उसने निकाली थी । वह दिनों-दिन सभ्य और सुसंस्कृत हो रही थी । चेतन के सामने कुछ दिन पहले की एक घटना घूम गयी....

....सूफ़ी हनुमान प्रसाद से बात करने के बाद चेतन पण्डित जी को घर छोड कर, अंग्रेजी पत्रिकाएँ बगल मे दबाये डेवढी मे दाखिल हुआ था कि सामने आगन की नाली पर उसने अपनी पत्नी को गर्म पानी की बाल्टी और लोटा रखे, झाँवे से मल-मल कर पैरो की मैल छड़ाते देखा ।

वह चकित-सा वही खडा रह गया था, क्योंकि लगातार कहने के बावजूद चन्दा ने एक बार भी इस तरह अपने पैर साफ़ किये हो, उसे याद न था । कुछ आश्चर्य और कुछ मजाक मे उसने पूछा था :

"यह क्या हो रहा है मेरी जान ?"

चन्दा सरलता से हँसी थी । "कमला ने बडे सुन्दर मोजे पहन रखे थे । मैंने पूछा, 'कहाँ से लिये हैं, एक जोड़ा मुझे भी ले दो ।' कहने लगी, 'तुम्हे मोज़ो की क्या जरूरत है, तुमने तो ये कुदरती मोज़े पहन रखे

है।'" और यह कहते हुए चन्दा का मुख लाल हो आया और वह ज़ोर-ज़ोर से अपने पैरों की मैल छुड़ाने लगी।

चेतन मुड़ कर हाथ की पत्रिकाएँ अपनी मेज़ पर रख आया था और अपनी पत्नी के सामने रसोई-घर की चौखट पर आ बैठा था और कैसे हाथ-पैरों की मैल साफ़ की जाती है, सोत्साह उसे बताने लगा था।

"गर्म पानी अपने आप मैल साफ़ नहीं करता। न झाँवा ही करता है," उसने कहा था, "पहले गर्म पानी पैरों पर डाल कर मैल को, जो जिल्द का अंग बन चुकी है, नर्म पड़ने दो, फिर झाँवे से मलो।" और उसका पैर खींच कर वह उसके टख़नों से मैल छुड़ाने जा रहा था कि चन्दा ने कहा :

"हाय-हाय ! आप मुझ पर पाप क्यों चढ़ाते है ?"

यह कहते और पैर पीछे को खींचते हुए उसके चेहरे पर कुछ ऐसा भयभीत भोलापन आ गया कि चेतन का शरीर गर्म हो आया। उसने उसका पैर छोड़ कर, बिना इस बात का खयाल किये कि वे आँगन की नाली पर बैठे हैं और ऊपर से कोई देख लेगा, दोनों हाथों में चन्दा का मुख ले कर उसे चूम लिया।

वह बुरी तरह लजा गयी। "क्या करते है ! वक्त-कु-वक्त भी नहीं देखते।" उसने कहा और पीछे को हट कर उसकी गिरफ़्त से आजाद हो गयी।

लेकिन प्रकट ही उसे अच्छा भी लगा, क्योंकि उसका चेहरा स्नेह-सिक्त हो आया था।

चेतन ने फिर उसका पैर खींच लिया। "तुम मेरी बीवी हो। तुम मेरे पैर धो सकती हो। मैं क्यों नही धो सकता।" उसने कहा और वह अँगूठे के ज़ोर से उसके पैर की मैल छुड़ाने लगा। "तुमने कभी पैर धोये हों तो तुम्हें इनकी मैल छुड़ानी आये।" उसने हँसते हुए ताना दिया, "देखो मैं कैसे मिनटों में इनकी सारी मैल छुड़ा कर इन्हें तुम्हारे चेहरे-सा गोरा बना देता हूँ।"

चन्दा ने प्रतिरोध छोड़ दिया था। अपने दोनों हाथ पीछे टिका कर वह ढीली हो कर बैठ गयी थी। चेतन के अँगूठे के ज़ोर से कभी उसके होंटों से 'सी' की आवाज़ निकल आती, वह कसमसा कर पैर खींच लेती, लेकिन चेतन के हाथ उसके साथ ही खिच जाते। वह फिर पैर अपनी ओर खीच लेता और धीरे-धीरे उनको मलता।

काफ़ी देर तक वह बड़े स्नेह से अपनी पत्नी के पैरों की मैल छुड़ाता रहा। गर्म पानी और झाँवे और चेतन के अंगूठे की रगड़ से (चाहे उसकी मैल पूरी तरह न छूटी थी) चन्दा के पैर लाल हो आये थे।

कभी जब वह बच्चा था और उसके पिता हिसार के करीब, बुगाना स्टेशन पर काम करते थे, चेतन को याद था कि उसकी माँ सर्दियों में इसी तरह उसके मैल-सने रूखे हाथ-पैर धो कर उन पर वैजलीन मल दिया करती थी। लेकिन जब वह जालन्धर आ कर स्कूल में पढ़ने लगा था, उसे याद नहीं, कभी उसकी माँ ने अथवा स्वयं उसने अपने हाथ-पैर यूँ धोये हों। उसके हाथ-पैरों पर मैल की एक मोटी परत जम गयी थी, जो खाल का हिस्सा बन गयी थी। सख़्त सर्दी में भी सभी भाई रोज़ ठण्डे पानी से नहाते थे। लेकिन ठण्डे पानी से मैल तो नहीं छूटती। चेतन को तो कभी इसका एहसास भी न होता, यदि वह एक दिन अपने सहपाठी रोशन के साथ उसकी बेंच पर न बैठा होता।

रोशन उसके साथ आठवीं में पढ़ता था। रंग उसका, चेतन की अपेक्षा किंचित साँवला था, लेकिन पतला-छरहरा नाज़ुक शरीर, मँझला कद और तीखे नैन-नक्श। चेतन को वह बहुत भला लगता था और उसे देखते ही उसका दिल बेतरह धड़कने लगता था। रोशन किले मुहल्ले में रहता था। अमीर पिता का बेटा था, पढ़ने-लिखने में तेज़ और नितान्त चुपीता। वह बहुत धीरे बोलता था और अपने मुहल्ले के दो-एक सम्भ्रान्त सहपाठियों के साथ ही उठता-बैठता था। चेतन उन दिनों ग़ज़लें लिखने लगा था और मन-ही-मन रोशन को चाहने लगा था। धीरे-धीरे उसने रोशन से सम्पर्क

बढ़ा लिया था। पहले वह उसके एक पड़ोसी के साथ उठने-बैठने लगा। फिर दो-एक बार उसके साथ रोशन के घर भी हो आया। रोशन क्लास में हमेशा अगली बेंचों पर बैठता था और चेतन गणित के अध्यापक 'भूतना' के डर से पिछली बेंचों पर। लेकिन इतिहास के पीरियड में चेतन अगली बेंचों पर जा बैठता था। एक दिन रोशन का साथी ग़ैरहाज़िर था। चेतन जैसे अजाने उसके साथ जा बैठा। इतिहास का पीरियड था। अध्यापक प्लासी के युद्ध का वर्णन कर रहे थे और वे दोनो अपने हाथ डेस्क पर टिकाये, एकाग्र-चित्त सुन रहे थे। तभी अध्यापक का कण्ठ ज़रा खरखराया। खंखार कर खिड़की के बाहर उसने बलगम थूकी और रूमाल से नाक-मुँह साफ किया। चेतन का ध्यान बंट गया। उसने कनखियों से रोशन के चेहरे को देखा। उसे बड़ा प्यारा लगा। फिर उसकी निगाहें उसके नाज़ुक हाथों पर चली गयी। श्याम रंग के बावजूद कोमल और लम्बी उंगलियाँ और चेतन की दृष्टि अपने हाथो पर गयी। उसके हाथों की जिल्द रोशन के हाथों की अपेक्षा कही काली थी। मैल की परत ने उसका सुर्खी रंग, रोशन के श्याम हाथो की अपेक्षा कहीं काला कर दिया था—काला और खुरदरा।....चेतन ने उसी वक्त तय कर लिया था कि वह अपने हाथ रोशन के हाथो जैसे ख़ूबसूरत और नर्म बना डालेगा।

घर आ कर सबसे पहले उसने पानी गर्म कराया था और खुली बैठक की नाली पर बैठ कर देर तक हाथो और पैरो की मैल उतारता रहा था। उसने हाथों को उल्टा करके फ़र्श की ईंटो पर रगड़ा था। मैल तो उतर गयी थी, साथ ही मास भी छिल गया था। लेकिन उसने वैज़लीन लगा ली थी। स्कूल से आ कर रोज वह अपने हाथ गर्म पानी से धोता था और उसने तब तक चैन नही लिया था, जब तक उसके हाथ रोशन के हाथों की अपेक्षा गोरे नही हो गये थे। वैसे सुकोमल वे नही हो पाये थे, क्योंकि चेतन को अपने भाइयों के साथ मिल कर घर का काम करना पड़ता था, लेकिन साफ वे रोशन के हाथों की तरह हो गये थे और चूँकि उसका रंग रोशन की अपेक्षा खिलता हुआ था, इसलिए वे रोशन के हाथों से ज़्यादा

साफ़ लगते थे।

कल्पना ही में वह रोशन के साथ बैठा हुआ, उसके और अपने हाथों की तुलना कर रहा था और बेध्यानी में चन्दा का पैर मले जा रहा था कि सहसा चन्दा सीधी हो कर बैठ गयी और उसके हाथ परे हटाती हुई बोली :

"हटिए, अब मैं अपने आप कर लूंगी।"

चेतन चौंका था। हालाँकि उसे अपनी बीवी के पैरों को यूँ धोना, जैसे कभी माँ ने लड़कपन में उसके पैर धोये थे, अच्छा लग रहा था, लेकिन देर तक जोश से मैल उतारने के कारण उसके हाथ दुखने लगे थे। इसलिए वह उठ खड़ा हुआ। अन्दर जा कर वह वैज़लीन पोमेड की शीशी उठा लाया था। "पैर धो कर और कपड़े से साफ़ करके वैज़लीन मल लेना। नर्म हो जायेंगे," उसने कहा था और अन्दर कमरे में जा कर काम करने लगा था।

दिन भर वह 'झण्डू फ़ार्मेसी' का सूची-पत्र बनाता रहा था। फ़ार्मेसी का काम पहले ख़त्म करके सूफ़ी साहब के काम को हाथ लगायेगा, यही उसने तय किया था। ऊबाऊ काम था, लेकिन वह ऐसी तन्मयता से उसे करता रहा था, जैसे वह कोई कहानी लिख रहा हो। अपने पिता की शिक्षा के मुताबिक उसने बहुत पहले तय कर लिया था कि वह जो भी काम हाथ में लेगा, उसे पूरे मन से करेगा। कितना भी ऊबाऊ काम क्यों न हो, पारिश्रमिक उससे मिले या न मिले, वह स्वीकार करेगा तो अपना पूरा श्रम उसे देगा। द्वितीय कोटि के काम को भी वह प्रथम कोटि के काम की तरह पूरे श्रम और निष्ठा से करेगा। वह न दोपहर के खाने के बाद सोया था, न सैर ही को गया था। रात का खाना खा कर वह फिर मेज़ पर बैठ गया था। चन्दा रसोई-घर का काम निबटाती रही थी और वह सूची-पत्र बनाता रहा था। रसोई का काम ख़त्म करके वह कमरे में आ गयी थी और बिस्तर पर बैठ कर उसने स्कूल का काम खत्म किया था। चेतन

थक गया था, इसलिए दस बजे के करीब वह उठा और उसने कहा था, "अब बस करो, कल तुम्हें स्कूल जाना है। सुबह उठना होगा। अब सो जाओ, मैं भी थक गया हूँ।"

होम-वर्क ख़त्म करके चन्दा बिस्तर पर बैठी पढ़ रही थी। उसने किताबें-कापियाँ उठा कर अलमारी में रखी। पलँगपोश तहा कर कुर्सी की पीठ पर रख दिया। चेतन ओवरकोट उतार कर बिस्तर में आ गया और इन्तजार करने लगा कि उसकी पत्नी भी आ जाय।

"आप लेटिए।" चन्दा ने तत्परता से कहा, "मैं अँगीठी पर पानी गर्म होने को रख आयी हूँ। उबल रहा होगा। पैर धो कर आती हूँ।"

और वह चली गयी थी। चेतन ने लिहाफ़ सीने तक खींच लिया था और जैसी कि उसकी आदत थी—भविष्य के सुख-सपनों में खो गया था।.... चन्दा पढ़ने में जी लगाती थी, संगीत में जी लगाती थी और अब अपने कपड़ों और शरीर की सफ़ाई पर ध्यान देने लगी थी। वह लॉ करके सब जज हो जायगा तो वह किसी भी अफ़सर की बीवी के मुक़ाबिले में कम सभ्य और सुसंस्कृत नहीं होगी। वह पढ़ जाय, बी० ए० कर ले, बाकी सब उसे आ जायगा। वह धीरे-धीरे उसे सब कुछ सिखा देगा। उस जैसा सरल और बड़ा दिल तो सभी औरतों के नहीं होता। छोटा और टुच्चा दिल बड़ा नहीं किया जा सकता, न सरलता और भोलापन कोशिश से मिलता है। ये गुण भगवान की देन हैं। उसकी पत्नी सरल, भोली और उदार है। वह सुशिक्षित और सुसंस्कृत भी हो जायगी, तब उसे और क्या चाहिए! वह लाखों में एक होगी।

बिस्तर पर बैठते और दोनों पैर उठा कर ऊपर रखते हुए सहसा चन्दा ने पूछा, "देखिए, अब तो एकदम साफ़ हो गये हैं ना!"

चेतन चौंक कर उठ बैठा था। वे पैर, जिन पर सचमुच कुदरती मोजे चढ़े रहते थे, एकदम साफ-शफ़्फ़ाफ़ हो गये थे। कहीं-कहीं झाँवे की रगड़ से जिल्द छिल गयी थी। चेतन ने बड़े प्यार से उन पर हाथ फेरा—छोटे-छोटे, गुबले-गुबले और नर्म—दो सुन्दर कबूतरों जैसे!

"हाँ, अब बिल्कुल साफ़ और मुलायम हो गये है," उसने कहा और तब जाने उसके मन मे क्या आया था कि उसने बारी-बारी उन्हे चूम लिया था—जहाँ-जहाँ मॉस छिल गया था, वहाँ-वहाँ।—और फिर अपनी पत्नी को खीच कर बाँहों मे भर लिया था।

उस रात की सुखद याद में चेतन ने कब लिखना छोड़ दिया, उसे मालूम नही हुआ। जब वह चौंका तो कलम हाथ मे लिये, दोनों कोहनियाँ मेज पर टिकाये, वह अपने मे गुम बैठा था। सिर के एक झटके से उन स्मृतियों को परे हटा कर, वह मेज पर झुक गया और तेजी से अनुवाद करने लगा।

देर तक वह बिना रुके अनुवाद करता रहा। आधे से ज्यादा हो गया तो क्षण भर आँखों और हाथों को आराम देने के लिए वह होल्डर मेज पर रख कर कुर्सी पर पीछे को झुक गया और पैर उठा कर उसने लाला जीवन लाल कपूर की तरह मेज पर टिका लिये।

उसने तय किया था कि उस लेख के बाद वह सूफी साहब के लिए कोई काम नहीं करेगा और पण्डित रत्न की सलाह के मुताबिक निम्न-मध्यवर्गीय बौद्धिकों के लिए सोसाइटी कायम करेगा और अपनी तमाम सरगर्मियाँ उसे संगठित करने मे लगा देगा। जिस दिन वे सूफी साहब से मिल कर आये थे, उसके तीसरे दिन, जब वह शाम को पण्डित रत्न से मिला था तो उन्होने सोसाइटी की बात फिर चलायी थी। चेतन ने कहा था कि जैसा उन्होने कहा है, वह करेगा; वे सोसाइटी के कायदे-कानून बना दें, वह उसका फ़ोल्डर और रसीद बुकें छपवायेगा और काम शुरू कर देगा।

"किसी इतवार को आ जाना, मै बना दूंगा।" उन्होने कहा था।

"मै सूफी साहब को उनके मज़मून करके दे दूं फिर आऊँगा और पूरे मन से सोसाइटी का काम करूंगा।"

लेकिन उस वक्त, जब न सोसाइटी का नामकरण ही हुआ था, न उसका विधान बना था, सूफ़ी साहब अप्रत्याशित तौर पर उसके पहले

बाँधो न नाव इस ठाँव □ १०७

सरपरस्त बन गये थे।

जब वह पहला लेख तैयार करके ले गया था तो कुछ क्षण सूफ़ी साहब उसे पढ़ते रहे थे। फिर उन्होंने उठ कर मैगज़ीन-समेत उसे अलमारी में रख दिया था। चेतन उनके वायदे के मुताबिक तीन रुपये और माँगना चाहता था, लेकिन उसे साहस न हो रहा था। सूफ़ी साहब ने कोट में हाथ डाल कर मुट्ठी भर चिलग़ोज़े निकाले और हाथ बढ़ा कर उसके सामने मेज़ पर रख दिये और नौकर को आवाज़ दे कर चाय के दो प्याले बनाने के लिए कहा।

"मैं तो चाय ज़्यादा पीता नहीं। आप तकलीफ़ न कीजिए।" चेतन मिनमिनाया था।

लेकिन सूफ़ी साहब ने उसकी बात नहीं सुनी थी। वह कहाँ का रहने वाला है, कहाँ तक पढ़ा है, किस कॉलेज में पढ़ा है, लाहौर कब आया और किस-किस जगह काम करता रहा है—चिलग़ोज़े छीलते और खाते हुए वे यही सब पूछते रहे थे और चेतन उन्हीं की तरह चिलग़ोज़े कुटकते हुए वह सब बताता रहा था। इसी बीच चाय आ गयी थी। गर्म और खुशबूदार। चेतन चाय का शौक़ीन नहीं था—उसे यह वहम था कि जिस शाम वह चाय पी लेता है, दिमाग़ में खुश्की चढ़ जाने से उसे नींद नहीं आती—तो भी सर्दी आ गयी थी, जब उसने पहला घूँट भरा तो उसे अच्छा लगा।

यूँ अपने संघर्ष की बात बताना उसकी कमज़ोरी थी और जब वह अपने बारे में बताने लगता तो कुछ भी न छिपाता था, लेकिन सामने गद्देदार कुर्सी पर बढ़िया सूट-बूट पहने उस व्यक्ति की आँखों में, मोटी थिगलियों के बावजूद, कुछ ऐसी बात थी कि चेतन 'भीष्म,' 'वन्दे मातरम' 'वीर भारत' और 'भूचाल' की अपनी नौकरियों के बारे में बताते हुए, वहाँ के वातावरण और मालिकों की आलोचना गोल कर गया था। वह महज़ तथ्य बताता रहा था। हाँ, अपने घरेलू जीवन, उसकी पेचीदगियों और

संघर्ष के बारे में उसने कुछ भी नहीं छिपाया था। दिये जल गये थे, शाम गहरा आयी थी, जब उसने इजाज़त चाही थी। सूफ़ी साहब ने जेब से तीन रुपये निकाल कर उसके सामने रख दिये थे और जब वह उन्हें 'आदाब अर्ज़' करके चलने लगा था तो वे अपनी कुर्सी से उठ आये थे और उसके कन्धे को थपथपाते हुए उन्होंने उससे मिलने पर ख़ुशी प्रकट की थी और उसे आश्वासन दिया था कि वह आता रहेगा तो वे उसके लिए ऐसा काम तय कर देंगे, जिसमें उसे हमेशा कुछ आय होती रहे।

चेतन मेज़ पर पैर पसारे, कुर्सी पर पीछे को लेटा, मन-ही-मन हँसा। जिस स्थायी काम का उन्होंने आश्वासन दिया था, उसकी याद आते ही क्रोध से तिलमिला कर उसने एक कुरफ़्-तोड़ गाली उनकी ओर बहा दी और वह मुलाकात अपने नन्हे-से-नन्हे ब्योरे के साथ उसके सामने आ गयी।

जब वह दूसरा लेख तैयार करके उनके पास ले गया था तो उन्होंने उसे पढ़ना भी जरूरी नहीं समझा था, उठा कर दायीं ओर को रख दिया था और बातें करने लगे थे। जेब से निकाल कर तीन रुपये उसे अगले लेख के लिए पेशगी दे दिये थे और इससे पहले कि चेतन उन्हें 'आदाब अर्ज़' करके छुट्टी लेता, उन्होंने कहा था :

"मैं तुम्हारे बारे में लगातार सोचता रहा हूं, अगर तुम थोड़ी मदद कर दो तो मैं पचास रुपये महीना तुम्हें देता रहूंगा।"

वे क्षण भर के लिए चुप हो गये थे। चेतन का हृदय इस अप्रत्याशित सूचना से धड़क उठा था। उसकी आँखें प्रश्न में खुली रह गयी थीं।

"तुम दो बरस से लाहौर के जर्नलिस्टों की सोहबत में रहते हो। बहुतों को इण्टीमेटली[1] भी जानते होगे। अगर तुम मुझे रोज़ उनकी सियासी[2] सरगर्मियों के बारे में आ कर बता जाया करो—वो लिखते क्या

१. अन्तरंगता से २. राजनीतिक

हैं और सोचते क्या हैं, तो मैं तुम्हें पचास रुपये महीना दे दिया करूँगा।"

वे फिर चुप हो गये थे। चेतन ने 'हाँ' या 'ना' में कोई जवाब न दिया था। उसके चेहरे की खुशी अपने-आप बुझ गयी थी और वह उनकी ओर तेज़ निगाहों से देखने लगा था।

उसकी निगाहों में जो शंका-भरा प्रश्न था अथवा उसके व्यवहार में जो संकोच था, उसे लक्ष्य कर, सूफी साहब ने कहा था, "मैं लाहौर की गुज़श्ता[1] तीस बरस की सियासी ज़िन्दगी पर एक किताब लिख रहा हूं—यहाँ के जर्नलिस्टों की ज़िन्दगी, उनके सोशल और पोलिटिकल ख़यालात के बारे में!—अगर तुम मेरी मुश्किल कुछ आसान कर दो तो बहुत अच्छा हो।"

"स्साला!" चेतन ने मन-ही-मन क्रोध से कहा था, "मुझे एकदम घामड़ समझता है। मुझसे साथियों की जासूसी कराना चाहता है। क्या इसने मुझे इतना ही गया-गुज़रा समझ लिया है....?"

और उसने एक और बड़ी-सी गाली मन-ही-मन सूफी साहब की ख़िदमत में पेश कर दी थी।

लेकिन जब उसने होंट खोले थे तो उसकी वाणी में झल्लाहट थी न आक्रोश: उन्हें और भी गहरे में उतारने के ख़याल से उसने बड़े भोलेपन से पूछा था : "लाहौर के जर्नलिस्टों के बारे में आप क्या लिख रहे हैं?"

"लिखना तो मैं उस वक्त शुरू करूँगा, जब मेरे पास काफी मसाला इकट्ठा हो जायगा। मैं चाहता हूँ कि जिन्हें तुम जानते हो, उनके बारे में मुझे जानकारी दो। उनकी तनख्वाह कितनी है, शादीशुदा हैं या ग़ैर-शादीशुदा, बच्चे कितने हैं, माली हालत[2] कैसी है, कांग्रेसी हैं या ग़ैर-कांग्रेसी, भगवान में यकीन रखते हैं या दहरिए[3] हैं। किसी मज़हबी अंजुमन[4] में संमलिक[5] हैं या नहीं, सियासी ख़यालात उनके कैसे हैं—सब

---

१. पिछली, २. आर्थिक स्थिति, ३. नास्तिक, ४. संस्था, ५. सम्बन्धित।

इन्फ़र्मेशन मुझे चाहिए।"

"साले तुम यही आखिरी बात जानना चाहते हो," चेतन ने मन मे कहा, "मैं खूब समझता हूँ।" लेकिन वह बोला तो उसके स्वर में वही भोलापन था।

"पर मैं तो बहुत कम लोगों को जानता हूँ।" उसने कहा।

"नहीं जानते तो जान लोगे। तुम्हारा महीने का खर्च मैं दूँगा, दिन भर घूमो-फिरो, लोगों से मेल-मुलाकात कर, धीरे-धीरे इन्फ़र्मेशन इकट्ठी करो।"

"लेकिन एक बार मिलने से लोग थोड़ी सब बना देते हैं?"

"नही बताते," उन्होने आश्वस्त हँसी के साथ कहा, "लेकिन जल्दी नहीं, धीरे-धीरे उनसे दोस्ती करके, इन्फ़र्मेशन इकट्ठी करो। यह बताने की जरूरत नही कि तुम यह सब क्यों पूछ रहे हो। बस मेल-मुलाकात में इधर-उधर की बातें करते हुए यह सब दिमाग में नोट करो और घर जा कर रिपोर्ट तैयार कर लो। रोज एक बार आ कर मुझे दिन भर की रिपोर्ट दे जाया करना।"

तभी चेतन के दिमाग में औंधे-सा एक खयाल आया। क्यों न इसी के हथियार से मैं इसी को चित्त कर दूँ। उसने हितोपदेश अथवा पंचतन्त्र में पढ़ा था—शठे शाठ्यम समाचरेत।—ठग के साथ ठगी करो! और उसने कहा :

"रोज आ कर रिपोर्ट देना तो मेरे लिए मुश्किल है, लेकिन मै आपके लिए मसाला इकट्ठा कर दूँगा। बिना किसी काम के अगर मैं जर्नलिस्टों से मिलूँगा और यह सब पूछ-ताछ करूँगा तो उन्हे शक हो जायगा। जर्नलिस्ट कम घाघ नहीं होते। मैं सब से सवाल करता घूमता हूँ, उन्हे पता चलने मे देर नहीं लगेगी।"....और उसने सूफ़ी साहब को बताया था कि पण्डित रत्न ने उसे एक सोसाइटी चलाने को कहा है—'लिट्रेरी लीग' की तरह। दस रुपये सरपरस्तों के लिए और पाँच रुपये आम मेम्बरो का चन्दा होगा। हर महीने उसकी मीटिंगें होंगी। 'लिट्रेरी लीग' बड़े लोगों की संस्था है।

पण्डित जी चाहते हैं कि औसत दर्जे के अदीबों, जर्नलिस्टों और इण्टलेक्चुअलों की एक सोसाइटी रहे। वह सेक्रेट्री के तौर पर उसका काम करे और उसी के चन्दे से अपनी रोजी-रोटी का भी इन्तजाम करे। "आप राय दें तो मैं काम शुरू कर दूं। सभी जर्नलिस्टों को उसका मेम्बर बनाऊंगा। इसी बहाने उनसे मिलता भी रहूँगा और आपका काम भी कर दूँगा।" उसने कहा था।

सूफ़ी साहब का चेहरा खिल उठा। उनकी आँखों में एक चमक कौंध गयी, जैसे कह रहे हों, 'लड़का तेज है और काम का है।' लेकिन मन को छिपा कर उन्होंने यह पूछा :

"क्या नाम रखा है उस सोसाइटी का ?"

"नाम तो अभी तय नहीं किया। पिछली बार जब यहाँ से वापस गये थे तो पण्डित जी ने उसकी स्कीम बतायी थी। वे ही उसका ब्रोशर तैयार करेंगे और अच्छा-सा अट्रैक्टिव नाम रखेंगे।"

"स्कीम बहुत अच्छी है, जरूर शुरू करो।" उन्होंने कहा और जेब से दस रुपये का नोट निकाल कर उसे देते हुए बोले, "पहला सरपरस्त मुझे बना लो। पण्डित रत्न का यह आइडिया बहुत अच्छा है, औसत दर्जे से ही इण्टलेक्चुअल निकलते हैं और लाहौर में ऐसी कोई सोसाइटी नहीं, जहाँ वे इकट्ठे हो सकें।"

प्रकट ही उसने जो चारा फेंका था, वे निगल गये थे। चेतन ने नोट उठा कर जेब में रखा और कहा—"अभी ब्रोशर और रसीदें नहीं छपीं, ज्योंही छप गयीं, आपको रसीद दे जाऊँगा।" और वह उठा।

"उसकी तुम फ़िक्र न करो।" उन्होंने कहा और वे उसे दरवाज़े तक छोड़ने आये और उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए उन्होंने फिर याद दिलाया, "लेकिन मेरा काम न भूलना। रोज नहीं, लेकिन हफ़्ते में दो बार मुझसे मिलते रहोगे और मुझे कुछ जानकारी देते रहोगे तो मैं तुम्हें तुम्हारा मुआवज़ा[1] देता रहूँगा।"

१. पारिश्रमिक

चेतन ने कोई जवाब नहीं दिया और 'आदाब' कह कर चला आया था। उसकी खामोशी को नीम-रज़ा समझ कर और आश्वस्त हो कर उसके कन्धे को थपथपाते हुए, वे मुड़ गये थे।

कुर्सी पर पीछे को लेटा हुआ चेतन, सारी घटना को याद कर, फिर मन-ही-मन ज़ोर से हँसा। झटके से उसने अपने पाँव नीचे किये। कुर्सी आगे खिसकायी और एकाग्र भाव से लेख का अनुवाद करने लगा।

हँसी उसे अभी नहीं, उस वक्त भी आयी थी, जब वह सूफ़ी साहब का मुहल्ला पार कर बाज़ार में आया था। तब वहीं रुक कर उसने ज़ोर का ठहाका लगाया था—खामोश ठहाका—जिसमें आवाज़ नहीं होती, पर जो नस-नस को झकझोर जाता है।

"साला अपने आप को बहुत चालाक लगाता है, लेकिन मेरे मन की ज़रा नहीं भाँप सका और मूर्ख बन गया।" चेतन ने मन-ही-मन कहा था और वहीं उसने तय कर लिया था कि तीसरा लेख करने के बाद वह फिर कभी उधर नहीं जायेगा। वह पण्डित जी से सोसाइटी के नियम-कानून बनवायेगा। ब्रोशर और रसीदें छपवायेगा। एक रसीद सूफ़ी साहब को भी दे आयेगा और फिर कभी उनकी सूरत नहीं देखेगा। उसे पैसे की ज़रूरत सही, वह ग़रीब भी सही, पर क्या वह अपने साथियों की मुखबरी करेगा? 'आदमी को भूख लगेगी तो क्या वह मैला खायेगा!' उसने माँ से कई बार सुनी हुई कहावत मन-ही-मन दोहरायी, 'छिः।'

उसने ज़ोर से नाली में थूक दिया था और तेज-तेज़ घर की ओर चल पड़ा था।

चेतन कहीं बहुत भोला था और कहीं अतिशय चतुर। जहाँ तक उसके परिवार का सम्बन्ध था, वह एक बच्चे की तरह उससे जुड़ा था। घर में होने वाली हर बात उसे बेतरह आन्दोलित कर जाती थी, लेकिन गत दो वर्षों के संघर्ष ने बाहरी दुनिया के प्रति उसे बेतरह सतर्क बना दिया था।—'हरेक को चोर समझो, जब तक कि वह शाह साबित न

हो'—पंजाबी की यह कहावत दुनिया के साथ जूझने के लिए उसने अपना ली थी और उसे धोखा देना कठिन था। कविराज जी के साथ तीन महीनों के प्रवास ने उसकी तमाम अल्हड़ता छीन ली थी और दुनिया से उसी के स्तर पर निबटना सिखा दिया था। स्नेह से, उसका विश्वास जीत कर, उससे कुछ भी कराया जा सकता था, लेकिन चालाकी से तिनका भी उससे तुड़वाना मुश्किल था। वह सामने वाले की आँख में देख कर उसके दिल की बात पढ़ लेना और सतर्क हो जाना सीख गया था। झूठ बोलना उसके लिए कठिन था, लेकिन जहाँ सच्ची बात कहने से हानि होने की आशंका हो, वह चुप लगाना भी सीख गया था और जहाँ उसके व्यक्तित्व का एक भाग नितान्त कोमल, भावप्रवण और सदय था, दूसरा ईस्पात-सा कठोर और पत्थर-सा सख्त हो गया था।

वह लगातार मेज़ पर झुका, लेख का अनुवाद करता चला गया। कब शाम घिर आयी और बाहर दिये जल गये, उसे होश नहीं रहा। जब खिड़की की रोशनी बेहद कम हो गयी और उसे लेख पढ़ने में कठिनाई होने लगी तो उसने उठ कर बत्ती जला दी और फिर आ कर बैठ गया।

वह अन्तिम पंक्तियाँ लिख रहा था, जब चन्दा स्वभाव के विपरीत तेज़ी से कमरे में दाखिल हुई। उसका चेहरा लाल हो रहा था।

"मैं अब कभी नुमायश देखने नही जाऊँगी।" उसने कहा और चारपाई में धँस गयी।

चेतन ने क्षण भर कोई उत्तर नहीं दिया। लेख की अन्तिम पंक्तियाँ ख़त्म की और बोला, "क्यों मेरी जान ?"

"भाई साहब ज़रा आगे थे।" चन्दा ने फूली हुई साँस के बावजूद कहा, "वे आप ही की तरह तेज़ चलते है, मैं ज़रा पीछे थी कि भीड़ मे किसी ने मेरे चुटकी काट ली। मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और दो थप्पड़ जड़ दिये। भाई साहब शोर सुन कर मुड़े और उसकी बाँह मेरे हाथ से छुड़ा कर उन्होंने दो उसे और लगा दीं और फिर भीड़ उस पर पिल पड़ी।"

चन्दा आँखें फ़र्श में गाड़े, लज्जा से लाल होती हुई, बात सुनाये जा रही थी, उसने अपने पति के चेहरे पर होने वाली प्रतिक्रिया नहीं देखी। वह तब चौंकी, जब खुशी से उछल कर चेतन अपनी कुर्सी से उठा और भारी बदन के बावजूद उसने अपनी पत्नी को बाँहों में भर, धरती से उठा कर एक चक्कर दे दिया।

"वाह मेरी जान, खुश कर दिया तुमने। यह कोई लजाने की बात है। बहुत अच्छा किया। मैं अभी तुम्हारे लिए गर्म-गर्म दूध का गिलास लाता हूँ।"

और उसे चारपाई पर बैठा कर वह बाहर को भागने ही वाला था कि चन्दा ने कहा, "सुनिए।"

चेतन रुका।

"आपको हर वक्त मज़ाक सूझता है। मेरी तो जान निकल गयी।"

"इसमें जान निकलने की क्या बात है!" चेतन बोला, "ऐसे हराम-जादों का यही इलाज है। मैंने तुम्हे एक दिन कहा था न....भाई साहब कहाँ हैं?"

"आते होंगे, गली में किसी पड़ोसी से बात करने लगे थे।"

लेकिन चेतन को उनका इन्तज़ार करने की ताब कहाँ। सारी कैफ़ियत उनसे जानने के लिए वह बगूले-सा निकल गया।

वह डेवढ़ी में ही था कि उसे सामने से भाई साहब रणवीर के साथ आते दिखायी दिये।

"जीजा जी पैरी पौना।"

और रणवीर बढ़ कर चेतन को प्रणाम करने के लिए झुका।

चेतन ने उसे दोनों बाँहों से पकड़ कर बग़लगीर कर लिया।

"तुम किधर?"

"दुकान पर गया था। बन्द मिली। बड़ी मुश्किल से पता चला। ढूँढता हुआ आया हूँ। भाई साहब गली के सिरे पर किसी से बातें करते न मिल जाते तो जाने और कितनी देर भटकना पड़ता।"

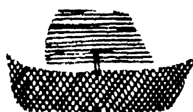
"कैसे आये हो लाहौर ?"

रणवीर के पान-सने होंटों और लम्बूतरे चेहरे पर कुछ अजीब-सी लज्जा-मिली ख़ुशी दौड़ गयी, जिससे उसका कुरूप चेहरा भी चेतन को भला लगा।

"मेरी शादी है इसी महीने," उसने शर्माते हुए कहा, "आप सब को बुलाने आया हूँ।"

तीसरा खण्ड



आठ

चिट्ठिए दर्द फ़िराक वालिए
नी, लै जा, लै जा सन्योड़ा सोहने यार दा[1]

नीचे बैलगाड़ी चर्रख-चूँ चली जा रही थी। ऊपर नीला, निरभ्र आसमान, सड़क की दोनों ओर लगे शीशम के घने पेड़ों पर शामियाने-सा तना था। बसन्त का त्योहार आ कर जा चुका था, लेकिन सर्दी वैसी ही तीखी थी, बल्कि हवा में गलन बढ़ गयी थी और धूप सुहानी लग रही थी। कहीं-कहीं किसी घने पेड़ की नीची डाल चेतन के ऊपर से लहराती निकल जाती और सहसा उसका मन उसे पकड़ने के लिए ललक उठता था।

बैलगाड़ी पर आगे को बरातियों के ट्रंक और पीछे की ओर को शीरीनी तथा नमकीन मेवे और शकरपारों के कनस्तर थे (कि रास्ते में उन्हें निकालना पड़े तो कठिनाई न हो)। उनके ऊपर गोल किये हुए और रस्सियों से बंधे बिस्तर तह-दर-तह जमा कर रखे गये थे और सब के ऊपर मोटी फ़र्शी दरी तहा कर डाल दी गयी थी और यूँ बैलगाड़ी के ऊपर पेड़ों को छूता हुआ-सा बहुत ऊंचा, चौड़ा मंच-सा बन गया था। चेतन बायीं ओर चित लेटा हुआ आसमान को ताक रहा था। उसके बराबर हुनर साहब और निश्तर कोहनी के बल लेटे थे। ज़रा परे भाई साहब दोनों घुटनों को बाँहों में बाँधे पीछे को झुके हुए थे। उनके पास ही रणवीर बैठा था। चूँकि बैलगाड़ी पर सब-के-सब एक साथ खुली तरह नहीं बैठ

---

१. ऐ विरह-वेदना से भरी हुई चिट्ठी, मेरे सुन्दर प्यारे यार के लिए सँदेसा ले जा।

सकते थे, इसलिए बैठे-बैठे उकता कर कुछ युवक बैलगाडी के साथ-साथ जर्नैली सड़क पर चल रहे थे और रणवीर की गली का सुनार युवक रतना दायी ओर नीचे को पैर लटकाये बैठा, दिशाओं को गुँजाती हुई अपनी लोच और सोज-भरी आवाज मे 'चिट्ठिए दर्द फिराक वालिए' गा रहा था।

लेटे-लेटे करवट बदल कर चेतन ने अपने भाई की ओर देखा।—अगर उन्हे लाहौर ही मे पता चल जाता कि रणवीर की शादी लालटों नाम के जिस गॉव मे होने जा रही है, वहाँ रेलगाड़ी और तागे-इक्के नही जाते (बसो का तो उन दिनो रिवाज ही नही था) बैलगाड़िया ही जाती है और बरात उन्ही मे जायगी तो चेतन को विश्वास था, रणवीर के तमाम अनुरोध और अनुनय के बावजूद, भाई साहब कभी न आते। अपनी प्रेक्टिस के कारण यूँ भी किसी शादी-ब्याह मे शामिल होना उनके लिए मश्किल था। एक मरीज प्रसन्न हो जाय तो दो मरीजो से सिफारिश करता था, जरूरत पड़ने पर देर-सवेर वे उनके क्लिनिक मे आते थे और एक मरीज असन्तुष्ट हो जाय तो चार को बहका देता था। प्रेक्टिस उनकी अभी इतनी चली न थी कि मरीजो की तरफ से वे एकदम निश्चिन्त हो जाते और रोगियो को दिनो पहले उनसे समय लेना पड़ता। उनकी जिन्दगी मे तो हर मरीज की आमद एक विशेष घटना थी। लेकिन रणवीर ने उन्हे ऐसा भर्रा दिया था कि वे अनिच्छापूर्वक गुप्ता पर दुकान छोड़ कर बरात मे शामिल होने चले आये थे।

रणवीर उनको शादी का निमन्त्रण देने गया था तो दो-तीन दिन वही रहा था। जब उसे मालूम हुआ कि भाई साहब ने एक शागिर्द रखा है, जिसे वे दन्दानसाजी सिखा रहे है तो उसने उन पर जोर दिया था कि वे उसे भी शागिर्द बना ले। शादी के बाद ही वह आ जायगा और जितने रुपये उन्होने गुप्ता से लिये है, उतने उन्हे पेशगी दे देगा। फिर बातो-बातो में उसने डेण्टल कॉलेज का सपना उनके सामने लहरा दिया था।

"भाई साहब, आप डॉ० सत्यपाल की तरह एक डेण्टल कॉलेज क्यों नही खोल लेते," उसने हठात कहा था।

भाई साहब का ध्यान दूसरी तरफ था। "डेण्टल कॉलेज!" उन्होंने चौक कर वही शब्द दोहरा दिये। फिर क्षण भर रुक कर बोले, "मै डेण्टल कॉलेज कैसे खोल सकता हूँ!"

"क्यो, इसमे क्या मुश्किल है!" रणवीर ने कहा, "जहाँ आप एक शागिर्द रखते है, वहा दस रखिए।"

"एक शागिर्द को तो मै दुकान मे सिखा सकता हूँ। दस को कैसे सिखाऊँगा।" भाई साहब ने पूछा था।

"अलग बिल्डिंग ले कर कालेज खोलिए।"

"दुकान कौन देखेगा? कॉलेज चलाना कोई एक आदमी का काम थोड़े ही है!"

तब रणवीर ने मन की बात कही थी।

"आप भाई साहब, मुझे डेण्टिस्ट बना दे और आपको मजूर हो तो हम मिल कर यहा डेण्टल कालेज खोल ले। प्रॉस्पेक्टस छपवा लेगे और अखबारो मे इश्तहार देगे तो शागिर्दों की कमी न रहेगी। जो मुनाफा होगा, वह हम आधा-आधा बाट लेगे।"

लाहौर मे उन दिनो एक ही डेण्टल कालेज था—डॉ० सत्यपाल का। दूसरे कॉलेज की गुजाइश था। लेकिन इससे पहले कि भाई साहब कुछ कहते, चेतन ने कहा था, "मुनाफा तो आधा-आधा बाँट लोगे, लेकिन डेण्टल कॉलेज क्या सिर्फ तुम्हारे डेण्टिस्टी पास करने मे खुल जायगा? कम-से-कम दो डेण्टल चेयर्स, डेण्टल इंजन, मकान और दूसरा साज-सामान चाहिए। इतना पैसा कहा से आयेगा?"

"मेरे पास तो लगाने को एक पैसा भी नही।" भाई साहब ने तुरन्त चेतन का समर्थन किया था।

"आपका पैसा लगाने की ज़रूरत नही," रणवीर ने माथे पर आये बालो की लट को पीछे हटाते और पान से काले दाँत दिखाते हुए कहा था,

"आप बस मुझे काम सिखा दीजिए, रुपये मैं लगाऊँगा।" फिर क्षण भर रुक कर उसने पूछा था : "कॉलेज शुरू करने के लिए कितना रुपया दरकार होगा ?"

भाई साहब ने कुछ रफ़ हिसाब करके बताया था कि शुरू में आठ सौ-हज़ार से काम चल जायगा।

"अगर इतने से हो जाय तो शादी के बाद ही मैं पिता जी को इतने रुपये देने के लिए मना लूँगा।"

"क्या दन्दानसाज़ी सीखते ही तुम शागिर्दों को सिखाने भी लगोगे ?" चेतन ने सव्यंग्य कहा था।

लेकिन भाई साहब उत्साहित हो उठे थे और उन्होंने यह सूरत निकाली थी कि गुप्ता को साथ ले लेंगे और वे दो घण्टे कॉलेज को देंगे। उसमें जो कुछ वे सिखायेंगे, गुप्ता और रणवीर उसी को शागिर्दों के सामने दोहरा देंगे। इस तरह उनकी अपनी शिक्षा भी पक्की होगी और शागिर्दों को सिखाना भी उन्हें आ जायगा। डेण्टल कॉलेज में ग़रीब रोगियों का इलाज मुफ़्त किया जायगा। उसमें रणवीर और गुप्ता की प्रैक्टिस भी होगी और कॉलेज के शागिर्द भी सीखेंगे।

"और फिर जो कॉम्प्लिकेटेड केस होंगे," रणवीर ने अपनी कुमारी अन्तरीप-सी ठोड़ी ऊपर उठा कर कहा था, "उन्हें भाई साहब कॉलेज के हस्पताल से अपने क्लिनिक में ट्रांसफ़र कर सकते हैं। इनकी प्रैक्टिस भी चलेगी और कॉलेज का काम भी चलेगा।"

चेतन क्षण भर अपने उस मूर्ख साले की तरफ़ देखता रह गया था। ऐसी बुद्धिमत्ता की बात वह कर सकेगा, इसकी अपेक्षा तो उसे रणवीर से नहीं थी। वह क्या कहे और कैसे उसकी बात काटे, उस क्षण चेतन सोच न पाया था। वह अचानक उठा था। उसे याद आया कि उसे तो शाह आलमी दरवाजे के अन्दर लाला मानिकचन्द, सम्पादक 'गृहस्थी' से मिलना है। मन-ही-मन उसने तय किया कि उस वक्त भले ही वे जितनी स्कीमें चाहे बनायें, बाद में वह भाई साहब को समझा देगा कि वे रणवीर

के चक्कर में न पड़ें।

"मैं ज़रा 'गृहस्थी' के दफ्तर जा रहा हूँ।" उसने सिर्फ़ इतना कहा, "बिना सोचे-समझे आप कोई फैसला न कीजिएगा। रणवीर से कहिए, पूरी स्कीम बनाये, फिर उसके सभी पहलुओं पर विचार करके हम फ़ैसला करेंगे।"

और यह कहता हुआ वह बाहर की तरफ़ चल दिया था।

"जीजा जी जरा रुकिये।" सहसा रणवीर भी उठा था। स्कीम बनाने में सिर खपाना उसके बस की बात नहीं थी। वह काम उसने भाई साहब पर छोड़ दिया। "भाई साहब, आप पक्की स्कीम बना लीजिए," उसने कहा, "कहीं जगह-वगह देख रखिए। शादी के बाद ही मैं पिता जी से रुपया ला दूंगा।"

और बढ़ कर दाँत निकोसते हुए उसने चेतन से कहा था, "जीजा जी, मुझे भी ज़रा 'गृहस्थी' के एडीटर से मिला दीजिएगा।"

और यह कहते हुए वह चेतन के साथ ही दुकान से बाहर निकल आया था।

०

चेतन दिन भर घूमता रहा था और जहाँ-जहाँ वह गया था, रणवीर उसके साथ चिपका रहा था। यही नहीं, बाकी दो दिन भी डेण्टल कॉलेज को भूल, वह लाहौर के शायरों, अदीबों और एडीटरों से सम्पर्क बनाता रहा था। चेतन का खयाल था कि वह डेण्टल कॉलेज की बात भूल गया है, लेकिन जाती बेर वह भाई साहब से पक्का कर गया कि शादी पर वे ज़रूर पहुँचें और अगर उसके पिता डेण्टल कॉलेज के बारे में पूछें तो हामी भर दें। चेतन से उसने कहा था—"जीजा जी आपसे पूछे बिना पिता जी कुछ करेंगे नहीं। आप सेटल होने में मेरी मदद कीजिए। बस्ती या जालन्धर में मेरे लिए कोई स्कोप नहीं है। आप मुझे लाहौर बुला लीजिए। जो खिदमत आप मुझ से लेंगे, मैं दूंगा।"

'लाहौर में तू कौन-सा रणजीत सिंह का किला सर करेगा,' चेतन

ने मन-ही-मन कहा था। प्रकट उसने न 'हाँ' की, न 'ना', सिर्फ़ उसका कन्धा थपथपा दिया था और इतने ही से खुश हो कर रणवीर चला आया था।

उसके जाने के दस दिन बाद चेतन को उस ख़िदमत का आभास मिला था, जो रणवीर अपने इस परम आदरणीय जीजा जी को लाहौर में देने वाला था। 'गृहस्थी' का ताजा अंक देखते ही चेतन का ख़ून खौल उठा था। उस की एक पुरानी कहानी, हज़रत रणवीर 'नाशाद' के नाम से वहाँ छपी थी। जाने कब वह उस कहानी की प्रतिलिपि चेतन की फ़ाइल से उड़ा ले गया था।

कहानी वह निहायत मामूली थी। चेतन की शुरू की कहानियों में से थी। लेकिन चेतन उन दिनों अपनी तमाम कहानियों को मास्टरपीस समझा करता था और उसे लगा था कि जैसे उसके उस मुँह-लगे साले ने उसकी यादगार कहानी पर डाका डाल लिया था। गनीमत यही था कि वह कहानी दो वर्ष पहले मुन्शी गिरिजा शंकर के मासिक 'गिरिजा' में छप चुकी थी। (यह बात याद आते ही चेतन ने उसी वक्त तराशों की फ़ाइल देख कर तसल्ली कर ली थी कि दो वर्ष पहले छपी उस कहानी की कतरन तो फ़ाइल में सुरक्षित है।) उसे यह जान कर हैरत हुई थी कि 'गृहस्थी' के सम्पादक को यह मालूम ही नहीं हुआ—रणवीर उन्हें अपने नाम से जो कहानी दे रहा है, वह पहले चेतन के नाम से 'गिरिजा' में छप चुकी है।

'शायद ये लोग दूसरी पत्रिकाओं को नहीं पढ़ते।' तब उसने सोचा था; जब एक मासिक में दो वर्ष पहले छपी कहानी दूसरे मासिक में छप सकती है तो किसी दैनिक के सण्डे एडीशनों में छपी कहानियाँ निश्चय ही मासिकों में छप सकती हैं और चेतन ने तय किया था कि वह अपनी तमाम पुरानी कहानियाँ दोबारा छपवा डालेगा। इस घटना का यह लाभप्रद पहलू निकल आने पर, हालाँकि, अन्दर-ही-अन्दर उसका क्रोध किंचित शान्त हो गया था, लेकिन चन्दा स्कूल से आयी तो सारी घटना उसे बताते हुए चेतन ने घोषणा की थी कि अगर रणवीर लाहौर आया और उसने

भाई साहब के साथ मिल कर डेण्टल कॉलेज खोला तो उसे रहने के दूसरा प्रबन्ध करना पडेगा।

"यह कैसे हो सकता है?" चन्दा ने भोलेपन से कहा था, "मैं उसे समझा दूँगी कि वह आपकी फ़ाइलों को न छुए। मैं उन्हें ट्रंक में बन्द कर दूँगी।" फिर क्षण भर रुक कर उसने कहा था, "उसे शुरू से ही छपने का बड़ा शौक है। आप इतना लिखते हैं, छोटी-मोटी कोई रचना उसे दे दिया कीजिए। वह चोरी नही करेगा।"

चेतन चुपचाप अपनी पत्नी की ओर देखता रह गया था। उसे बेहद गुस्सा था, पर नितान्त भोलेपन से भरा हुआ चन्दा का यह उत्तर सुन, जैसे परास्त हो कर, वह हंस दिया था। चन्दा को यह समझाना असम्भव था कि किसी लेखक के लिए अपनी रचना किसी को देना ऐसा ही है, जैसे माँ के लिए अपने बच्चे को किसी दूसरे के हवाले करना। वह जानता था कि उसकी पत्नी अपने ताऊ के लड़के-लड़कियों को (अपने सगे भाई-बहनों के अभाव में) बहुत चाहती है। उसने चन्दा से बहस नही की थी, पर जब भाई साहब दुकान से आये थे तो उसने उन्हें सारा किस्सा सुनाया था। "अब तो शुक्र है, कहानी पहले 'गिरिजा' में छप चुकी है, लेकिन वह छपी हुई न होती तो...." और वह जोर-जोर से बमकने लगा था और उसने भाई साहब को चेतावनी दी थी कि वह रुपये अपने पिता से चाहे झटक लाये, लेकिन न वह ढंग से काम सीखेगा, न कॉलेज में मन लगायेगा; वह लाहौर के टुटपूंजिए शायरों के साथ घूमेगा और रिसालों के दफ़्तरों की खाक छानेगा।

लेकिन भाई साहब मन-ही-मन डेण्टल कॉलेज की स्कीम बना चुके थे। उन्होंने दार्शनिक भाव से कहा था, "अभी तक उसके मन में किसी काम-धाम का पक्का ख़याल नहीं, इसलिए भटक रहा है।" और उन्होंने अपनी मिसाल दी थी, "मैं क्या कम भटका हूँ। मैं तो चित्रकार बनना चाहता था। लेकिन अब मुझे वह सब बेवकूफी लगती है। ज्योंही काम पर उसका हाथ जमा, वह सब शायरी-वायरी भूल जायगा।"

चेतन चुप हो गया था। उसने अपने भाई से भी बहस नहीं की थी

लेकिन मन-ही-मन उसने तय कर लिया था कि रणवीर के पिता, पण्डित वेणीप्रसाद उससे पूछेंगे तो वह उन्हें हरगिज़ डेण्टल कॉलेज में रुपया लगाने की सलाह नहीं देगा।

चन्न चढ़्या कुल आलम वेक्खे
मैं वी वेक्खाँ मुख यार दा
ओ मेरेआ चन्ना
मैं वी वेक्खाँ मुख यार दा[1]

रतना अपनी सोज-भरी आवाज में गा रहा था। और अन्तरा खत्म होते ही बैलगाड़ी के साथ-साथ चलने वाले रणवीर के दोस्तों ने समवेत स्वर में टीप का बन्द उठा लिया था :

चिट्टिए दर्द फ़िराक वालिए
नी, लै जा, लै जा सन्योड़ा सोहने यार दा।

चेतन कुछ क्षण चुपचाप वह गीत सुनता रहा था। कितना प्यारा सोज-भरा गीत था! चेतन के सामने कुछ वर्ष पहले के वे दिन घूम गये, जब वह कुन्ती की गली के नीचे से सिर्फ़ उसकी एक झलक पाने को गुज़रा करता था। उसे याद था, ईद की एक शाम, जब लोग छतों पर चढ़े चाँद को देख रहे थे, सहसा बारीक-सा चाँद नज़र आ गया था और बराबर के मुसलमान मुहल्लों में खुशी के नारे बुलन्द हो गये थे और दूर इमाम नासरुद्दीन में दमामे बज उठे थे, अपनी छत की मीम पर बैठा हुआ देर तक वह 'चिट्टिए दर्द फ़िराक वालिए' गाता रहा था :

चन्न चढ़्या कुल आलम वेक्खे
चन्न चढ़्या कुल आलम वेक्खे
मैं वी वेक्खाँ मुख यार दा

और सुध-बुध भुला कर वह बार-बार यही पंक्तियाँ गाता रहा था।

---

१. चाँद चढ़ा। कुल दुनिया देख रही है। काश मैं अपने प्यारे का मुँह देखूँ।

भाई साहब को गाने का वैसा शौक़ नहीं था। लेकिन चेतन ने देखा—घुटनों को बाँहों में बाँधे, वे धीरे-धीरे झूम रहे थे। वह मन-ही-मन हँसा—'आखिर भाई साहब ने बैलगाड़ी की सवारी से समझौता कर लिया है।' और उसके सामने सुबह की घटना घूम गयी....

बरात को सुबह छै बजे बस्ती ग़ज़ाँ से चल देना था। बैल हृष्ट-पुष्ट और नागौरी सींगों वाले थे और गाड़ीवानों ने उन्हें विश्वास दिलाया था कि यदि बरात सुबह वक्त पर चल देगी तो शाम होते-होते वे यक़ीनन लालड़ाँ पहुँच जायेंगे। पण्डित वेणीप्रसाद ने तय किया था कि छै बजे के बदले वे साढ़े पाँच बजे ही चल देंगे। सभी बरातियों का सामान रात ही को आ गया था, लेकिन भाई साहब शाम तक न पहुँचे थे। चेतन ने रणवीर को लाख समझाया था कि भाई साहब रात एक बजे वाली गाड़ी से ही आयेंगे—आठ बजे दुकान बन्द करके, खाना-वाना खा कर दस बजे लाहौर से गाड़ी पर बैठेंगे और रात को जालन्धर पहुँचेंगे—उन्होंने आख़िरी गाड़ी से चलने की बात कही थी।—लेकिन रणवीर को बेसब्री थी। उसने दो बार अपने छोटे भाई रिपुदमन को स्टेशन भेजा था और जब वह नाकाम वापस आ गया था तो रणवीर ने चेतन से अनुरोध किया था कि जीजा जी आप रिपु के साथ जायें और भाई साहब को लिवा लायें।

"लेकिन भाई साहब सीधे इधर (उसका मतलब बस्ती ग़ज़ाँ से था) नहीं आयेंगे। पहले वे कल्लोवानी ही जायेंगे।" चेतन ने कहा था।

"तब आप इतनी मेहरबानी कीजिएगा कि उनका सामान रिपु के हाथ भिजवा दीजिएगा। ताकि वह लद जाय! और आप तड़के ही उन्हें ले आइएगा।"

"उसकी तुम फिक्र न करो," चेतन ने उसे आश्वासन दिया था, "भाई साहब रात को दो बजे सोयें तो भी सुबह पाँच बजे उठ जाते हैं।"

लेकिन इस बात के बावजूद कि स्टेशन ही से भाई साहब का सामान चेतन

ने रिपु के हाथ बस्ती भिजवा दिया था और रात को दो बजे सो कर भाई साहब सुबह पाँच बजे उठ भी गये थे, लेकिन वे लोग समय से बस्ती पहुँच न पाये थे।

हुआ यह कि जब डेढ बजे के करीब चौरस्ती अटारी में ताँगे से उतर, वे घर पहुँचे थे और माँ ने दरवाजा खोला था तो ऊपर आगन में ही बैठ कर वे माँ के साथ बतियाने लगे थे। बैलगाडी के उस गुदगुदे मच पर लेटे सुबह की घटना की याद करते हुए चेतन और भी कई वर्ष पीछे चला गया।. वह जब भी कभी एक बजे वाली रात की गाडी मे जालन्धर पहुँचा था, रात को कभी न सो पाया था। स्टेशन से तागा ले कर 'चौरस्ती अटारी' या 'कादेशाह के चौक' उतर कर या (सामान न हो और ताँगे वाला बहुत पैसे मागे तो) पैदल ही डेढ-दो मील की मजिल मार कर, जब-जब वह मुहल्ले मे पहुँचा था, कभी चौधरी रूपलाल की हवेली के कोने पर लगा कमेटी का लम्प टिमटिमा रहा होता (जिसकी रोशनी कुएँ के इधर पहुचते-पहुचते दम तोड देती) और कभी घुप्प अधेरा पूरे चौक को ग्रसे होता। अभ्यस्त होने के बावजद, चेतन अन्दाज ही से संभल कर अपने मकान की डेवढी के सामने जा खडा होता और पहले जरा परे ही से परसराम अथवा शिवशकर का नाम ले कर आवाज देता। जब ऊपर कोई सुन-गुन न मिलती और इस बीच आखे अंधेरे की अभ्यस्त हो जाती तो वह आगे बढ कर शीशम की पुरानी लकडी के मजबूत किवाडो पर दस्तक देता और फिर जोर से मोटी साँकल खटखटाता। उस कर्कश ध्वनि से पूरे मुहल्ले पर छाया मौन बेतरह घायल हो जाता। रायजादा खुशवन्त-राय की हवेली के छज्जे की खोटरो म बसेरा लेने वाले कबूतर डर कर पंख फटफटाते और भयातुर गुटर-गॅ गुटर-गूँ कर उठते। कई बार ऊपर बैठक की खिडकी खुलती और रायजादा खुशवन्तराय की दूसरी पत्नी बीरो, अपनी डरी, लेकिन चिढी आवाज मे पूछती—"कौन ए-एँ-एँ!"

चेतन जवाब मे बढ कर अपने मकान की कुण्डी फिर खटखटा देता।

बीरो ज़ोर से खिडकी बन्द कर लेती ।

तभी अन्दर सीढियों मे माँ के उतरने की पदचाप आती । दूसरे क्षण माँ दरवाजा खोलती । हरीकेन लालटेन के मद्धम प्रकाश मे चेतन उसके झुरियो-भरे चेहरे पर हठात आ जाने वाले वात्सल्य की चमक देखता और बढ कर पाँव छूता । माँ आशीर्वाद देती । तब कई बार चेतन वहीं डेवढी की चौखट मे बैठ जाता । उसके पास सामान होता तो ऊपर आँगन मे पहुँच कर, बिस्तर या ट्रंक या दालान की चौखट या आँगन के मोघे (लोहे के जंगले) पर बैठ कर माँ से बतियाते हुए, सुबह कर देता । माँ अपने सुख-दुख की बातें करती । छोटे भाइयो की पढाई या भविष्य के बारे मे चिन्ता प्रकट करती, मुहल्ले की खबरें देती । चेतन लाहौर के अपने संघर्ष की, अपने सपनों और महत्वाकाक्षाओ की बातें करता और कब सुबह हो जाती और मुहल्ले के कुएं पर सुबह नहाने या पानी भरने वाले आ जाते उन्हे पता न चलता । .

भाई साहब के साथ जब वह ऊपर आँगन मे पहुँचा था तो स्वभावा-नुसार वह दालान की चौखट मे बैठ गया था । भाई साहब आँगन मे बिछे पीढे पर जा बैठे थे, माँ जँगले की चौखट पर बैठ गयी थीं और वे अना-यास बाते करने लगे थे । चेतन अपनी माँ को बता रहा था कि उसने कानून पढने का फैसला किया है । किसी तरह पैसे जुटा कर वह उसी वर्ष लॉ कालेज मे दाखिल हो जायगा । दो साल कानून पढेगा और पास हो कर सब जजी के कम्पीटीशन मे बैठेगा और सब जज बन कर दम लेगा ।

माँ बडी खुश हुई थी । "मै ता पहले ई कैहन्दी सी कि तूं जाने की कागद काले करदा रहन्दा ऐं ।" उसने कहा था, "चार पैसिया दी आमदनी नईं । अक्खाँ उपरो खराब हुन्दिया ऐं[1] ।" और उसने बताया था कि वह तो कई बार सोचती है कि चेतन की अपेक्षा तो परसराम ही अच्छा है, जो

---

[1] मै तो पहले ही कहती थी कि तू न जाने क्या काग़ज़ काले करता रहता है। चार पैसे की आय नहीं और आँखें ऊपर से ख़राब होती हैं।

मैट्रिक पास करते ही इन्स्पेक्टर के दफ्तर मे क्लर्क हो गया है और पूरे चालीस रुपये महीना घर लाता है।

माँ जब लाहौर आयी थी, तब भी उसने परसराम की नौकरी की खबर दे कर यही कहा था कि चेतन बी० ए० पास करके भी कुछ नही कमा पाता, जबकि उसका छोटा भाई मैट्रिक कर के चालीस रुपये पाने लगा है। चेतन को बुरा तो बहुत लगा था, पर उसने माँ को समझाया था कि इन्ही काले कागजो से वह किसी दिन धन और यश, दोनो कमायेगा और माँ ने अब फिर वही बात कही थी। लेकिन अबके उसने बुरा नही माना। लाड से वह माँ के पास जा बैठा और उसके कन्धे को बाँह मे लेते हुए उसने कहा था, "माँ, मैं तेरे सारे उलाम्भे लाह देने ने[1]" और वह जोर से ठहाका मार कर हँसा था।

लेकिन तभी उसकी नजर भाई साहब पर गयी थी। वे शायद वही पीढे पर बैठे-बैठे सो गये थे और उसके ठहाके मे अचानक चौक उठे थे।

भाई साहब की यह पुरानी आदत थी। वे बाते करके या सुनते हुए अचानक सो जाते थे और बात करने वाले को पता भी न चलता था कि वे सो गये है। तब चेतन ने कहा था, "भाई साहब, जरा कमर सीधी कर लीजिए। अब तो दो-ढाई बजने को होंगे। मै आपको पाँच बजे जगा दूँगा।"

"हा तुम ठीक कहते हो," भाई साहब खामोशी से उठे थे। नाइट सूट, जो उन्होने स्टेशन पर सूटकेस से निकाल लिया था, अभी तक उनकी बाँह मे लटक रहा था। दालान मे जा कर उन्होंने सूट और टाई उतार कपडे खूँटियो पर टाँग दिये। चेतन ने मा की मदद से अन्दर कमरे मे रखे, बडे ट्रंक मे नयी रजाई-दुलाई निकाल, दालान मे बिछे पलग पर बिस्तर बिछा दिया और 'मुझे पाँच बजे जरूर जगा देना,' कहते हुए, भाई साहब लेट गये थे और दूसरे क्षण सो गये थे।

१. माँ, मैं तुम्हारे सब उलाहने दूर कर दूँगा।

चेतन लालटेन ले कर बाहर आ गया था और फिर वहीं आँगन में बैठा, माँ से बतियाने लगा था। दिल और कमर तोड़ देने वाले, लाहौर के संघर्ष से दूर, अपने घर के इस आँगन मे, किसी कुर्सी के बिना, मूढ़े या दहलीज या पीढ़े पर बैठे, माँ से बातें करते हुए उसे पलों-घड़ियों का कोई ध्यान न रहता था।....सर्दी काफ़ी थी, आँगन ऊपर से थोड़ा खुला था, पर वह अपना वही पुराना ओवरकोट पहने बैठा था। माँ को उसने पीढ़े पर बैठा दिया था और स्वयं उसके घुटने से लगा, मोघे की चौखट पर बैठा, लगातार बातें करता रहा था। कब शेष रात बीत गयी, उसे होश नहीं रहा। कुएं मे पहली गागर के डूबने की आवाज से वह चौंका। "मैं भाई साहब को जगा दूँ माँ।" उसने हठात उठते हुए कहा था, "बरात साढ़े पाँच बजे बस्ती से रवाना हो जायगी।"

"हाँ, तू ओहनूं जगा दे।" माँ ने कहा था, "मैं अग्ग बाल के चाह बना दन्नी आँ. इक-इक गिलास पी लैणाँ[1]!"

"चाय तो अभी लाहौर मे हमने पीना नहीं सीखा माँ, लम्मी ही पीते हैं।"

"सर्दी ऐ। रात भर दे थक्के ओ। जाण तों पहलाँ दो-दो मठरियाँ नाल चाह पी लैणाँ। तुलसी दे दो-तिन्न पत्ते ते इन्नी-कु-जेही दालचीनी मैं चाह च उबाल देआँगी[2]।"

"अरे माँ नहाना पड़ेगा और हमें जल्दी जाना है।"

"लै, न्हाये बिना किद्दाँ मूँह जूठा करोगे? खूह ते जाके दो गड़वियाँ पानी दियाँ पा लओ। घर तों निराहार नईं निकलना चाहीदा[3]!"

---

१. हाँ तू उसे जगा दे। मैं आग जला कर चाय बना देती हूँ, एक-एक गिलास पी लेना। २. सर्दी है। रात भर के थके हो। जाने से पहले दो-दो मठरियों के साथ चाय पी लेना। तुलसी के दो-तीन पत्ते और जरा-सी दालचीनी मैं चाय में उबाल दूँगी। ३. लो, नहाये बिना कैसे मुँह जूठा करोगे! कुएं पर जा कर दो लोटे पानी के डाल लो। घर से निराहार नहीं निकलना चाहिए।

और माँ ने पंजाबी कहावत कही थी, "घरों जाइए खा के, अग्गों मिलन पका के घरों जाइए भुक्खे, अग्गे कोई न पुच्छे।"

"तुम्हारी मर्ज़ी।" कहता हुआ चेतन दालान की ओर बढ़ा था।

चन्न चढ़्या कुल आलम वेक्खे
चन्न चढ़्या कुल आलम वेक्खे
मैं वी वेक्खाँ मुख यार दा
ओ मेरेआ चन्नाँ
मैं वी वेक्खाँ मुख यार दा

रतना उसी बन्द को दोहरा कर गा रहा था। भाई साहब बाँहें घुटनों में लिये हुए झूम रहे थे। लगता यही था कि वे गाने पर झूम रहे हैं, पर उनकी आँखें बन्द थीं और वे दरअसल ऊंघ गये थे।

चेतन को अपने भाई पर दया हो आयी। वे मुश्किल से दो-ढाई घंटे सोये होंगे कि चेतन ने उन्हें जगा दिया था। उसने ज़ोर से आवाज नहीं दी थी, न उन्हें झकझोरा था। बस उनका कन्धा ज़रा-सा हिलाया था और धीरे से एक बार कहा था—'भाई साहब!' और वे रजाई उलट, ऐसे उछल कर उठे थे, जैसे वे सो नहीं, जाग रहे हों। छोटे भाइयों द्वारा ताक में रखी दातुनों में से एक-एक दोनों भाइयों ने मुँह में डाली थी और निबट कर कुएं पर नहाने चले गये थे।

चेतन ने पीतल का घड़ा कुएं से भर कर पहले भाई साहब की बाल्टी में पलट दिया था। वे नहा चुके तो उसने अपने लिए बाल्टी भर ली थी। ठण्ड बहुत ज्यादा थी। लेकिन लाहौर के नलकों की अपेक्षा कुएँ का पानी गुनगुना था। पहला लोटा शरीर पर पड़ते ही नस-नस झनझना उठी थी, लेकिन फिर शरीर गर्म हो आया था—कुएं की जगत पर नहाते-नहाते चेतन के सामने दसुआ के दिन घूम गये थे, जब वह अपने पिता के पास वहां गया था। क्वार्टर के बाहर बिना चर्खी का कुआँ था। पिता के आदेश से पानी वाला कुएँ से पानी भर देता था और वहीं खड़ा-खड़ा चेतन

लोटे-पर-लोटा पानी डालता और ठिठुरता हुआ जल्दी-जल्दी नहाता। खुले में ठण्डी हवा आरी-सी शरीर चीरती चली जाती थी और उसे अपने पिता पर बड़ा क्रोध आता था....उसके सामने शिमले के दिन घूम गये, जब वह कल्लू भट्टे के बाहर नल पर बाल्टी रखे, नहाया करता था और कविराज उसकी हिम्मत को सराहते हुए पास से निकल जाते थे। उन दोनों अवसरों पर उसका मन कड़वा जाता था—क्योंकि उस नहाने के पीछे उसकी विवशता थी। लेकिन अपने मुहल्ले के कुएँ की जगत पर बैठ कर नहाना—जाने कितने दिनों बाद उसे वह सुख पयस्सर हुआ था। यह अजीब बात है कि जब-जब वह इस कुएँ की जगत पर बैठ कर नहाता था—उसके कानों में कभी बचपन में नाइन द्वारा सुनी किसी 'घोड़ी' के दो असम्बद्ध बोल गूँज उठते थे। शरीर पर पानी डाल कर, जल्दी-जल्दी बदन मलता हुआ, वह उन्हें मन-ही-मन दोहराये जाता था :

कुएँ पर मल-दल न्हावेगा
बन्ना मिरदंग बजावेगा

बैलगाड़ी पर लेटे-लेटे, उन बोलों की याद आने पर चेतन हँसा-- मन की यह कैसी गति है—कहाँ-से-कहाँ जा पहुँचता है। कमरे में बाल्टी भर कर या गुसलखाने में नल पर नहाते हुए वे बोल उसे कभी याद नहीं आये। लेकिन अपने कुएँ की जगत पर जब-जब वह नहाया, उसके होंठों में ये बोल गुनगुना उठे....

बजते दाँतों और काँपती आवाज में कुएँ पर बन्ने के मल-दल कर नहाने के बोल गाते हुए, चेतन पानी का लोटा डाल, जल्दी-जल्दी बदन को मलते हुए नहाया था। फिर सूखा साफ़ा कमर में लपेट, गीले साफ़े को धो-निचोड़, उसी से बदन पोंछ कर उसने पानी का घड़ा झटके से कन्धे पर रखा था और दायें हाथ में खाली बाल्टी-लोटा ले कर चला आया था।.... पन्द्रह-बीस मिनट में तैयार हो कर दो-दो मठरियाँ चाय के साथ ले कर घर से बाहर निकले थे तो मुहल्ले में हल्का-सा उजेला फैल गया था।

अगर चौरस्ती अटारी में ताँगों अथवा इक्कों का कोई अड्डा होता तो शायद वे ठीक वक्त से बस्ती ग़ज़ाँ पहुँच जाते। लेकिन कल्लोवानी मुहल्ले के चारों ओर, तंग गलियों-बाज़ारों का एक जाल बिछा था; वहाँ से मील-आध मील चल कर ही कहीं ताँगा-इक्का मिल सकता था। इसलिए प्रातःकालीन झुटपुटे के नीम-अँधेरे में दोनों भाई जैसे उन सूने, वीरान बाज़ारो को चीरते हुए चले आये थे। दिन के वक्त भीड़-भब्भड़ और खुली दुकानें और उनमें रंगारंग चीज़ें निगाहों को यूँ उलझा लेती थीं कि आदमी कभी ऊपर निगाह उठा कर न देखता था, लेकिन सुबह चेतन की आँखें बार-बार दुकानों के सिरों पर उठ जाती थीं—आकाश की नीली-काली पट्टी में धीरे-धीरे सफ़ेदी मिल रही थी, दुकानों की छतें आसमान से अलग दिखायी देने लगी थीं और उजाला बाज़ारों को कुछ अजीब-सा खुलापन प्रदान कर रहा था।....जौड़ा बाज़ार, चौक सूदाँ, छत्ती गली, लाल बाज़ार और बाँस वाला बाज़ार से होते हुए, वे बस्ती के अड्डे पहुँच ताँगे पर आ बैठे थे। साढ़े छै का वक्त होगा, जब उनका ताँगा बस्ती पहुँचा था। वे अभी अड्डे से कुछ दूर ही थे, जब चेतन के कानों में रणवीर की आवाज़ आयी—"जीजा जी आ गये।"

दोनों भाइयों ने निगाहें उधर घुमायीं तो देखा कि रणवीर, हुनर साहब और निश्तर, पान की दुकान पर खड़े हैं। वहीं एक ओर सामान से लदी बैलगाड़ी ओट के सहारे खड़ी थी, पास ही बैल बैठे पगुरा रहे थे। वहीं उसने रिपु, रतने और बस्ती के दो-तीन और लड़कों को भी घूमते पाया।

इससे पहले कि ताँगा अड्डे पर रुकता, रणवीर भाग कर उनकी ओर आया था। भाई साहब को उसने नमस्ते की और बोला, "मैं तो उम्मीद ही छोड़ चुका था, कल दो-दो गाड़ियाँ देख कर रिपु नाकाम लौटा, पर जीजा जी ने कहा, आप रात की गाड़ी से आयेंगे। बहुत ही अच्छा किया जो आप आ गये।"

और एक अकथनीय खुशी उसके कुरूप चेहरे को उद्भासित कर गयी थी। उस वक्त, जब हुनर साहब भाई साहब का हाथ अपने दोनों हाथों में

ले कर बड़ी गर्मजोशी से दबा रहे थे, रणवीर गाड़ीवान को बैल जोतने का आदेश दे रहा था।

लेकिन जब वे सड़क पार कर बैलगाड़ी के नज़दीक आये तो भाई साहब ऐसे रुक गये, जैसे आगे बैलगाड़ी नहीं, कोई गगनचुम्बी पहाड़ खड़ा हो, जिस पर चढ़ने के ख़याल से ही रूह काँप जाती हो।

गाड़ीवान ने पलक-झपकते बैल जोत दिये और बरातियों से कहा कि वे बैठ जायें, देर हो रही है।

तब हुनर साहब पीछे से निकल कर सब को बढ़ावा देते हुए, बिल्कुल छोटे बच्चों की तरह, बैलगाड़ी पर जा चढ़े थे। रतना, हरनामा, रणवीर और रिपु के दूसरे मित्र भी सवार हो गये थे। सिर्फ़ रिपु और रणवीर अपने जीजा और उनके बड़े भाई की अर्दल में खड़े रहे कि वे बैलगाड़ी पर सवार हों तो वे भी चढ़ें।

सभी बरातियों ने रास्ते के कपड़े पहन रखे थे—हुनर साहब खादी के धोती-कुर्ते पर पट्टी की जैकेट पहने हुए थे। ऊपर उन्होंने गर्म चदरा डाल रखा था। निश्तर कमीज़-धोती और गर्म कोट में था। रिपु और निश्तर लट्ठे के पायजामे-कमीज़ें और बन्द गले के कोट पहने थे। रतने ने बोस्की की कमीज़ और लट्ठे के तहमद पर घर का बुना, डिज़ाइनदार पुलोवर पहन रखा था। हरनामे ने तहमद-कमीज़ पर काली जैकेट पहन रखी थी। चेतन स्वयं कुर्ते-पायजामे पर ओवरकोट पहने और गले में गुलूबन्द डाले था—सिर्फ़ भाई साहब अपने एक-मात्र बढ़िया गर्म सूट में सजे थे।....चेतन को ख़याल आया कि रात ही को जब भाई साहब ट्रंक से नाइट सूट निकाल रहे थे, उसे उन्हें बता देना चाहिए था कि सुबह बैलगाड़ी पर सफ़र करना है, कोई पुराना कोट और पायजामा निकाल लें। वे ताँगे से उतर कर, जहाँ खड़े थे, वहीं जड़ हो गये थे।—बरात को बैलगाड़ी पर जाना है, यह जान कर उनका सारा उत्साह मन्द पड़ गया था।

तब हुनर साहब ने बैलगाड़ी की छत से पुकारा था कि चलिए, पहले ही बड़ी देर हो गयी है।

लेकिन भाई साहब टस-से-मस न हुए थे। "बैलगाड़ी किधर को जायेगी ?" सहसा उन्होंने प्रश्न किया था।

"लालड़ाँ !" हुनर साहब ने वहीं बैलगाड़ी के ऊपर बैठे-बैठे उत्तर दिया था।

"लालड़ाँ !—किधर से जायेंगे लालड़ाँ को ?" भाई साहब ने फिर सवाल किया था।

तब गाड़ीवान ने बताया था कि बस्ती के अड्डे से जर्नैली सड़क पकड़, सिविल हस्पताल के सामने से होते हुए अड्डा नकोदर पहुँचेंगे, फिर कम्पनी बाग के सामने से होते हुए जालन्धर छावनी ! चहेड़ू की बेयी[1] पर पहला पड़ाव होगा। वहीं पण्डित वेणीप्रसाद रुक कर उनकी प्रतीक्षा करेंगे। बेयी के एक मील आगे रास्ता लालड़ाँ को उतरता है। और वह बोला, "हुण बादशाहो, तुसी बहस छड्डो ते चढ बहवो। पहलाँ ई बड़ी देर हो गयी ए। दूज्जी बैल गड्डी ताँ कम्पनी बाग तक पहुँच गयी होएगी। रस्ते च रात हो गयी ते फ़ेर मान्नूँ उलाम्भा न देणाँ[2]।"

"पण्डित वेणीप्रसाद तो रात ही से जोर दे रहे थे," हुनर साहब ने रद्दा जमाया, "कि साढ़े पाँच बजे बैलगाड़ियों को चल देना चाहिए। वो तो रात पूरी तरह सोये भी नहीं, बीस मिनट आधा घण्टा। उन्होंने आपकी राह देखी, फिर वो यह कह कर चल दिये कि हम देर न लगायें और आप दोनों के आते ही चल दें।....अब आप सोच क्या रहे हैं ? यहाँ से नहीं चढ़ना चाहते तो अड्डे के बाहर से चढ़ जाइएगा। लेकिन देर हो गयी है ..."

तब भाई साहब ने चेतन के कान में जो कहा, उसका यह मतलब था कि रास्ते में हस्पताल के सामने डॉ० सत्यप्रकाश का क्लिनिक पड़ता है। वे बरस-डेढ़ बरस वहाँ काम सीखते रहे हैं। हस्पताल के सभी डॉक्टर और

१. नदिया २. अब बादशाहो, आप बहस छोड़ें और बैलगाड़ी पर चढ़ बैठें। पहले ही देर हो गयी है। दूसरी बैलगाड़ी तो कम्पनी बाग तक पहुँच गयी होगी। रास्ते में रात पड़ गयी तो फिर हमें दोष न देना।

इर्द-गिर्द के लोग उनके परिचित हैं । रास्ते में कोई मित्र-परिचित ही मिल जाता है । वहाँ से बैलगाड़ी पर बैठना उनके लिए असम्भव है ।

चेतन भाई साहब की कठिनाई समझ गया था । (मन-ही-मन उसे फिर इस बात पर गुस्सा आया कि उसने पहले ही क्यों इस स्थिति की कल्पना नहीं की ।) उसने रणवीर और हुनर साहब को सुनाते हुए कहा कि भाई साहब रास्ते में ज़रा डॉ० सत्यप्रकाश से मिलना चाहते हैं । वह उन्हें ताँगे में ले जाता है, वे लोग कम्पनी बाग़ पर उनकी प्रतीक्षा करें ।

"अव्वल तो हमी पहले पहुँच जायेंगे," उसने कहा, "दस-पाँच मिनट की देर हो तो आप कम्पनी बाग़ के मेन गेट पर हमारा इन्तज़ार करें ।"

तब रणवीर भिनभिनाया—"वहाँ देर न लगाइएगा जीजा जी, पहले ही चलने में...."

चेतन ने उसे बात नहीं खत्म करने दी, उसकी पीठ थपथपाते हुए उसने कहा कि वह जा कर बैलगाड़ी पर बैठे और चिन्ता न करे । वे उन लोगों से पहले ही पहुँच जायेंगे ।

और उसने एक ताँगेवाले को आवाज दी और भाई साहब के बैठ जाने पर स्वयं भी उनके साथ पिछली सीट पर बैठ गया ।

तभी हुनर साहब अचानक बन्दर की तरह उछल कर बैलगाड़ी से उतरे और लपक कर उनके ताँगे की अगली सीट पर बैठ गये और पिछली सीट की ओर मुड़ कर उन्होंने कहा

"डॉक्टर साहब बात क्या है । जा आप बरात में रहे हैं और सूरत आपने मुहर्रमी बना रखी है ।"

भाई साहब ने तत्काल कोई जवाब नहीं दिया ।

चेतन ने देखा—रणवीर वहीं सड़क पर खड़ा, किंचित उदास भाव से उन्हें देख रहा था । बरात उसकी न होती तो वह भी निश्चय ही भाग कर हुनर साहब के साथ आ बैठता । कुछ क्षण वह सड़क पर खड़ा, उन्हें जाते देखता रहा । फिर जब ताँगा बस्ती के अड्डे से मुड़ा तो वह पलट कर अपने छोटे भाई के साथ बैलगाड़ी पर जा चढ़ा ।

"मुझे मालूम होता कि बरात बैलगाड़ी पर सफ़र करेगी तो मैं कभी न आता," अड्डे से बाहर सड़क पर आते ही भाई साहब सहसा फट पड़े थे।

हुनर साहब ठहाका मार कर हँसे थे और ढीले हो जाने वाले गर्म चदरे को खोल कर ठीक से फेंटा मारते हुए उन्होंने कहा था :

"तुम तो सचमुच डॉक्टर हो गये हो रामानन्द, वरना ऐसी बैलगाडी की सवारी के मुकाबिले में, जिसके नीचे गुदगुदे बिस्तर हों और जिसकी छत आसमान को छूती हो और जिस पर चार दोस्तों के साथ आराम से बैठा या लेटा जा सके, रेलगाडी के फ़र्स्ट क्लास का सफ़र भी हेच है।"

और उन्होंने उसी वक्त 'मीर' के हवाले से एक शे'र चुस्त करके सुना दिया :

बैलगाड़ी का सफ़र हो, साथ हों दो-चार यार
'मीर' जी को और क्या फिर इस जहाँ में चाहिए

चेतन जोर से ठहाका मार कर हँसा था। "अरे हुनर साहब, जो शायर बागीचे की तरफ खुलने वाले दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द रखता था, वह बैलगाडी पर क्या सवार होता। क्यों 'मीर' की रूह को तकलीफ़ पहुँचा रहे हैं—ऐसे भौंडे शे'र उसके नाम से सुना कर ?"

लेकिन हुनर साहब चेतन की इस फटकार से ज़रा भी हतप्रभ न हुए थे।

"जिसने भी यह लिखा है कि 'मीर' बाग़ीचे की तरफ़ खुलने वाली खिड़कियाँ बन्द रखते थे," हुनर साहब ने ज़ोर दे कर कहा, "गलत लिखा है। मीर के शे'र जबाने-हाल से पुकार कर कहते है कि वो न सिर्फ़ खिड़कियाँ खुली रखते थे, बल्कि बाकायदा बागीचे की सैर करते थे, वरना वो ऐसे शे'र कैसे कहते ?" और हुनर साहब ने एक-के-बाद-एक कई शे'र सुना दिये :

"बूटा-बूटा पत्ता-पत्ता हाल हमारा जाने है
जाने-न-जाने गुल ही न जाने बाग़ तो सारा जाने है।

कहा मैंने कितना है गुल का सबात[1]
कली ने यह सुन कर तबस्सुम किया[2]

चमन में गुल ने जो कल दावा-ए-जमाल किया[3]
जमाले-यार[4] ने, मुँह उसका, ख़ूब लाल किया

दी आग रंगे-गुल ने बादे सबा चमन[5] को
यों हम जले कफ़स[6] में सुन हाल आशियाँ का

"बिना बाग़ीचे का हर रंग देखे, कोई गुलो-बुलबुलो-चमन के बारे में क्या ऐसे दिलनशी शे'र कह सकता है ?" हुनर साहब ने कहा और अपने उस्ताद के उस्ताद के उस्ताद के हवाले से (जो हुनर साहब के कथनानुसार 'मीर' के हम-असर और हम-सुख़न[7] थे) बताया कि 'मीर' को बैलगाड़ी का सफ़र बहुत पसन्द था और उन्होंने 'मीर' के नाम से दो शे'र और सुना दिये थे :

बैलगाड़ी का सफ़र है ज़िन्दगी
चरख़-चूँ जाने न कितने दिन चले

बैलगाड़ी का सफ़र है, रात पूरे चाँद की
याद ने तेरी अँधेरा पाख लेकिन कर दिया।

और उन्होंने बताया कि 'मीर' ही पर क्या बस है, 'ग़ालिब', 'ज़ौक़,' 'मोमिन' और 'सौदा' तक ने अपने अशआर में बैलगाड़ी की यात्रा के गुण गाये हैं और वे एक क़िस्सा सुनाने लगे, जब 'मीर' ने दिल्ली से लखनऊ तक का सफ़र बैलगाड़ी में किया था और रास्ते में पूरा दीवान लिख डाला था। हुनर साहब तो अपनी रौ में 'मीर' का पूरा दीवान ही सुना देते,

१. स्थायित्व २. मुस्करायी ३. सौन्दर्य की बड़ हाँकी ४. प्रिय के सौन्दर्य ५. हवा ६. क़ैद में ७. समकालीन और उनके साथ कविता करने वाले।

लेकिन तभी वे लोग डॉक्टर सत्यप्रकाश के क्लिनिक में पहुँच गये ।

डूगी-डूँगी नदी-आ, तला वे पुराना
मैं अनतारू, तरन न जाना
नज़र न आवे कण्डा पार दा
ओ मेरेआ यारा—
नज़र न आवे कण्डा पार दा[1]

रतना सहमा बैलगाड़ी पर खड़ा हो गया था । दायाँ हाथ कान पर रख कर, बायें को हवा में लहराते हुए उसने अन्तरा गाया । चेतन की विचार-शृंखला अचानक टूट गयी—कितना रसीला गला पाया है, रतने ने ? हठात उसने सोचा और उसकी आँखों के सामने शिमले के कैडविक प्रपात के नीचे उस तन्हाई को सोज और लोच-भरी अपनी आवाज में गुँजाते कविराज जी की सूरत घूम गयी और मोहनी का वह गीत उसे याद आ गया :

लंघ आ जा पत्तन झनां दा[2]
ओ यार
आ जा पत्तन झनां दा
सान्नूँ आसरा तेरे नाँ दा
ओ यार
आ जा पत्तन झनाँ दा

इर्द-गिर्द की सारी फ़िजा को गुँजाता हुआ, रतने का गीत जाने किस प्रक्रिया से चेतन की श्रवण-शक्ति से परे चला गया था और उसकी जगह दो वर्ष

---

१. (पुराने घड़े के बल पर महीवाल से मिलने को जाती हुई, नदी पार करती सोहनी कहती है :) गहरी-गहरी नदी है । घड़े का तला पुराना है, मैं तैरना नहीं जानती और नदी का दूसरा किनारा दिखायी नहीं देता । ओ मेरे प्यारे, नदी का किनारा दिखायी नहीं देता ।

२. चनाब का घाट पार कर आ जा, हमें तेरे ही नाम का आसरा है ।

पहले चैडविक प्रपात के पार्श्व संगीत पर उठती सोहनी की पुकार कविराज के स्वर मे चेतन के कानों मे गूँजने लगी थी :

मेरे काग बनेरे उत्ते बोल्लेया
मेरा तत्तड़ी दा जिउड़ा डोल्लेया
मैं ते मंदड़ा बोल न बोल्लेया
ओ यार
आ जा पत्तन झनाँ दा[1]
लंघ आ जा पत्तन झनाँ दा
दूरों दिस्सदा ऐ माही आउन्दा
हत्थ कंगन ते बाँह लटकाउन्दा
मैंन्नूँ रमज़ाँ नाल बुलाउन्दा[2]
ओ यार....

और वहाँ बैलगाड़ी पर लेटे-लेटे, चेतन पुरानी यादों मे खो गया। शिमला के चैडविक प्रपात से उड़ कर उसका मन दुसुआ स्टेशन की सूनी, अकेली रातों मे भटक गया, जिन्हे एक ही रात मे बैठ कर मन्थली (महीने का पूरा हिसाब) बनाने के प्रयास मे उसके पिता मील-मील तक फ़िज़ाओं को गुँजाने वाली अपनी आवाज से खनखना देते थे—और राँझे का वह दर्द-भरा गीत :

इश्क तेरे ने कमलिए हीरे
जग विच्च मैंन्नूँ ख़्वार कीत्ता ई !

चेतन कितना चाहता था कि उसके कण्ठ मे भी वैसा ही लोच और सोज

---

१. मेरी मुँडेर पर कौवा बोला। (प्रिय के आने की आशा से) मुझ बेचारी का दिल डोल उठा। मैंने तो कभी कोई बुरा बोल नहीं बोला (मेरा प्रिय क्यों नहीं आयेगा ?) २. प्रिय दूर से आता दिखायी देता है—हाथ मे कंगन और बाँह को लटकाये हुए—मुझे इशारों से बुलाता हुआ।

हो, लेकिन उसकी बात तो दूर रही, छै भाइयों में एक के यहाँ भी पिता के स्वर की मिठास न थी। चेतन को इस बात का भी अफ़सोस था कि न उसके पिता ने अपने स्वर का कोई लाभ उठाया था, न कविराज रामदास ने। कविराज तो फिर भी दूसरों को रिझाने के लिए कभी-कभार गाते थे, लेकिन उसके पिता तो वीरानों में सुगन्ध लुटाने वाले फूल की तरह, मन्थलियाँ बनाते हुए, सोज़ और लोच से भरी अपनी मीठी, रसीली आवाज़ से वीरान रातों के सन्नाटों को गुँजाया करते थे। इससे ज़्यादा उस विभूति का उनके निकट कोई उपयोग नहीं था।....

रतना बैठ गया था और उसके स्वर को नीचे सड़क पर चलने वालों ने उठा लिया था।—'इसके पास भी इस विभूति का बस यही उपयोग है,'—चेतन ने सोचा—'कि वह अपने स्वर से मित्रों की महफ़िलों को गुलज़ार बना दे।'....और चेतन को अपना पुराना अभाव सालने लगा।....काश उसके पास ऐसा कण्ठ-स्वर होता। वह किसी गुरु के चरणों में बैठ कर उसे साधता और देश-विदेश में अपने नाम का डंका बजा देता।

रतना बदस्तूर 'चिट्ठिए दर्द फ़िराक वालिए' गा रहा था :

> **माही ! कदीं तू सान्नूँ पास बुला, वे**
> **नईं ताँ कदीं तूँ ढोल, कोल साड्डे आ, वे**
> **कुझ ताँ मज़ा आवे**
> **कुझ ताँ मज़ा आवे**
> **कुझ ताँ मज़ा आवे प्यार दा[1]**
> **ओ यार दा**

चिट्ठिए दर्द फ़िराक वालिए....

भाई साहब आँखें बन्द किये, नीम-ग़नूदगी में झूम रहे थे कि हुनर साहब ने हठात उठ कर दाद देते हुए जोश में कहा, "वाह-वा ! क्या हस्बे-हाल

---

१. ओ प्रिय, कभी तू हमें अपने पास बुला; नहीं तो ओ प्रिय, कभी तू हमारे पास आ; कुछ तो मज़ा आये प्यार का !

बात कही है !—हमें बुला, या खुद आ !—वाह-वा, वाह-वा !"

हुनर साहब की इस पुरशोर दाद ने सहसा भाई साहब को उनकी ग़नूदगी से जगा दिया। झटके से चौंक कर उन्होंने आँखें खोलीं और सीधे हो कर बैठ गये। हुनर साहब ने रतने पर ज़ोर दिया कि एक बार वह उन पंक्तियों को फिर गाये।

रतना दुगुने उत्साह से गाने लगा :

माही, कदीं तूँ सान्नूँ पास बुला, वे।

चेतन भी कोहनी के बल अधलेटा हो गया।....सुबह से अब तक हुनर साहब का व्यवहार उसकी आँखों के आगे घूम गया।—बस्ती के अड्डे से ताँगे में बैठते ही हुनर साहब बोलने लगे थे। जब वे डॉक्टर सत्यप्रकाश के क्लिनिक पहुँचे थे तो चेतन का खयाल था कि वे ताँगे में ही बैठेंगे और वे दोनों भाई डॉक्टर सत्यप्रकाश से मिल आयेंगे। इससे पहले कि वे हुनर साहब को ताँगे में ही रुकने के लिए कहते, हुनर साहब कूद कर उतर गये थे और क्लिनिक की ओर को दो कदम बढ़ गये थे।

सिविल हस्पताल के सामने, सड़क के किनारे दो-मंजिली बिल्डिंग में डॉक्टर सत्यप्रकाश का बोर्ड लगा था। नीचे उनका क्लिनिक था। ऊपर वे रहते थे। अभी आठ नहीं बजे थे, इसलिए वे ऊपर की मंज़िल पर ही थे। चेतन और हुनर साहब को नीचे ड्राइंग-रूम में बैठा कर भाई साहब दायीं ओर सीढ़ियों से गये और उन्होंने कॉल-बेल का बटन दबाया। दूसरे क्षण नौकर आया तो उन्होंने कहा, "डॉक्टर साहब से कहो, लाहौर से रामानन्द आये हैं।"

डॉक्टर सत्यप्रकाश नाश्ता कर रहे थे। कुछ मिनट बाद ही वे नीचे आ गये। उन्होंने भाई साहब और चेतन से हाथ मिलाया। तभी उनकी निगाह हुनर साहब पर गयी। भाई साहब ने हुनर साहब का परिचय दिया। उनकी ओर हाथ बढ़ाते हुए डॉक्टर प्रकाश हँसे थे, "अब आप से तआरुफ़[1] हुआ है तो कुछ शे'र-ओ-शायरी सुनने का मौका मिलेगा।"

---

१. परिचय

तब चेतन ने अपना कर्तव्य समझते हुए हुनर साहब को बताया था कि डॉक्टर साहब बड़े ख़ुश-ज़ौक[1] और सुख़न-फ़हम[2] हैं।

बस हुनर साहब के लिए इतना ही काफ़ी था। उन्होंने एक नज़र डॉक्टर सत्यप्रकाश पर डाली थी—तीस-बत्तीस वर्ष की उम्र; मँझला कद; पतला न मोटा शरीर; गोरा-चिट्टा रंग; गोल-मटोल चेहरा; छोटी-छोटी, दोनों ओर से छँटी मूँछें। हँसते तो मोतियों-से सफ़ेद दाँत चमकते। मुस्कराते तो उनकी दायी आँख जरा-सी दबती, जो उनके मुख को और भी सुन्दर बना देती।....चेतन ने देखा—हुनर साहब को वे बहुत अच्छे लगे हैं—इस सुन्दर सूरत के साथ वे सुरुचि-सम्पन्न और रसज्ञ भी हैं, यह जान कर हुनर साहब बहुत खुश हुए थे। डॉक्टर साहब के बढ़े हुए हाथ को निहायत गर्मजोशी से अपने दोनों हाथों में ले कर उन्होंने दबाया, उनसे मुलाकात होने पर खुशी जाहिर की फिर रणवीर की शादी और बैल-गाड़ियों पर बरात के जाने का जिक्र करते हुए कुछ गम्भीर और कुछ अगम्भीर स्वर में बैलगाड़ी के सफर से भाई साहब की वितृष्णा के उल्लेख से बात शुरू कर दी। पहले 'मीर' के वही शे'र सुनाये, जो उन्होंने तांगे में सुनाये थे (डॉक्टर सत्यप्रकाश ने दाद दी) फिर अल्ला दे और बन्दा ले के अनुसार शे'र-पर-शे'र और क़िस्से-पर-क़िस्सा वे सुनाते चले गये। चेतन अथवा भाई साहब को डॉक्टर सत्यप्रकाश से मिनट भर को अन्त-रंग बात करने का अवसर उन्होंने नहीं दिया। चेतन न जाने कितनी बार वे किस्से और शे'र सुन चुका था, वह बेहद बोर हुआ था। लेकिन कोई चारा नहीं था, हुनर साहब की गाड़ी एक बार चल देती तो उसे रोकना आसान नहीं था। डॉ० प्रकाश के ड्राइंग-रूम में बैठा, वह चुपचाप एक डेण्टल मेगज़ीन के पन्ने उलटने लगा था।

तभी उसकी निगाह सड़क की ओर गयी थी और उसने देखा था कि बैलगाड़ी पर लदे हुए रणवीर, निश्तर और दूसरे युवक बराती क्लिनिक के आगे से निकले जा रहे हैं और उसने हुनर साहब को टोक दिया था।

---

१. सुरुचि-सम्पन्न २. रसज्ञ, मर्मज्ञ

लेकिन हुनर साहब नहीं रुके थे। "उन्हें कम्पनी बाग़ पहुँचने में अभी पन्द्रह-बीस मिनट लगेंगे," उन्होंने कहा था, "अभी चलते हैं।"

और अपनी बात खत्म करके ही वे उठे थे। डॉ० सत्यप्रकाश उनकी बातों से इतने प्रभावित हुए थे कि हाथ बढ़ाते हुए उन्होंने आशा प्रकट की थी कि वे आगे भी दर्शन देते रहेंगे। हुनर साहब ने उनके हाथ को अपने दोनों हाथों में ले कर, उसे बग़ल की ओर ज़रा-सा खींचते और स्वयं आगे झुकते और दाँत निकोसते हुए, उनसे मुलाकात होने पर पुनः 'मसर्रत'[1] प्रकट की थी और उन्हें विश्वास दिलाया था कि वे शादी में शामिल हो आये तो ज़रूर उनकी ख़िदमत में हाज़िर होंगे और इधर उन्होंने आसान उर्दू ज़बान में गीता और उपनिषदों का जो भावानुवाद किया है, उन्हें सुनायेंगे। (चेतन ने समझ लिया था कि मन-ही-मन हुनर साहब ने डॉक्टर सत्यप्रकाश का नाम भी अपने 'सरपरस्तों' में—याने उन मूर्खों में—लिख लिया है, जिन्हें वे चूना लगाते रहते थे।)

हुनर साहब से हाथ मिला कर डॉक्टर सत्यप्रकाश ने चेतन और उसके भाई से हाथ मिलाया था और दोनों भाइयों से वादा लिया था कि वापसी पर वे बिना उनसे मिले, न जायँ—ऐसी दो मिनट की मुलाकात में उनसे दिल की बात ही न हो सकी।

डॉक्टर सत्यप्रकाश के क्लिनिक से बाहर निकल कर वे तीनों ताँगे में बैठे तो हुनर साहब इतने प्रसन्न थे कि जब उनका ताँगा बरात वाली बैलगाड़ी के पास से गुजरा तो बाहर को मुँह निकाल और हवा में बाँह हिला कर, बिल्कुल बच्चों की तरह रणवीर और उसके मित्रों को चिढ़ाते हुए, हुनर साहब ने ज़ोर की 'ओय-ओय' की। जब ताँगा आगे निकल आया तो बच्चों ही की तरह उन्होंने नारा लगाया था :

याराने-तेज़गाम ने महमिल को जा लिया[2]

---

१. ख़ुशी २. तेज़ चलने वालों ने महमिल (ऊँट पर बना हुआ पर्देदार पलान, जिसमें बड़े घरों की औरतें यात्रा करती थीं) को जा पकड़ा।

और इस तरह ताँगे की सीट से पीठ लगा ली थी, जैसे सचमुच उन्होंने भाग कर महमिल में बैठी लैला को जा पकड़ा हो और इस प्रयास में बेहद थक गये हों।

लेकिन दूसरे ही पल वे उछल कर उठे थे और चेतन और उसके बड़े भाई की ओर पलट कर, डॉक्टर सत्यप्रकाश की तारीफ़ों के पुल बाँधने लगे थे।....वे डॉक्टर सत्यप्रकाश का ज़िक्र करते हुए न जाने अपने किस सर-परस्त की तारीफ़ शुरू कर देते कि तभी कम्पनी बाग़ आ गया।

चेतन ने ताँगा वहीं छोड़ दिया और वे लोग बरात वाली गाड़ी की प्रतीक्षा में कम्पनी बाग की बहार लेने लगे। हुनर साहब ने गीता का सरल पद्यानुवाद करने के बाद ईशावास्य उपनिषद के कुछ श्लोकों को उर्दू का जामा पहनाया था। इस दौरान भाई साहब को वे लगातार वही सुनाते रहे थे। अनुवाद सुना कर हुनर साहब यह बताना नहीं भूले थे कि किस बन्द या शे'र या पंक्ति की तारीफ़ किस-किस ने की थी।

तभी बैलगाड़ी कम्पनी बाग़ के दरवाज़े पर आ कर रुक गयी। रणवीर और उसके साथी उतर आये, लेकिन उनके ज़ोर देने के बावजूद, न भाई साहब ने वहाँ अपना सूट बदला, न वे गाड़ी पर बैठने को तैयार हुए। उन्होंने यही कहा कि अव्वल तो छावनी के फाटक तक, नहीं नीली कोठी तक वे पैदल ही जायेंगे, वहीं जा कर कपड़े बदलेंगे और बैलगाड़ी पर बैठेंगे।

चेतन के कानों में हुनर साहब की फब्ती गूँज गयी थी, जो उन्होंने बस्ती के अड्डे से बाहर निकलते ही उन पर कसी थी कि वे सचमुच डॉक्टर हो गये हैं।....अगर भाई साहब साथ न होते, चेतन ने मन-ही-मन सोचा था, तो कम्पनी बाग दूर, वह तो बस्ती के अड्डे में ही बैलगाड़ी पर बैठ जाता। डॉ० सत्यप्रकाश भाई साहब के ही नहीं, उसके भी मित्र थे, बल्कि पहले उसी के मित्र थे और उसी ने ज़ोर दे कर भाई साहब को वहाँ शागिर्द रखवाया था। फिर शहर का प्रसिद्ध शायर होने के नाते उसका भी सभी लोगों से परिचय था। लेकिन चेतन उन सब की ज़रा

भी परवाह न करता और बैलगाड़ी की छत पर, अन्य बरातियों के साथ बैठा, चला आता। चेतन को तब लगा था कि भाई साहब कुछ वैसी ही ग्रन्थि का शिकार है, जो उसे परेशान किये हुए थी, जिसकी वजह से सेठ वीरभान के यहाँ अपनी सास का काम करना उसे खलता था और वह दूसरों मे ही नहीं, अपने आप मे भी छिपता फिरता था।....

"ज़रा जल्दी पैर पुट्टो महाराज, पहलाँ ई देर हो गयी ए।" गाड़ीवान ने बेताबी से कहा था।

तब रणवीर ने गाड़ीवान से कहा कि वह चले, नीली कोठी तक वे पैदल ही चलेंगे।

चेतन रात का जगा था, वह बैलगाड़ी पर जा बैठना चाहता था, लेकिन उसके बड़े भाई पैदल चलें और वह गाड़ी पर जा बैठे, यह उससे न हो सकता था। वह भी उनके साथ पैदल चल पड़ा था। रणवीर और हुनर साहब को पैदल चलते देख कर निश्तर भी उतर आया था और वे सब गाड़ी के पीछे-पीछे जर्नैली सड़क पर चलने लगे थे। हुनर साहब ने अपनी बातों का तार पकड़ लिया था और चेतन ने अपने विचारों का।

....भाई साहब को इस बात का डर था कि उनका कोई पुराना परिचित कम्पनी बाग़ के सामने उन्हे सूट उतार कर कपड़े बदलते अथवा बैलगाड़ी पर चढ़ते न देख ले, इसलिए वे आबादी से मील-आध-मील दूर जा कर ही बैलगाड़ी पर बैठना चाहते थे। चेतन को भाई साहब की इस झिझक पर हँसी आयी थी।....लेकिन दूसरे ही क्षण उसे उनका संकोच ठीक लगा था....भाई साहब डॉक्टर हैं....उसने सोचा था....उनकी पोजीशन है। वह अपने से बेकार उनकी तुलना करता है। वह डॉक्टर नहीं है—फक्कड़, मन-मौजी कवि है और कवि आधे पागल समझे जाते हैं और उनकी हर सनक क्षमा कर दी जाती है। वह बैलगाड़ी की छत पर चढा-चढ़ा, शहर के बीचों-बीच जर्नैली सड़क से गुज़र सकता है। भाई साहब नहीं गुजर सकते। वह तो कॉलेज के दिनो मे लंगोट लगाये, नंगे बदन, चौरस्ती अटारी तक निकल जाता था और लाहौर मे जब-जब उन्हे मकान बदलना पड़ा है,

वह रहीम चंगड़ की बैलगाड़ी पर सामान ढोता रहा है और कई बार बैलगाड़ी के साथ-साथ चलता हुआ और कई बार मेज़ और चारपाइयाँ थामे, बैलगाड़ी पर सवार, भरी अनारकली से गुज़रा है और मित्र-परिचितों से मिलने पर उनसे आँखें चुराने की बजाय, 'आदाब अर्ज' अथवा 'नमस्ते' करते हुए उनका ध्यान खींचता रहा है। लेकिन भाई साहब, न जालन्धर में कभी ऐसा कर सके हैं, न लाहौर में।

तभी फिर चेतन के विचारों ने पल्टा खाया—अगर भाई साहब बस्ती से ही बैलगाड़ी पर सवार हो जाते और हस्पताल के सामने डॉ० सत्यप्रकाश उन्हें मिल ही जाते तो कौन-सा कहर टूट जाता। यह सारी झिझक, यह समस्त संकोच, ये तमाम ग्रन्थियाँ मन ही की तो हैं। उसने ज़रूरत पड़ने पर अगर अनारकली में रूमाल बेच कर रोज़ी कमा ली तो कौन कयामत टूट गयी? क्या पण्डित रत्न या किसी भी दूसरे की नज़र में उसकी वकअत ज़रा भी कम हुई? भाई साहब अगर अपने फ़न में मशहूर हो जाते हैं तो वे पैदल चलें अथवा बैलगाड़ी में, कोई फ़र्क नहीं पड़ता। लोग झख मार कर उनसे दाँत बनवाने अथवा उखड़वाने आयेंगे....कसब-ए-कमाल कुन कि अज़ीज़े जहाँ शवी।[1]

....चेतन के मन में अपने पिता की उक्ति घूम गयी। उसने अपने अनुभव से यह जान लिया था कि इस तरह की ग्रन्थि केवल हीन-भाव अथवा आत्म-विश्वास की कमी के कारण उपजती है। मध्य वित्त का युवक अपनी पतलून की क्रीज़ का इसीलिए ख़याल रखता है कि वह थोड़ा सभ्य, विशिष्ट अथवा सम्भ्रान्त समझा जाय, जबकि किसी करोड़पति को अगर बेक्रीज की ढीली पतलून में आराम महसूस होता हो तो वह मजे से उसी में घूम सकता है। आदमी अपने फ़न में इतनी सिद्धि पा ले कि ज़माने की आलोचना-प्रत्यालोचना से ऊपर उठ जाय।....महात्मा गान्धी सिर्फ़ लंगोट लगाये हुए,

---

१. किसी व्यवसाय में कमाल हासिल कर, तू अपने आप दुनिया में लोकप्रिय हो जायगा।

ब्रिटेन के सम्राट जॉर्ज पंचम से मिलने गये और भाई साहब बैलगाड़ी पर चढ़ने मे हिचकिचाते है....चेतन मन-ही-मन हँसा और उसने वहीं भाई साहब के साथ बैलगाड़ी के पीछे-पीछे पैदल जाते हुए तय किया था कि वह अपने फ़न में इतनी सिद्धि पा लेगा कि दुनिया जब उसे देखे तो उसके रहन-सहन और खान-पान पर उसका ध्यान न जाय।....'कितनी अजीब बात है'—उसने सोचा—'कि हम अपने आप को जिन्दगी की छोटी-छोटी फ़िज़ूल की बातों पर लगा देते है और जो तत्व की बातें है, वे हमारी नजरों से ओझल हो जाती है और जिन्दगी बीत जाती है और हम कुछ भी महत्वपूर्ण नही कर पाते।'....

नीली कोठी तक हुनर साहब शे'रों, नज्मों, चुटकुलों से सब का मनोरंजन करते रहे थे और नीली कोठी के चौरस्ते पर जब गाड़ी रुकवा कर भाई साहब ने कपड़े बदल लिये थे और गाड़ी पर आ बैठे थे और उन्होंने ताश निकाल ली थी तो हुनर साहब थक कर ऐसे चुप लेट गये थे, जैसे अब सारा रास्ता वे न बोलेंगे। जालन्धर छावनी से पहले सड़क के किनारे लगे एक गन्ने के बेलने पर जब भाई साहब ने रस पीने की इच्छा प्रकट की थी, रणवीर ने तत्काल गाड़ी रुकवा कर सब को रस पिलाया था तो भी हुनर साहब (हालाँकि चेतन को विश्वास था कि वे रस की बाटियों को ले कर दो-एक शे'र चुस्त करेंगे) चुप रहे थे। लेकिन हठात रतने का गाना सुनते हुए उनका मौन टूट गया था और वे फिर उठ बैठे थे और बढ-बढ कर दाद देने लगे थे।






नौ

रतना गीत का अन्तिम बन्द गा रहा था .

माही मेरे दी एहो निशानी
लक्क पतला ते गल विच गानो[1]
रंग सूहे[2] कचनार दा
ओ यार दा

"हाय....हाय !...." हुनर साहब ने झूम कर कहा, "रंग सूहे कचनार दा ! क्या तशबीह[3] दी है, जियो और एक बार फिर यही बन्द सुनाओ !"

चेतन चुपचाप हुनर साहब की ओर देखने लगा। कभी उनके बारे में उसने सोचा था कि वे उस पतली चपटी ठीकरी-से हैं, जिसे कोई चंचल युवक ज़ोर से झील की सतह पर फेंक देता है और जो फिसलती-फुदकती चली जाती है और ज़ोर खत्म होने पर चुप से, झील में ज़रा भी लहर पैदा किये बिना, डूब जाती है। जिन्दगी की झील में गिरती हुई चट्टान की तरह तूफ़ान उठा कर तल में पैठना उनके भाग्य में नहीं।....वह जब भी उनसे मिला था, उसने उन्हें ज़िन्दगी की विशाल झील में उसी ठीकरी की तरह, बिना कोई लहर उठाये, फिसलते-फुदकते पाया था—किसी ऐसे अभ्र-रीते बादल-सा, जो आकाश के विस्तारों में हवा के झकोरों से उड़ा फिरता है, जहाँ जाता है, दो-चार बूँदें टपका देता है, जिनसे न मन भीगता है, न तन; न खेतियाँ हरी होती हैं, न नदियाँ भरती-उफनती हैं....लेकिन उस वक्त बैलगाड़ी के उस गुदगुदे मंच पर लेटे हुए उन्हें देखते-देखते चेतन को पहली

---

१. काला धागा, जिसमें तावीज़ बँधा रहता है   २. लाल   ३. उपमा

बार लगा कि शायद उनकी यह वाचालता और लगातार शे'र, किस्से, लतीफे, गप्प और लनतरानियाँ सुनाना अकारण नहीं है। अपने अन्दर के शून्य को, भय को, असुरक्षा को भरने का प्रयास भर है। शायद चुप होते अथवा अकेले होते ही उनकी चिन्ताएँ उन्हें घेर लेती हैं, असुरक्षा उनका गला घोटने लगती है, उनका भूत और भविष्य उन्हें डराने लगता है और वे कभी अकेले या खामोश नहीं रहते। इसी कारण उनकी सारी नास्तिकता खत्म हो गयी है और अध्यात्म में, साधु-सन्तों, पीरों-फकीरों और योगियों में, उनकी आस्था बढ़ गयी है।

अपने दो बरस के सम्पर्क में चेतन उन्हें अच्छी तरह जान गया था—इतना कि वह उनके साथ जा रहा हो और रास्ते में कोई मिल जाय या नवागन्तुक को देख भर लें। वह जान लेता था कि हुनर साहब उससे क्या बात करेंगे अथवा कौन-सा शे'र अथवा कविता अथवा किस्सा या चुटकुला सुनायेंगे। कालेज के जमाने में (उसने स्वयं उनसे सुन रखा था और भाई साहब ने उसका समर्थन किया था) वे बड़े फक्कड़, मन-मौजी और मस्त-मौला रहे थे, बढ़िया सूट-बूट में लैस रहते थे और घर से जो रुपये लाते थे यार-दोस्तों में उड़ा देते थे। ऐसी ठगी और चिरकुटई उनके यहाँ नहीं थी और उन दिनों वे अपने आप को नास्तिक कहलाने में एक गर्व अनुभव करते थे। उन दिनों इकबाल का यह शे'र उन्हें बड़ा पसन्द था

मस्जिद तो बना दी शब भर में, ईमाँ की हरारत वालों ने
मन अपना पुराना पापी है, बरसों में नमाजी बन न सका।

इस शे'र को नास्तिम पति वे बराबर गाया करते थे।

लेकिन उनके छोटे भाई की शादी ने न सिर्फ उनकी आर्थिक हालत खस्ता कर दी थी, उन्हें आस्तिक भी बना दिया था। चेतन जानता था कि अपने छोटे भाई गोपाल की शादी पर न केवल उन्होंने तीन नये सेट बनवाये थे, बल्कि अपनी पत्नी तथा भाभी के जेवर भी दिखावे में रख दिये थे। मुहल्ला महेन्द्रुआँ, जालन्धर की लड़की थी। एक दिन ससुराल रह

कर चली आयी थी और उसने घोषणा कर दी थी कि उसका पति नपुसंक है और लाख सिर पटकने पर भी, न महेन्द्रुओं ने लड़की भेजी, न गहने लौटाये और इस घटना के वर्ष भर बाद ही लड़की के छोटे भाई ने लाल बाजार में जनरल-मर्चेण्डाइज़ की शानदार दुकान खोल ली थी। हुनर साहब वापस लाहौर न जा सके थे। समधियों के विरुद्ध उन्होंने मुकदमा दायर कर दिया था। सूट-बूट को तिलांजलि दे कर खादी का धोती-कुर्ता पहन लिया था और कचहरियों की ख़ाक छानने लगे थे। तभी साधु-सन्तो और योगियों में उनका विश्वास भी बढ गया था। उन्हे जब किसी योगी का पता चलता तो वे उसके दर पर माथा टेकने लगते और अब वे इकबाल के दो शे'र प्रायः गुनगुनाया करते थे :

अगर कज-रौ हैं अंजुम आसमाँ तेरा है या मेरा[1]
मुझे फ़िक्रे जहाँ क्यों हो, जहाँ तेरा है या मेरा
इसी कौकब[2] की ताबानी[3] से है तेरा जहां रोशन
ज़वाल-ए-आदम-ए-ख़ाकी[4] ज़याँ[5] तेरा है याँ मेरा

और आदमे-ख़ाकी के रूप में (चेतन को विश्वास था) वे अपने आप को ही वह चमकता सितारा मानते थे, जिसका अवसान भगवान का नुकसान था। ऐसे मे उनकी आस्तिकता जोर मारती थी तो भगवान को सम्बोधित कर, वे इकबाल ही की रुबाई गाया करते थे :

तेरे शीशे में मय बाकी नहीं है
बता क्या तू मेरा साकी नहीं है
समन्दर से मिले प्यासे को शबनम
बख़ीली[6] है यह रज़्ज़ाकी[7] नहीं है

तभी से गीता-उपनिषद मे भी उनकी आस्था बढ गयी थी। पहले-पहले

---

१. यदि नक्षत्र टेढ़े हैं तो (ऐ ख़ुदा) आसमाँ तेरा है या मेरा है ?
२. तेज़ चमकता सितारा ३. चमक ४. इस धरती के आदमी को अवनति ५. नुकसान ६. कंजूसी ७. उदार-दिली

तो केवल अपने मनस्ताप को हरने के लिए उन्होंने गीता के अध्यायों का अनुवाद सरल उर्दू में किया था, पर जब उन्हें बार-बार जालन्धर आना पड़ा तो उन्होंने अपने उस प्रयास को साधु-सन्तों में परिचय बढ़ाने और उनके आशीर्वाद जुटाने में लगा दिया। चेतन ने देखा था कि हुनर साहब जब भी किसी योगी का नाम सुनते तो लगातार उसके दर पर हाजिरी देने लगते। दुनिया भर में उसका प्रचार करने घूमते। दूर-दूर से घेर-घार कर भक्तों को उसके हुजूर में लाते और साथ-साथ यह भी सोचते, कौन जाने योगी उनकी निष्ठा से प्रसन्न हो कर उन्हें आशीर्वाद दे दे और वे मुकदमा जीत जायँ, लाहौर वापस जा कर अपनी खोयी प्रतिष्ठा पुनः पा लें। इसी परेशानी की वजह से उन्होंने सूट-बूट छोड़ा और देश-भक्त बने कि लोगों की सहानुभूति जीत सकें। लेकिन वह किसी ने कहा है कि चोर चोरी से जाय, हेरा-फेरी से नहीं जाता। वे जब किसी नये योगी या महन्त के दर पर जाने लगते तो उसे अथवा उसके धनी भक्तों को गीता और उपनिषदों के पद्यानुवाद सुना कर अपने चाय-पानी और जालन्धर के अपने खर्चे की व्यवस्था कर लेते। लेकिन इसके बावजूद उनकी ये तमाम सरगर्मियाँ अपने अन्दर की रिक्तता को भरने के साधन मात्र थीं।—अपने साथ उनके सम्पर्क पर मन-ही-मन सोचते हुए चेतन को यही लगा और सहसा उनके लिए उसके मन में दया हो आयी।

रतना वही बन्द दोबारा गा रहा था

> **माही मेरे दी एहो निशानी**
> **लक्क पतला ते गल विच गानी**
> **रंग सूहे कचनार दा**
> **ओ यार दा**
> **चिट्ठिए दर्द फ़िराक वालिए...**

सभी युवक समवेत स्वर में टीप का बन्द गा रहे थे, लेकिन चेतन न देखता हुआ देख रहा था, न सुनता हुआ सुन रहा था। उसकी निगाहें

हुनर साहब पर टिकी हुई थी और उसकी आँखों में पिछले दिनों की घटनाएँ घूम रही थीं।

वह शादी से तीन दिन पहले ही बस्ती गजाँ आ गया था और उसने पाया था कि जिस चौबारे में वह प्रायः ठहरा करता था, वहाँ हुनर साहब ने डेरा जमा रखा है। तब अगरचे हुनर साहब तत्काल पलँग उसके लिए छोड़ देने को तैयार थे, लेकिन चेतन न माना और उसके कहने पर फर्श पर बड़ी मोटी दरी और गद्दे बिछा दिये गये थे, दोनों के बिस्तर जमीन पर लगा दिये गये थे और तब चेतन को मालूम हुआ था कि हुनर साहब सात दिनों से आये हुए हैं और उन्होंने रणवीर की शादी के लिए बीस शे'रों का (कि रणवीर की उम्र बीस वर्ष की थी) एक मुरस्सा[1] सेहरा लिखा है। हालाँकि हुनर साहब ने तो यही कहा था कि उसके एक-एक शे'र पर उन्होंने बड़ी फ़िक्रो-काविश[2] की है और रणवीर ने ही नहीं, जिस-जिस ने सेहरा सुना है, उसकी दाद दी है, लेकिन एक बार सुन कर ही चेतन ने जान लिया था कि हुनर साहब ने रूप बसंत तक जितने सेहरे लिखे थे, उन्हीं का उलट-पलट कर रणवीर का सेहरा तैयार कर दिया है। लेकिन उसने कुछ कहा नहीं था। उन दिनों जो भी रिश्तेदार आये, हुनर साहब ने उन्हें सेहरा सुनाया। न जाने रणवीर ने कितनी बार अपना वह सेहरा सुना था और इस बात में उसने हुनर साहब की कितनी आव-भगत की थी। हुनर साहब ने चेतन के साथ जा कर एक अच्छे कातिब से सुनहरी रोशनाई में उसे लिखवाया और सुनहरे फ्रेम में मढ़वाया था। वे न सिर्फ उसकी दाद जालन्धर के अपने सभी मिलने वालों से ले आये थे बल्कि 'विधवा सहायक' में उसके छपने का भी प्रबन्ध कर आये थे। वह सेहरा सुना कर यार्ग जालन्धरी मल से न सिर्फ उन्होंने प्रशंसा पायी थी वरन उन्हें वचन दे आये थे कि उनके सुपुत्र की शादी पर वे उससे बेहतर सेहरा लिख कर देंगे।। चेतन ने जितनी बार वह सेहरा सुना था, उसे हँसी आयी थी, क्योंकि रणवीर की सूरत-शकल और सरापे का, सेहरे में

१. नगीने जड़ा २. सोच-विचार और श्रम

वर्णित दूल्हे की सूरत-शक्ल और सरापे से, दूर का भी ताल्लुक न था और उसे कुछ वैसी ही कोफ्त हुई थी, जैसी नीला के अधेड़ पति की प्रशंसा में हुनर साहब का सेहरा सुन कर हुई थी।)

लेकिन उन दिनों उसने यह भी जाना कि इतने दिन पहले आ कर बस्ती में उनके अड्डा जमाने का एक दूसरा कारण भी है। रणवीर की शादी जिस गाँव में होने जा रही थी, वहाँ के सन्त की उन दिनों बड़ी चर्चा थी।—वे सिद्ध पुरुष हैं, भूत-भविष्यत के ज्ञाता हैं, अशरीर और सशरीर जहाँ चाहें पहुँच सकते हैं, बिगड़े काम बना सकते हैं, असाध्य रोग हाथ के स्पर्श मात्र से ठीक कर सकते हैं और रुपये पैसे, सोना-रूपा फल-मेवे, जो चाहें, इच्छा मात्र से उनके हाथों में चले आते हैं—ऐसी बहुत-सी बातें उस चमत्कारी सन्त के बारे में दोआबे भर में प्रसिद्ध थीं। हुनर साहब ने चेतन को लालडी के साईं के चमत्कारों की बात बतायी थी और कहा था, "मैं चाहता हूँ कि रणवीर की शादी के दिनों में साईं बाबा के दर्शन हो जायें, उनसे कुछ पल अकेले में मुलाकात हो जाय तो उनसे पूछूँ कि हमारे ये सितारे कब ठीक होंगे। कौन जाने बाबा के मन में दया आ जाय और उनके आशीर्वाद से सारे काम सिद्ध हो जायें।"

चेतन की आस्था सन्तों-महन्तों में जरा भी न थी, लेकिन वह हुनर साहब की तकलीफ जानता था। उसने उनकी बात नहीं काटी थी और कहा था, "इसमें क्या मुश्किल है। लालडी में बरात दो दिन तो रहेगी। कोई शहर तो है नहीं लालडी, गाँव है। मिल लीजिएगा साईं बाबा से।"

"नहीं, मुश्किल है," हुनर साहब ने बताया था, "मैंने सुना है कि बाबा मूडी आदमी हैं। रूही के भक्त हैं। किसी से मिलना-न-मिलना उनके मूड पर निर्भर करता है।"

हुनर साहब का ख़याल था कि रणवीर के ससुर लालडी के व्यापारी हैं, वे साईं बाबा के यहाँ आने-जाने होंगे और उनके माध्यम से साईं बाबा तक उनकी रसाई हो सकेगी। लेकिन जब उन्होंने पण्डित वेणीप्रसाद से पूछा था तो उन्हें मालूम हुआ था कि वहाँ तो चिराग तले अँधेरा वाली

बात है। पण्डित वेणीप्रसाद के समधी भी उन्ही की तरह आर्य समाजी विचारो के है और मन्तो-वन्तो मे उनकी कोई आस्था नही। वे कर्मयोग मे विश्वास रखते है और भूत-भविष्यत जानने के चक्कर मे नही पडते।

पण्डित वेणीप्रसाद की बात सुन कर हुनर साहब थोडे निराश हुए थे, लेकिन वे इतनी जल्दी हतोत्साह होने वाले जीव नही थे, "माई बाबा के दर्शन तो वहाँ जरूर करने है," उन्होने चेतन से कहा, "दर्शन ही नही करने, उनसे वक्त लेना है, उन्हे गीता का तरजुमा सुनाना और आशीर्वाद पाना है। अब यह कैसे मुमकिन होगा, कहा नही जा सकता। बाबा की मर्जी हमको दर्शन देने की होगी तो कोई सबब[1] वे बना ही देगे।"

चन्न चढ्या कुल आलम वेक्खे

गीत के खात्मे पर रतना पहला बन्द दोहरा रहा था और बाकी युवक भी उसके साथ गाने लगे थे। नीची कोठी पर जब हुनर साहब थक कर लेट गये थे और रतने के वतन पर भी नही चहके थे तो चेतन ने यही अनुमान लगाया था कि वे मन-ही-मन लालटा के सन्त से भेट करने का गुन्ताडा भिडा रहे है और जब उन्होने हठात उठ कर गीत के तीसरे बन्द की पुरजोर प्रशसा की तो चेतन को यही लगा था कि उन्होने मन-ही-मन कोई स्कीम बना ली है या इतनी देर चुप रहने से उनका मन घुटने लगा है, उन्होने कुछ और शेर और किस्से याद कर लिये है और वे अब किसी को बात नही करने देगे।

चेतन फिर सीधा लेट गया। रतना गीत खत्म कर चुप हो गया था कि सडक पर चलने वाले युवको मे से रिपु के मित्र, हरनामे ने तान लगायी

ओ, पिण्डा विच्चो पिण्ड सुनीदा
पिण्ड सुनीदा मोगा

१. कारण, जरिया

अध, ओत्थे दा इक साधू सुनोंदा
जिह्दी जग विच्च शोभा
आय, आन्दी जान्दी नूँ घड़ा चुकाउन्दा
लक्क विच्च मारे गोड्डा[1]

और सभी एक साथ गाने और नाचने लगे :

ते लक्क तेरा पतला जेहा
भार सहन ना जोग्गा
नी लक्क तेरा पतला जेहा
भार सहन ना जोग्गा[2]

और बार-बार इसी बन्द को दोहराते हुए वे भंगड़ा डालने लगे।

तभी हुनर साहब और रतना बलगाडी से नीचे उतर गये। भाई साहब फिर ऊँघने लगे थे। रणबीर ने हुनर साहब के चदरे को तहा कर उसका तकिया बनाया और भाई साहब से कहा कि वे लेट जायें। निश्तर फिर अध-लेटा हो गया। सड़क पर हरनामे ने दूसरा बन्द गाया :

ओय, पिण्डाँ विच्चों पिण्ड सुनोंदा
पिण्ड सुनोंदा माड़ी
ओत्थे दिआँ दो नाराँ सुनोंदियाँ
इक पतली इक भारी
पतली दा जद ब्याह जो होया
भारी रही कुँआरी।

और सभी मिल कर गाने लगे :

---

१. गाँवों में से गाँव सुना है, गाँव सुना है मोगा। वहाँ का एक साधु सुना है, जिसकी जग में शोभा। आती-जाती को घड़ा उठवाये, मारे कमर मे गोड्डा (घुटना)।

२. री, तेरी कमर पतली-सी है, भार सहने के योग्य नहीं है।

ते आप्पे लै जाणगे
जिन्हाँ नूँ लग्गे प्यारी
ते आप्पे....[1]

हरनामा और रिपु बहुत देर से पैदल चल रहे थे। जब रतना और हुनर साहब उतर गये तो वे दो बन्द गा कर बैलगाड़ी पर आ बैठे। हरनामा की जगह रतना गाने लगा और काफ़ी देर तक यह लोकगीत चलता रहा। तभी सहसा निश्तर अपने छोटे कद को ले कर उठा और खड़े हो कर उसने अपनी सुरीली आवाज़ में 'छई'[2] गाना शुरू किया :

ओ छई
ओ छई, रण्ण गयी बसरे नूँ गयी
(ते) रोकीं भाई कच्छ वालेया सरदारा
ओ तेरियाँ भुआवाँ गुड्डियाँ[3]
छई !

रतने ने बोल उठाया :

---

१. गाँवों मे से गाँव सुना है, गाँव सुना है माड़ी
वहाँ की दो नार सुनी हैं, इक पतली इक भारी
पतली का जब ब्याह हुआ तो भारी रही कुँआरी
वो ख़ुद ही ले जायेंगे, जिनको लगेगी प्यारी

२. (यह गाना बहुत मस्ती से गाया जाता है। बायाँ हाथ दायीं बग़ल में हल्के से रख कर दायीं बाँह के ज़ोर से बग़ल बजाते हुए, गाने वाले मुँह से 'छई' कहते हैं।)

३. औरत बसरे को भाग रही है; ओ कच्छे वाले सरदार, तुझ से बन पड़े तो रोक! ('गुड्डियाँ भुआवाँ' का मतलब है पकड़ कर चकफेरियाँ देना और तौर-बतौर घुमा देना। चकरा देना। शायद सरदार अपनी भागने वाली औरत से कहता है कि तुझे चोटी से पकड़ कर घुमा दूँगा।)

लाली मेरियाँ अक्खाँ विच्च रड़के
(ते) अक्ख मेरे यार दी दुखे[1]

निरन्तर बैठ गया था। बैठे-बैठे हुमक कर उसने दूसरा बोल उठाया :

केहड़े यार दा
ओ केहड़े यार दा तता दुद्ध पीत्ता
(ते) सड़ गइयाँ लाल बल्हियाँ[2]

हरनामे ने तीसरा बोल भरा :

ओ केहड़े यार दा,
ओ केहड़े यार दा गुतावा कीत्ता
(ते) अक्ख विच्च कक्ख पै गया[3]

नीचे सड़क पर से फिर चौथा बोल उभरा :

मैं यार दा
(हाय वे) मैं यार दा उलाम्भा लाहुणा
(ते) छुप जा चन्न वैरिया[4]

सहसा हरनामा बैलगाड़ी पर खड़ा हो गया और बोल खत्म होते ही, दायीं बगल बजाता हुआ बोला

छई,
ओ छई, रण्ण गयी बसरे नूँ गयी
ओ रोकी भाई कच्छ वालेया सरदारा
(ते) तेरिया भुआवाँ गुड्डियाँ, छई

१. आँख तो मेरे प्रिय की आयी है, लेकिन लाली मेरी आँखों में रड़कने लगी है।

२. किस यार ने गर्म दूध पिला दिया कि लाल होंट जल गये।

३. किस यार के यहाँ सानी-पानी किया है कि आँख में तिनका पड़ गया (इस बोली का यह भी अर्थ हो सकता है कि किस यार को भुस की तरह सानी-पानी कर दिया है कि आँख में तिनका पड़ गया है।)

४. मुझे तो यार का उलाहना दूर करना है, ओ बैरी चाँद छिप जा।

नीचे बकरे बुलाये जाने लगे। हरनामा बैठ गया तो निश्तर अपनी जगह खड़ा हो गया और दायाँ हाथ कान पर रख कर, बायाँ हवा में लहराते हुए उसने एक बहुत लम्बी, दिशाओं को गुँजाती हुई, 'ओये—ए-ए-ए' की तान भर कर बोली कहा :

मैं डरदी ना सुरमाँ पावाँ
(ते) अक्खियाँ च यार वस्सदा[1]
छई !

और सभी समवेत स्वर में गाने लगे

ओ छई, रण्ण गयी बसरे नूँ गयी
ओ रोकी भाई कच्छ वालेया सरदारा
ओ तेरियाँ भुआवाँ गुड्डियाँ
छई !

और सभी मस्त हो कर नाचने और गाने लगे। तभी किसी ने छन्द के अन्त में 'छई' कहते हुए उलटे हाथ होंठों पर रख कर 'ब-ब-ब-ब-' करते हुए बकरा बुला दिया और बोल-पर-बोल होने लगे। कभी-कभी एक ही बोल दो-दो, तीन-तीन जने मिल कर गाने, छई के बोल अलापने और बकरा बुलाने लगे। गाड़ीवान ने बैलों को सोटा दिया और वे भागने लगे। सब नीचे वाले चलती गाड़ी पर चढ़ गये। कुछ ऊपर आ गये, कुछ अगल-बगल खड़े हो गये—बदस्तूर गाते हुए।

लेकिन चेतन की आँखें झपकने लगी थीं। वह रात भर का जगा था। धूप मीठी और प्यारी लग रही थी। लोकगीत के बोलों और भागती हुई बैलगाड़ी के हिचकोलों में उसे नींद आ गयी!



१. मैं डरती हुई सुरमा नहीं डालती
आँखों में यार बसता है (उसे चोट न लग जाय !)



दस

चेतन जब नींद से जगा तो बैलगाड़ी रुकी थी और उसके साथी बैलगाड़ी से कूद रहे थे। इससे पहले कि वह आँखें मलता हुआ उठ कर बैठता, सब जा चुके थे। उसने गाड़ीवान से पूछा कि वे कहाँ रुके हैं। मालूम हुआ कि जालन्धर छावनी कब की पीछे छूट गयी है और बैलगाड़ी चहेड़ू की वेयी के पास रुकी है।

ओवरकोट पहने हुए ही धूप में सोने के कारण, सर्दी के बावजूद, चेतन के शरीर पर हल्का-सा पसीना आ गया था। बैलगाड़ी से उतर कर उसने ओवरकोट उतार कर बाँह पर डाला और जरा आगे, पुल की रेलिंग के सहारे कुछ क्षण को खड़ा, सामने का नजारा करने लगा। बहुत नीचे सर्दियों में सूखी-सिमटी वेयीं, दोनो ओर की हरियाली के बीच झिलमिलाती, बह रही थी। सामने रेलगाड़ी का पुल था, न जाने बचपन से ले कर अब तक कितनी बार चेतन गाड़ी मे बैठा हुआ वहां से गुजरा था। वह छोटी-सी नदी न जाने किस पहाड़ से उतरती थी, लेकिन चेतन ने उसे कभी सूखे हुए नही देखा था। वह बारहों महीने बहती थी। सख्त सर्दियों मे भी उसमे पानी की लकीर गाड़ी से दिखायी दे जाती थी। बरसात मे वेयी बड़ी नदी का रूप धर लेती थी और किनारे तोड़ कर दूर तक फैल जाती थी। फिर धीरे-धीरे सिमटती हुई, सर्दियों मे वह पानी की बारीक-सी लकीर बन जाती थी। लेकिन इस प्रक्रिया मे, दोनों ओर की धरती को हरियाली प्रदान कर जाती थी। चेतन ने देखा—आगे-आगे हुनर साहब, पीछे-पीछे भाई साहब (हां, भाई साहब भी, अपना सब डॉक्टरपन भूल कर), फिर रणवीर, निश्तर,

रतना, रिपुदमन और अन्य युवक, बच्चों की तरह किलकारियाँ मारते, भागे जा रहे थे। जरा दूर, शेष सारे बराती नहा-धो कर, धरती पर दरी बिछाये बैठे थे और दोपहर के खाने की व्यवस्था हो रही थी। सहसा उसके मन मे न जाने क्या आया कि वह भी उधर को भागा और मुँह का गोला बना कर, उसमें जबान हिलाता और 'ओ-लो-लो' की आवाज करता हुआ, पुल के नीचे वाली पगडण्डी पर भागता हुआ उतर गया।

ऊपर से बेयी चाहे पानी की पतली लकीर ही लगती थी, लेकिन नीचे किनारे पर पहुँच कर चेतन ने देखा कि सिकुड़ने के बावजूद दस-बारह गज़ चौड़ा पाट था। किनारे की झाडियाँ और मरकण्डे बहुत दूर तक बढ गये थे, इसलिए ऊपर पुल से पानी की लकीर ही झिलमिलाती थी।

चेतन के देखते-देखते उसके साथियों ने कपड़े उतार कर, नदी मे छलाँगे लगा दी। भाई साहब हिचकिचाये। वे तो सुबह नहा कर चले थे, लेकिन हुनर साहब के जोर देने पर वे भी कपड़े उतार कर नदी मे कूद गये।

हालाँकि हवा तेज थी, लेकिन सूरज की धूप सीधी पड़ रही थी, चेतन सुबह नहा कर चला था, लेकिन दूसरों को नहाते देख कर उसका भी मन हुआ कि एक डुबकी लगा ले। कई बरातिय ने नहा कर अपने लाल साफे धो-निचोड़ कर वहीं किनारे की धूप मे फैला दिये थे। चेतन ने कपडे उतारे, वहीं से एक साफ़ा उठा कर बाधा और छप्प से पानी मे कूद गया।

ठण्डा बर्फीला पानी, जो लगता था कि टखनो तक ही गहरा होगा, कमर तक और कहीं-कहीं सीने तक गहरा था। पहले स्पर्श मे चेतन का शरीर बेतरह सिहर उठा और ठण्ड से दात बजने लगे। लेकिन उसने ठण्ड की परवा नहीं की और दो-एक डुबकियाँ लगायी और जोर-जोर से बदन मला तो उसे मजा आने लगा। निश्तर और हुनर साहब रणवीर पर पानी के छींटे मार रहे थे और उन्हे रोकने के प्रयास मे हँसता हुआ उसका लम्बोतरा चेहरा अजीब बेवकूफी-भरा लगता था। पहले तो चेतन ने कहा कि क्यों इस ग़रीब को तंग कर रहे हो, लेकिन फिर वह भी उनके साथ

उस कौतुक में शामिल हो गया। मजबूर हो कर रणवीर पलट कर अन्धा-धुन्ध पानी उछालने लगा। फिर सब एक-दूसरे पर पानी फेंकने लगे। और-तो-और, भाई साहब भी इस बचकाने खेल मे शामिल हो गये....

चेतन को वह सब बहुत अच्छा लग रहा था। लेकिन सहसा वह डरा कि उसे ठण्ड न लग जाय, इसलिए दूसरों को नहाते और खरमस्ती करते छोड़, वह बाहर निकल आया। वहीं सूखते हुए एक साफ़े को उठा कर उसने बदन पोंछा। कपड़े पहने। ओवरकोट भी डाल लिया और फिर उसने दोनों साफे गेंद की तरह गोल-मोल करके रिपुदमन की ओर फेंक दिये कि वह पछाड़ कर सूखने के लिए डाल दे।....हालाँकि उसे भूख लग आयी थी, लेकिन वह क्षण भर वहीं तट पर खड़ा, नहाने वालो को देखता रहा—दीन-दुनिया की चिन्ता छोड़, वे नहाने और पानी उछालने मे मस्त थे।

जिन्दगी का संघर्ष आदमी को धीरे-धीरे कैसे मशीन बना देता है—चेतन ने सोचा, उसकी बातचीत, चाल-ढाल, यहाँ तक कि सोच तक मशीनी हो जाती है—सबेरे समय से उठना, जल्दी-जल्दी नित्य-कर्म से निबट, नाश्ता करके या खाना खा कर दुकान, दफ़्तर, कचहरी या क्लिनिक या कारखाने जाना—खाली है तो काम की तलाश करना, काम पर लगे है तो उसे निबटाना—इस तमाम दौड़-धूप और जद्दो-जेहद मे आदमी भूल जाता है कि वह पशु नहीं है, जिसका एकमात्र काम दिन भर चुगना या चरना या अपनी नस्ल की वृद्धि करना है, कि उसके पहलू मे एक दिल भी है, जिसे उसने जिन्दगी की कशमकश, ज़रूरतो और मसलहतों के बड़े-बड़े पत्थरों के नीचे दबा रखा है—काश, आदमी कभी-कभी सब काम-काज, चिन्ता-फ़िक्र, पद और प्रतिष्ठा का विचार छोड़ कर एकदम स्वतन्त्र और स्वच्छन्द, बच्चो की सरलता के साथ खेल-कूद सके! इक़बाल का वह शे'र उसे फिर याद आ गया :

अच्छा है दिल के साथ रहे पासबाने-अक्ल
लेकिन कभी-कभी इसे तन्हा भी छोड़ दे

इस बीच दूसरे सभी लोग बेयी से बाहर आ गये थे। भूख सभी को तेज लग आयी थी। कपडे पहन कर सब दरी पर आ बैठे। आधी रात तक घर की औरतों ने शुद्ध घी का मोयन डाल कर जो पराठे पकाये थे, आम के पुराने अचार और आलू की सूखी तरकारी के साथ वे सब के हाथों पर रख दिये गये। पण्डित वेणीप्रसाद ने खास तौर पर डॉक्टर साहब, चेतन और हुनर साहब को सुनाते हुए कहा, "भाई, आप लोग शायद पसन्द न करे, लेकिन रसे वाली तरकारियाँ लाना मुश्किल था...."

हुनर साहब ने उन्हे बात नही खत्म करने दी। वे पराठे का निवाला अचार मे छुला कर आलू के साथ मुँह मे रखने वाले थे कि रुक कर बोले, "पण्डित जी, आप क्या बात करते है! शुद्ध घी मे पके हुए लजीज पराठे और आम का पुराना अचार तो बादशाहों को भी नसीब नही होता और इस वक्त तो इतनी भूख लगी है कि सूखी रोटी भी अचार के साथ मिल जाती तो दावते-समरकन्द[1] का मजा आ जाता। आपने शे'र नही सुना

भूख हो तेज़ तो लेटी भी मजा देती है
हलक़ के नीचे उतर जाती है हलवा हो कर।"

और यह कहते हुए उन्होंने निवाला मुँह मे रख लिया।

शे'र निहायत घटिया था और उन बीसियों शे'रो मे से था जो हुनर साहब को जबानी याद थे और जिनमे से कोई-न-कोई, वे हर मौके पर फिट कर दिया करते थे। लेकिन चेतन ने सोचा तो लगा कि अपने तमाम भौंडेपन के बावजूद उस शे'र मे एक सचाई है। बिना घी के, आटे को भून कर पानी और चीनी की मदद से बनी हुई लप्सी, जिसमे चीनी न हो तो किताबे जोड़ने के काम आये—पंजाबी मे उसे लेटी कहते है। उसकी याद से ही चेतन की तबियत मतलाती थी, लेकिन भूख हो तेज तो .. यह सच था कि 'लेटी भी मजा देती है।' और इसमे भी शक नही था कि गले मे हलवा बन कर उतर जाती है। उसने देखा, सब उन पराँठो पर ऐसे टूट

१. शानोशौकत-भरी पुर-तकल्लुफ़ दावत।

पड़े थे, जैसे उन्होंने यह नियामत कभी न चक्खी हो।

चेतन चुपचाप मजा ले कर अचार के साथ पराँठे खाता रहा। सहसा उसकी याद में एक घटना कौंध गयी। वे दादा के साथ छोटे भाई शिव-शंकर के मुण्डनों पर चिन्तपुरनी गये थे, वापसी पर, बहुत तड़के, तारों की छाया में गग्रेट से चल दिये थे। होशियारपुर के चो[1] के किनारे एक पुरानी बावड़ी के समीप उन्हें बेहद भूख लग आयी थी। माँ ने डिब्बे से बासी पराँठे और आम का अचार निकाल कर उन्हें एक-एक पराँठा दिया था। गर्मियों के दिन, पराठे सूख गये थे। लेकिन अचार के साथ उस सूखे पराठे को खाने और बावड़ी का पानी पीने में चेतन को जो मजा आया था, उसे याद नहीं कि फिर कभी मयस्सर हुआ. .

चेतन की आदत थी कि वह गिन कर चार फुल्के खाया करता था। पराठे फुल्कों से तगड़े थे, इस पर घी-सने; चेतन पाँच-साढ़े पाँच खा गया। और उसका ही नहीं, सारे बरातियों का यही हाल था।

खाने के दौरान चेतन ने देखा, हालाँकि रणवीर उनके साथ ही पास में बैठा खाना खा रहा है, लेकिन उसका सारा ध्यान इस पर लगा है कि भाई साहब ठीक से खाते हैं कि नहीं। उसे न डॉक्टर साहब का खयाल था, न अपने प्यारे जीजा का, न किसी अन्य मित्र का, लेकिन भाई साहब के मुँह में जाने वाले हर निवाले का जैसे उसे फिक्र थी। सब्जी या पराँठे ले कर जो भी आता, रणवीर उस पर ज़ोर देता कि भाई साहब को दे।

भाई साहब तो गिना-मिथा खाने वाले थे, लेकिन रणवीर के अनुरोध से उन्होंने भी ज्यादा खा लिया था।—चेतन के सामने सुबह से उस वक्त तक रणवीर का सारा व्यवहार घूम गया.. पहले जब-जब चेतन बस्ती गया था, रणवीर उसके आगे-पीछे घूमता था, लेकिन इस बार उसने रणवीर के व्यवहार में थोड़ा-सा अन्तर पाया था। वह चन्दा को ले कर जब बस्ती पहुँचा था तो उसकी कुशल-क्षेम पूछने के बदले रणवीर ने सबसे पहला

१. पहाड़ी नाला

प्रश्न यही किया था कि भाई साहब नहीं आये क्या ? और जब चेतन ने कहा था कि वे रात को आयेंगे और सुबह बरात में शामिल हो जायेंगे तो रणवीर ने फिर पूछा था, "वे आयेंगे तो जरूर ना ?" और जब चेतन ने उसे आश्वासन दिया था कि हाँ वे ज़रूर पहुँच जायेंगे तो यद्यपि वह उस वक्त सन्तुष्ट हो गया था तो भी दिन में दो-तीन बार चेतन से भाई साहब के बारे में पूछ लेता था।....'इसने लाहौर आ कर डेण्टल कॉलेज खोलने का फ़ैसला कर लिया है,' सहसा चेतन ने मन-ही-मन सोचा, 'और भाई साहब ने फ़ैसला न कर लिया होता तो वे कभी न आते।'... खाना वह खत्म कर चुका था। वह चुपचाप उठा और बेयी की तरफ़ चल दिया।

खाना खा कर सब ने बेयी से पानी पिया। धूप में पड़े साफ़े सूख गये थे। उन्हें समेट कर बर्तन-भाण्डे और दरी ले कर सब ऊपर सड़क पर चढ़ गये।

गाड़ीवान भी इस बीच तृप्त हो कर खाना खा चुके थे। बैल जोड़ दिये गये और दोनों बैलगाड़ियाँ आगे-पीछे चल दीं। उन लोगों ने सोचा था कि मील-आध मील पैदल चलेंगे, लेकिन बैल सुस्ता कर ताज़ा-दम हो चुके थे। बहुत तेज चल रहे थे। सब के पेट भरे थे। चलना उनके लिए कठिन हो गया। वे सब-के-सब ऊपर चढ़ गये। भाई साहब ने फिर ताश निकाल ली। इस बार रमी की बजाय कोट-पीस होने लगी।

चेतन को ताश का शौक नहीं था। वह कुछ देर बैठा, खेल में रस पाने की कोशिश करता रहा। फिर जब उसे बोरियत महसूस हुई तो वह सुबह की तरह एक तरफ लेट गया और चुपचाप पेड़ों के ऊपर नीले आकाश को देखने लगा। सड़क के दोनों ओर लगे शीशम के पेड़ों की डालियाँ कहीं-कहीं आपस में मिल कर पूरी सड़क को आच्छादित कर देती थीं। बीच-बीच में झाँकता नीला आकाश बहुत भला लगता था। ताश खेलना ही नहीं, खेलते हुए लोगों को देखना भी चेतन को समय गँवाने के बराबर लगता था। उसके पास करने को कुछ न हो तो वह उस समय को पढ़ने

में, चुपचाप बैठे या लेटे हुए सोचने में अथवा सपने बुनने में बिताना, ताश खेलने से कहीं बेहतर समझता था।....दूर कहीं, बहुत ऊपर आकाश में एक बड़ा-सा पक्षी उड़ रहा था, जिसका पेट चमकीला भूरा था। शायद कोई मुर्गाबी थी अथवा उकाब। उड़ते-उड़ते वह तिरछा होता तो सूरज की किरणों से उसका पेट और पंख सुनहले हो कर चमक उठते। चेतन की निगाहें उसी का पीछा करती रहीं। पेड़ों की शाखाओं के कारण कभी वह ओझल हो जाता, कभी फिर दिखायी देने लगता। चेतन को खुली धूप में, खुली सड़क पर, बैलगाड़ी की छत पर लेटे-लेटे, पेड़ों के हरियाले गुम्बदों के नीचे से गुजरना बहुत अच्छा लग रहा था...काश, जिन्दगी आसान होती, कोई चिन्ता-फ़िक्र, इच्छा-कांक्षा न होती और ऐसे ही खुले आकाश के नीचे, पेड़ों की झिलमिल धूप-छाया में, बैलगाड़ी पर लेटे-लेटे दिन-पर-दिन बहे चले जाते। और उसे किसानों से ईर्ष्या हो आयी, जिन्हें न जाने रोज कितनी बार यह सुख मिलता है... लेकिन क्या उन गरीब किसानों के पास उस अपरम्पार सौन्दर्य को देखने वाली आँखें भी हैं? क्या हाड़-तोड़ मेहनत उनके पास इस सौन्दर्य का रस पाने के लिए समय या शक्ति भी रहने देती है? कौन जाने शहरों की जिन्दगी और बाजारों और सुख-सुविधाओं के लिए वे उसी तरह न तरसते होंगे, जैसे उसका मन गाँवों के विस्तार और शान्ति और प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए तरसता है।

...पर देखने वाली आँख और महसूस करने वाला दिल तो आदिम मानव के पास भी था। उसकी गुफाओं में भित्ति-चित्र इस बात के साक्षी हैं और आज का किसान तो उस आदिम अवस्था से बहुत आगे निकल आया है। तभी चेतन की स्मृति में कई टप्पे और बोल कौंध गये, जिन्हें पंजाब के किसानों ने अनायास रच दिया था और जिनकी सूक्ष्मता बड़े कवियों के यहाँ भी दुर्लभ थी...

सज्जन पक्कियाँ नाक्खाँ[1]
मैं तैन्नूँ की आक्खाँ[2]?

१. साजन नाशपातियाँ पक गयीं २. अब मैं तुझे क्या कहूँ।

मेरा यार चम्बे[1] दी माला
दिल विच्च रए महकदा

फुल्ल तोड़ के कदीं न खान्दे
भौर भुक्खे वासना[2] दे

दिन चढ़दे दी लाली, रूप कुआरी दा[3]

मींह् फ़ज्जरॉं दे वस्सदे ने
कलियॉं दे घुण्ड खुल्ल गये
फुल्ल ठाह ठाह हस्सदे[4] ने

नज़र और ख्याल की यह बारीकी तो बेहद हस्सास और भाव-प्रवण हृदय की चुगली खाती है। जरूर ही चारों तरफ फैले देहात में ऐसे भाव-प्रवण हृदय और ऐसी बारीक निगाहों वाले लोग होते होंगे, जिनके होंटों से अनायास ऐसे बोल फूट पड़े हैं।

चेतन ने आकाश की गहराइयों में देखा। जाने वह सुनहरा-भूरा पक्षी किधर चला गया था? चेतन को कमर के नीचे कुछ असुविधा हो रही थी। शायद दरी के नीचे कोई बिस्तर खिसक गया था। चेतन उठ कर बैठ गया।

ताश पूरे ज़ोरों पर चल रही थी। भाई साहब व्यूह-रचना में तल्लीन किसी सेनानायक की तरह पत्ते लगा रहे थे। चेतन को उन दिनों की याद हो आयी, जब अपनी आवारगी के दिनों में भाई साहब पण्डित बनारसी दास की दुकान पर ताश खेलते वक्त इसी तरह पत्ते लगाया करते थे।

लेकिन दूसरे ही क्षण बैलगाड़ियाँ जर्नैली सड़क से लालड़ा को जाने

१. चम्पा २. सुगन्ध।

३. रूप कुआँरी का, चढ़ते दिन की लाली-सा है।

४. पानी सुबह से पड़ रहा है, कलियों के घूँघट खुल गये हैं और फूल ठठा कर हँस रहे हैं।

वाले कच्चे रास्ते पर उतर गयी। हिचकोले इतने जोर से लगे कि उनकी सारी व्यूह-रचना धरी-की-धरी रह गयी।

कहने को तो उस रास्ते को भी सडक ही कहा जाता था, कभी उस पर कंकड-पत्थर भी कूटे गये होंगे और इंजिन भी चला होगा, लेकिन उस वक्त वहा किसी कंकड-पत्थर का नाम-निशान नही रह गया था और सडक बलही मिट्टी की एक छोटी-सी नदी बन गयी थी—दोनो ओर के खेतो से जरा नीची। बैलगाडियो के निरन्तर चलने से उसमे बडी-बडी लीके पड गयी थी और चूँकि वर्षा शायद उस तरफ नही हुई थी, इसलिए मिट्टी सूख गयी थी और पैदल चलने से भी उडती थी। बैलगाडी पर बैठे-बैठे उन्हे बेतरह झटके लग रहे थे। गहरी लीको के कारण गाडी कभी एक ओर को झुक जाती, कभी दूसरी ओर को। ताश खेल पाना एकदम असम्भव हो गया। भाई साहब जीत रहे थे, लेकिन कोई चारा न देख कर, आखिर उन्होने खेल बन्द कर दिया। सभी बैलगाडी से उतर गये और सडक के किनारे मस्त-मस्त चलने लगे। भाई साहब झल्लाये हुए बडबडाए— अच्छी बरात मे जा रहे है। इस धूल-मिट्टी मे चलते-चलते न जाने शाम तक कैसी दुर्गत हो जाय।

चेतन उनकी बडबडाहट सुन कर चौका। कहीं रणवीर या उसके छोटे भाई ने उनकी बडबडाहट न सुन ली हो। लेकिन दूसरे लोग जरा परे थे। वह हँसा, 'अब आ गये है भाई साहब तो इसका मजा भी ले लीजिए!' उसने कहा 'झल्लाने से कोई फायदा नही सिवा उन लोगो का मन खराब करने के। [illegible] रणवीर की बरात मे शामिल हुए थे।'

भाई साहब कोई करारी बात कहने जा रहे थे कि तभी रतने ने बायाँ हाथ कान पर रख कर तान लगायी

ओए, नदी किनारे हाथी चुगदा

ओए हाथी चुगदा

हाथी चुगदा

मैं समझेआ मुर्ग़ाबी
ओए, मैं समझेआ मुर्ग़ाबी
पूँछ जु चुक के वेक्खन लग्गा
अट्ठाँ दिनाँ नूँ मस्सेया[1] ।

और उसके साथी जोर से ठहाका मार कर हँस उठे ।

भाई साहब चौंके । चेतन का ध्यान भी भटक गया ! हुनर साहब की समझ में कुछ नहीं आया । उन्होंने कहा, "क्या मतलब है भई, इस गीत का ? जरा फिर से सुनाओ ।"

बजाय मतलब बताने के रतने ने कहा, "आप बूझिए !" और फिर वही बन्द दोहरा दिया ।

इससे पहले कि हुनर साहब या चेतन या भाई साहब ही कोई अर्थ लगाते, हरनाम सिंह ने और भी ऊँची आवाज़ में वैसी ही दूसरी कविता सुनायी :

इश्क जज पहाड़ी चढ़्या
लम्बे-लम्बे बाँस
ओए, लम्बे-लम्बे बाँस
हत्थ जो पा के वेक्खन लग्गा
चप्पा भर दिन चढ़्या[2]

हुनर साहब पूरे जोर से ठहाका मार कर हँसे, "अरे भई, इसका कोई मतलब भी है ?"

"जिसके बोल का कुछ मतलब निकल आये ।" रतने ने कहा, "उससे हम दवन्नी[3] धरा लेंगे ।"

---

१. नदी किनारे हाथी दाना-दुनका चुग रहा था । मैंने समझा कि मुर्ग़ाबी है, दुम उठा कर देखने लगा तो आठवें दिन अमावस ।

२. इश्क जज पहाड़ी चढ़ा, वहाँ लम्बे-लम्बे बाँस थे, हाथ डाल कर देखने लगा तो एक चप्पा भर दिन चढ़ा था । ३. दुअन्नी, दो आने ।

और उसने बताया कि इस बार देवी तालाब के पोने में बैतबाज़ी के मुक़ाबिले के साथ-साथ ऐसे बैंतों के भी मुक़ाबिले हुए, जो लगें तो बढ़िया, लेकिन हों एकदम अललटप्प और जिनका कोई मतलब न हो। उसने यह भी बताया कि खुद उसने और उसके मित्रों ने ऐसे कई बैंत तैयार किये और उसने बैंत सुनाये।

तब सब को कुछ ऐसा जोश आया कि सभी बढ़-बढ़ कर अललटप्प बैंत बनाने और सुनाने लगे।

चेतन को वह सब ऊलजलूल बैंतबाज़ी निरी बेवकूफ़ी लगती थी, लेकिन जब हुनर साहब ने उससे कुछ सुनाने को कहा तो बिना कुछ कहे, वहीं बना कर उसने भी एक बैंत सुना दिया :

> **ओए, दिल बनियानी दा भर-भर आया**
> **बर्फ़ पई कश्मीर**
> **ओए बर्फ़ पई कश्मीर**
> **नत्था सिंह दी भैंस रँभाई**
> **चलो नदी दे तीर**

बैंत सुनाते ही उसे लगा कि इसका तो मतलब निकलता है, लेकिन किसी ने इस पर ग़ौर नहीं किया और सब 'हा-हा' करने और दाद देने लगे।

तभी रिपुदमन ने बढ़ कर खेत से चने का एक पौधा उखाड़ लिया और हरे चने निकाल-निकाल कर खाने लगा। तब कविता-अविता भूल कर सब खेतों में घुस गये।

सड़क दोनों ओर के खेतों से काफ़ी नीची थी। किनारे-किनारे खेतों की मेड़ों पर काँस उगा था। दोनों ओर, जहाँ तक नजर जाती थी, गेहूँ के हरे-भरे खेत थे, जिनमें चना भी बोया हुआ था। मेड़ों पर सरसों लगी थी। बीच में कोई पूरा-का-पूरा खेत सरसों का था। पीले फूल उस हरियाली की यकरंगी को मिटा रहे थे। हवा तेज़ थी और खेतों में दूर-दूर तक लहरें-सी बनती

चली जाती थी। कहीं-कही गन्ने के खेत खड़े थे और जहाँ रहट थे, वहाँ आम-जामुन के झुण्डों में छिपे रहट 'रूँ रूँ', 'रीं री' कर रहे थे। तेज़ पछुआ चल रही थी और बैलों के खुरों और बैलगाड़ियों के पहियों से सड़क की मिट्टी आँधी-ऐसी उड़ कर खेतों पर बिछ रही थी। सब लोग चने छीलते और खाते-बतियाते बढ़े जा रहे थे। काफी दूर चलने पर सड़क के निकट ही गन्ने का एक खेत मिला। रिपु और रतना उसमे घुस गये और आठ-दस गन्ने तोड़ लाये। तब जिन बरातियों के हाथों में चने थे, उन्होंने भी उन्हे फेंक कर एक-एक गन्ना ले लिया।

गन्ने पतले, सख़्त और रसीले थे। न जाने चेतन ने कितने वर्षों बाद ये पतले, सख़्त गन्ने चूसे थे। उसे बहुत अच्छा लगा। कुछ और चलने पर फिर गन्ने का एक खेत आया। किसान खेत पर ही था, इसलिए उन्होंने गन्ने का एक पूरा पूला खरीद कर बैलगाड़ी पर रख लिया। सड़क अब कुछ बेहतर हो गयी थी और वे थक भी गये थे। सब-के-सब बैलगाड़ी पर चढ़ गये और गन्ने चूसने लगे।

चार-साढ़े चार बजे होंगे, जब बैलगाड़ियाँ सड़क के निकट ही चलने वाले एक रहट के पास रुकीं। शाम उतर आयी थी। हालाँकि वे रास्ते में चने टूँगते और गन्ने चूसते आये थे और उनके होंठों के कोने फट गये थे, लेकिन मीलों उस ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर चलने और बैलगाड़ी के धक्के खाने के कारण उन्हें भूख लग आयी थी। हवा रुक गयी थी, लेकिन सूरज ढल जाने के कारण ठण्ड बढ़ गयी थी। पेड़ों के घने झुण्ड में अकेला रहट बड़ा सूना-सूना लग रहा था—सूना और जैसे सदियों पुराना। यद्यपि इधर बहुत-से रहटों पर मिट्टी की बड़ी-बड़ी टिण्डों के बदले टीन के डिब्बे लग गये थे, लेकिन इस रहट पर वही पुरानी टिण्डें लगी थीं, जिन पर निरन्तर पानी मे रहने की वजह से, काई जम गयी थी और जो हरी-हरी लग रही थी।

रहट के करीब ही एक छप्पर था, जिसके बाहर एक मुसलमान किसान

बैठा हुआ हुक्का पी रहा था। चेतन ने आदत के मुताबिक कुएँ में झाँक कर देखा—पानी बहुत नीचे था। वह कुछ क्षण टिण्डों को भर कर ऊपर आते और अपना पानी नीचे कुएँ पर लगी टीन की चौड़ी नाली में उँडेलने देखता रहा। फिर उसने जा कर धार के नीचे हाथ-पैर और मुँह धोया। पानी यख था, तो भी उसे हाथ-मुँह धोना अच्छा लगा। इस बीच रहट के पास एक दरी बिछ गयी थी। उस पर शीरीनी, शकरपारों और बेसनी सेव के कनस्तर रख दिये गये थे और एक-एक मुट्ठी शीरीनी, शकरपारे और बेसनी सेव सब को दे दिये गये।

शीरीनी और शकरपारे खस्ता थे। चेतन को भूख भी लग आयी थी। उसे वे जालन्धर के बोहड़ वाला बाजार की 'आर्या दी हट्टी'[1] की मिठाई से भी ज्यादा स्वादिष्ट लगे। सेव वह नही खा सका। खस्ता तो थे, पर उनमें लाल मिर्चे थी। यूँ भी उसे सेव पसन्द नही थे, सिर्फ़ उनकी कांजी अच्छी लगती थी और उसका खयाल था कि गाजर की कांजी की अपेक्षा बेसनी सेव की कांजी कही ज्यादा स्वादिष्ट होती है।

दिन भर मस्ती करते हुए वे लोग थक गये थे। आगे पैदल चलना हुनर साहब या भाई साहब या चेतन के लिए कठिन था। नाश्ता करके और रहट से पानी पी कर वे बैलगाड़ी पर जा बैठे।

सूरज काफ़ी ढल गया था। खेतो और गाँवो के कच्चे मकानो पर लम्बे-लम्बे साये उतर आये थे। सूरज की पीली-सुनहली धूप केवल पेड़ों की फुनगियों पर दिखायी देती थी और दायें-बायें, दृष्टि की सीमा तक फैली हुई हरियाली पर सन्नाटा उतर आया था। हवा नही थी, लेकिन ठण्ड जैसे अदृश्य झर रही थी। दिन भर हरियाली को देखते-देखते चेतन की आँखें थक गयी थी। उसे बेहद ऊब हो रही थी और वह चाहता था कि वे सब जल्द-से-जल्द लालड़ो पहुँच जाय।

---

१. आर्यों की हट्टी

लेकिन लालड़ाँ का कही नाम-निशान न था। एक के बाद एक—तीन गाँव रास्ते में आये। दूर ही से पेड़ों के झुण्ड और उनमें से उठता धुआँ गाँव के होने की गवाही देता। निकट आने पर कच्चे मकानों के सिलहूत उभरते, जौहड़ के सड़ते पानी की दुर्गन्ध नथुनों में भर जाती। बकरियों और भेड़ों की 'मैं मैं', 'भैं भैं' सुनायी देने लगती और गाँव के बाहर ही से कुत्ते भूँकने लगते और बैलगाडियों के अगल-बलग़ भूँकते हुए, उन्हे गाँव के काफ़ी बाहर तक छोड़ आते।

चेतन को बताया गया था कि लालड़ां अब दूर नही है। सूरज डूबते-न-डूबते वहाँ पहुँच जायेंगे। लालड़ा से दो मील इधर गोविन्दपुर में बाजे-गाजे और गैस-हण्डों के साथ लोग बरात की अगवानी को आयेंगे। हर बार जब वे अगले गाँव के पास पहुंचे थे, चेतन को आशा बँधी थी कि गोविन्दपुर आ गया; कि गाँव के बाहर ही उन्हे कोई रोक लेगा; फिर आगे-आगे सिरों पर गैस के हण्डे उठाये, गाँव के मजूर और 'दिलदार कमन्दाँ वाले दा' अथवा 'तूम्बा वज्जदा ना' या किसी ऐसे ही लोकप्रिय गीत की धुन बजाते हुए बैण्ड वाले और उनके पीछे-पीछे बराती और फिर सामान से भरी हुई बैलगाड़ियाँ—यूँ वे लोग लालड़ाँ में दाख़िल होंगे। लेकिन तीसरा गाँव भी पीछे छूट गया। जब कुत्ते भूँक-भूँक कर लौट गये तो चेतन ने ओवरकोट को शरीर के साथ कसते हुए चारो ओर निगाह दौड़ायी। बेकिनार सन्नाटा और उदासी। पश्चिम मे सूरज डूब गया था और उसकी जगह दहकता हुआ लावा आकाश की ओर बढ़ रहा था। दायें-बायें घने बादल थे, जो नामालूम तौर पर बढ़ते हुए, धीरे-धीरे उसे ग्रस रहे थे, आकाश में हल्की-हल्की लाली फैल रही थी और देहात में उठने वाला धुआं और कोहरा, वातावरण पर छाने लगा था।

चेतन अपनी सुध-बुध खो कर पश्चिमी क्षितिज पर आँखें जमाये था। सहसा हवा तेज चलने लगी। वे घने बादल, जिन्होंने उस लावे को निगल लिया था, हवा के कन्धों पर चढ़े, बड़े भयानक देवों की तरह बढ़ने लगे।

देखते-देखते उन्होंने आकाश को ढंक लिया। गाड़ीवानों ने बैलों की पीठ पर साँटे जमाये। थके होने के बावजूद बैल दौड़ने लगे।

सब एकदम चुप थे। ताश खेल कर, पैदल चल कर, बातें करके और गीत गा कर वे थक गये थे। सब के मन में एक ही बात थी—वे लालड़ाँ कब पहुँचेंगे? सहसा चेतन ने अपने गाड़ीवान से पूछा, "क्यों बई, किन्नी दूर ए लालडा[1]?"

"बस जी, एही कोई कोस-दो-कोस[2]।"

"यार हर बार कोस-दो-कोस कह देन्ना एं। तेरे एह कोस-दो-कोस कदी खतम वी होणगे[3]।" और उसने हुनर साहब से कहा:

"तीन गाँव गुज़र गये हैं। हर बार पूछने पर इसने यही जवाब दिया है। साले कोस न हुए, योजन हो गये।"

हुनर साहब ने लम्बी साँस ली और गुनगुनाये:

"इसी उम्मीद पर मीलों चले जाते हैं दीवाने
वो उट्ठा पर्दा-ए-महमिल, वो निकला हाश महमिल से।"

हुनर साहब शायद मूड में आ रहे थे। लेकिन खादी के कुर्ते-धोती, पट्टी की ऊनी वास्केट और गर्म चदरे के बावजूद उनके दाँत बजने लगे थे। "मौसम तो ऐसा है कि पास में व्हिस्की की बोतल हो, दो-चार दोस्त हों और ढाल कर देने वाला साकी हो। तब न हमें सर्दी की फिक्र हो, न जल्दी लालड़ाँ पहुँचने की। कयामत तक हम इसी तरह बैलगाड़ी पर बैठे हुए चले जा सकते हैं।" हुनर साहब ने कहा।

वे ताबड़तोड़ कई गर्म-गर्म शे'र पढ़ने वाले थे कि उनकी नाक पर एक मोटी बूँद गिरी। शे'र उनके दिमाग से हवा हो गया, "पानी बरसने ही वाला है," उन्होंने हठात कहा। उनके स्वर में कुछ अजीब-सा भय था।

---

१. क्यों भाई लालड़ाँ कितनी दूर होगा? २. यही कोई कोस-दो-कोस।
३. यार हर बार कोस-दो-कोस कह देते हो। तुम्हारे ये कोस-दो-कोस कभी ख़त्म भी होंगे।

सामने किसी गाँव के सिलहूत दिखायी दे रहे थे। बुजुर्गों वाली बैलगाडी उसके करीब पहुँच रही थी। उन्होंने बैलों को जरा तेज चलाने का आदेश दिया। बैल थक गये थे। कुछ क्षण भाग कर फिर पहले की तरह सोये-सोये चलने लगे लेकिन गाड़ीवान ने उनकी माँ-बहन के साथ निकट का सम्पर्क स्थापित करते हुए, दो-चार साँटे उनकी पीठ पर रसीद किये बैलों ने हुम-सा कर कन्धों से जोर लगाया और भागने लगे।

लेकिन बादल शायद उसी वक़्त की प्रतीक्षा कर रहे थे। ऐन उस वक्त टपाटप बड़ी-बड़ी बूँदें पड़ने लगीं।

सब ने अपने-अपने कोट और चदरें और ओवरकोट सिर पर ले लिये। गाँव दो-एक फर्लांग पर सामने दिखायी दे रहा था। जब बाकायदा पानी बरसने लगा तो लड़के बैलगाड़ियों से उतर कर सरपट गाँव की तरफ भागे, लेकिन भाई साहब और हुनर साहब को यह लौण्डियाई पसन्द नहीं आयी। विवश चेतन भी उनके साथ ही रह गया और दूल्हा के नाते रणवीर भी। हुनर साहब ने सुझाव दिया कि दरी बहुत मोटी है। वे लोग उसके नीचे हो जायें और उसे ढालवीं करके तान लें। पानी बह जायगा और वे सुरक्षित गाँव तक पहुँच जायेंगे।

वे चारों दरी के नीचे बिस्तरों पर जा बैठे और दरी को उन्होंने ऐसे तान लिया कि पानी नीचे की ओर बह जाय।

घुप अँधेरा और दरी की पोर-पोर में बसी धूल और मिठाई-नमकीन तथा बिस्तरों और कपड़ों की मिली-जुली गन्ध! चेतन कुछ क्षण साँस रोके, दोनों हाथों से दरी थामे पड़ा रहा। फिर उसका दम घुटने लगा। उसका जी हुआ दरी हटा कर बाहर निकल आये। लेकिन पानी जोरों से पड़ रहा था और दरी के नीचे गर्मी थी। वह चुपचाप गाड़ी के पहियों और बरसते पानी और गाड़ीवान की गालियों और टिटकारियों की आवाज़ सुनता बैठा रहा।

तभी हुनर साहब ऐसे चिल्लाये, जैसे उनके गले से साँप लिपट गया हो—"अरे यह पानी मेरी गर्दन पर चूने लगा है!"

दूसरे ही क्षण भाई साहब को भी यही शिकायत हुई। शायद हुनर साहब ने हाथ से दरी को ऊँचा कर दिया था और पानी की धार भाई साहब के सिर पर चूने लगी थी। दरी भीग कर भारी हो आयी थी।

कुछ क्षण तक यही तमाशा होता रहा। जिस पर पानी गिरता, वह दरी को जरा और उठा देता और वह दूसरों पर गिरने लगता अथवा शरीर के दूसरे हिस्से पर बहने लगता। थोडी देर बाद लगा कि यदि तत्काल बाहर निकल कर किसी पनाह की तलाश नहीं करेंगे तो न सिर्फ़ दरी के नीचे बैठे-बैठे भीग जायेंगे, बल्कि बिस्तर और उनके साथ कपड़े भी गच हो जायगे।

तब चारों एक साथ दरी के बाहर निकले। वे गाँव के बिल्कुल नजदीक पहुँच गये थे। दायीं ओर जरा ऊँचाई पर एक बहुत बड़ा और घना बरगद का पेड़ था। उसकी लम्बी-मोटी डालियां सड़क को छाये हुए थी। हुनर साहब ने गाड़ीवान से जरा-सा आगे बढ़ कर उसके नीचे गाड़ी रोकने को कहा। चेतन और रणवीर ने गाड़ीवान की मदद से दरी को ऐसे ढालवी बिछा दिया कि पानी बह जाय और नीचे का सामान न भीगे। फिर वे भाग कर बरगद के नीचे खड़े हो गये।

कुछ देर बरगद के नीचे उन्हें राहत मिली। सब जगह पानी-ही-पानी था; सिर्फ बरगद के नीचे जगह अभी सूखी थी, लेकिन दस-एक मिनट बाद वहां भी पानी की धार गिरने लगी और बरगद के तने के साथ पानी ऐसे बहने लगा, जैसे ऊपर किसी ने कोई अदृश्य ट्यूब-वेल चालू कर दिया हो। "यार अगर कहीं बरसात इसी तरह जम गयी और झड़ी लग गयी और लालड़ा ही में तीन-चार दिन रहना पड़ गया..." भाई साहब ने चिन्तित स्वर में हुनर साहब से कहा "तो मेरा बड़ा नुकसान हो जायगा। मुझे तो अपने दो पेशेण्ट्स को सेट तयार करके देने हैं।" और जैसे अपने आप से बोले, "अच्छा हुआ, मैंने अपना सूट और टाई ट्रंक में रख दी, वरना लाहौर पहुँच कर सबसे पहले सूट धुलवाने या उसे ड्राई करवाने की जरूरत होती।"

हुनर साहब ने जैसे उनकी बात नहीं सुनी।

"जी तो चाहता है," उन्होंने ठिठुरते हुए कहा, "कि बसन्त के मौसम की इस घिरी हुई घटा और बरसते पानी, हड्डियों में पैबस्त होती हुई सर्दी और बरगद के नीचे की इस पनाह को ले कर कुछ शे'र चुस्त किये जायँ, लेकिन दाँत बजने लगे हैं और लगता है, दिमाग़ भी साला गुड़ी-मुड़ी हो कर बैठ गया है।"

"कुछ ही दिन पहले पंजाब और कश्मीर के पहाड़ों मे ज़बरदस्त बर्फ़ गिरी है," चेतन ने कहा, "आपने मार्क नही किया, दिन भर कड़ी धूप के बावजूद हवा मे गलन थी।"

"इस वक्त तो सबसे बड़ी तमन्ना यही है," हुनर साहब ने अपनी ही रौ मे कहा, "किसी तरह गाँव पहुँच जायें, किसी किसान के यहाँ ज़रा-सा आसरा मिल जाय, फिर उसे पटाना और रात भर आराम से काटने का डौल बिठाना, हमारे बायें हाथ का खेल है।"

और वे लोग गाव की ओर नज़रें जमाये, भीगते-कापते चुप हो गये।

चेतन का सारा रूमान इस बरसात और सर्दी मे जम गया था। उसने क्षण भर अपने तीनों साथियों की ओर देखा, जो मौन और बेबस खड़े भीग रहे थे। उसका अपना दिमाग़ कुछ भी नही सोच रहा था। उसकी कल्पना मे बड़ी-सी अँगीठी थी। उसमें दहकते उपले थे, उनकी गर्मी से स्निग्ध एवं दालान, गर्म-गर्म बिस्तर और गर्म-गर्म लिहाफ़ था और (उस अजीब चिन्तन-प्रक्रिया से, जो सपनों को जन्म देती है) पास मे लेटी अपनी पत्नी का गर्म-गुदाज सीना था और बरगद के नीचे उस काल्पनिक सुख मे वह इस मुसीबत को भुलाये हुए था।

तभी, जैसे युगो बाद (वास्तव मे केवल पन्द्रह-एक मिनट बीतने पर) दूर मे एक बत्ती उनकी ओर आती दिखायी दी। फिर एक और बत्ती और उन दोनों के पीछे एक तीसरी। तीन आदमी छाते और लालटेनें लिये, उनको ढूंढते आ रहे थे।

जब वे बहुत पास आ गये तो मालूम हुआ कि रिपुदमन दो अपरिचितों के साथ लालटेनें और छाते लिये, उन्हें लेने आ रहा है। गाँव का नाम

गोविन्दपुर ही था। वहाँ बरात की अगवानी का पूरा प्रबन्ध था। गैस वाले भी थे और बैण्ड-बाजा भी था। लेकिन जब उन लोगों को पहुँचने मे देर हो गयी और पानी जोर से पडने लगा तो गाँव के मुहाने मे हट कर वे सब अन्दर चले गये।

वर्षा कुछ थम गयी थी। एक लालटेन बैलगाडी के जुए के नीचे बाँध दी गयी और एक छाता गाडीवान को दे दिया गया। शेष दोनो छातो के नीचे पाँच आदमी बैलगाडी के आगे चलते और कच्चे रस्ते के गढो और कीचड मे बचते हुए एक-एक कदम गाँव की ओर बढ चले।

डेढ-एक घण्टे बाद एक कच्चे दालान मे, जिसे दहकते उपलो की सिगडी ने गर्म कर रखा था, जमीन पर बिछे खादी के गदेले पर, खादी के लिहाफ मे लिपटा हुआ चेतन एक अनिवर्चनीय सुख मे अभिभूत लेटा था। मकान-मालिक सरदार सुजान सिह गोविन्दपुर का सिक्ख जमीदार था। रणवीर के ससुर से उसका लेन-देन था। जब उसे इस बात का पता चला कि बरात के लिए उसी शाम लालडा पहुँचना असम्भव है तो उसने न सिर्फ अपना मकान उनके लिए पेश कर दिया, बल्कि अपने पट्टीदारो के मकानो से भी एक-एक कमरा ले दिया था। चेतन और भाई साहब ने अपने ट्रंक खोल कर कपडे बदल थे और गीले कपडे वही सूखने को डाल दिये थे। हुनर साहब ने सरदार सुजान सिह को गुरु गोविन्दसिह पर लिखी अपनी कविता सुनायी थी और वायदा किया था कि जरा वे कपडे बदल ले और पेट की भूख मिटा ले तो उन्हे कुछ और नज्मे सुनायेगे। इस तरह सरदार साहब का दिल जीत, उन्ही से तहमद, कुर्ता और कम्बल ले कर उन्होने कपडे बदले थे और कम्बल ओढ लिया था। घर मे सरसो का साग बना था।—दिन भर पकता रहा था और मकई का आटा डाल कर अच्छी तरह घोटा गया था। मक्खन-चुपडी गर्म-गर्म मकई की रोटी और साग मे एक-एक बडा डला मक्खन का, साथ मे पुराना आम का अचार—उन लोगो की तबियत खुश हो गयी थी। सरदार सुजान सिह ने उनके लिए धरती पर दरियाँ

बिछा कर बिस्तर बिछा दिये थे। भाई साहब और चेतन एक में हो गये थे; हुनर साहब और निश्तर दूसरे में।

बाहर पानी शायद एकदम थम गया था। कभी-कभी छत से अथवा पास के किसी पेड़ से किसी मोटी-सी बूँद के गिरने की 'टप्प' सुनायी दे जाती। कमरे मे अँगीठी के कारण सूखते हुए कपड़ों की बू बस गयी थी। चेतन के हाथ-पैर यख हो गये थे। भाई साहब पड़ते ही सो गये थे! चेतन ने शेष रज़ाई अच्छी तरह अपनी पसलियों और टाँगों के नीचे कस ली और सिर को भी क्षण भर के लिए ढँक लिया। रज़ाई यद्यपि साफ़ और धुली हुई थी, पर उसमे घी और आदमी के शरीर तथा पुरानी रुई और न जाने किस-किस चीज की गन्ध बसी थी। अजीब बात यह है कि चेतन को वह गन्ध बुरी नहीं लगी। तो भी उसने करवट ले कर, नाक और मुँह रज़ाई से ज़रा-सा बाहर निकाल लिया।

हुनर साहब घुटनो के बल बैठे हुए, आगे झुक कर सरदार सुजान सिंह को गुरु नानक के बारे में अपनी एक नज़्म सुनाने जा रहे थे। सरदार साहब को नज़्म की बारीकी समझने में दिक्कत न हो, इसलिए उन्होंने नज़्म सुनाने से पहले उसकी व्याख्या कर दी।

चेतन को लगा, उसने यह नज़्म पहले कहीं पढ़ी है, पर उसे याद न आ रहा था। तभी हुनर साहब ने सस्वर नज़्म का पहला शे'र पढ़ा :

कौम ने पैग़ामे-गौतम की ज़रा परवा न की
कद्र पहचानी न अपने गौहर-ए-यकदाना की

चेतन समझ गया कि वही नज़्म है, जो उसने अल्लामा इकबाल के काव्य-संग्रह 'बांगे दरा' में 'नानक' शीर्षक से पढ़ी थी।

आह बदकिस्मत रहे आवाज़-ए-हक़ से बेख़बर
ग़ाफ़िल[1] अपने फल की शीरीनी[2] से होता है शजर[3]

१. बेख़बर, अनभिज्ञ २. मिठास ३. पेड़

आशकार[1] उसने किया जो ज़िन्दगी का राज़ था
हिन्द को लेकिन ख़याली फ़लसफ़े पर नाज़ था

शम'ए-हक़ से जो मुनव्वर[2] हो, य' वो महफ़िल न थी
बारिश-ए-रहमत[3] हुई लेकिन ज़मीं काबिल न थी

आह, शूदर के लिए हिन्दोस्ताँ ग़म-ख़ाना है
दर्द-ए-इन्सानी से इस बस्ती का दिल वीराना है।

बरहमन सरशार है अब तक मय-ए-पिन्दार[4] मे
शम'ए-गौतम[5] जल रही है महफ़िल-ए-अग़यार[6] में

फिर उठी आख़िर सदा[7] तौहीद[8] की पंजाब से
हिन्द को इक मर्द-ए-कामिल ने जगाया ख़्वाब से

लेकिन चेतन ने इस नज़्म के आख़िरी शे'र नहीं सुने। उसके पपोटे धीरे-धीरे भारी हो रहे थे और जब एक मर्दे-कामिल हिन्द को ख़्वाब से जगा रहा था, चेतन गहरी नींद सो गया था।



१. प्रकट २. ज्योतिर्मय ३. कृपा-दृष्टि ४. बुद्धि की मदिरा ५. गौतम की ज्योति ६. दूसरों की महफ़िल में ७. पुकार ८. भगवान के एक होने की कल्पना। एकता

चौथा खण्ड



ग्यारह

प्रकट अन्यमनस्क, लेकिन मन म अपार उत्सुकता लिये हुए, चेतन हुनर साहब के साथ लालडा के चमत्कारी बाबा के दर्शनो को जा रहा था। बरात म से केवल निश्तर, भाई साहब और रणवीर के बडे जीजा, मिस्टर गरोगीला र वत्स (इंजीनियर) उनके साथ थे। लेकिन हुनर साहब ने उस चाबुकदस्ती म, जो उन्ही का हिस्सा था, लालडा के प्रसिद्ध गायक, चिरजी लाल और उसके तबलची पिता को (जिन पर साई बाबा की विशेष कृपा थी) अपने साथ जाने के लिए तयार कर लिया था।

०

वे लोग अभी गाव के पोखर पर नही पहुचे थे जब उसके पार ऊँचाई पर बने बाबा के आश्रम से कीर्तन मे बजने वाले चिमटे छैनो और खडतालो का मद्धिम स्वर चेतन के कानो मे आने लगा।

ज्यो-ज्यो वे पोखर के किनारे-किनारे आश्रम की ओर बढते गये, वह आवाज स्पष्ट-से-स्पष्टतर होती गयी चेतन ने अपने कानो पर जोर दे कर चिमटो, खडतालो और छैनो के भयानक शोर मे लगभग घुल-मिल जाने और समवेत स्वर मे गाये जाने वाले भजन के शब्दो और वाक्यो को अलग-अलग करने की कोशिश की। तन्मयता की स्थिति मे भजन की पंक्तिया, खिच कर हाथ मे अचानक छूट जाने वाले रबड की तरह, द्रुतगति मे छोटी होती हुई, कुछ यूँ चेतन के कानो मे आ रही थी

ओ लै लै नाम जोगिया

ओ भज लै राम बन्देआ

ओ जप लै नाम प्यारेआ

पहले 'राम' और 'नाम' मे चेतन अन्तर नही कर पाया, न 'जोगिया,' 'बन्देआ' और 'प्यारेआ' मे। लेकिन लगातार कोशिश से उसने इन सभी शब्दो को अलग कर लिया और जब वे आश्रम के पास पहुँचे तो वाद्य-यन्त्रो के प्रबल निनाद के बावजूद गाने वालो के बोल साफ-साफ सुनायी देने लगे। वे एक ही पंक्ति को तोडते-मोडते, दोहराते-तिहराते, अपार तन्मयता मे गा रहे थे। क्षण भर बाद उन्होने विलम्बित गति मे भजन की पहली पंक्ति गायी—चेतन को लगा जैसे सिमटा हुआ रबड फिर फैलने लगा है

ऐ त्थे बे ठ कि से न ई र ह् ना
भ ज ले ना म ब न्दे आ

सभी शोर एकदम बन्द हो गया और एक खनखनाता स्वर गूँजा, जिसके पीछे पाँच-छै स्वर वही पंक्तियाँ दोहराने लगे :

तेरे महल ते माल खजाना
(ओ) तेरे महल ते माल खजाना
रिश्ता, नाता संग सुहाना
(ओ) तेरे नाल[1] नईं कुछ जाना
जेह्ड़ा[2] कम्म तेरे है आना
ओह[3] है नाम बन्देआ

और समवेत स्वर गूँजा

ऐत्थे बैठ किसे नईं रह्ना
जप ले नाम बन्देआ

तब संकीर्तन करने वाले भजनीक, चिमटे और खड़ताले और छैने बजाते, उसी तन्मयता से गाने लगे

१. साथ २. जो ३. वह

ओहियो[1] राम प्यारेआ
ओहियो नाम प्यारेआ
ओ जप ले
ओ भज लै
ओ भज ले नाम बन्देआ

चेतन के कदम अपने साथियों के साथ आश्रम की ओर बढ़े जा रहे थे, उसके कानों में भजन के स्वर गूँज रहे थे लेकिन साथ-ही-साथ बाबा का वह चित्र भी उसकी आँखों के सामने था जो उसने सुबह सुजान सिंह के दालान में देखा था और उनके चमत्कार की जो बातें उसने सुबह सुनी थी, व (तमाम नास्तिकता के बावजूद) उसे उत्सुक बनाये हुए थी।

रात न जाने कब तक सरदार सुजान सिंह का नज्म सुना कर हुनर साहब सोये थे। दूसरे दिन जब चेतन और उसके बड़े भाई सुबह-सुबह उठे तो उन्होंने हुनर साहब को एकदम चाक-चौबन्द पाया था। पहली बात जो हुनर साहब ने चेतन (और उसके बड़े भाई) से की वह नानडा के साईं की प्रशंसा में थी।

हुनर साहब ने दोनों भाइयों का ध्यान सामने दीवार पर गुरु नानक और गुरु गोविन्द सिंह की तस्वीरों के बीच लगे एक छोटे-से फोटो की ओर दिलाया, जो सर्दियों की सुबह के नीम-अंधेरे में काला सा धब्बा लग रहा था और चेतन से बोले, यही नानडा के साईं बाबा है जिनकी बात मैंने बस्ती में तुम्हें बतायी थी। रात सुजान सिंह से देर तक उनके बारे में बातें होती रहीं। बाबा की शोहरत नानडा से निकल कर पंजाब ही नहीं, हिन्दुस्तान में दूर-दूर तक फैल रही है।

और सरदार सुजान सिंह के हवाले से उन्होंने बताया कि सुदूर कलकत्ता और बम्बई से लोग उनके दर्शनों को आते हैं और उनके आशीर्वाद

---

१. वही

से मन की मुरादें पाते हैं...."और-तो-और, ज़िले का डिप्टी कमिश्नर तक उनका मुरीद[1] हो गया है।" उन्होंने सोत्साह कहा।

और वे बिस्तर पर फसकड़ा मार कर किस्सा सुनाने लगे कि कुछ वर्ष पहले जब डिप्टी कमिश्नर अमले-फ़ैले[2] के साथ इधर के दौरे पर आया तो न जाने किस ग़ैबी कशिश[3] से बाबा के दर्शनों को पहुँचा। उसे देखते ही बाबा बोले, "साईं, तूँ एत्थे पया की कर र्या एं, तेरे बीवी-बच्चे ताँ टमटम उलट जाण नाल ज़ख्मी हो गये ने।"

(हुनर साहब ऐसे किस्सा सुना रहे थे, जैसे वह सब उनका सुना हुआ नही, आँखों देखा हो।)

"डिप्टी कमिश्नर अंग्रेज़ था। थोड़ी-बहुत पंजाबी समझ लेता था। लेकिन बाबा की बात उसकी समझ में नहीं आयी। उसने अपने सेक्रेट्री से अंग्रेज़ी मे पूछा, 'ह्वाट इज द ओल्ड मैन से[4] ?'

"सेक्रेट्री ने घबराहट और संकोच से उसे बाबा की बात समझायी तो साहब ने बेज़ारी से सिर हिलाया; होंटों-ही-होंटों मे बड़बड़ाया—'ही'ज़ मैड[5] !' और उल्टे पाँव वापस मुड़ गया। न उसने अपना दौरा रद्द किया, न वापस घर की तरफ़ पलटा, बल्कि अपने अमले को उसने ख़ेमे और छोलदारियाँ उखाड़ कर अगले पड़ाव की ओर कूच करने का आदेश दिया।

"लेकिन बाबा की बात सोलहों आने सच निकली। दूसरे ही दिन जालन्धर से एक हरकारा मोटर साइकिल पर लालड़ाँ पहुँचा और जब उसे मालूम हुआ कि साहब का डेरा आगे चला गया तो वह बिना रुके बढ़ गया। उसी से मालूम हुआ कि साहब की फ़ैमिली एक्सीडेण्ट की ज़द में आ गयी है।—ऐन उस वक्त, जब डिप्टी कमिश्नर बाबा के दर्शनों को आया था, उसकी मेम अपने बच्चों के साथ टमटम पर जा रही थी कि

१. भक्त २. कर्मचारी-गण ३. दैवी आकर्षण
४. बूढ़ा क्या कहता है ५. पागल है।

सामने ट्रक को आते देख, घोड़ा बिदक गया और जबरदस्त टक्कर हो गयी। टकटम उलट गयी, घोड़ा और साईस खत्म हो गये, बच्चे जख्मी हो गये और मेम की बांह और हँसली की हड्डी टूट गयी।

डिप्टी कमिश्नर उसी दिन वापस फिरा। वापसी पर लालड़ाँ से गुजरते हुए, वह दो मिनट को फिर बाबा के हजूर में पहुँचा और घुटनों के बल झुक कर उसने बाबा से अपना गुनाह बख्शवाया और दुआ चाही।

"बाबा ने कहा, 'साईं, घबरा नईं। सब ठीक हो जायगा। थोड़ी देर लगेगी ते तैनूँ वतन जाना पवेगा।[1]'

"और सच ही हस्पताल में उसकी मेम का ऑपरेशन कामयाब नहीं हुआ। साहब तीन महीने की छुट्टी ले कर इंगलिस्तान गया। उसकी मेम ठीक हो गयी। जब वह वापस आया तो अपनी मेम और बच्चों को ले कर फिर बाबा के यहाँ पहुँचा। उसने न सिर्फ बाबा के आश्रम के लिए ग्राण्ट दी, बल्कि गाँव में स्कूल खोलने, दुर्गा का मन्दिर बनवाने और आने-जाने साधु-सन्तों की रिहायश के लिए कमरे बनाने का रुपया भी दिया और हमेशा-हमेशा के लिए बाबा का मुरीद हो गया।'

तभी चेतन अपनी पार्टी के साथ बाबा के आश्रम में दाखिल हुआ। उसने देखा—मिट्टी की चारदीवारी के अन्दर बड़े खुले अहाते के बीचों-बीच, आम का एक घना पेड़ है। उसके नीचे गोल पक्का चबूतरा बना है। उस पर पाँच साधु बैठे हैं। बीच में एक लम्बा-तगड़ा साधु चिमटा लिये हुए है और इर्द-गिर्द दो-दो साधु छैने और खड़ताल लिये बैठे हैं और सब-के-सब भजन गा रहे हैं। चबूतरे के नीचे पेड़ तक नजदीक के कस्बे और गाँवों से आ कर बैठे भक्त लोग, उनके पीछे-पीछे स्वर अलाप रहे हैं।

चेतन की नजर चबूतरे पर बैठे साधुओं पर गयी—विशेषकर उस पर,

१. साईं, घबरा नहीं। सब ठीक हो जायगा। थोड़ी देर लगेगी और मुसे वतन जाना पड़ेगा।

जो बीच मे चिमटा लिये बैठा था। चेतन के देखते-देखते, वह गाते-गाते खड़ा हो गया—लगभग छै फुट लम्बा, गोरा, चौड़े सीने, पुष्ट कन्धो और लम्बी बाहों वाला—गले मे उसने टखनो तक लम्बा जोगिया चोला पहन रखा था। उसके सिर पर जटाओ का बहुत बड़ा जूड़ा था। वह चिमटा बजाते हुए झूम-झूम कर गा रहा था। वे लोग चिरंजीलाल और उसके पिता के पीछे-पीछे बायो ओर से धीरे-धीरे बढ कर उस छै फुटे साधु के पार्श्व मे जा खड़े हुए। तब उस साधु ने चिमटा क्षण भर को रोक कर अपनी ऊंची गनगनाती आवाज मे अन्तरा उठाया

दुनिया चार दिना दा मेला
इह सब छिन दा[1] रेला-पेला
ऐवे[2] पाया[3] गले झमेला
एत्थो[4] जासे सन्त अकेला
(ओ) सग ले नाम[5] बन्देआ।

और चिमटा पूरे जोर से बज उठा। खड़तालें झमक उठी और छने झन-झना उठे और सारे भक्त समवेत स्वर मे गाने लगे

एत्थे बेठ किसे नई रहना

और पूरे जोश और मस्ती मे उसी एक पंक्ति को थोड़े फेर-बदल के साथ वह जूड़े वाला साधु गाने लगा। चिमटा बजाते और आत्म-विभोर हो कर गाते और झूमते और बार-बार पंक्ति के अन्त मे सिर झटकते हुए उसका जूड़ा ढीला हो कर खुल गया। चेतन ने देखा—उसकी जटाएं टखनो तक लम्बी है—वह विस्मय से उन लम्बी जटाओ की ओर देखता रह गया। गाने और चिमटा बजाने के जोश मे सर्दी के बावजूद उसके चौड़े माथे पर पसीने की बूंदें झलकने लगी थी और आम के पत्तो से छनती हुई धूप मे उसकी दाढ़ी-मूछो के बालो मे पसीना झिलमिला आया था। उसका गोरा मुख लाल हो आया था और भजन गाने के जोश, मस्ती और तन्मयता मे उसका रूप एकदम दिव्य लग रहा था।

---

१. क्षण भर का २. बेकार मे ३. डाला ४. यहाँ से ५. साथ ले-ले।

लेकिन वह लम्बा-तगड़ा शरीर और वह दिव्य रूप उस फोटो से मेल नहीं खाता था, जो सुबह चेतन ने सरदार सुजान सिंह के दालान में लगा देखा था।.. और चेतन फिर कीर्तन सुनते-सुनते बाबा के फोटो और चमत्कारों में खो गया।

जब हुनर साहब बाबा के चमत्कार और डिप्टी कमिश्नर का किस्सा सुना चुके थे तो चेतन ने जरा उठ कर निकट से उस फोटो को देखा था। गुरु नानक और गुरु गोबिन्द सिंह के चित्र कलेण्डरों से फाड़ कर फ्रेम कराये थे। बाबा का फोटो कस्बे ही के किसी फोटोग्राफर द्वारा खींचा गया लगता था।—उस फोटो में एक अधेड़ उम्र का पतला-दुबला व्यक्ति शायद [illegible] सीढ़ी अथवा चबूतरे पर बैठा था। वह न साधुओं की तरह धूनी रमाये था, न योगियों की तरह पद्मासन लगाये। न उसका सिर घुटा था, न उस पर जटाएँ थीं और न उसके मुख पर दाढ़ी-मूँछें ही थीं। किसी आम देहाती किसान की तरह उसके बाल मोटी मशीन से कटे थे, चेहरे पर दाढ़ी कई दिन की बढ़ी थी—सिर के बालों की तरह मोटी मशीन से कटी लगती थी और सिर और चेहरे के बालों में सफेदी जगह-जगह झलक रही थी। उसका सरापा भी किसी अधेड़ देहाती का-सा ही था—एक लम्बा चोला और तहमद पहने हुए वह थका-सा, टाँग-पर-टाँग रखे बैठा था। उसके गले में रुद्राक्ष की एक माला थी और अजीब बात थी कि वह माला ही उसे आम देहाती से अलग कर, साधुओं और फकीरों की कोटि में रख देती थी। उसके चेहरे पर एक थकी-थकी-सी, करुणा-भरी मुस्कान थी। वह मुस्कान मन में न जाने कैसे, कुछ अजीब-सी दया उपजाती थी। उस व्यक्ति के लिए उतनी नहीं, जो थका-सा टाँग-पर-टाँग रखे मुस्करा रहा था, वरन उन तमाम अदृश्य लोगों के लिए जिन्हें देख कर वह यूँ मुस्करा रहा था

उस बड़े जूड़े वाले साधु और उसके साथियों को देखते हुए चेतन ने मन-ही-मन उस फ़ोटो को दोहरा लिया—'यह लम्बा-तड़ंगा, गोरा साधु

तो लालड़ाँ का बाबा नहीं है।' उसने सोचा।

और भजन सुनते-सुनते चेतन के दिमाग में बाबा के बारे में सुनी सारी बातें पुनः घूमने लगी। चेतन और उसका भाई अभी बाबा की तस्वीर देख ही रहे थे कि सुजान सिंह के साथ रिपुदमन और समधियाने से एक व्यक्ति आया था। उसने कहा था कि बरात सुबह-सुबह ही चल देगी। बाजे वाले तैयार हो गये हैं। आप जल्दी में निबट-निबटा कर तयार हो जाइए। लालड़ाँ तक पैदल जाना होगा और सेहराबन्दी की रस्म वहीं होनी है, इसलिए जल्दी कीजिए।

तब सुजान सिंह उन्हें दिशा-फरागत के लिए खेतों में ले गया था। रास्ते में हुनर साहब ने सरदार से पूछा था कि बाबा क्या लालड़ां के रहने वाले हैं या कहीं बाहर से आये हैं?

सुजान सिंह ने बताया था कि बाबा कहाँ के रहने वाले हैं, किस परिवार के हैं, कहाँ से आये हैं, इस बात तो क्या, कोई भी नहीं जानता। वर्षों पहले वे लालड़ां से गुजर रहे थे कि नम्बरदार नानक सिंह के चौपाल में कुछ लोग जमा थे। नानक सिंह की जवान लड़की को दौरा पड़ा हुआ था। बाबा जब पहुँचे तो एक ओझा झाड़-फूँक कर रहा था और लड़की के मुँह पर तमाचे मार कर उसका भूत भगा रहा था।

यह सब देख कर बाबा के चेहरे पर बड़ी ही दया-भरी मुस्कान फैल गयी थी। उन्होंने नम्बरदार से कहा था कि इसे मारो नहीं, जरा-सी मिश्री अथवा शक्कर ले आओ, मैं इसे अभी ठीक कर देता हूँ।

और बाबा ने ओझा को परे हटा कर लड़की के सिर पर प्यार से हाथ रखा था। उस स्पर्श में जैसे कोई करेण्ट हो, लड़की एक बार काँपी थी और फिर थिर हो गयी थी। नानक सिंह मिश्री ले आया। बाबा ने झोले से एक पुड़िया निकाली। उसमें से राख-ऐसा चूर्ण। एक चुटकी ले कर मिश्री में मिला कर लड़की को चटा दी। ओझा-समेत सारे लोग हैरान रह गये, जब लड़की ने बाबा की हर बात सुन ली और हर आदेश मान लिया। दस-पन्द्रह मिनट में वह एकदम शान्त हो गयी थी।

तब बाबा ने पुड़िया नम्बरदार को दे दी थी कि साई, इसमे से चुटकी भर दवा रोज मिश्री मे घोल कर महीना भर बच्ची को चटाते रहिए। फिर कभी तकलीफ नही होगी।

तब नम्बरदार ने बाबा से पूछा था कि वे किधर स आये है और किधर को जा रहे है।

बाबा एक भोली-सी हँसी हँसे थे। 'तूँ इह पुच्छ के की लैणा ऐ साई? घर-बार साड्डा कोई नई। इह सारा ससार साड्डा घर ऐ और सारे पराणी साड्डे कुटुम्बी ने[1]।'

बाबा के स्वर मे कुछ ऐसी निरीहता, कुछ एसा भोलापन, लेकिन इसके बावजूद कुछ ऐसी सख्ती थी कि सामने वालो को ज्यादा प्रश्न करने का साहस नही होता था।

नम्बरदार ने आगे प्रश्न नही किया। उसने अर्ज की कि बाबा जाने से पहले उनके घर मुँह तो जुठा कर ले।

बाबा ने कहा कि वे अन्न ज्यादा नही लेते। गाय का दूध ले सकते है।

नम्बरदार ने दूसरे क्षण भरोली मे पका हुआ गाय का दूध, जिस पर हल्की पीली मलाई की मोटी तह थी, छटाँक भर गाय का शुद्ध घी डाल कर, बाबा को पेश किया।

दूध पी कर जब बाबा चलने को तैयार हो गये तो नम्बरदार उनके पाँव पड गया कि बाबा एकाध महीना लालडा मे रह जायँ और लडकी को अपने हाथो दवा खिला जाय।....

बाबा आनाकानी करते, लेकिन इस बीच यह खबर सारे गाव मे फैल गयी थी कि लालडाँ मे एक चमत्कारी पुरुष आये है, जिन्होंने केवल हाथ के स्पर्श से और चुटकी भर राख से नम्बरदार की जवान लडकी की पुरानी बीमारी दूर कर दी है। सारा गाव उनके दर्शनो को उमड पड़ा और जब

१. तुम्हे यह पूछ कर क्या लेना है साईं। घर-द्वार हमारा कोई नही। यह सारा संसार हमारा घर है और सारे प्राणी हमारे कुटुम्बी हैं।

नम्बरदार ने बाबा के चरण छू कर प्रार्थना की और सारे गाँव वालों ने उस अनुरोध में अपना स्वर मिला दिया, तब बाबा के होंटों पर वही करुणा-भरी मुस्कान फैल गयी थी।

"ठीक ए," उन्होंने कहा, "मैं बच्ची दे ठीक हो जाए तक एत्थे ई रहाँगा। पर मै गिरस्ताश्रम छड्ड दित्ता ऐ। मै घर च नई, किसे पेड़ थल्ले पै रहाँगा[1]।"

शुरू गर्मियों के दिन थे। उस रात को बाबा खुले मे चटाई बिछा कर सो रहे। दूसरे दिन गांव वालों ने जौहड़ के किनारे दिन भर में एक झोंपडा छा दिया और बाबा वहीं चले गये।

और फिर डिप्टी कमिश्नर ने उनके चमत्कार से प्रभावित हो कर वह ज़मीन उनके आश्रम के लिए दे दी। अब वहाँ बच्चो का स्कूल है, माता का मन्दिर है। और बाबा के भक्तों में हिन्दू ही नहीं, मुसलमान, सिक्ख और ईसाई भी हैं।

चेतन के दिमाग़ मे सुजान सिह से सुनी सारी बातें घूम गयीं। दिशा-फ़रा-ग़त से निबट कर और सुजान सिह के रहट की धार पर हाथ-मुँह धो कर वे लोग डेरे पर वापस आ गये थे और सामान बाँधने लगे थे। चेतन इस बीच लालडो के बाबा की बात निरन्तर सोचता रहा था। उसे बाबा के चमत्कारों मे कोई विश्वास नही था। इस धर्म-परायण, अन्ध-विश्वासी देश मे, जहा निपट पागल सिद्ध मान लिये जाते हैं, किसी रमते बाबा द्वारा गाँव के निरक्षर देहातियो का मन जीत लेना कोई बड़ी बात न थी। हो सकता है, बाबा के पास कोई भस्म अथवा जड़ी-बूटी का चूर्ण हो और बाबा ने उससे लड़की का उन्माद दूर कर दिया हो....लेकिन डिप्टी कमिश्नर वाली बात ?....जाने उसमें कितनी सचाई है ? लोग राई का पहाड़ बना

१. ठीक है, मैं बच्ची के ठीक होने तक यहीं रहूँगा, लेकिन मैंने गृहस्थाश्रम छोड़ दिया है। मैं घर में नहीं, किसी पेड़-तले पड़ा रहूँगा।

देते है....और चेतन को अपने शहर के रुलिये शाह की याद आ गयी, जो गाली देता था और लोग उसी से मट्टे का नम्बर निकाल लेते थे।

तभी सुजान सिह का मजदूर—रहमता—लालडाँ के गाडीवान के साथ सामान उठाने आया था तो सहसा चेतन ने फोटो की ओर संकेत करते हुए पूछा था, "क्यो बई रहमते, लालडाँ दे माई बारे तेरा की खयाल ऐ ?"

'अल्लाह वाले लोग ने साब।" रहमते ने कहा था, "पहुँचे होए फकीर ने। ओह्ना दे हत्थ विच्च ई शफा नई, ओह्ना दी बोली विच्च वी दवा दा असर ऐ। अद्धी तकलीफ ते बाबा दे बोल सुन के ई दूर हो जान्दी ऐ[1]।"

और रहमते ने भी नम्बरदार की लडकी का किस्सा सुनाया था। उसने न दवा का जिक्र किया था, न मिश्री और शक्कर का। उसके कथनानुसार तो बाबा ने केवल हाथ के स्पर्श से, राख की एक चुटकी से लडकी को ठीक कर दिया था।

नम्बरदार दी कागी दी की गल्ल करदे ओ," रहमते ने कहा था, ना जाने इर्द-गिर्द दे किन्ने ला-इलाज मरीजा नँ बाबा ने सिर्फ हत्थ फेर के, दो मिट्ठे बोलाँ नाल भला-चंगा कर दित्ता ऐ[2]।"

और उसने बताया कि डिप्टी कमिश्नर साहब ने साधुओं के लिए कुछ कमरे बनवा दिये थे, लेकिन दूर-दराज से आने वाले लोगो के लिए रहने का इन्तजाम न था। तब इर्द-गिर्द के गाव वालो ने बाबा की झोपडी के पास कच्चे-पक्के कमरे डाल दिये और अब बाबा लोगो के तन-मन का हो

---

१. अल्लाह वाले लोग हैं, पहुँचे हुए फ़कीर है, उनके हाथ ही में शफ़ा नही, उनकी वाणी मे भी दवा का असर है। आधी तकलीफ तो बाबा के बोल सुन कर ही दूर हो जाती हैं।

२. नम्बरदार की लड़की ही की क्या बात है, न जाने इर्द-गिर्द के कितने ला-इलाज मरीज़ों को बाबा ने सिर्फ़ हाथ के स्पर्श और दो मीठे बोलों से भला-चंगा कर दिया है।

इलाज नहीं करते, उनके घरेलू मसले भी सुलझा देते हैं। उनकी नसीहतों से लोगों ने शराब पीना, गोश्त खाना और कइयों ने तो डाके डालना तक छोड़ दिया है। पीढ़ियों से दुश्मनी निभाने वाले कुनबे उनके कारन दोस्त बन गये हैं। बाबा जात-पात को भी बिल्कुल नहीं मानते और उनके दरबार में सब अल्लाह के बन्दे बराबर हैं।

"कुझ लोग ताँ इह कहन्दे ने कि बाबा तान्त्रिक ने," लालड़ाँ के हिन्दू गाड़ीवान ने कहा, "लेकिन किसे दूज्जे धरम वाले नूं टेड्ढी नज़र वेखदेयाँ बाबे नूं नई वेक्खया गया। ना ई किसे अछूत नाल छू जान दा ओन्हाँ कदीं बुरा मन्नेया! ओह ताँ अछूताँ हत्थों पानी वी पी लैन्दे ने[1]।"

और जैसे बाबा के दर्शन को समझाते हुए गाड़ीवान ने कहा था कि बाबा सच ही तो कहते हैं—भगवान सब का है और सब जगह है। उसे एक मूर्ति में देखें या दूसरी में, मन्दिर मे देखें या मस्जिद मे या गुरुद्वारे मे, अपने घर के अन्दर या मन के आँगन मे—सब जगह बराबर है। मतलब तो भगवान को मानने और उसके बन्दों से प्रेम करने से है और सभी धर्मों और जातियों के लोग साईं बाबा के द्वारे आते हैं और मन की शान्ति पाते हैं।

एक-दूसरे के मज़हब को निरन्तर नकारने और धर्म के नाम पर एक-दूसरे के ख़ून से हाथ रंगने से गुरेज़ न करने वाले, इस देश के धर्मावलम्बियों के बीच कोई ऐसा सन्त भी है, जो मानवता के नाते सब को प्यार करता है, चेतन को यह कुछ अजीब-सा लगा था और न चाहते हुए भी लालड़ाँ के बाबा को, जिसे कोई सन्त कहता था, कोई साईं, एक नज़र देखने की इच्छा उसके मन मे हुनर साहब से कहीं ज़्यादा हो आयी थी।

---

१. लेकिन किसी विधर्मी को टेढ़ी नज़र से देखते हुए बाबा को नहीं देखा गया। न ही किसी अछूत से छू जाने का उन्होंने बुरा माना है। वे तो अछूतों के हाथ से पानी भी पी लेते हैं।

चेतन ने चिरंजीलाल की ओर देखा कि उससे पूछे—बाबा तो यहाँ दिखायी नहीं देते।

लेकिन चिरंजीलाल सुध-बुध भुला कर, साधुओं के स्वर-मे-स्वर मिला कर गा रहा था :

एहियो[1] नाम तेरे नाल जाना
तेरी अक्ल दा ताना - बाना
तेरे कम्म न कुझ वी आना
गहरी नदी ते घड़ा पुराना
हत्थ फड़ नाम बन्देआ[2]
ओहियो[3] नाम बन्देआ

और भक्तों की भीड़ एक स्वर में राम-नाम भजने लगी थी। चेतन ने चबूतरे की ऊँचाई से भक्तों की भीड़ पर निगाह दौड़ायी। तमाम सभाओं की तरह भक्त-मण्डली दो हिस्सों में बँटी थी। सामने दायीं ओर मर्द थे और बायीं ओर औरतें। चेतन ने पहले दायीं ओर नज़र डाली। मंच के निकट सभा के आगे गाँव के बच्चे, फटी-मैली कमीज़ें पहने, नंगे-अधनंगे बैठे, पूरे ज़ोर से गा (याने चिल्ला) रहे थे। फिर कुछ सम्भ्रान्त किसान और दुकानदार, गबरून अथवा बोस्की की कमीज़ें और लट्ठे के तहमद, शलवारें या पायजामे पहने, उन पर वास्केट, कोट या गर्म चादरें ओढ़े, बैठे थे। उनके पीछे गेट तक साधारण मज़दूरों-किसानों की भीड़ थी, जिनमें कुछ गरीब, फटे-पुराने तहमद कमर में बाँधे थे। लेकिन सर्दी के बावजूद उनके नंगे, काले बदन चमक रहे थे। वहीं कुछ सिक्ख और मुसलमान भी खड़े थे।

तब चेतन ने बायीं ओर निगाह दौड़ायी। वही क्रम था। पहले बच्चियाँ बैठी थीं; फिर साड़ियाँ और जम्पर, या जम्पर और घाघरे अथवा शलवारें-

---

१. यही २. हाथ में राम का नाम थाम ले ३. वही।

कमीजें पहने, अपेक्षाकृत सम्भ्रान्त घरों की महिलाएँ और सबसे आखिर में मजदूर-औरतें बैठी थीं, जो अपने गोद के बच्चों तक को ले आयी थीं।—कपड़ों से वे तमाम औरतें ज़रूर एक-दूसरी से भिन्न दिखायी देती थी, लेकिन भक्ति-भाव में एक-जैसी थीं और सब प्रेम-भाव से संकीर्तन में हिस्सा ले रही थीं।

क्षण भर के लिए चेतन को ख़याल आया कि शायद बाबा देहातियों में बैठते हों। उसने भीड़ में काफ़ी देर तक नज़रें फिरा कर देखा—बाबा वहाँ कहीं नहीं थे। वह चिरंजीलाल से फिर पूछना चाहता था कि बाबा क्या संकीर्तन में नहीं आते। लेकिन वे दोनों पिता-पुत्र तन्मय भाव से गा रहे थे। आँखें बन्द और शरीर झूमते हुए।

चेतन का मन लेकिन कीर्तन में नहीं था। उसने ज़रा-सा मुड़ कर आम के पिछली ओर देखा—आते वक्त भीड़ में आँखें टिकी होने के कारण वह उधर ध्यान न दे सका था। बीच में एक लिपी-पुती झोंपड़ी थी, जिसकी दीवारें कच्ची मिट्टी की थी और उस पर छत भी फूस की थी। उसके दायें-बायें, आगे-पीछे मकानों की दो पंक्तियाँ थी—बाबा इसी बीच वाली झोंपड़ी में होंगे—चेतन ने सोचा और चाहा कि कीर्तन समाप्त हो जाय और वह उनके दर्शन करे। उसका अध्यात्म एकदम जग आया था या साधु-सन्तों में उसे आस्था हो आयी थी, ऐसी कोई बात न थी। उसे सुजान सिंह के घर में टँगा वह फ़ोटो, सन्तों का-सा न लग कर भी, किसी करुणामय व्यक्ति का-सा लगा था। बाबा के बारे में सुने चमत्कारों की वह व्याख्या कर सकता था, क्योंकि वह देश के धर्म-परायण लोगों के मनोविज्ञान को जानता था, लेकिन चेतन के मन में, उस व्यक्ति को देखने का एक सहज औत्सुक्य, एक स्वाभाविक जिज्ञासा थी, जो एक निहायत ही सीधा-सादा किसान लगता था तो भी जिसके मुख पर मुस्कान के कारण कुछ अजीब-सा आकर्षण पैदा हो गया था और जिसे इस दूरस्थ कस्बे में देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते थे।

जब बस्ती ग़ज़ाँ में हुनर साहब ने लालड़ों के साईं की बात की थी तो चेतन ने विशेष ध्यान नहीं दिया था, लेकिन सवेरे, जब उसने उनका फोटो देखा, डिप्टी कमिश्नर की कहानी सुनी तो उसने सोचा था, हो सकता है, उस सन्त के पास जन्मजात साइकिक-पावर[1] हो, जिससे भविष्य की घटनाएँ उसके मस्तिष्क में आ जाती हों।

और वहीं संकीर्तन सुनते-सुनते, चेतन की कल्पना फिर सुबह की घटनाओं में खो गयी।

सुबह यद्यपि अन्य बराती हाथ-मुँह धो कर चलने को तैयार हो गये थे (लालड़ाँ वहाँ डेढ़-दो मील दूर ही तो था और नाश्ता लेने की व्यवस्था वहीं थी) लेकिन सरदार सुजान सिंह ने अपने चारों मेहमानों को बिना कुछ पेट में डाले, नहीं जाने दिया था। इतनी सुबह कुछ पकाने की व्यवस्था क्या होती। सरदारनी दही बिलो चुकी थी और आध सेर, तीन-पाव मक्खन का गोला थपक कर कटोरे में जमा चुकी थी। सुजान सिंह ने एक-एक बासी रोटी और उस पर बड़ा-सा मक्खन का डला रख कर उनको दिया और एक-एक छन्ना[2] ताज़ी लस्सी का उनके सामने रख दिया था।

हाथ पर बासी रोटी और मक्खन आते ही, दोनों की मिली-जुली गन्ध चेतन की नाक में बस गयी थी, उसके मुँह में पानी भर आया था और गोविन्दपुर में सुजान सिंह के घर बैठा-बैठा वह दूर-दराज़ अपने बचपन में चला गया था। वह बहुत छोटा था, जब सैला-खुर्द के स्टेशन पर उसे बासी रोटी के टुकड़े पर मक्खन की डली और कटोरी में दही देती हुई उसकी माँ मीठे स्वर में गाया करती थी :

बासी रोटी सज्जरा मक्खन
नाल देन्नी-आँ दहीं
जागिए गोपाल लाल
जागदा क्यों नईं

१. पराचेतना २. काँसे का बड़ा कटोरा।

चेतन ने निवाला तोड़ कर मुँह मे रख लिया था। बासी रोटी और मक्खन का भूला-बिसरा स्वाद फिर उसकी ज़बान पर लौट आया था। उसे होशियारपुर के दिनों की याद हो आयी थी, जब पिता की मार के डर से माँ ने दोनो भाइयों को अपने मायके भेज दिया था और उनकी लम्बी-मोटी नाक वाली, लम्ब-तडंग सौतेली नानी उन्हे बासी रोटी पर ताज़ा मक्खन रख देती थी और चेतन की आँखों में अपनी माँ का चेहरा—गाल और ठोड़ी पर गोदने की दो नीली-नीली बिन्दियाँ घूम जाती थी और उस नानी की रुखाई को देख कर, जो मा से दो-चार साल ही बडी होंगी, उसे अपनी माँ के उस मीठे गीत की याद आ जाती थी।

जल्दी के कारण सुजान सिह ने शायद दही की कटोरी नही दी थी, लेकिन मक्खन का डला इतना बड़ा था कि बड़ी-सी रोटी आराम से खायी गयी। रोटी खा कर और कटोरा भर लस्सी पी कर वे उठे थे। हुनर साहब तो चाहते थे कि सुजान सिह उनके साथ लालड़ाँ जा कर माई बाबा के दर्शन करा लाये, लेकिन सुजान सिह को जरूरी काम से शहर जाना था।

"तुसी बादशाहो फिकर न करो। सिद्धे आशरम चले जाना। रोज़ शाम नूँ ओत्थे कीर्तन हुन्दा ए ते बाबा घडी-पल आ के भगताँ नूँ दर्शन दिन्दे ने! एत त मंगल नू छड्ड, बाबा मन दे भरमा नूँ दूर कर दे ने, ते प्रश्नाँ दे उत्तर वी दिन्दे ने। तुसी सिद्धे चले जाओगे ते तुहान्नूँ कोई मुश्किल नई होवेगी। हाँ, बाबा दी इच्छा-बे-इच्छा दी गल्ल होर ए। इच्छा न होए ताँ ओह किसे नूँ नई मिलदे[1]।"

१. बादशाहो आप फ़िक्र न करे। सीधे आश्रम चले जायँ। रोज़ शाम को वहाँ संकीर्तन होता है और बाबा घड़ी-पल आ कर भक्तों को दर्शन देते हैं। इतवार और मंगल को छोड़ कर बाबा मन के सन्देहों को भी दूर करते हैं और प्रश्नों के उत्तर भी देते हैं। आप सीधे चले जायेंगे तो आपको कोई मुश्किल पेश नहीं आयेगी—हाँ, बाबा की इच्छा-अनिच्छा की बात दूसरी है। इच्छा न हो तो वे किसी से नहीं मिलते।

हुनर साहब ने अपने साथियों की तरफ़ से, रात आश्रय देने और उतनी खातिरदारी करने के लिए, सुजान सिंह को धन्यवाद दिया था। तभी बाजे बजने लगे थे। सुजान सिंह उन्हें गाँव के बाहर तक छोड़ने आया था और उसने उन्हें—विशेषकर हुनर साहब को—फिर आने और कुछ दिन उनके यहाँ की 'रुक्खी-मिस्सी' खाने का निमन्त्रण दिया था। हुनर साहब ने स्वभावानुसार उस सिक्ख जाट के फ़ौलादी हाथ को अपने दोनों नाजुक हाथों में ले कर उसे ज़रा बग़ल की ओर खींचते हुए और आगे झुकते हुए, बड़े स्नेह से दबाया था और दाँत निकोसते हुए फिर कभी उस दावत का मजा पाने का वादा किया था। वापस मुड़ते हुए, सुजान सिंह ने 'सत श्री अकाल' कहते हुए, दोनों हाथ जोड़ कर ऊपर उठाये थे और मुड़ गया था और वे चारों बरात के साथ चलने लगे थे।

वर्षा अपना पूरा जोर दिखा कर रात ही में खत्म हो गयी थी, लेकिन सुबह आकाश पर हल्के-हल्के बादल और धुन्ध छायी थी। गोविन्दपुर से लालड़ाँ को जाने वाली सड़क पर पानी-ही-पानी था और बैलगाड़ियों पर इतने सारे लोग नहीं जा सकते थे। यूँ भी प्रोग्राम यही था कि गोविन्दपुर से बरात बाजे के पीछे-पीछे लालड़ाँ तक जायगी। सड़क पर तो पानी भरा था, बाजे वाले दो पंक्तियों में सड़क की दोनों ओर, मेंडों पर हो लिये थे। बराती भी उसी तरह एक-दूसरे के आगे-पीछे दोनों ओर, मेड़ों पर चलने लगे थे। बैलगाड़ियाँ बीच सड़क हो ली थीं और यूँ रणवीर की बरात गोविन्दपुर से लालड़ाँ के लिए चली थी।

चेतन को वह दृश्य बेहद दिलचस्प और हास्यास्पद लगा था। बस्ती वालों की बात वह न जानता था, शायद वे ऐसी बरातों के आदी थे; लेकिन चेतन तथा उसके भाई के लिए वह अनुभव एकदम नया था।

वे लोग बातें करते हुए सबसे पीछे चल रहे थे। हुनर साहब बड़े जोश-खरोश से रणवीर और उसके साथियों को बाबा के चमत्कारों की कहानियाँ सुना रहे थे, तभी रास्ते में जाने कैसे रणवीर के जीजा, मिस्टर वत्स उनके साथ हो लिये थे। शायद वे लरज़े के मारे अपने ससुर और उनके बुज़ुर्ग

दोस्तों की संगति में बस्ती गजाँ से गोविन्दपुर तक आते-आते उकता चुके थे। या हो सकता है कि उन्हें हुनर साहब और उनके साथियों के बारे में उत्सुकता हो। एक जगह, जहाँ सड़क पर पानी नहीं था और बाजे वाले तथा बराती बीच सड़क हो गये थे, वे उन लोगों के साथ आ मिले।

"ऐन उस वक्त, जब डिप्टी कमिश्नर बाबा की कुटिया के दरवाजे में झुक कर दाखिल हुआ," हुनर साहब अपनी आदत के मुताबिक बाबा के चमत्कार का किस्सा सुनाते हुए उसमें रंग भर रहे थे, "तो बाबा की 'दिव्य-दृष्टी' के सीमी-पर्दे[1] पर उसका और उसके अहल-ो-अयाल[2] का माज़ी, हाल और मुस्तकबिल[3] नक्श हो आया और बाबा ने कहा—अरे मूरख, तू यहाँ क्या कर रहा है, तेरे बीवी-बच्चे तो ऐक्सीडेण्ट मे घायल पड़े है।"

तभी मिस्टर गणेशीलाल वत्स ने व्यंग्य से हँस कर कहा, "अंग्रेज़ डिप्टी कमिश्नर न हुआ, भंगी हो गया, जिसे बाबा ने मूरख कह कर पुकारा!"

हुनर साहब धारा-प्रवाह बोल रहे थे। उनकी वक्तृता के प्रवाह में बाधा पड़ी। उन्होंने निहायत ही उपेक्षा और दया-भरी नज़र से उस दम्भी इंजीनियर को देखा।

"डिप्टी कमिश्नर तो बहुत छोटी हस्ती है," उन्होंने व्यंग्य से मुस्करा कर कहा," पहुँचे हुए लोगों के सामने तो बड़े-से-बड़ा शाहनशाह भी बेवकूफ़ से ज़्यादा अहमियत नही रखता। आपको फ़ातहे-आलम[4] सिकन्दरे-आ'ज़म का वह किस्सा मालूम नहीं, जब वह यूनान के एक फ़िलासफ़र, सन्त डायोजिनीज़ के हुजूर मे पहुँचा था। सन्त एक टोकरी में ही बैठता-सोता था। उस वक्त वह धूप ले रहा था। सिकन्दर ने कहा था, 'बाबा मै आपकी क्या खिदमत कर सकता हूँ।'

" 'तू मेरे लिए क्या करेगा,' सन्त ने कहा था, 'बस ज़रा यह धूप छोड़ दे!' "

१. रजत पट २. बीवी-बच्चे,
३. भूत, वर्तमान, भविष्य ४. विश्व-विजेता

और जैसे उस किस्से से मिस्टर वत्स को ध्वस्त करके, हुनर साहब सुजान सिंह से सुनी हुई बातों को बढ़ा-चढ़ा कर बयान करने लगे थे।

लालड़ाँ तक यही सिलसिला रहा था। श्री वत्स ने, अपने आप को परम नास्तिक दिखाते हुए, साधु-सन्तों और उनकी प्रशंसा में किस्से गढ़ने वाले, अपढ़, अन्ध-विश्वासी हिन्दुस्तानियों का खूब मज़ाक उड़ाया था और हुनर साहब उनसे उलझे रहे थे। जब बरात लालड़ाँ पहुँची और धर्मशाला में ठहरायी गयी, तब सामान वगैरा रख कर हुनर साहब ने घोषणा की कि वे नाश्ता नहीं लेंगे और किसी आदमी की तलाश करेंगे, जो उन्हें बाबा के दर्शन करा लाये। तभी मिस्टर वत्स उनके साथ लग लिये थे।

"आप किधर जा रहे हैं?" सहसा हुनर साहब ने पूछा था।

"हम भी ज़रा देखेंगे आपके सन्त को।" उन्होंने जैसे बेपरवाही से कहा था।

हुनर साहब ने उन्हें वापस ले जा कर, दोनों कन्धों को सानुरोध दबाते हुए, बैठा दिया था कि वे फ़िक्र न करें, ज्यों ही सम्पर्क स्थापित हुआ, उन्हें साथ ले लिया जायगा। और उन्हें यह विश्वास दिला कर हुनर साहब धर्मशाला के बाहर निकले थे।

संकीर्तन पूरे ज़ोरों से चल रहा था। चेतन खड़ा-खड़ा थक गया था। उसने अपने साथियों की ओर देखा। चिरंजीलाल और उसके पिता पूर्ववत आँखें बन्द किये, तन्मय भाव से गा रहे थे। हुनर साहब और निश्तर उन बोलों को भक्तों के साथ दोहरा रहे थे। चेतन को यह देख कर हैरत हुई कि और-तो-और, सब मामलों में निरपेक्ष रहने वाले भाई साहब और वे परम नास्तिक मिस्टर वत्स भी होंटों-ही-होंटों में बोल दोहरा रहे हैं :

बिरथा सारी उमर गँवावे
काम ते क्रोध दे कोड़े खावे
लोभ ते मोह विच्च फस्सदा जावे

मूरख प्रभ नूँ नाहिं ध्यावें
(जो) कट्टे दाम[1] प्यारेआ

और सारी भीड एक स्वर से गा उठी

एत्थे बैठ किसे नइँ रहना

चेतन चाहता था कि बैठ जाये, लेकिन उसके तमाम साथी खडे थे। चिरंजो लाल और उसके पिता ने अपने आगे खडे साधुओ से खडतालें और छैने ले लिये थे और वे आत्म-विभोर हो, झूमते हुए, बजाने और गाने लगे थे। चेतन देर तक चिरंजीलाल को देखता रहा और सुबह उसकी छोटी-सी कोठरी मे जो कुछ भी हुआ था, वह जैसे हल्के पसीने से चमकते उसके चेहरे पर चित्रित हो आया था।

लालडाँ सडक के ऊपर ही बसा था और धर्मशाला, जहाँ बरात टिकी थी, गाँव के बाहर ही थी। वहाँ से निकल कर जब वे गाँव के अन्दर दाखिल हुए तो चेतन के नथुनो मे बासी रोटी और मक्खन की खुशबू की तरह कई पुरानी गन्धे भर गयी थी। उसे सैला और पद्दी पोसी के गाँवो की याद हो आयी थी। वही चन्द-एक दुकानो वाला वीरान-सा बाजार और वही सूनी गलियाँ और वही मिट्टी-सने नंग-धडंग बच्चे।

वे बाजार मे जा रहे थे, जहा आगे रणवीर के ससुर की बैठक और दुकान थी। तभी उन्हें दायी गली म, बडी ही सुरीली आवाज मे, 'दाग' का शे'र सुनायी दिया

शमशीर खिच के पंजा-ए-कातिल में रह गयी
बिस्मिल की आरजू-ए-बिस्मिल में रह गयी

"गाने वाले ने गला बहुत सुरीला पाया है, लेकिन वह गलत गा रहा है," सहसा हुनर साहब धोती उठा कर कीचड को फलाँगते और गली की ओर बढते हुए बोले, "लफ्ज 'दिल' खा ही गया है।"

---

१. जाल

शे'र सुनते ही चेतन का दिल ज़ोर से धड़क उठा था। उसे देवी तालाब (जालन्धर) पर हर वर्ष लगने वाले हरबल्लभ के मेले की याद हो आयी थी, जहाँ चार-पाँच वर्ष पहले उसने यही ग़लत शे'र सुना था। उन दिनों हरबल्लभ के आकाश पर एक नये सितारे का उदय हुआ था और सारे नगर में उसकी चर्चा थी .. कैसा सुरीला कण्ठ पाया है....कितना अच्छा गाता है....इतनी उम्र में लय और तान का कितना ज्ञान है और हालाँकि उन दिनों चेतन को पोने के पंजाबी कवियों के बैंत सुनने में ज़्यादा रस मिलता था, लेकिन जब उसने सुना था कि वह नया संगीतज्ञ ग़ज़लें भी बहुत अच्छी गाता है तो वह उसे सुनने गया था। उसने देखा था कि तेरह-चौदह वर्ष का तीखा-सा, साँवला-सलोना लड़का, चूड़ीदार पायजामा सितारेदार नीला मख़मली अचकन पहने, सिर पर रागियों-सी पगड़ी बाँधे, अपने प्रशंसकों में घिरा बैठा है। गाने से पहले गुनगुनाते हुए उसने जो तान खींची तो चेतन का दिल इसी तरह धड़क उठा था—'कितना सुन्दर गला पाया है इस लड़के ने!' उसने मन-ही-मन कहा था, लेकिन जब उसने यही शे'र पढ़ा था तो यह जान कर कि वह एक शब्द ही खा गया है, उसका दिल बैठ गया था और जब वह :

बिस्मिल की आरज़ू दिल-ए-बिस्मिल में रह गयी

की बजाय बार-बार

बिस्मिल की आरज़ू-ए-बिस्मिल में रह गयी

दोहराने लगा था तो बिना दूसरा शे'र सुने, चेतन उठ आया था।

इतने वर्ष गुज़र जाने पर भी चेतन वह आवाज़ पहचान गया था, फिर शे'र की वह ग़लती इस बात की चुगली खाती थी कि निश्चय ही गाने वाला वही लड़का है।

"कण्ठ इसका ज़रूर सुरीला है," चेतन ने हुनर साहब की बात के जवाब में उनके साथ ही कीचड़ पार कर गली में आते हुए कहा था, "लेकिन उसे ग़ज़ल-वज़ल का कोई ज्ञान नहीं है। अगर मेरा अन्दाज़ा

ग़लत नहीं तो यह वही लड़का है, जिसे मैंने कॉलेज के ज़माने में हरबल्लभ के मेले में सुना था।"

वे लोग उस मकान की तरफ बढ़े, जिसकी बैठक से गाने की आवाज़ आ रही थी। जाने किसने उसे यह ग़ज़ल सिखायी है, चेतन सोचने लगा और बिना उसका मतलब समझे, वह इतने वर्षों से उसे ग़लत ही गाये जा रहा है। वह शहर में रहता तो अब तक कोई-न-कोई उसे उसकी ग़लती समझा देता, लेकिन जालन्धर नहीं, चहेड़ू ऐसे कस्बे से भी कोसों दूर इस गाँव में कौन उसे उसकी ग़लती सुझाये। वह कभी-कभार दूर-पार शहरों के संगीत-सम्मेलनों में जाता होगा, तब उसके कण्ठ का अमृत लोगों को इतना विमुग्ध कर देता होगा कि वे उस फ़ाश ग़लती[1] को नज़र-अन्दाज़ कर जाते होंगे।

जब वे चारों, गली की उस छोटी-सी बैठक के सामने पहुँचे तो हुनर साहब ने एक क्षण अन्दर झाँक कर देखा और फिर अन्दर चले गये। चेतन, निश्तर और भाई साहब भी उनके पीछे बढ़ गये।

बैठक में दरवाज़े के सामने ही एक छोटा-सा तख़्त पड़ा था, जिस पर एक मैली-सी दरी बिछी थी, लेकिन वह गायक-लड़का, नीचे चटाई पर एक हार्मोनियम रखे, गा रहा था और उसके साथ एक अधेड़ व्यक्ति तबले पर संगत कर रहा था।

उन लोगों के अन्दर दाख़िल होते ही हार्मोनियम छोड़ कर वह लड़का और तबला छोड़ कर वह अधेड़ उठ खड़ा हुआ था। चेतन उसे तत्काल पहचान गया। वही था, जिसे उसने हरबल्लभ में देखा था। यद्यपि उसके मुख पर अब वह लुनाई नहीं थी, इन चार-पाँच वर्षों में वह चेहरा थोड़ा रूखा हो आया था, पर मुश्की रंग और तीखे नक्श वही थे। हाँ, हरबल्लभ के मंच पर हज़ारों प्रशंसकों में बैठे उस लड़के के चेहरे पर जो आभा चेतन को दिखायी दी थी, उसका स्थान लालड़ाँ की उस कोठरी-नुमा बैठक में

१. साफ़ दिखायी देने वाली ग़लती। खुली ग़लती।

कुछ अजीब-सी निरीहता ने ले लिया था। तबला-वादक का नाक-नक्शा भी उस लड़के ऐसा ही था। शायद वह उसका पिता अथवा चाचा था।

हुनर साहब ने उसी अधेड़ को सम्बोधित कर कहा कि वे अपने एक मित्र की बरात में आये हैं। गली से गुजर रहे थे कि लडके का सुरीला कण्ठ और नाखुदा-ए-सुखन,[1] उस्ताद 'दाग' की गजल के बोल उनके कानो मे पड़े। वे भी कुछ शे'र-वे'र कहते है...

इस मरहले पर चेतन ने जरा आगे बढ कर उनका सविस्तार परिचय दिया। निश्तर ने हुनर साहब की तारीफ़ मे कुछ और पत्ते लगाये।

हुनर साहब के होंटो पर बड़ी प्यारी मुस्कान आ गयी। उन्होने चेतन का परिचय देते हुए, उसे उर्दू साहित्य की नयी पीढी का मुमताज़[2] शायर और अफ़सानानिगार, भाई साहब को लाहौर के प्रमुख डेण्टिस्ट और निश्तर को जालन्धर का नाम रोशन करने वाला बताया। फिर अपनी बात जारी रखते हुए उन्होंने कहा कि गज़ल के पहले ही शे'र मे उन्हे कुछ गलती लगी, इसलिए वे अन्दर आ गये।

तबला-वादक ने खीसें निकोसते हुए उन्हे बताया कि चिरंजीलाल (चेतन को यह नाम निहायत गैर-रूमानी और किसी कलाकार के लिए नितान्त अनुपयक्त लगा) उसी का बेटा है। वह स्वयं संगीत-सम्राट कृष्णाराय के साथ रहा ह और उसी ने स्वयं चिरंजी को संगीत की शिक्षा दी है। लालडाँ, शहर और ज्ञ़ली सड़क से दूर है, इसलिए पढ़े-लिखों की संगत उसे उपलब्ध नही। हुनर साहब अगर बच्चे की ग़लती सुधार देंगे तो वह बहुत कृतज्ञ होगा।

तब चेतन, निश्तर और भाई साहब के साथ हुनर साहब तख्त पर बैठ गये और उन्होने वह पूरी गजल सुनने की फ़रमायश की थी।

लड़का फिर हार्मोनियम के आगे चटाई पर बैठ गया था। उसके पिता ने तबला सँभाला था। लडके ने अभी पहला शे'र ही गाया था कि हुनर साहब ने उसकी गलती बतायी थी।

---

१. काव्य की नैया के खेवनहार। २. प्रमुख

लेकिन चिरंजीलाल पिछले पाँच वर्षों से न जाने कितनी बार वह शे'र उसी ग़लती के साथ गाता आ रहा था, हुनर साहब के बताने के बावजूद, दूसरी बार भी वह उसी ग़लती को दोहरा गया।

हुनर साहब ने उसे नहीं टोका, लेकिन जब वह गज़ल गा चुका तो उन्होंने बड़े धैर्य से उसे वह शे'र ठीक रूप में गाना सिखाया। फिर उसे यह सलाह दी कि उसे इतनी मुश्किल गजलें नहीं गानी चाहिएँ। उसे 'सादा और पुरकार'[1] चीज़ें गानी चाहिएँ, जो सुनने वालों के कानों से हो कर सीधे उनके दिलों मे घर कर ले; जिन्हे श्रोता आसानी से समझ लें और जिन्हे सुन कर वे सिर धुनते हुए, झूमने लगें।

चेतन ने हुनर साहब का संकेत समझ कर, उस तबला-वादक पिता को समझाया कि उन्हें लालड़ाँ में हुनर साहब की आमद का पूरा फ़ायदा उठाना चाहिए।

निशतर ने चेतन का समर्थन किया और हुनर साहब की गज़लों की प्रशंसा में ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिला दिये थे।

हुनर साहब प्रसन्न हो गये थे। उन्होंने इस खुशी में चेतन से फ़रमायश की कि वह अपनी वही मशहूर ग़ज़ल सुनाये, जिस पर मुशायरा-ए-गिरामी में बेहद दाद मिली थी और उसे चिरंजीलाल को लिखा दे। इतने में वे कोई आसान, लेकिन इसके बावजूद गहरी गज़ल सोचते हैं।

और यह कहने के बाद उन्होंने उन बाप-बेटे की ओर मुखातिब हो कर कहा था, "चेतनानन्द बहुत अच्छे शायर हैं और अपने मरहूम दोस्त कश्मीरीलाल 'दाग़' की याद मे इन्होने 'दाग़' तखल्लुस अपना लिया है। आप ज़रा इनकी एक गजल लिखिए, मैं इतने में कोई मौज़ूं चीज़ सोचता हूँ।"

चेतन कब का ग़ज़लें लिखना छोड़ चुका था। अब हुनर साहब ने जिस गज़ल का ज़िक्र किया था, वह उसकी पहली ग़ज़ल थी। उस्ताद ने उसमें

१. सरल, लेकिन इस पर भी गहरी।

इतना फेर-बदल कर दिया था कि वह उसकी ग़ज़ल न हो कर, उनकी हो गयी थी। उसका मन वह ग़ज़ल सुनाने को नहीं था, लेकिन चेतन जानता था कि हुनर साहब मानेंगे नहीं। वह उनका ढंग जानता था। पहले वे अपने साथियों को सुनाने के लिए कहते थे और उनको दाद देते हुए उपयुक्त वातावरण तैयार कर लेते थे, फिर वे जम कर सुनाते थे। चेतन चुपचाप ग़ज़ल सुनाने लगा था :

बस इसी बात पे दा'वा था मसीहाई का

और हुनर साहब उछले थे और—'बस' और 'इसी'—दो शब्दों पर जोर दे कर जरा रुकते हुए, उन्होंने मिसरा उठाया था :

बअ़स, इसी-ी-ी बात पे दा'वा था मसीहाई का

और चेतन ने उसी तरह वह मिसरा दोहरा कर पूरा शे'र कहा था :

बस इसी बात पे दा'वा था मसीहाई का
दम तेरे सामने निकला तेरे शैदाई का

और हुनर साहब ने 'वाह-वा,' 'क्या कहने हैं' के साथ दाद देते हुए उन देहातियों को शे'र की नजाकत समझायी थी :

"ईसा-मसीह के बारे में मशहूर है कि उनके छू देने भर से मुर्दे जी उठते थे। महबूब को भी मसीहा कहते हैं, कि उसके देखने से ही मुर्दे जी उठते हैं, लेकिन यहाँ मुआमला बरअक्स है, महबूब के सामने ही आशिक की जान निकल जाती है, इसलिए शायर तंज़[1] करता है :

बस इसी बात पे दा'वा था मसीहाई का"

और उन्होंने फिर शे'र पढ़वाया और दाद दी। तब चेतन ने दूसरा शे'र पढ़ा :

सब मुझे जान गये, सब मुझे पहचान गये
फ़ायदा कुछ तो हुआ इश्क में रुस्वाई का

इससे पहले कि चेतन तीसरा शे'र पढ़ता, हुनर साहब ने भूमिका बाँधी :

१. व्यंग्य

"मुशायरा-ए-गिरामी मे बस्ती ग़ज़ाँ के मशहूर उस्ताद 'रसा' ने अपने शार्गिद को एक गज़ल लिख कर दी थी, जिसमे शे'र था :

"देखी दीवार जहाँ दौड़ के सर फोड़ लिया
लोग मुंह देखते रह जाते है सौदाई का

"शे'र बेसाख्ता कहा गया है और खूब है, लेकिन जब चेतन ने शे'र पढा तो ऐसा जमा कि 'रसा' साहब के शागिर्द को शे'र पढने का हौसला ही नही हुआ।"

और उन्होने चेतन की तरफ देख कर कहा, "हाँ भाई !" और चेतन ने शे'र पढा :

कब इसे होश है, दीवार से सर फोड़ मरे
हाल है रहम के काबिल तेरे सौदाई का

और हुनर साहब ने दाद दी, "वाह वा, क्या बात पैदा की है। वह सौदाई ही क्या हुआ, जिसे इस बात की समझ रह गयी कि यह दीवार है, इससे सर फोड लें," और उन्होने सिर धुनते हुए कहा "हाय-हाय !

"हाल है रहम के काबिल तेरे सौदाई का।"

और यूं दाद दे कर और रंग बाँध कर फिर हुनर साहब ने उसे नही टोका और चेतन बिना किसी हादिसे के, गजल के बाकी शे'र पढ गया।

तब हुनर साहब ने बड़ी उदासीनता और अनपेक्षता का प्रदर्शन करते हुए कहा कि उन्हे उस वक्त कोई मौजूं गजल याद नही आ रही, लेकिन वे कुछ शे'र सुना देते है। चिरंजीलाल से कहिए, लिख ले :

और वे सुनाते और लिखाते गये—एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी। वे दस गजले लिखा चुके थे, जब चेतन ने उन्हे याद दिलाया कि उन्हे बाबा के भी दर्शन करने है।

हुनर साहब का बस चलता तो वे चिरंजीलाल संगीत-विशारद को न केवल अपना पूरे-का-पूरा दीवान लिखवा देते, वरन शब्दों का ठीक उच्चारण और ठीक लहजा भी सिखा देते, लेकिन चेतन की बात सुन कर वे फौरन उठे और बाहर निकल आये।

चिरंजीलाल और उसके पिता भी बाहर गली में आ गये और यह जान कर कि वे सब बाबा से मिलना चाहते हैं, उन्होंने कहा कि चिरंजी पर बाबा की बड़ी कृपा है। यूँ तो आज कीर्तन है और कीर्तन के रोज़ बाबा सभी को अनायास दर्शन देते हैं, लेकिन चूँकि वे लोग महज़ दर्शन नहीं, उनसे मुलाकात भी करना चाहते हैं, इसलिए चिरंजी अभी जाता है और समय ले आता है। वक्त काफ़ी हो गया है। वे लोग डेरे जायँ। खाना खा कर तैयार रहें, वे दोनों बाप-बेटा स्वयं उन्हें बाबा के दर्शनों को ले जायेंगे।

उनको धन्यवाद दे कर वे लोग वापस डेरे पर आ गये थे। इस बीच रणवीर के सेहरा बंध चुका था। दोपहर का खाना वहीं डेरे पर आ गया था। सब खाने के लिए तैयार थे। वे भी पाँत में जा बैठे।

खाना खा कर उठे ही थे कि चिरंजी और उसके पिता उन्हें लेने आ गये। वे लोग चलने लगे तो पण्डित वेणीप्रसाद ने कहा कि लग्न छै बजे शाम का है, वे समय से पहुँच जायँ।

हुनर साहब ने कहा कि बाबा के दर्शनों को जा रहे हैं। हो सकता है, थोड़ी देर हो जाय। भाँवरों पर देर भी हो गयी तो वे बरात के खाने पर पहुँच जायेंगे, पण्डित जी चिन्ता न करें।

और जब वे चारों, धर्मशाला से बाहर निकले तो चेतन ने देखा कि पण्डित गणेशी लाल वत्स, माइनिंग इंजीनियर लपक कर उनके साथ हो लिये—यह निहोरा देते हुए—"क्यों साहब, आप तो हमें भूल ही गये।"

(ओ) पूरण प्रभ जी ताईं ध्या लै
गुरुआँ चरणाँ डेरा ला लै
मारग मुक्ती दा अपना लै
ऐत्थेई[1] स्वर्गा-दा सुख पा लै
(ते) गा लै नाम बन्देआ

---

१. यहीं

भजन में कवि का नाम आ गया था और चेतन ने समझ लिया था कि बस अब संकीर्तन समाप्त होने वाला है। गाने वालों के पूरे जोश-खरोश और स्वरों के पूरे कसाव के बावजूद, एक अदृश्य ढिलाई फिज़ा मे आ गयी थी और सच ही सारे भक्तों द्वारा टीप के बन्द गाये जाने के बाद एकदम चिमटा, खड़तालें और छैने बन्द हो गये। क्षण भर के लिए उनकी गूंज वातावरण मे फैली रही, फिर कुछ अजीब-सा सन्नाटा सारे वातावरण पर उतर आया।

तभी किसी ने ज़ोर से नारा लगाया, "माई बाबा दी...."

और दिशाओं मे गूंजता हुआ जयकारा आकाश मे गूंज उठा और सारी भक्त-मण्डली एकदम उठ खड़ी हुई।

चेतन बैठ गया था। उसने उठ कर पीछे की ओर मुड़ के देखा—बीच वाली कुटिया मे एक पतला-छरहरा व्यक्ति, लम्बा ऊनी चोला पहने, गर्दन ज़रा-सी झुकाये, जैसे अपने विचारों में गुम, चला आ रहा था।

जब वह थोड़ा निकट आया तो चेतन ने पहचान लिया—वही फोटो वाला बाबा है—सिर और दाढ़ी के वैसे ही छोटे-छोटे, अधपके बाल; चेहरे पर वही हल्की-सी थकान; होंटों पर वही करुणा-भरी मुस्कान।

तभी चिरंजीलाल के पिता अपने बेटे को लिये हुए चबूतरे से उतर कर आगे बढ़े और उन्होंने एकदम ज़मीन पर लेट कर बाबा को साष्टांग प्रणाम किया।

बाबा हाथ उठा कर उन्हे आशीर्वाद दे रहे थे, जब आश्रम के खुले गेट के सामने एक जीप आ कर रुकी। धूल का बादल उठ कर गेट पर छा गया। कुछ क्षण बाद चेतन ने देखा कि एक लम्बी, छरहरी अंग्रेज महिला, एक सूट-बूट-धारी तथा कुछ बावर्दी लोगों की अर्दल मे आश्रम मे दाखिल हो रही है। गेट पर उसने दोनों हाथ जोड़ कर हल्का-सा सिर झुकाया, जूते उतारे और आगे बढ़ी।





बारह

बाबा की झोपड़ी मे जाते हुए, चौखट में क्षण भर रुक कर, चेतन ने चारो ओर देखा गाय के गोबर मे लिपा-पुता दालान; लकडी का एक तख्त, कच्चे फर्श पर फेरी हुई ईख की खोइयों के आसन—जिन्हे पंजाबी लोग मूढे ही कहते है—और बाहर मे आने वाले दरवाजे के ऐन सामने, अन्दर के कमरे को जाने वाला, किसी देहाती बढई के हाथों बना, वैसा ही अनगढ-सा दरवाजा ...बाबा की झोंपडी मे पैर रखते ही उसे कुछ अजीब-सी सादगी, स्वच्छता और पवित्रता का एहसास हुआ।

दालान मे न कोई चित्र था, न सजावट का कोई दूसरा सामान। तख्त पर किसी देहाती स्त्री के हाथों बनी, कद्रे खुरदरी, लेकिन रंगीन धारियों वाली दरी बिछी थी और तख्त के पास ही फर्श पर मिट्टी के एक खूबसूरत प्याले मे लोबान जल रहा था।

लिपे हुए कच्चे दालान और लोबान की मिली-जुली गन्ध चेतन के नथुनो मे भर गयी। क्षण भर के लिए उसके मस्तिष्क मे उनका पुराना खंडहर मकान और उसका नीम-अँधेरा रसोई-घर घूम गया, जिसे उसकी मा रोज चिकनी मिट्टी से पोतती थी, हर हफ्ते गाय के गोबर से लीपती थी और वहा कभी-कभार—विशेषकर त्योहारो के अवसर पर चप्पनी[1] मे लोबान जलाती थी....वही पुरानी स्मृति और वही पुरानी गन्ध—स्वच्छता, सादगी और पवित्रता का वही एहसास....

उन लोगों के बाद वह अंग्रेज महिला अपने दो साथियों को अर्दल में

१. किसी घड़े अथवा चाटी का ढक्कन

लिये आयी । जूते उसने बाहर उतारे और क्षण भर वही चौखट मे खडी, कच्चे फर्श पर बिछे खोइयो के मूढों को देखती रही । फिर उसकी नजर अपनी स्कर्ट पर गयी—वह उनके साथ कैसे फर्श पर बैठेगी !

"डोण्ट दे सिट ऑन चेयर्ज हियर[1] ?" उसने अपने साथ खडे, सूट-बूट-धारी, देसी डिप्टी कलक्टर से कहा ।

डिप्टी ने अंग्रेजी ही मे उसे समझाया कि साई बाबा आध्यात्मिक गुरु है और भारतीय परम्परा के अनुसार गुरु के सामने नीचे ही बैठते हैं । फिर यह देहात है, यहा कुर्सी-वुर्सी होगी, इसका भरोसा नही, तो भी वह पता करता है

और उसने पलट कर बावर्दी सिपाही को धीरे-से कुछ आदेश दिया । वह सलाम ठोक कर मुडा और लगभग भागता हुआ चला गया ।

इसी बीच चेतन और उसके साथी जा कर तख्त के उस ओर बिछे आसनो पर बैठ गये थे । तब उनकी देखा-देखी उस अंग्रेज महिला ने तख्त के इस ओर बिछे, खोई के आसन पर फसकडा मार कर बैठने की कोशिश की, लेकिन इस प्रयास म उसकी स्कर्ट बहुत ऊपर उठ गयी, उसकी जाघे नगी हो गयी और उसका अण्डरवेयर तक दिखायी देने लगा । चेतन की ही नही, हुनर साहब, भाई साहब निश्तर और वत्स, सभी की निगाहे उन गोरी-गोरी जाँघो और उनमे झाँकते रेशमी अण्डरवेयर पर केन्द्रित हो गयी । चेतन ने चोर आँख से देखा डिप्टी साहब का चेहरा लाल हो आया था, जैसे उनके घर की कोई जवान औरत नगी हो गयी हो मगर निगाहे उनकी भी वही थी ।

लेकिन उस अंग्रेज महिला के चेहरे पर न अस्वस्ति-बोध था, न लज्जा, न लाली । उधर उसका ध्यान ही नही गया था । उस तरह बैठने मे उसे जो कष्ट हुआ, उसी के कारण वह चुपचाप दोबारा उठी और घुटने मोड कर फिर मूढे पर बैठ गयी ।

---

१. क्या लोग यहाँ कुर्सियों पर नहीं बैठते ?

भले ही उसके मन मे कोई वैसी बात न हो, लेकिन चेतन को लगा कि उस गोरी मेम ने उनका नोटिस न ले कर, उन सब का अपमान किया है, उसके निकट उस कमरे मे बैठे सभी हिन्दुस्तानी गुलाम है—महज गाय-बैल या मिट्टी के लादे—तभी तो वह नगी हो जाने के बावजूद, जरा नही लजायी। और यह सोच कर चेतन का मन क्रोध से भर आया।

तभी चेतन की नजर डिप्टी पर गयी। मेम के ठीक से बैठ जाने पर उसका चेहरा भी नॉर्मल हो गया था। मेम से इजाजत ले कर वह भी उसके निकट ही मूढ़े पर बैठने लगा—पतलून पहने हुए आलथी-पालथी मार कर बैठने मे उसे भा क ट हुआ। तब उसने पायचे जरा ऊपर चढा लिये और बैठ गया। क्षण भर मेम आराम से बैठी रही, फिर उसके माथे पर जिस प्रकार नीली-नीली रगे उभर आयी, उसका चेहरा जैसे विकचित हो आया, उससे चेतन ने जान लिया कि खोइयो का वह खुरदरा मूढा, उस मेम की नगी पिंडलियो पर चुभ रहा है। चेतन ने देखा कि उसके कष्ट से परेशान, डिप्टी के माथे पर भी नमी उभर आयी है।

चेतन ने निगाह भर कर उस गोरी मेम को देखा। उसका रग गेहुआँ अथवा दूधिया गोरा नही था जैसे कुछ पंजाबियो अथवा पठानो का होता है, वरन चमकती चादी-सा, फुलबहरी[1] के मारे रोगी-सा सफेद था और उसके चेहरे पर लाल-लाल चकत्ते थे। वह गोरापन आखो मे चुभता था। गर्मी के कारण उसकी गोरी बाहो मे लाल-लाल दाने से उभर आये थे और लगता था, जैसे किसी ने लाल रग से गोदने कर दिये हो। वह लगभग छ फुट लम्बी, पतली-छरहरी युवती थी, उसकी उम्र का अन्दाजा करना कठिन था पर तीस-बत्तीस से ज्यादा नही थी। तीखे नाक-नक्शे वाली, स्वस्थ और सुन्दर! पर यही दोष था, जाने किस आन्तरिक तनाव के कारण वह अपनी लम्बी नाक को अजाने ही रह-रह कर कभी दायी और कभी बायी ओर चढाती थी और तब खासी बेतुकी और असुन्दर लगती थी।

१. सफेद कोढ़

चेतन की दृष्टि मे बिध कर मेम ने हठात किंचित क्रोध से उसकी ओर देखा। चेतन ने आँखे नही झुकायी, केवल अपनी दृष्टि का केन्द्र उस गोरी मेम के दाये कन्धे के ऊपर दीवार को बना दिया। क्षण भर बाद मेम ने जरा-सा सिर घुमा कर उत्सुकता से अपनी गर्दन के पीछे दीवार मे देखा कि चेतन वहाँ क्या देख रहा है, लेकिन वहाँ कुछ नही था। इस बीच चेतन दालान के दरवाजे के बाहर देखने लगा था। उसकी चोर आख ने उस अहकारी मेम की उत्सुकता को दख लिया था और उसके होटो पर मुस्कान की एक क्षीण-सी रखा खेल गयी थी।

बाहर आम के पेड के नीचे माई बाबा भक्तो की भीड मे घिर थ। इतनी दूर स उनके वचनो को सुनना तो कठिन था, चेतन इतना ही देख पाया कि भक्त बारी-बारी उनके चरणो पर झुकते और आशीष पात ह।

[सकीर्तन खत्म होने क साथ ही, जब बाबा झोपडी से बाहर आय थे और उन गायक बाप-बटे ने उन्हे साष्टाग प्रणाम किया था तो आशीर्वाद देते हुए बाबा ने चिरजीलाल क कन्धे को जरा-सा थपथपाते हुए कहा था कि वह अतिथियो को ले जा कर झोपडी मे बैठाय, व आते हे।

तब उस अग्रेज महिला क साथ आने वाले सूट बूट-धारी देसी अफसर ने किचित झुक कर बाबा को प्रणाम किया था और बताया था कि वह जिले का डिप्टी कलक्टर है, डिप्टी कमिश्नर साहब की साली इग्लिस्तान से आयी हे, बाबा स भेट करना चाहती है और साहब बहादुर ने बाबा को प्रणाम भेजा है और विनती की हे कि उन्हे दर्शन दे।

बाबा ने उनको भी अन्दर जा कर बैठने के लिए कहा था।]

चेतन चाहता था कि उस महिला से बात करे, यह जाने कि वह बाबा से क्या पूछना चाहती है ? भारतीय पीरो-फकीरो, साधु-सन्तो के बारे मे उसके कैसे विचार है ? लेकिन जिले के कलक्टर की उस साली के चेहरे पर कुछ ऐसी निरपेक्षता, अहंकार और दूरी थी कि उसे साहस नही हुआ।

कोई अमरीकन महिला होती तो शायद चेतन पहल करता। उसने कही पढा था कि अमरीकनों में पंजाबियों का-सा खुलापन होता है और उनसे बातचीत करना कठिन नहीं होता, लेकिन अंग्रेज किसी दूसरे से तो क्या, अपनी जाति वालों से भी, बिना परिचय के, बात नही करते और लन्दन की सबर्बन गाड़ियों मे अंग्रेज मुसाफ़िर अपने-अपने अखबार आँखों के आगे खोले, बिना किसी साथी से बातचीत किये, बैठे रहते है। फिर यहाँ तो अंग्रेज सहयात्री नहीं, शासक थे। वह मेम ज़िले के शासक की साली थी। ग़ुलाम हिन्दुस्तानियों की ओर देखना भी उसे गवारा नही था।

लेकिन शासक वर्ग की उस गोरी महिला को उस गोबर-पुते कच्चे दालान मे खोइयों के खुर्रे मूढे पर बैठे देख कर चेतन को अजीब-सा सन्तोष हुआ था। वह अंग्रेज़ों को किसी खास मिट्टी के बने हुए इन्सान समझता आया था। किसी साधु-फ़क़ीर के दर पर वे जा सकते है, इसकी तो वह कल्पना ही न कर सकता था। प्रकट ही अपने बहनोई, डिप्टी कमिश्नर से बाबा के चमत्कारों की बात सुन कर वह गोरी मेम कच्ची सड़को पर हिचकोले खाती, इस गांव में आ पहुँची थी। चेतन को यह जान कर खुशी हुई कि आखिर अंग्रेज भी उन्हीं-जैसे माया-मोह में फँसे और अन्ध-विश्वासो मे ग्रसे, इन्सान हैं।

तभी बावर्दी सिपाही कही से एक रुपये वाली, मैली, जंग-खायी लोहे की कुर्सी, एक दरी और साफ़ चादर लिये हुए आया। डिप्टी कलक्टर ने उठ कर उससे तत्काल दोनों चीज़े ले ली। कुर्सी उसने तख्त के निकट रख कर उस पर दरी तहा कर बिछा दी, फिर चादर को तहा कर उस पर बिछा दिया और उसने बडे खुशामद-भरे लहजे मे उस महिला से कहा, "प्लीज़ कम ओवर हियर[1] !"

महिला बड़ी कठिनाई से उठी, उसने उड़ती-सी एक नज़र फ़र्श पर बैठे हुए उन लोगों पर डाली, फिर उसने डिप्टी कलक्टर से कहा कि वह कुर्सी पर नहीं बैठेगी, वह दरी और चादर फ़र्श पर बिछा दे।

१. कृपया इधर आ जाइए !

डिप्टी कलक्टर ने तत्काल उसी तरह तहाई हुई दरी और चादर मूढ़े पर बिछा दी और कुर्सी ले जा कर बाहर पहरे पर खड़े सिपाही को दे दी।

मेम फिर घुटने मोड़ कर बैठ गयी, लेकिन मूढ़ा छोटा था और दरी के बावजूद चुभता था। दूसरे क्षण वह फिर उठी और उसने खोई के मूढ़े की ओर संकेत कर, अंग्रेजी में कहा, "दिस थिंग हर्ट्स[1]।" और चाहा कि मूढ़ा नीचे से हटा दिया जाय।

डिप्टी कलक्टर ने उसी तत्परता से मूढ़ा अलग कर दिया और फ़र्श पर तहाई हुई दरी और उस पर चादर बिछा दी। तब मेम फिर उसी तरह घुटने मोड़ कर बैठ गयी और उसने स्कर्ट से अपने घुटने ढँक लिये और उसके चेहरे का तनाव दूर हो गया, लेकिन तभी बाबा उन्हीं पाँचों साधुओं के साथ अन्दर आये। सभी एक साथ उठ खड़े हुए।

बाबा ने आशीर्वाद में हाथ उठाया और सब को बैठने का संकेत किया। वे पाँचों साधु बाबा को झोंपड़ी में छोड़ कर, पलट गये। बाबा तख्त पर आ कर, टाँग-पर-टाग रखे, बैठ गये।

उस मेम ने दूसरों की तरह दोनों हाथ जोड़ कर और ज़रा-सा झुक कर बाबा को प्रणाम किया, फिर वह उसी तरह टाँगें मोड़ कर, स्कर्ट से उन्हें ढँकती हुई, बैठ गयी।

तब बाबा उसकी ओर ज़रा-सा झुके, डिप्टी कलक्टर को सम्बोधित कर, उन्होंने बड़े मीठे स्वर में पूछा कि देवी क्या पूछना चाहती है?

चेतन चुपचाप बाबा की ओर देखता रहा। वे बिल्कुल उसी तरह टाँग-पर-टाँग रखे, तख्त पर बैठे थे, जैसे उसने सुजान सिंह के घर रखे हुए फ़ोटो में उन्हें देखा था. वही करुणामयी मुस्कान उनके चेहरे पर आ गयी थी। चूँकि वह फ़ोटो शायद देहात ही के किसी फ़ोटोग्राफ़र द्वारा खींचा गया था, इसलिए न उसमें टचिंग थी, न ग्लेज़िंग और बाबा बिल्कुल वैसे ही अनगढ़ देहाती लग रहे थे, इस पर भी कुछ ऐसी विशिष्टता उनके व्यक्तित्व में थी, जो चेतन को अव्यक्त रूप से प्रभावित कर रही थी।

---

१. यह चीज चुभती है।

तभी उस अंग्रेज महिला से बात करके डिप्टी कलक्टर ने पुनः उसका परिचय बाबा को देते हुए कहा, "बाबा, ये इंग्लिस्तान से आयी हैं, हमारे बड़े साहब बहादुर की साली हैं, ये पूरब में रह कर कुछ काम करना चाहती हैं, पूछती हैं कि अगर ये हिन्दुस्तान में रह कर काम करें तो क्या सफल हो पायेंगी ?"

"हिन्दुस्तान च इह की करेगी[1] ?" बाबा के होंटों पर हल्की-सी वही करुणामयी मुस्कान आ गयी।

"जापान ?"

बाबा क्षण भर उनके ऊपर दीवार, के शून्य में देखते रहे। लगा ही नहीं कि उन्होंने डिप्टी कलक्टर की बात सुनी है, फिर उन्होंने इनकार मे सिर हिलाया, "नई, जापान नई !"

"सिंगापुर ?"

वही शून्य में देखते हुए बाबा ने 'स्वीकार' मे सिर हिलाया, "हाँ सिंगापुर च देवी नूँ सफलता मिल्लेगी, इहदा मन रमेगा, इहने जो ज़मीन ओत्थे लीत्ती दी ए, ओहदे ते इह मकान बनायेगी, वस्सेगी ते फले-फुल्लेगी[2] ।"

बाबा चुप हो गये। डिप्टी ने बाबा की बात उस महिला को बतायी तो उसकी आँखें आश्चर्य से खुली रह गयी। उसने अंग्रेज़ी मे डिप्टी से कहा, "इस गाँव मे बैठा यह फ़कीर कैसे जान गया कि मैंने वहाँ ज़मीन खरीदी है !"

लेकिन उसने यह बात जैसे अपने-आप से ही कही, इसलिए डिप्टी ने बाबा से नहीं पूछा। चेतन चुपचाप बाबा को देखता रहा। उसे लगा,

---

१. हिन्दुस्तान में यह क्या करेगी ?

२. हाँ, सिंगापुर में देवी को सफलता मिलेगी। इसका मन रमेगा। इसने जो ज़मीन वहाँ ली हुई है, उस पर यह मकान बनायेगी, बसेगी और फले-फलेगी।

नितान्त साधारण, देहाती-से दीखने पर भी बाबा के चेहरे पर एक अव्यक्त नूर है, वे ऐसी सजग चेतना के स्वामी हैं, जो भूत-भविष्य के भेद जान लेती है। शून्य में देखते हुए वे उसी करुणा से क्षण भर मुस्कराते रहे, फिर उन्होंने उस महिला की ओर देखा और धीरे-धीरे, बड़े ही मीठे, स्नेह-भरे स्वर में कहा कि देवी का अतीत सुखी नहीं रहा, विवाह से इसे दुख मिला है, इसीलिए यह अपना देश छोड़ आयी है, अब यह जिस व्यक्ति का संग चाहती है, वह उसे आजीवन सुख देगा। अभी कुछ देर है। छै-आठ महीने। सब ठीक हो जायगा। देवी बहुत चिन्ता करती है, इसे नींद नहीं आती, पेट में भी वायु-विकार रहता है, लेकिन सब ठीक हो जायगा....

और बाबा ने हवा में उल्टा हाथ फैला कर, उसे ज़रा इधर-उधर हिलाना शुरू किया। उनकी दृष्टि हाथ की पिछली ओर केन्द्रित हो गयी। उसमें एकाग्रता आ गयी। फिर दूसरे क्षण उनके हाथ में जैसे कुछ आ गया हो, उन्होंने उँगलियाँ और अँगूठा मिला लिया और उसी स्थिति में हाथ आगे बढ़ा कर उस महिला से कहा कि वह चुटकी भर भभूत ले ले!

डिप्टी के कहने पर महिला ने दायें हाथ की हथेली आगे कर दी। बाबा ने उसमें चुटकी भर भभूत रख दी और बोले कि देवी से कहो, इसे शहद के साथ मिला कर चाट ले, इसका मन शान्त हो जायगा, इसे नींद भी आने लगेगी और वायु-विकार भी दूर हो जायगा।

डिप्टी ने महिला को बात समझा दी तो महिला ने बैग से एक छोटा-सा काग़ज़ का टुकड़ा ले कर उसमें भभूत सँजो ली और कहा कि वह जरूर उसे इस्तेमाल करेगी।

तब डिप्टी ने दायाँ हाथ आगे बढ़ा दिया।

उसके हाथ पर भभूत रखते हुए बाबा क्षण भर उसके चेहरे पर नज़रें जमाये रहे, फिर उन्होंने कहा, "साई, तूँ बड़ी तरक्की करेंगा ते रिटायर होण तो पहलाँ तूँ सूबे दा सब तों वड्डा हाकिम बनेंगा[1]।"

१. साईं, तू बड़ी उन्नति करेगा और रिटायर होने से पहले, तू सूबे का सबसे बड़ा हाकिम बनेगा।

डिप्टी का हाथ वहीं-का-वहीं रह गया। वह अविश्वास से बाबा की ओर देखता रहा। फिर उसने कहा, "बावा, सूबे दा सब तों वड्डा हाकिम ते गवर्नर हुन्दा ए। अंग्रेज़ी राज च कोई देसी अफ़सर डिप्टी कमिश्नर हो जाय, ताँ वड्डी गल्ल ए, गवर्नर बनना देसियाँ दी किस्मत च नई[1]।"

"तूँ किस्मत नूँ की जागदा ऐं साँई! जा मेहनत ते समझदारी नाल अपना फ़र्ज़ निभा, तूँ बड़ो तरक्की करेंगा[2]।"

चेतन विश्वास नहीं करना चाहता था, पर उसे लगा कि मोटा ऊनी चोला पहने, गले में केवल रुद्राक्ष की माला डाले, यह देहाती-सा लगने वाला बाबा जैसे कोई पहुँचा हुआ सन्त है और उसके अनास्थावादी मन में प्रश्न उठा—क्या आज से हज़ारों वर्ष पहले, जब विज्ञान का ऐसा विकास न हुआ था, न ऐसे सूक्ष्म यन्त्र थे, ऋषियों ने इसी आत्मिक शक्ति द्वारा ब्रह्माण्ड का पता न लगाया होगा, सूरज, चाँद और सितारों की गति नहीं जानी होगी और दो हजार वर्ष बाद पैदा होने वाले व्यक्तियों की जन्म-कुण्डलियाँ न बना डाली होंगी? हालाँकि बाबा न पद्मासन में बैठा था, न उसके चेहरे पर सफ़ेद दाढ़ी-मूँछें थी, लेकिन इस पर भी, उस छोटे-से गाँव में तख्त पर बैठा, वह उसे किसी ऋषि-ऐसा ही लगा।

उस वक्त दोनों बावर्दी सिपाही जूते उतार कर अन्दर बढ़ गये और उन्होंने झुक कर प्रणाम करते हुए भभूत चाही थी।

बाबा ने शेष भस्म चुटकी-चुटकी भर उनकी हथेलियों पर डाल दी और हाथ झाड़ लिये।

पुलिस वाले फिर दरवाज़े के बाहर जा खड़े हुए। तब वह अंग्रेज़

१. बाबा, सूबे का बड़ा हाकिम तो गवर्नर होता है। अंग्रेज़ी राज में कोई देसी अफ़सर डिप्टी कमिश्नर हो जाय तो बड़ी बात है, गवर्नर बनना देसी लोगों की किस्मत में नहीं।

२. तू किस्मत को क्या जानता है साईं! जा मेहनत से अपना फ़र्ज़ निभा, तू बहुत तरक्की करेगा।

महिला उठी, लेकिन उठते-उठते कद्रे झुक कर उसने डिप्टी के कान में प्रश्न किया। डिप्टी ने पंजाबी ही में कहा :

"बावा, मेम साहब पुच्छदे ने कि इह लोग—याने अंग्रेज़—हमेशा हिन्दुस्तान ते राज करणगे, जाँ कि इन्हानूँ एत्थों जाणा पवेगा[1]।"

बाबा के होंटों पर वही करुणामयी मुस्कान खेल गयी, "साईं, संसार च सदीवी कोई होर चीज़ रही ए, जो अंग्रेज हमेशा एत्थे रहणगे। हर कमाले रा जवाले। दस-पन्दरों बरसाँ तों ज़्यादा एत्थे टिकना इहणा दे भाग विच्च नई। जाणगे, पर देश दे वितकरे कर जाणगे[2]!"

बाबा क्षण भर फिर जैसे अपने में गुम हो गये—शून्य में देखते रहे। फिर उन्होंने धीरे-धीरे कहा—"साईं, दुनिया च जगह-जगह अग्ग दे शोले लपकदे ते खून दियाँ नदियाँ बहन्दियाँ ते लोकाँ दे अंग कट-कट के हवा च उछलदे दिस्सदे ने। अट्ठ-दस सालाँ बाद बड़ी उथल-पुथल होएगी, इस देवी नूँ वी अपना घर-दर छड्डना पवेगा, पर फेर सब ठीक हो जायेगा, तदोई तेरी तरक्की होयेगी। जा, रब सब भला करेगा[3]।"

कमरे में एकदम सन्नाटा छा गया। बाबा ने आशीर्वाद में बायाँ हाथ

---

१. बाबा, मेम साहब पूछती हैं कि अंग्रेज़ क्या हमेशा हिन्दुस्तान में रहेंगे, या इन्हें यहाँ से जाना पड़ेगा ?

२. संसार में हमेशा कोई और चीज़ रही है, जो अंग्रेज़ रहेंगे, हर कमाल के बाद ज़वाल (ह्रास) होता है। दस-पन्द्रह वर्ष से ज्यादा हिन्दुस्तान में टिकना अंग्रेज़ों के भाग्य में नहीं। ये यहाँ से जायेंगे, लेकिन देश के टुकड़े कर जायेंगे।

३. साईं, दुनियाँ में जगह-जगह आग के शोले लपकते और खून की नदियाँ बहती और इन्सानों के अंग कट-कट कर हवा में उछलते दीखते हैं। आठ-दस वर्षों में बड़ी उथल-पुथल होगी। इस देवी को भी अपना घर-दर छोड़ना पड़ेगा; लेकिन फिर सब ठीक हो जायेगा। तभी तुम्हारी तरक्की होगी। जा, रब सब भला करेगा।

उठा दिया। महिला और डिप्टी कलक्टर उन्हें प्रणाम करके निकल गये। तब बाबा उन लोगों की ओर मुड़े।

चिरंजीलाल के पिता ने अपना मूढ़ा आगे सरकाया और संक्षेप में उन लोगों का परिचय दिया और कहा कि माई बाबा, हुनर साहब बहुत अच्छे शायर हैं। इन्होंने गीता के दूसरे अध्याय का अनुवाद सरल उर्दू भाषा में किया है और ये आपके हुजूर में उसे सुनाना चाहते हैं।

माई बाबा मौन रूप से हुनर साहब की ओर देखते रहे। उनके भाव से न यह लगा कि वे सुनने को उत्सुक हैं और न यह कि सुनना नहीं चाहते। वे चुपचाप टाँग-पर-टाँग रखे, दोनों हाथ तख्त पर टिकाये, हुनर साहब को देख रहे थे—उन्हें देख रहे थे अथवा उनके परे—चेतन कुछ तय नहीं कर पाया।

हुनर साहब क्षण भर चुप रहे। बाबा की वेधक दृष्टि के नीचे उनका चेहरा, जो प्रायः ऐसे में उत्साह से खिल जाता था फक पड़ गया। उनसे कोई भूमिका नहीं बँधी। बाबा के मौन को अर्ध-स्वीकृति समझ कर वे चुपचाप गीता के दूसरे अध्याय का पद्यानुवाद सुनाने लगे

न पाबन्दे-औकात है जन्म इसका
न खटका इसे मौत का है किसी दिन
न हो कर यह होती, बदलती नहीं यह
अजन्मा, मुसलसल, सनातन, पुरातन

बाबा चुपचाप सुनते रहे। जाने उस सीधी-सादी झोंपड़ी और साधारण से तख्त पर बैठे, उस सीधे-सरल सन्त के व्यक्तित्व में क्या बात थी कि न निश्तर को झूठी दाद देने का साहस हुआ और न चेतन को मिसरा उठाने का और वह नज्म (जिसके हर बन्द को सुनाने से पहले, भूमिका बाँध कर और अपने अनुवाद को दोबारा-सहबारा दोहरा कर, हुनर साहब समाँ बाँध देते थे) चेतन को अजीब सपाट लगी। जब हुनर साहब जीवात्मा

के बारे में श्लोक के अनुवाद पर पहुँचे तो उन्होंने दाद-तलब निगाहों से चेतन और निश्तर की ओर देखा। दोनों कसमसाये कि कुछ कहें, लेकिन उनसे एक शब्द भी न कहा गया। लगता था कि बाबा के उस कक्ष में किसी तरह का झूठ या धोखा नहीं चल सकता। वे रंग जमाने के लिए दाद दे रहे है, बाबा से यह छिपा नहीं रह सकता और दोनों चुप बने रहे। हुनर साहब सुनाते गये :

यह फ़ानी नहीं जिस्मे-ख़ाकी की मानिन्द
यह मरती नहीं ख़्वाह मर जाय यह तन

चेतन को पहली बार लगा कि अनुवाद बहुत साधारण है; इसमें न ओज है, न सूक्ष्मता; सिर्फ शब्दों के ढोके हैं, जिन्हें बड़ी अनगढता से जोड़ दिया गया है। 'अजन्मा' और 'पुरातन-सनातन' के साथ उसे 'मुसलसल' खटका। अगला बन्द सुनाने से पहले हुनर साहब ने बेबसी से फिर अपने चेलों की ओर देखा। दोनों कसमसाये। लेकिन किसी के मुँह से बोल नहीं फूटा। वे अगला बन्द सुनाने लगे :

पृथा-पुत्र अर्जुन यह सुन बात मेरी
जो इन्साँ इसे जानता ग़ैर-फ़ानी
जो कायल है इसकी मुसलसल बक़ा का
अमिटता का जिसकी नहीं कोई सानी
वो मरवायेगा किसको, मारेगा किसको
कि जब तत्व इसके हैं सब जाविदानी

सहसा चेतन को लगा कि हुनर साहब ने 'मरवायेगा' शब्द फूहड़ और भौंडा रख दिया है। उस में ज़म का पहलू[1] है।...और उसकी आँखों में एक मुशायरा आ गया। हुनर साहब मसनद पर घुटनों के बल बैठे यही बन्द पढ़ रहे हैं और जब वे यह पंक्ति पढ़ते हैं तो 'वो मरवायेगा' के बाद तत्काल कोई पीछे से चिल्लाता है : 'वो मरवायेगा, क्या बात कही है, सुभान-

---

१. आपत्तिजनक पहलू

अल्लाह ! ज़रा फिर पढ़िए—वो मरवायेगा।' और एक बेपनाह ठहाका गूँजता है।

सहसा चेतन चौंका। कहीं बाबा ने उसके मन की बात तो नहीं जान ली। उसने आँखें उठायीं। बाबा उसी की ओर देख रहे थे। चेतन उन निगाहों की ताब नहीं ला पाया। उसने आँखें झुका लीं। उसका दिल धड़कने लगा। हुनर साहब अगला बन्द सुना रहे थे :

कि जैसे पुराने फटे पैरहन को
नये के लिए आदमी छोड़ देता
यह जीवात्मा भी इसी तरह नाता
पुराने थके जिस्म से तोड़ लेता
न असिलह में ताकत इसे काट दे
आग में है नहीं दम कि इसको जलाये
गला पाये आब इसको मुमकिन नहीं यह
हवा में न हिम्मत कि इसको सुखाये

शायद हुनर साहब कुछ अगले बन्द भी सुनाते, लेकिन दाद के अभाव में (जिसके वे अभ्यस्त थे) उनका धैर्य छूट गया और वे एकाएकी चुप हो गये।

बाबा क्षण भर वही करुणामयी मुस्कान होंटों पर लिये, उनकी ओर देखते रहे। फिर उन्होंने बड़े मीठ, ममता-भरे स्वर में कहा, "साँई, तूँ एस्से लई संस्क्रत दे शलोक्काँ नूँ उर्दू च कीत्ता ए ना कि ओन्हनाँ नूँ आम लोक्की समझन[1] ?"

हुनर साहब ने उत्साह से सिर हिलाते हुए कहा, "जी बाबा !"

"तो फ़ेर तूँ ओन्हाँनूँ पंजाबी विच्च करना सी, जेहड़ी आम लोक्काँ दी बोली ए। इह पाबन्दे-औकात, ग़ैर-फ़ानी, मुसलसल, असिलह,

---

१. साईं, तुम ने इसीलिए संस्कृत के श्लोकों को उर्दू में किया है न कि उन्हें आम लोग समझें ?

जाविदानी वग़ैरा लफ़्ज़ कौन समझेगा ? संस्क्रत ना होई, फ़ारसी होई फ़र्क की होया[१] ?"

अब हुनर साहब क्या उत्तर दें, वे समझ न पाये। सभ्य समाज से बहुत दूर, गाँव में बैठे, इस अनपढ़ फ़क़ीर को वे कैसे समझायें कि उर्दू पढ़े-लिखों की भाषा है, और किसी पढ़े-लिखे को पंजाबी में कविता करना गवारा नहीं। पंजाबी में तो निचले तबके के रंगरेज़, नेचेबन्द, सब्ज़ी-फ़रोश, ड्राइवर, क्लीनर आदि लोग कविता करते हैं....पर शायद बाबा यही तो कह रहे थे कि आम लोगों को गीता के अर्थ समझाने हों तो उन्हीं की भाषा में कविता करनी चाहिए और वे इस तर्क से चकरा गये और मुटर-मुटर बैठे, साईं बाबा का मुँह तकते रहे।

बाबा फिर उसी मीठी वाणी में धीरे-धीरे बोले :

"माई, मौत नूँ कोरे शब्दाँ, सूत्राँ ते शलोक्का नाल नईं जित्तेया जा सक्कदा। मौत नूँ जित्तेया जान्दा ए ज़िन्दगी नाल। जे असीं प्यार ते दया-भरी ज़िन्दगी जीणे हाँ, ते अगलियाँ पीढ़ियाँ नूँ वैसी ज़िन्दगी जीना सिखान्ने हाँ, तद ज़िन्दगी जित्तदी ए ते मौत हारदी ए, वरना बार-बार जनम लै के माया-मोह, क्रोध ते नफ़रत, वैर ते विरोध भरी ज़िन्दगी जीना, मौत च ई जीना ए। तूँ गीता ते उपनिषदाँ दा तरजुमा करण दे बदले अपनी ते अपनी इर्द-गिर्द दी ज़िन्दगी बारे क्यों नईं लिक्खदा ? तूँ सच-सच लिक्खेंगा ते तेरी ओह लिखत वी गीता ई बन जायगी[२]।"

१. तो फिर तुझे उनको पंजाबी में करना था, जो आम लोगों की भाषा है। यह पाबन्दे-औक़ात वग़ैरा शब्द कौन समझेगा ? संस्कृत न हुई फ़ारसी हुई। फ़र्क क्या हुआ ?

२. साईं, मौत को कोरे शब्दों, सूत्रों और श्लोकों से नहीं जीता जा सकता। मौत को जीता जाता है ज़िन्दगी से। अगर हम प्यार और दया-भरी ज़िन्दगी जीते है और आने वाली पीढ़ियों को वैसी ज़िन्दगी जीना सिखाते हैं तो ज़िन्दगी जीतती है और मौत हारती है, वरना बार-बार जन्म

क्षण भर के लिए चेतन को लगा कि सामने जो बाबा बैठा है, उसका ज्ञान शास्त्र-गत नहीं है, उसकी चेतना ज़िन्दगी से हो कर विकसित हुई है। उसे ईश्वर-प्रदत्त दृष्टि मिली है, जो आदमी और ज़िन्दगी के आर-पार ही नहीं, शास्त्रों के आर-पार भी देखती है। चेतन को लगा कि वह किसी आम साधु-सन्त के सामने नहीं, लाखों-करोड़ों में विरल किसी हस्ती के सामने बैठा है। लेकिन तभी उसके मन में शंका उठी—कौन जाने, बाबा जादूगरी से हवा में भभूत पैदा कर देते हैं, या फिर उन्हें हिप्नोटिज़्म में सिद्धि प्राप्त है। चेतन ने आँखें उठा कर देखा—उस सीधे-सादे चेहरे से नहीं लगता था कि वह जादूगर है। तब चेतन ने तय किया कि उस चमत्कार को देख कर उसके मन में जो शंकाएँ उठ रही हैं, गीता को पढ़ते हुए उसके मन में जो प्रश्न उठा करते हैं, वह उनका समाधान बाबा से चाहेगा, यदि बाबा ने उसे सन्तुष्ट कर दिया तो मानेगा, वरना हिन्दुस्तान में जादूगरों की क्या कमी है....और वह मन-ही-मन प्रश्न तैयार करने लगा।

जब हुनर साहब खोइयों के उस मूढ़े पर बैठे थे तो उन्होंने तय किया था कि गीता के दूसरे अध्याय का अनुवाद सुना कर, वे ईशावास्य के कुछ श्लोकों का अनुवाद सुनायेंगे, लेकिन बाबा की बात सुन कर, वे क्या कहें, यह तय न कर पाये और—'बजा फ़रमाया आपने साईं बाबा !'—इतना कह कर और दाँत निकाल कर वे चुप हो गये।

तब बाबा ने उसी करुणा और ममता-भरी दृष्टि से हुनर साहब को शराबोर करते हुए कहा :

"साईं, तू चाए गीता दा तरजुमा कीत्ता होवे, चाए उपनिषदाँ दा, पर तैन्नूं शान्ती किते नईं मिली। तू बेकार दे मामले-मुकदमेयाँ च फस्सेया

ले कर माया-मोह, क्रोध और घृणा, वैर और विरोध-भरी ज़िन्दगी जीना, मौत में ही जीना है। तू गीता और उपनिषदों का अनुवाद करने के बदले अपने इर्द-गिर्द की ज़िन्दगी के बारे में क्यों नहीं लिखता ? तू सच-सच लिखेगा तो वह भी गीता ही बन जायगी।

होया ऐं। ओहनाँ तों जान छुड़ा ते रब दा भजन कर, तैन्नूं शान्तो मिल्लेगी[1]।"

हुनर साहब अभिभूत हो गये। उन्होने संक्षेप मे अपने भाई के विवाह की ट्रैजिडी का उल्लेख किया और कहा कि वे बड़ी मुसीबत में फँसे हैं और उन्हे कोई रास्ता दिखायी नही देता।

बाबा ने कहा कि उस सब से हुनर साहब को कुछ हासिल न होगा। वे अपने भाई की दूसरी शादी कर दें, उसके घर दो-दो पुत्र जन्मेगे और उसका कलंक धुल जायगा।

हुनर साहब ने झट उठ कर उनके चरण छुए और फिर अपनी जगह आ बैठे। तब बाबा ने उसी तरह हाथ फैला कर ज़रा इधर-उधर हिलाना शुरू किया। चेतन के मन में आया कि बाबा जादूगरी करते है, उनके चोले की आस्तीन मे से राख झर कर उनकी हथेली में आ जाती है। तभी बाबा ने (जैसे उसके मन की बात भाँप कर) बायें हाथ से दायीं बाँह की आस्तीन ऊपर कर ली और हथेली के उल्टी ओर निगाहे जमा दी। उनकी पतली, कृश कलाई दिखाई देने लगी। क्षण भर ऐसे ही हाथ हिलाते रहने के बाद उन्होंने सहसा उँगलियाँ और अँगूठा मिला लिया और हुनर साहब से कहा कि वे थोड़ी भभूत स्वयं चाट लें और थोड़ी अपने भाई को चटायें, उनका कल्याण होगा।

हुनर साहब ने भभूत ले ली तो चिरंजीलाल और उसके पिता ने हाथ आगे बढाया, लेकिन तभी अपना मूढा ज़रा आगे खिसका कर, अपने कथनानुसार उस परम नास्तिक इंजीनियर श्री गणेशीलाल वत्स ने अपना हाथ आगे बढा दिया। चेतन के भाई ज़रा-सा असमंजस में रहे, फिर उन्होंने भी हाथ फैला दिया।

---

१. साईं, तूने चाहे गीता का अनुवाद किया हो, चाहे उपनिषदों का, पर तुझे शान्ति कहीं नहीं मिली। तू बेकार के झगड़े-टण्टों में पड़ा है, इनसे जान छुड़ा, रब का भजन कर, तुझे शान्ति मिलेगी।

चेतन अपनी जगह बैठा रहा, उसने न मूढ़ा खिसकाया, न हाथ बढ़ाया। सब की हथेली पर चुटकी-चुटकी भभूत रखते हुए बाबा ने उस से कहा, "साईं, माता दा परशाद लैण तों इनकार नहीं करीदा[1]।"

चेतन ने चुपचाप हाथ आगे बढ़ा दिया।

शेष भभूत उसकी हथेली पर रखते और हाथ झाड़ते हुए बाबा ने कहा, "साईं, तैन्नूं धरम च आस्था नई, भगवान दी हस्ती विच्च वी तैन्नूं कदीं-कदीं शक हुन्दा ए ते तेरा दिल ते दिमाग़ आपस च लड़दे विचारां दा मैदान-कारज़ार बनेया रेहन्दा ए, लेकिन तूं ध्यान लगायेंगा ते तेरे मन विच्च आस्था जाग्गेगी ते तैन्नूं शान्ती मिल्लेगी[2]।"

चेतन प्रसन्न हुआ कि बाबा ने उसे अपने आप बात करने का अवसर दिया है। उसने कहा, "बाबा, अगर आप इजाज़त दें तो मैं दो-एक सवाल पूछूं।"

बाबा फिर वैसे ही दोनों हाथ तख्त पर टिका कर, किंचित ढीले हो कर बैठ गये और उन्होंने कहा, "साईं, जो चाए पुच्छ!"

चेतन ने मूढ़ा काफ़ी आगे सरका लिया और बोला :

"आपने अभी दो बार हमारे सामने हवा में हाथ हिला कर भभूत पैदा कर दी। यह सब तो एक अच्छा मदारी या जादूगर भी कर सकता है। इस जादूगरी का धर्म से क्या सम्बन्ध है?"

"हाँ साईं, तूं ठीक कहन्ना एं, इह जादूगरी ई ए," बाबा ने मुस्कराते हुए कहा, "ते सच्चे धरम नाल वी इहदा कोई वैसा ताल्लुक नई! फ़र्क एही ए कि मदारी ओस सिद्धी दा इस्तेमाल अपने पेट दी खातिर करदा ए ते

१. साईं, माता का प्रसाद लेने से इनकार नहीं करते।

२. साईं, तुझे धर्म में आस्था नहीं, भगवान की हस्ती में भी तुझे कभी-कभी सन्देह होता है और तेरा दिल-दिमाग़ आपस में एक-दूसरे से लड़ते हुए विचारों का रणस्थल बना रहता है, लेकिन यदि तू ध्यान लगायेगा तो तो तेरे मन में आस्था उपजेगी और तुझे शान्ति मिलेगी।

साधू-सन्त लोक्का नूँ शान्ती देण लई, धर्म वल ओहना नूँ खिच्चन लई[1] ।"

"इस देश में कई साधु अच्छे खाते-पीते घरों में सुख-आराम पाने के लिए ये सब चमत्कार दिखाते फिरते हैं ।" चेतन ने कटुता में कहा ।

"ते फेर ओह्ना ते मदारियाँ विच्च कोई फ़र्क नई[2] !" बाबा ने सिर्फ़ इतना कहा । तब चेतन ने मन में देर से कुलबुलाता हुआ एक और सवाल पूछा :

"बाबा, हुनर साहब कहते हैं और दूसरे लोगों से भी सुना है कि आप चाहें तो रुपये-पैसे, गहने-पत्ते ऐसे ही हवा से पैदा कर सकते हैं । जब आपको ऐसी सिद्धि प्राप्त है तो आप क्यों नहीं इतना सोना पैदा कर देते कि इस देश की सारी ग़रीबी दूर हो जाय ।"

बाबा उसकी बात बड़े ध्यान से सुनते रहे । जब उसने अपनी बात ख़त्म की तो बाबा मुस्कराये और उन्होंने कहा कि साईं अगर मैं इतना सोना पैदा कर दूँ कि सब के घर भर जायँ तो क्या तुम समझते हो कि सब प्रसन्न और सन्तुष्ट हो जायंगे, चिन्ता और दुख-क्लेश सब मिट जायँगे ?

चेतन से सहसा कोई उत्तर न बन पड़ा ।

"तूँ विश्वास रख कि इह नई होएगा । मैं बड़ी जिन्दगी, बड़ा परिवार ते धन-धान्न देख्या ए । लोक्की सोने-रूपे च खेलदे होए दुखी हैगा ! कोठियाँ च रेह्न्दे ते टमटमाँ च घुम्मदे होए दुखी हैगा ! धरम दा मकसद लोक्काँ नूँ दुख ते अशान्ती तों मुक्त करना ए, ओह्ना नूँ होर दुखी ते अशान्त करना नई । गीता जिस वी लिक्खी ए, ओह्ने ठीक ही सिद्धा कड्ढेया ए कि सच्चा अनन्द सुख-दुख दोन्नाँ तों उप्पर उठ जाण विच्च ए, माया-मोह

१. हाँ साईं, तू ठीक कहता है, यह जादूगरी ही है और सच्चे धर्म से भी इसका कोई वैसा सम्बन्ध नहीं । फ़र्क यही है कि मदारी उस सिद्धि का प्रयोग अपने पेट की ख़ातिर करता है और साधु-सन्त लोगों को शान्ति देने के लिए—धर्म की ओर उन्हें खींचने के लिए ।

२. तो फिर उनमें और मदारियों में कोई अन्तर नहीं ।

नज के, निरपेक्ख जिन्दगी जीगा विच्च ते फायदे-नुक्सान दी चिन्ता कीत्ते बिना, जो वी कर्म रब ने साव्नूँ दित्ता ए, ओस नूँ पूरा करन विच्च ए। सुख-सन्तोष सोने-रूप नाल नइ, मन नूँ जित्तया मिलदा ए। मैं कदी-कदी लोक्का नूँ भभूत दे देन्ना हा कि धर्म च ओह्ना दी आस्था जगे, ते ओह धर्म राही, प्रेम ते भक्ती राही, सुख-दुख—दोना विच्च मन शान्त रक्खना सिक्खन ते सच्चा आनन्द पाग। एस उन्नी-कु-जेही भस्म नाल किसे द सारे कम्म सौर जागगे या ओह धर्मात्मा बन जायगा, उह गल्ल नइ। ओह सब तां ओह्दे अपने कर्मा ते रब्ब दी मेहरबानी नाल ही होएगा[1]।"

चेतन के अनास्था-भरे मन मे कई शकाएँ उठी, लेकिन वह चुप रहा। उसने पहले से सोचा हुआ दूसरा सवाल किया

"बाबा, शास्त्रो मे बार-बार कहा जाता है कि पिछले जन्म के कर्मो का फल इस जन्म मे मिलता है और इस जन्म के कर्मो का फल अगले जन्म

---

१. तू विश्वास रख कि यह नही होगा। मैने बडी जिन्दगी, बडा परिवार और धन-धान्य देखा है। लोग सोने-चाँदी मे खेलते हुए दुखी हैं, कोठियो मे रहते और घोडा-गाडियो मे घूमते हुए दुखी है। धर्म का उद्देश्य लोगो को दुख और अशान्ति से मुक्त करना है, उनको और दुखी और अशान्त करना नही। गीता जिसने भी लिखी है, उसने ठीक ही यह नतीजा निकाला है कि सच्चा आनन्द सुख-दुख, दोनो से ऊपर उठ जाने मे है, माया-मोह तज कर निरपेक्ष जीवन जीने मे है और फलाफल की चिन्ता किये बिना, जो काम भगवान ने हमको दिया है, उसको पूरा करने मे है। सुख-सन्तोष सोने-रूपे से नही, मन को जीतने से मिलता है। मै कभी-कभी लोगो को भभूत दे देता हूँ कि धर्म मे उनकी आस्था जगे और वे धर्म के रास्ते, प्रेम और भक्ति के रास्ते, सुख-दुख — दोनो मे मन को शान्त रखना सीखें और सच्चा आनन्द पायें। इस जरा-सी भस्म से किसी के सारे काम सिद्ध हो जायेंगे या वह धर्मात्मा बन जायगा, ऐसी बात नही। वह सब तो उसके अपने कर्मों और ईश्वर की कृपा ही से होगा।

में, लेकिन हमारी माँ कहती थी कि दूसरा जन्म क्या, आदमी अच्छे-बुरे कर्मों का फल इसी जन्म में भोग लेता है। इन दोनों मे कौन ठीक है ?"

"दोनो ई ठीक हैगए !" बाबा ने कहा और एक मिसाल दी कि एक वर्ष खूब वर्षा होती है और समय पर होती है, एक किसान अपने खेत मे गेहूँ बोता है और दूसरा बाजरा। दोनां की खत्तियाँ गेहूँ और बाजरे से भर जाती हैं। दूसरे वर्ष सूखा पड जाता है। अनाज नही होता। अब जिसने पिछले साल गेहूँ बोया है, वह गेहूँ खायगा और जिसने बाजरा बोया, वह बाजरा खाने को विवश होगा। यही हाल पिछले जन्म के कर्मो का है, जिसने अच्छे कर्म किये है, वह सुख पाता है; जिसने बुरे, वह दुख भोगता है।

और बाबा ने एक दूसरी मिसाल दी :

एक आदमी रिश्वत लेता है और सभी तरह के कुकर्म करता है, उसके बेटे बिगड़ जाते है और वह धन-धान्य के बावजूद बुढापे मे दुख पाता है। अब उसके कुकर्मो का फल इसी जन्म में मिल जाता है। शराबियो, जुआरियों और चोरो को इसी जन्म मे उनके कर्मो का फल मिलता है।

"लेकिन बाबा," चेतन ने कहा, "यह तो समझ में आता है कि पुराने जन्म के कर्मो का फल मिलता है, पर कौन फल पुराने जन्म के कर्मों का है और कौन नये का, हमारा कौन कर्म पुराने कर्मो का फल है और कौन इसी जन्म का, यह आदमी कैसे जाने ?"

"इह ता आतम-ज्ञान नाल ही जान्या जा सक्कदा ए[1]।"—बाबा ने समझाया—और एक मोटी मिसाल दी—एक व्यक्ति इस जन्म मे कोई पाप नही करता, धर्म और सदाचार-भरी जिन्दगी जीता है, किसी का दिल नहीं दुखाता, लेकिन वह असाध्य रोग मे ग्रसित हो जाता है और बड़ा दुख पा कर बुरी मौत मरता है। अब इस जन्म में तो उसने कोई बुरा काम नही किया कि उसे यह दण्ड मिले, प्रकट ही यह फल उसे पिछले जन्म के किसी कुकर्म का मिलता है। इसके विपरीत दूसरा व्यक्ति दुनिया-जहान के

१. यह तो आत्म-ज्ञान से ही जाना जा सकता है।

कुकर्म करता हुआ, क्षण भर में बिना दुख झेले, मर जाता है। उसकी वह सुखद मृत्यु प्रकट ही किसी पिछले जन्म के पुण्य के प्रताप से हुई है, ऐसा ही माना जायगा। तब इस जन्म के कुकर्मों का फल उसे अगले जन्म में भोगना होगा।

बाबा क्षण भर के लिए चुप हो गये और गहरी नज़रों से चेतन को देखते रहे, फिर उन्होंने कहा :

"साई, तूँ एस गल्ल दी क्यों चिन्ता करदा एँ कि केह्डा फल पिछले जन्म दे कर्मा दा ए, अते केह्डा एस जन्म दे कर्मा दा। तूँ ते साई अच्छे कम्म करदा जा। ते जे इह जाने बिना तेरा कम्म नई चलदा ते फ़ेर पहले आतम-ज्ञान हासिल कर[1]।"

"आत्म-ज्ञान के लिए तो साधना ज़रूरी है बाबा, पर मुझसे साधना नहीं होती।"

"मश्क कर, हो जाएगी।"

"मैं ध्यान लगाने की कोशिश करता हूं, तो कहानियों के ख़याल और प्लाट मेरे दिमाग में आने लगते हैं।"

"ते फ़ेर तूँ कहानियां लिक्ख! कम्म वी भगवान दा ई रूप ए। तैन्नूं तेरे कम्म दे ज़रिए ई भगवान मिल्लेगा[2]।"

क्षण भर के लिए झोपड़ी में ख़ामोशी छा गयी। श्री गणेशीलाल वत्स कुछ कहने के लिए कसमसा रहे थे कि चेतन ने एक और प्रश्न पूछ लिया :

---

१. साईं, तू इस बात की क्यों चिन्ता करता है कि कौन-सा फल पिछले जन्म के कर्मों का है और कौन इस जन्म के कर्मों का? तू तो साईं अच्छे काम करता जा और यदि यह जाने बिना तेरा काम नहीं चलता तो फिर पहले आत्म-ज्ञान प्राप्त कर!

२. तो फिर तू कहानियां लिख, काम भी भगवान ही का रूप है, तुझे तेरे काम द्वारा ही भगवान मिलेंगे।

"बाबा, मै सोच रहा हूं, कानून पढ कर सब जज बनूं, क्या मै सफल हो सकता हूं ?"

"तूं जिस कम्म च ई ध्यान लगायेगा, मेहनत करेगा, ओस विच्च सफल हो जायेंगा, पर कर सक्के ता ओई कम्म करीं, जिस नूं तूं पूरा मन दे सक्कें, जेहड़ा किसे दी होड विच्च नइ, अपने मन दे सुख लई करे[1] !"

निमिष भर के लिए चेतन को लगा, बाबा ने अपनी चेतना-शक्ति से अमीचन्द की स्पर्धा वाली बात जान ली है, पर तभी उसे कुतर्क सूझा। उसने कहा .

"बाबा, आप कहते है आदमी वही काम करे, जो उसके मन को सुख दे, लेकिन अगर किसी को शराब पीने या जुआ खेलने मे सुख मिले तो क्या उसे वही करना चाहिए ?"

कुछ अजीब सी दया और करुणा-भरी मुस्कान बाबा के चेहरे पर आ गयी और उन्होंने कहा कि अगर किसी का जिगर या मानें शराब पी कर बर्बाद हो जाय या जुए मे कोई पैसे-पैसे को मोहताज हो जाय और तब वह न रोये, न चिल्लाये, न दुख मनाये और उसी दवगई मे जी सके तो वह शराब भी पी सकता है और जुआ भी खेल सकता है, लेकिन ऐसे लोग विरल होते है, क्योंकि नशो का एक तर्क होता है, आदमी को उसकी लत पड़ जाती है और लत किसी चीज की हो, दुख, क्लेश और असन्तोष का कारण बनती है।

चेतन कुछ कहना चाहता था कि बाबा ने उसकी ओर गहरी नजरो से देखते और जैसे उसके मन की बात पढते हुए कहा, "तूं शायद अपने पिता बल्लो सोचदा एं, पर तेरा पिता जिस दबंगई नाल जी रेया ए, ओस्से दबंगई नाल एह संसार छड्ड वी देगा। इह होर गल्ल ए कि सग्न

1. तू जिस काम मे ध्यान लगायेगा, मेहनत करेगा, उसी मे सफल हो जायगा, पर यदि तू कर सके तो वही काम करना, जिसे तू पूरा मन दे सके; जो तू किसी की प्रतिस्पर्धा में नहीं, अपने मन के सुख के लिए करे।

तो पहलाँ ओह अपने सारे ऐबाँ दा प्राश्चित कर जाएगा। तूँ अपने पिता नूँ नफरत न कर, तूँ जो कुछ ऐ या बनेगा, ओहदे ई कारण, कदी बहुत बाद तेन्नूँ इस गल्ल दा पता लग्गेगा[1]।"

और बाबा हठात सामने शून्य में देखने लगे और वह धीमे स्वर में उनके मुँह से अपने आप बोल फूटने लगे

'साईं, तेरी जिन्दगी विच्च बड़ा संघर्ष ए, तूँ बड़े धक्के खायेगा, प्यार दे बदले दुख पायेगा, तैन्नूँ बड़ा कष्ट झेलना पयेगा, पर ओही दुख तैन्नूँ आदमी बनायेगा ते तेरे हत्थों वड्डे कम्म वी करायेगा। तर्क-कुतर्क छड्ड के तूँ सिर्फ अपनी आतमा दी आवाज सुनी, तेरा सहज ज्ञान जो कहे, ओही करी, तूँ सफल हो जायेंगा[2]।"

और बाबा उठ खड़े हुए। पण्डित गणेशीलाल वत्स से और कुछ न हुआ तो वे तत्काल उठ कर बाबा के चरणों पर साष्टांग प्रणाम में लेट गये।

बाबा ने आशीर्वाद में हाथ ऊँचा किया और होंटों से कहा, "रब सब दा भला करे" और श्री वत्स के सिर को बचाते हुए दायीं ओर से निकल, मन्थर गति से चलते हुए अन्दर कमरे में अन्तर्धान हो गये।

---

१. तू शायद अपने पिता को बात सोचता है, पर तेरा पिता जिस दबंगई के साथ जी रहा है, उसी दबंगई से यह संसार छोड़ देगा। यह और बात है कि मरने से पहले वह अपने सारे ऐबों का प्रायश्चित कर जायगा। तू अपने पिता से नफ़रत न कर। तू जो कुछ है, या बनेगा, उसी के कारण, कभी बहुत बाद तुझे इस बात का पता लगेगा।

२. साईं, तेरी ज़िन्दगी में बड़ा संघर्ष है, तू बहुत धक्के खायेगा, प्यार के बदले दुख पायेगा, तुझे बहुत कष्ट झेलना पड़ेगा, पर वही दुख तुझे आदमी बनायेगा और तुझ से बड़े काम करायेगा। तर्क-कुतर्क छोड़ कर तू सिर्फ़ अपनी आत्मा की आवाज़ सुन! तेरा सहज ज्ञान जो कहे, तू वही करना, तू सफल होगा।

चेतन एक सम्मोहन में बैठा रह गया। जब वह उठा तो बाबा जा चुके थे। तभी उसकी निगाह बाहर की ओर गयी और उसने देखा कि गिल्ली पण्डित रिपुदमन के साथ भागम-भाग आ रहे हैं और दोनों के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ रही हैं।

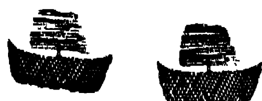
"क्या बात है?" जल्दी से बाहर निकल कर चेतन ने पूछा।

"चल कर देखिए, आपके चेले ने क्या गुल खिलाया है," गिल्ली ने परेशानी के बावजूद हँसते हुए कहा, "लड़की वाले शादी करने के लिए तैयार नहीं, कहते हैं कि ऐसे पागल को लड़की नहीं देंगे।"

"लेकिन बात क्या हुई?" चेतन ने बेसब्री से कहा।

"चलिए, बताता हूँ।"

वे चिरंजीलाल और उसके पिता को धन्यवाद तक देना भूल गये और भागम-भाग चल पड़े।



पाँचवाँ खण्ड



तेरह

जब वे गिल्ली पण्डित के साथ तेज़-तेज चलते समधियाने पहुँचे तो वहां सन्नाटा छाया था। ऊपर से अर्द्ध-चन्द्राकार बड़े-से दरवाज़े वाली एक बन्द गली को पार करके (जिसकी दोनों ओर छतों पर बैठी औरतें ब्याह के गीत गाने के बदले, खुसुर-फुसर कर रही थीं) जब वे समधियाने की बैठक में दाखिल हुए तो पण्डित वेणीप्रसाद, समधी और उसके रिश्तेदारों में घिरे बैठे थे। बराबर में लट्ठे का पायजामा, कमीज़ और उस पर कोट पहने और कोरी मलमल की सफ़ेद पगड़ी पर (जो कोरी होने के कारण निहायत दबी-दबी लगती थी) सेहरा बांधे, अजब कार्टून-सा बना, रणवीर 'नाशाद' खड़ा था। पण्डित वेणीप्रसाद लरज़े के मारे अपने काँपते हाथों में पगड़ी थामे, हकलाती आवाज़ में समधी की मिन्नत-समाजत कर रहे थे कि उनकी इज्ज़त-आबरू अब उन्हीं के हाथ में है। लड़का पागल नहीं, थोड़ा मूर्ख भले ही हो और वे लड़की के बिना बरात ले कर लौटेंगे तो कुएँ में छलांग लगा कर मर जाने के सिवा, उनके सामने कोई चारा नहीं रहेगा।

गिल्ली पण्डित ने रास्ते ही में चेतन और भाई साहब को ज़रा अलग ले जा कर उन्हें सारी बात बता दी थी। बावजूद उस दुखद और ट्रैजिक स्थिति के, रणवीर की मूर्खता पर चेतन को अनायास हँसी आ गयी थी। भाई साहब जैसे अपने ही से बड़बड़ाये थे, "और मैं उसके बल पर डेण्टल कॉलेज खोलने की स्कीम बना रहा था !"

चेतन कुछ तीखी बात कहना चाहता था, लेकिन वह चुप रहा और समस्या का हल सोचता हुआ, उन सभी के साथ तेज़-तेज चल दिया था।

जब दो-ढाई वर्ष पहले चेतन अपनी शादी में बस्ती ग़ज़ाँ गया था तो बरात के खाना खाने के बाद उसकी साली नीला ने उसे रोक लिया था। बरामदे में बैठा कर नीला ने और उसकी सहेलियों ने उससे छन्द सुनाने का अनुरोध किया था। उस वक्त रणवीर भी अपने जीजा के पीछे खड़ा था। नीला के ज़ोर देने पर क्षण भर सोच कर चेतन ने छन्द सुनाया था :

छन्द परागे आइए-जाइए छन्द परागे तीला
छन्द गया मैं भुल्ल सभे जद सामने आयो नीला

तब रणवीर ने देखा था कि उसकी चंचल, चपल और मुँह-ज़ोर बहन एक-दम निरुत्तर हो गयी है। उसकी सखियाँ ठहाका मार कर हँस दी थीं तो नीला भी खिसियानेपन से उनके साथ हँस दी थी।

ऐन उस वक्त उसकी बहन की सहेली मोहिनी, जिसकी शादी कुछ ही दिन पहले हुई थी, जैसे उल्लास के ताल पर नाचती आयी थी। उसकी कलाइयों पर लाल चूड़ा और तन पर टेसू के रंग की साड़ी और शरीर पर कीमती ज़ेवर झमझमा रहे थे। आँगन की चौखट में पैर रखते ही चेतन की चंचलता को लक्ष्य कर, उसने मिट्ठनी[1] दी थी :

आया नी पुत्त नटनी दा[2]

चेतन खिसियाना-सा हो आया था। लेकिन उसी पल, मिट्ठनी की दूसरी पंक्ति : **नटनी कोट्ठे टप्पनी दा**[3]

कहने का अवसर मोहिनी को दिये बिना, उसकी आँखों-में-आँखें डालते हुए,

---

१. ब्याह के अवसर पर दी जाने वाली मीठी गाली।

२. नटनी का बेटा आया है।

३. कोठे से कूद कर (यारों से मिलने वाली) नटनी का। (जालन्धर के निम्न मध्यवर्गीय मुहल्लों में मकानों की छतें एक दूसरी से लगी होती हैं और उनके पर्दों को कूद कर दूसरे मकानों में जाया जा सकता है। यह मीठी गाली दूल्हे की माँ को लक्ष्य कर दी जाती है।)

चेतन ने उसी की तरह मटक कर, आँखें नचाते और ऐन-मैन वही शब्द दोहराते हुए, मोहिनी की ऐसे नकल उतार दी थी कि वह शरमा कर, उल्टे पैरों भाग गयी थी।

तब रणवीर को लगा था, जैसे वह वाक्य कोई रामबाण हो, जो चंचल युवतियों को ध्वस्त करने की शक्ति रखता हो और उसके ठस दिमाग ने इस तीर को, अपनी शादी के समय अपनी सालियों पर चलाने के लिए अपनी स्मृति के तूणीर में सुरक्षित रख लिया था। भाँवरों के लिए जाते समय, जब वह बरात के साथ लड़की के घर की गली में दाख़िल हुआ और दोनों ओर बैठी हुई औरतों ने ब्याह के गानों में बे-भाव सिट्ठिनियाँ देनी शुरू कीं तो रणवीर ने हाथ से सेहरा ज़रा-सा हटा कर अपना उजबक-सा मुँह ऊपर को करके पहले एक ओर और फिर दूसरी ओर वह तीर चला दिया—"आया नी पुत्त नटनी दा—आया नी पुत्त नटनी दा।"

छत की औरतों में उसकी सास भी बैठी थी। उसे लड़का अजब पागल-सा लगा। वह भागी-भागी नीचे गयी। उसने जा कर अपने पति से कहा कि लड़का तो पागल लगता है, मैं अपनी बेटी उससे नहीं ब्याहूँगी। आप जा कर पहले पक्का पता कीजिए!

जाने कैसे यह ख़बर सारे समधियाने में फैल गयी। ब्याह के गाने बन्द हो गये। छतों पर मनहूस सन्नाटा छा गया। जब समधी ने पण्डित बेणीप्रसाद से यह बात कही तो उनके हाथों के तोते उड़ गये। गिल्ली पण्डित ने रणवीर से पूछा तो रणवीर ने बता दिया कि जब चन्दा की शादी हुई थी तो जीजा ने भी ऐसा ही किया था। बेशक जा कर उनसे पूछ लो!

पुरोहित ने उसके ससुर को समझाया, पर किसी को विश्वास नहीं हुआ। तब पुरोहित चेतन को ढूँढता हुआ बाबा के आश्रम पहुँचा।

गिल्ली पण्डित, चेतन का समवयस्क और मित्र था। मुश्किल से मैट्रिक तक पढ़ा था। कल तक वह मुहल्ला पंजपीर में लण्ठई करता घूमता था,

लेकिन अपने पिता के देहान्त पर उसने आवारागर्दी छोड़, गम्भीरता से पुरोहिताई का काम सँभाल लिया था। जब उसने चेतन को रणवीर का कारनामा सुनाया तो, हालाँकि गिल्ली पण्डित को रणवीर की हरकत पर आश्चर्य हुआ था, चेतन को सिर्फ़ हँसी आयी थी। उसने सभी लोगों को, रणवीर की इस बेवकूफ़ी के पीछे जो किस्सा था, उसकी हकीकत बतायी और उस प्रसंग के दुखद परिणाम को भूल कर उसकी हास्यास्पदता पर, गाँव की गली के बीचों-बीच रुक कर, सभी इतने जोर से ठहाका मार कर हँसे कि कई घरों के दरवाज़े खुल गये और देहाती चकित हो, उनको देखते रह गये।....तब चेतन ने अपने साथियों से कहा था कि जैसे भी हो, इस स्थिति को सँभालना है और रणवीर के उस भोलेपन का उल्लेख कर, उसकी मूर्खता की हँसी उड़ाते हुए, उसके ससुर को राह पर ले आना है। बरात बिना दुल्हन के वापस जाय, यह तो डूब मरने की बात है और पूरी योजना बना कर, वे सब गिल्ली पण्डित के पीछे-पीछे भागम-भाग समधियाने पहुँचे थे।

कमरे में दाखिल होते ही पण्डित वेणीप्रसाद को पगड़ी हाथ में लिये, गिड़गिड़ाते देख कर चेतन को अफ़सोस हुआ। उसे अपनी शादी का किस्सा याद हो आया। पण्डित वेणीप्रसाद न होते तो वह कभी चन्दा के लिए 'हाँ' न करता। सगाई के बाद भी, जब उसके पिता ने एक दिन पहले शराब पी कर भयंकर उत्पात मचाया था और वह आधी रात को घर से भाग गया था और स्टेशन से अनन्त उसे पकड़ लाया था तो दूसरी सुबह पण्डित वेणीप्रसाद ही ने उसे समझा कर शान्त किया था। अपने ससुर के इस बड़े भाई के लिए एक अव्यक्त-सा आदर चेतन के मन में शुरू ही से था और हालाँकि उसकी सास ने उसे लाख उनके खिलाफ़ भरने की कोशिश की थी, पर उसे विश्वास न आया था कि उन्होंने महज़ स्वार्थ और दुश्मनी की वजह से अपने सही-दिमाग़ भाई को पागलख़ाने में डाल दिया है। अपने घोर पागल ससुर को देख कर चेतन को यकीन हो गया था कि

पण्डित वेणीप्रसाद के सामने दूसरा चारा न रहा होगा। रणवीर उन्हें अपनी शादी का निमन्त्रण देने पहुँचा था तो गोविन्द गली से वापस आ कर उसने बताया था कि चाची शादी में शामिल होने को तयार नहीं और अगर वह उसके कहने से शादी में शामिल नहीं होगी तो उसके पिता अपने लरजते शरीर के बावजूद उसे मनाने लाहौर आयेंगे, तब चेतन अपनी पत्नी को साथ ले कर स्वयं अपनी सास से मिला था। उसने दस तरह ऊँच-नीच उसे समझायी थी और कहा था कि चाहे उसे कितना भी गुस्सा क्यों न हो, अपने बीमार और लगभग अपाहिज जेठ को लाहौर आने की यातना नहीं देनी चाहिए। और चेतन के समझाने पर वह तैयार हो गयी थी।. . रणवीर ने जरूर ही लाहौर से वापस आ कर अपने पिता को वह सब बताया होगा। क्योंकि जब चेतन अपनी पत्नी के साथ बस्ती गजा पहुँचा था और उसने बढ कर पण्डित वेणीप्रसाद के पाँव छुए थे तो उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया। फिर अपना लरजता हाथ उसके कन्धे पर रखते हुए, चन्दा की माँ को मना कर, शादी पर ले आने के लिए उसकी बहुत प्रशसा की थी और उसे ढेरों दुआएं दी थी।

उस देवता-तुल्य बुजुर्ग को, पगडी हाथो में लिये हुए, अपने समधी के सामने गिडगिडाते देख कर, न जाने चेतन को क्या हुआ कि उसने जो यह सोचा था कि सारे किस्से को मजाक में उडाते, रणवीर पर फब्तियां कसते और उसकी मूर्खता पर ठहाके लगाते हुए, वे उसके सास-ससुर को राह पर ले आयेंगे, वह सब योजना उसके दिमाग से क्षण भर के लिए हवा हो गयी और पण्डित वेणीप्रसाद की बात सुनते ही, बढ कर उनके हाथो में पगडी ले कर उनके सिर पर रखते हुए, चेतन ने सक्रोध कहा .

"आप क्या करते हैं ताया जी !" (चेतन ने कभी पण्डित वेणीप्रसाद को 'ताया जी' कह कर न पुकारा था, पर उस समय उसे लगा कि जैसे वे चन्दा के नहीं, उसी के ताऊ हैं और उनका अपमान, उन्हीं का नहीं, उसका और चन्दा का भी है) "उठिए ! हम रणवीर की शादी यहां नहीं करेंगे। जो लोग इसके जरा-से बचपने पर इसे पागल करार दे सकते हैं,

कल शादी हो जाने के बाद न जाने क्या गुल न खिलायेंगे ! उठिए ! हुनर साहब तो कब से अपनी भतीजी के लिए कह रहे हैं (यहाँ चेतन ने हुनर साहब की ओर पलट कर ज़रा-सी आँख दबायी) लेकिन आप यहाँ हामी भर चुके थे। वह रिश्ता अब भी हो सकता है। हुनर साहब यहीं हैं, आप उठिए ! दस दिन के अन्दर-अन्दर हम वहाँ रणवीर की शादी कर देंगे। रणवीर तो पागल है नहीं, हम लोग और हुनर साहब और निश्तर साहब ही नहीं, (चेतन ने अपने जोश में उस ऐंचाताने ठिगने शायर के साथ भी 'साहब' लगा दिया) सारा जालन्धर शहर जानता है। हाँ, खर्च और परेशानी आपको होगी, पर उसके लिए हम इन पर हर्जाने का दावा दायर करेंगे और सारा नुकसान इनसे वसूल कर लेंगे, इसकी ज़िम्मेदारी मैं लेता हूँ। चलिए, उठिए !"

चेतन ने कुछ ऐसे क्रोध और आवेश में; कुछ ऐसी नाटकीयता के साथ यह सब कहा कि कमरे में एकदम सन्नाटा छा गया। तब हल्की-सी आँख दबाते हुए उसने हुनर साहब को इशारा किया तो अजीब मोमनी-सी सूरत बनाये हुए वे आगे बढ़े। उन्होंने हाथ जोड़ कर पण्डित वेणीप्रसाद से कहा, "आप इन लोगों के यहाँ बरात ले कर आये हैं, मैं नहीं चाहता कि इस काज में अकाज हो। चाहिए तो यही कि जिस तरह बाजे-गाजे के साथ आप लालड़ाँ आये हैं, उसी मसर्रत और शादमानी[1] से आप बहू ले कर जायें, लेकिन अगर इन्हें मंज़ूर न हो तो चेतन जी ने जो कहा है, आप वह मान जाइए। दस दिन नहीं, आप सिर्फ़ 'हाँ' कर दीजिए और सात दिन के अन्दर-अन्दर बस्सी कलाँ बरात ले चलिए। हम तो आप को पा कर फ़ख़्र[2], से फूले नहीं समायेंगे। मेरे साथ रह कर मेरी भतीजी भी तुकबन्दी कर लेती है। रणवीर तो माशा अल्लाह बहुत अच्छे शायर हैं। खूब गुज़रेगी जो मिल बैठेंगे दीवाने दो।"

पण्डित वेणीप्रसाद क्या कहें, उनकी समझ में कुछ न आ रहा था।

१. हर्ष और उल्लास २. गर्व

यह बात वे भली-भाँति जान गये थे कि यह सब नाटक है। हुनर साहब खत्री है और वे ब्राह्मण और उनकी भतीजी के रिश्ते की कभी बात नहीं हुई, पर बिना कुछ भी कहे, वे लम्बी साँस भर कर उठे और वैसे ही असमंजस में खड़े हो गये।

तब वैसी ही मोमनी सूरत बनाये हुए हुनर साहब ने लड़की के बाप से कहा, 'पण्डित जी, आखिर आपने यह कैसे फ़तवा दे दिया कि रणवीर पागल है। हम भी इन्हें बरसों से जानते हैं, मेरे तो खैर ये शागिर्द हैं। शायर है और अगर आपके नज़दीक शायर पागल होते हैं तो फिर चेतन जी, मैं, निश्तर साहब और आधा जालन्धर शहर पागल है। कौन-सी ऐसी बात उनमें देखी आपने कि ऐन भाँवरों से पहले यह फ़तवा दे दिया ?"

इससे पहले कि लड़की के पिता कुछ कहते, चेतन ने कहा, "कुछ नहीं, मुझे अभी गिल्ली पण्डित से मालूम हुआ है, सरासर रणवीर का भोलापन है।" और उसने विस्तार से अपनी शादी का किस्सा सुनाते हुए, 'आया नी पुत्त नटनी दा' वाला प्रसंग सुनाया और कहा, "इसने यह समझा कि यह वाक्य शायद रामबाण है, जिससे इसकी सालियाँ और उनकी सहेलियाँ शरमा कर चुप हो जायेंगी।" यहाँ चेतन ने एक खोखला ठहाका लगाया, "इसने आते ही वह रामबाण चला दिया और नतीजा आपके सामने है।"

और वह फिर खोखली हँसी हँसा।

हुनर साहब और उनके बहाने उपस्थित मण्डली को यह सब बता कर चेतन लड़की के पिता की ओर मुड़ा और बड़ी गम्भीरता से उसने कहा, "रणवीर ही नहीं, आपका अपना बेटा भी भोलेपन में ऐसी गलती कर सकता है। आप इसे बेवकूफ़ी तो कह सकते हैं, पागलपन नहीं कह सकते। हम लोग लाहौर से बरात में शामिल होने के लिए आये हैं। मैं आपको बरात लौटाने की सलाह तो नहीं देता। लड़का तो भला-चंगा है। उसकी शादी तो हम दस दिन में कर ही देंगे, लेकिन आप नतीजे का भी सोच लीजिएगा। चार लोग आप ही की लड़की में दोष निकालेंगे और कचह-रियों की खाक आपको अलग छाननी पड़ेगी।"—फिर उसने अपने साथियों

की ओर संकेत करते और उनका महत्व जताते हुए हरेक का परिचय दिया। अपने बड़े भाई की ओर संकेत कर उसने कहा, "डॉक्टर शर्मा लाहौर के मशहूर डेण्टिस्ट हैं। खास अनारकली में इनकी दुकान है, सिर्फ़ रणवीर की खातिर अपने मरीज़ों को छोड़ कर, ये लालड़ाँ आये है; हुनर साहब की शोहरत पंजाब ही नहीं, हिन्दुस्तान तक में फैली हुई है, इन्होंने रणवीर का सेहरा लिखा है, जो ये आज बरात के खाने पर सुनायेंगे; श्री गणेशीलाल वत्स काबिल इंजीनियर हैं, हज़ार रुपया महीना पाते हैं और दूर बिहार से इस शादी में शामिल होने आये है; निश्तर साहब मशहूर हफ़्तावार 'सदाकत' के एडीटर हैं—इतने मुअज़्ज़िज़[1] लोगों की बेइज़्ज़ती करके, आप इज़्ज़त और चैन से रह लेंगे, ऐसा नहीं होगा। हम लोगों को अपने दरवाज़े से लौटाने से पहले आप दो पल सोच लीजिए। लालड़ाँ में कोई डॉक्टर-हकीम तो होगा ही, उसी को बुला कर लड़के का मुआइना करा लीजिए कि पागल है या होशमन्द। क्यों बेकार में अपनी और इनकी खिल्ली उड़वाते है।"

असल में उन लोगों के अन्दर आते ही कुछ ऐसा रोब उन देहातियों पर तारी हुआ था कि वे असमंजस में पड़ गये थे। जब चेतन ने सारी बात समझा कर कही और ऊपर से मामले-मुकदमे की धमकी भी दी तो उनके होश ठिकाने आ गये।

"हमें तो कोई एतराज़ नहीं, पर लड़की की माँ को शक हुआ था," लड़की के पिता ने सफ़ाई देते हुए कहा, "अब सारी बात समझ में आ गयी है।" और सिर को झटका देते और हँसते हुए वे उठे, "मैं अभी जा कर उसे समझाता हूँ।"

और जाते-जाते, वे बड़ सत्कार से पण्डित वेणीप्रसाद को बैठाते गये।

उन्हे ज़्यादा समझाने-बुझाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। क्योंकि रणवीर की सास और दूसरी रिश्तेदार औरतें दरवाज़े की ओट में खड़ी, सारी बातें सुन

१. प्रतिष्ठित

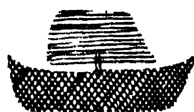
रही थीं। उन्हें गये अभी पाँच-सात ही मिनट हुए होंगे कि गिल्ली पण्डित ने, जिसे इस किस्मे में सब से ज़्यादा रस मिल रहा था, ज़ोर से सब को सुनाते हुए कहा, "पण्डित जी, जो भी तय करना है, जल्दी कीजिए। मुहूर्त का समय निकला जा रहा है।"

लेकिन तभी रणवीर के ससुर वापस आ गये और रणवीर के कन्धे पर हाथ रखते हुए उन्होंने कहा, "चलो बेटा।"

वे सब लोग विवाह-मण्डप की ओर जा रहे थे, जब छतों पर ब्याह के के गाने फिर शुरू हो गये।



छठा खण्ड



चौदह

रणवीर की शादी में शामिल होने के बाद लाहौर पहुँचते ही चेतन ने सबसे पहले जो काम करने की सोची, वह था पण्डित रत्न से प्रस्तावित सोसाइटी के नियम-कानून और उद्देश्य बनवाना, उन्हें छपवाना और उसके सदस्य बनाने की मुहिम जारी करना।

पण्डित जी ने उसे तीन-चार दिन में नियमावली तैयार कर देने का वचन दिया था। दूसरी ही शाम वे उसे साथ ले कर, माल रोड पर, 'पंजाब लिट्रेरी लीग' के दफ़्तर गये थे और वहाँ से लीग का ब्रोशर ले आये थे।

पण्डित जी प्रेस इन्फ़र्मेशन ब्यूरो में प्रमुख अनुवादक थे। अंग्रेज़ी और उर्दू—दोनों पर उनका समान अधिकार था। चेतन का ध्यान उन्होंने 'पंजाब लिट्रेरी लीग' के परिपत्र की अनगढ़ अंग्रेजी और दूसरी भाषागत ग़लतियों की ओर दिलाया था और निहायत मुहावरेदार और रवाँ भाषा में परिपत्र तैयार कर दिया था। सोसाइटी का नाम चुनने में उन्हें काफ़ी देर लगी थी—'मॉडर्न लिट्रेरी लीग,' 'कल्चरल लीग ऑफ़ लाहौर,' 'मॉडर्न सोसाइटी ऑफ कल्चर,' 'फ़ोरम फ़ॉर मिडल क्लास इण्टलेक्चुअल्ज़,' आदि कितने ही नाम पण्डित जी ने सोचे और रद्द कर दिये थे। कुछ उन्हें, 'पंजाब लिट्रेरी लीग' की नकल लगते थे और दूसरे, अहमन्यतापूर्ण और बनावट-भरे... तभी सहसा एक नाम सूझने पर उन्होंने चेतन की पीठ पर हाथ जमाते हुए, सोल्लास कहा, "लो, ऐसा बढ़िया नाम सूझा है कि तुम ख़ुश हो जाओगे। एकदम नया और अनोखा, सादा और पुरकार—एस-एफ़-

वाई-ए-ऐम !"

चेतन मुंह-बाये, उनकी ओर देखता रह गया था। उसकी समझ में कुछ भी न आया था।

"एस-एफ़-वाई-ए-ऐम"—सोसाइटी फ़ॉर यू एण्ड मी—तुम्हारी मेरी सोसाइटी—याने हम सब की सोसाइटी—वाह वा ! एकदम नादिर और अनोखा ! शायद ही दुनिया में किसी सोसाइटी का इतना सीधा और सटीक नाम हो।"

"हाँ, नाम तो यकीनन नया और अनोखा है," चेतन ने भी दाद दी, "किसी सोसाइटी का यह नाम तो पढ़ा या सुना नहीं।"

तब खुश हो कर पण्डित जी ने कागज़-कलम सँभाला और बड़े उत्साह से सोसाइटी के उद्देश्य लिखने लगे। जितनी मांस्कृतिक और साहित्यिक सरगर्मियाँ सम्भव हो सकती थी, सभी उन्होने सोसाइटी के उद्देश्यों में समो लीं। लिखना खत्म करके उन्होने कलम रख दिया और चेतन को मज़मून सुनाया।

चेतन ने सुन कर हैरानी प्रकट की, "सोसाइटी यह सब कर सकेगी ?"

पण्डित जी हँसे। "कोई ज़रूरी नहीं," उन्होंने कहा, "लेकिन सोसाइटी के एम्ज़[1] का अट्रैक्टिव[2] होना बेहद ज़रूरी है, ताकि हर मिजाज और हर पसन्द के मेम्बरों को उसमे दिलचस्पी हो। जिस तरह सरकार अव्वाम[3] के नाम की ओट में अपने असली इरादे छुपा लेती है, वैसे ही सोसाइटियों के असली इरादे उनके आदर्शो के पीछे छुपे रहते है।"

और उन्होने एक किस्सा सुनाया :

"एक बार हमारे डिपार्टमेण्ट के सेक्रेट्री एक बहुत जरूरी काम से अंग्रेज़ गवर्नर से मिलने गये। वो नाश्ते पर बैठे थे। वही उन्होंने सेक्रेट्री साहब को बुला लिया। मेज़ पर उनके दायें फ़ाइनेंस कौंसलर और बायें एक बड़े सरमायेदार खान बहादुर बैठे थे, जो रेसों के घोड़ दौड़ाते थे। उन्होंने एक

१. उद्देश्य २. आकर्षक ३. जनता

स्टड फ़ार्म[1] खोला था। वह मेन रोड से एक-दो मील परे था और ख़ान बहादुर चाहते थे कि सरकार वहाँ तक सड़क बना दे। उसके लिए वो बीस हज़ार तक ख़र्च करने को तैयार थे। चूँकि ख़ान बहादुर सरकार के ख़ैरख़्वाह थे और लाखों रुपये से सरकार की मदद कर चुके थे, इसलिए गवर्नर चाहते थे कि उनका काम कर दिया जाय। फ़ाइनेंस कौंसलर ने ख़ान बहादुर से कहा कि वे अर्ज़ी दे दें और उसमें ख़ास तौर से लिख दें कि ऐसी सड़क बनने से अव्वाम को बहुत फ़ायदा पहुँचेगा और वो अव्वाम के आराम के लिए बीस हजार रुपया तक देने को तैयार हैं। अपने स्टड फ़ार्म का वो ज़िक्र न करें। उनका काम हो जायगा।

"और गवर्नर ने ज़रा-सा आँख दबा कर कहा था, 'डोण्ट फ़ॉरगेट—वी हैव टु सर्व द पब्लिक ऑल्वेज—ईवन ह्वेन वी किल इट[2]!"

और पण्डित जी जोर से हँसे।

"सो अज़ीज़े-मन,[3] सोसाइटी के एम्ज़ अगर बड़े-बड़े न रखे जायेंगे," उन्होंने किस्सा सुना कर कहा, "तो कोई चन्दा न देगा।"

संस्था के उद्देश्य कागज पर उकेर कर, पण्डित जी ने उसकी नियमावली तैयार कर दी। वह लगभग वही थी, जो 'लिट्रेरी लीग' की—वर्ष में एक बार जनरल बॉडी की मीटिंग, कार्यकारिणी और पदाधिकारियों का चुनाव। इस बात की व्यवस्था उन्होंने कर दी कि जब संस्था के पास काफ़ी रकम हो जाय तो वह स्थायी और वैतनिक कार्यकारी सचिव रखे।

जहाँ तक सदस्यता का सम्बन्ध है, पण्डित जी ने दो तरह के सदस्य रखे थे—साधारण और विशिष्ट!

साधारण सदस्यों के लिए हर महीने पाँच रुपये चन्दा देना ज़रूरी था। विशिष्ट सदस्य सौ रुपये शुरू में दे कर दस वर्ष के लिए और पाँच सौ रुपये एकमुश्त दे कर जीवन भर के लिए सदस्य बन सकते थे।

---

१. घोड़े पालने का फ़ार्म

२. मत भूलो कि हमें सदा जनता की सेवा करनी है—उस वक्त भी, जब हम उसकी हत्या कर रहे हों। ३. मेरे प्यारे।

सरपरस्त की भी तीन श्रेणियाँ थीं। साधारण सरपरस्त दस रु० महीना, वार्षिक सरपरस्त सौ रु० और आजीवन सरपरस्त एक हज़ार रु० एक-मुश्त।

नियमावली देख कर चेतन ने कहा, "पण्डित जी आपने पाँच सौ, हज़ार चन्दा रखा है, इतना चन्दा कौन देगा ?"

"कोई नहीं देगा ?"

"फिर ?"

"फिर क्या ! जैसे सोसाइटियों के बहुत-से आदर्श दिखावटी होते हैं, वैसे ही चन्दे भी। बड़े चन्दों से ज़ाहिर होता है कि सोसाइटी ज़रा ऊँचे किस्म के लोगों की है, चपड़कनातियों की नहीं। हज़ार-पाँच सौ की बात तो दूर; तुम सौ रुपये वाले भी दस मेम्बर बना लोगे तो समझना कामयाब हो गये।"

चेतन पण्डित जी से सोसाइटी का ब्रोशर ले कर चला था तो उनकी चेतावनी के बावजूद, वह सपने लेने लगा था कि उसने दस आजीवन सदस्य और दस आजीवन सरपरस्त बना लिये हैं, 'एस० एफ़० वाई० ए० एम०' का अपना दफ़्तर अनारकली में ले लिया है और छोटी-सी पत्रिका निकालनी शुरू कर दी है, जिसका वह स्वयं सम्पादक है और सोसाइटी के जलसों और प्रोग्रामों की धूम प्रान्त भर में मच गयी है।

और दूसरे दिन से उसने संस्था का परिपत्र, रसीद-बुकें और स्टेशनरी छपवाने की व्यवस्था शुरू कर दी थी। (सूफ़ी हनुमान प्रसाद के दस रु० उसके पास थे, पाँच रु० उसने सदस्यता के खाते पेशगी पण्डित रत्न से ले लिये थे।) सबसे पहले उसने संस्था का प्रतीक चिह्न (एम्बलम) बनवाया था। एक बड़ा-सा अंग्रेज़ी का अक्षर (S), उसके ऊपर के हिस्से में छोटे-छोटे अक्षर एफ़० वाई० तथा नीचे के हिस्से में ए० एम० ! इस एम्बलम का ब्लॉक बनवा कर उसने परिपत्र के मुखपृष्ठ पर बायीं ओर ऊपर सेट किया था, उसके मध्य से एक लकीर पृष्ठ के आर-पार खींची थी, जिसके ऊपर मोटे

टाइप में सोसाइटी के प्रथमाक्षर (एस० एफ़० वाई० ए० एम०) लिख दिये थे और नीचे पूरा नाम—'सोसाइटी फ़ॉर यू एण्ड मी !'

मैटर कम्पोज़ हो कर प्रूफ़ उठा तो वह खुश-खुश पण्डित जी के पास ले गया। पण्डित जी ने एम्बलम की प्रशंसा की, लेकिन इस बात के बावजूद कि चेतन ने प्रूफ़ पढ़ दिये थे, उन्होंने पंक्चुएशन तथा हिज्जों की दो-एक ग़लतियाँ निकाल दीं।

चेतन उसे प्रिण्ट ऑर्डर के लिए तैयार करने को प्रेस में दे कर हल्के ज़हरमोहरा रंग का, बढ़िया लेजर पेपर ख़रीद लाया और ब्रोशर और रसीदें उसने स्वयं प्रेस मे बैठ कर छपवा डाली।

विज्ञप्ति के नीचे संयोजक के रूप में अपना नाम देख कर, वह खुशी से फूला न समाया।

परिपत्र और रसीदें छपवा कर उसने सबसे पहले रसीद काट कर पण्डित रत्न को दी; फिर वह सूफ़ी हनुमान प्रसाद के यहाँ गया और उसने उन्हें परिपत्र की एक प्रति और रसीद दी।

सूफ़ी साहब ने बड़े ध्यान से ब्रोशर पढ़ा; सराहा और चेतन से कहा कि उसे ले कर सब पत्रकारों और लेखकों से मिले और सोसाइटी के ज़्यादा-से-ज़्यादा सदस्य बनाये और उन्होंने जो काम उसे करने को कहा था, उसका खयाल रखे।

"तुम अगर लगन और दयानतदारी से मेरा काम कर दोगे," उन्होंने कहा, "तो पचास रुपया महीना तुम्हें देने के अलावा, मैं कोशिश करूँगा कि सरकारी हलकों से भी तुम्हारी सोसाइटी की कुछ मदद हो जाय! बड़ी बात नहीं, जो कोई अच्छी-सी सरकारी नौकरी ही तुम्हें मिल जाय।"

"मैं तो सूफ़ी साहब, इस साल लॉ कॉलेज में दाखिल होना चाहता हूँ," चेतन ने कहा, "नौकरी करने की मेरी ख्वाहिश नही।"

"ठीक है, ठीक है," उन्होंने जल्दी से पैंतरा बदला, "तुम ज़रूर लॉ करो। मेरी दुआएँ तुम्हारे साथ है। मेरी किताब के सिलसिले में तुम

मेरी थोड़ी-सी मदद कर दोगे तो मैं तुम्हारा बड़ा मशकूर हूँगा।"....और क्षण भर रुक कर उन्होंने कहा, "कचहरी में प्रैक्टिस जमाने में मैजिस्ट्रेटों और जजों से राब्ता[1] बढ़ाना पड़ता है। इस सिलसिले में, मुझसे जो भी तुम्हारी मदद होगी, करूँगा। कोई ऐसा मैजिस्ट्रेट या जज नहीं, जो मुझे न जानता हो।"

"प्रैक्टिस करने का तो मेरा कोई इरादा नहीं सूफ़ी साहब," चेतन ने कहा था, "इम्तहान मे डिस्टिंक्शन मिल गयी तो सब-जजी के कम्पीटीशन में बैठूंगा।"

"ख़ुदा करे, तुम्हे डिस्टिंक्शन मिले और तुम कम्पीटीशन में आ जाओ। वाइवा[2] में सिफ़ारिश की ज़रूरत पड़ेगी तो मैं तुम्हे सूबे के गवर्नर तक की सिफ़ारिश दिला दूँगा। वायदा करता हूँ।"

"जी, बहुत-बहुत शुक्रिया," चेतन ने मन की बात को मन ही मे छिपाते हुए कहा, "अगर सचमुच मैं लॉ कॉलेज मे दाखिला ले सका और डिस्टिंक्शन से पास हो गया ता ज़रूर आपको तकलीफ़ दूँगा।"

और वह उठा।

सूफ़ी साहब उसे चौक के पार तक छोड़ने आये और हाथ मिलाते हुए उन्होंने फिर अपने काम की याद दिला दी।

"अब ब्रोशर और रसीदें छप गयी हैं," चेतन ने कहा, "मैं सभी पत्रकारों और लेखको से मिलूंगा और देखूंगा, कितने मेम्बर बनते है और कितनो से मैं इतना खुल सकता हूँ कि उनसे वैसी पर्सनल बातें पूछ सकूं। किसी से ज़ाती रिश्ता कायम हो जाय तो भी दो-चार दिन मे यह सब नहीं जाना जा सकता। छै-महीने-साल तो एक-दूसरे के इतने नज़दीक आने के लिए दरकार होंगे ही।"

चेतन ने तो प्रकट ही टालने के लिए यह बात कही थी, लेकिन शायद सूफ़ी साहब ने यही समझा कि लड़का तेज़ है और साल-छै महीने के वेतन

१. सम्पर्क २. मौखिक परीक्षा

का जुगाड़ कर रहा है। कम-से-कम चेतन को उनके लहजे से यही लगा। उन्होंने तीखे स्वर मे कहा :

"उसकी तुम फ़िक्र न करो। साल-छै महीने तुम यूँ ही तनख्वाह ले लोगे तो भी कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा। बस, मुझे दूसरे-तीसरे रिपोर्ट देते रहा करो, तुम्हे हर महीने पचास मिलते रहेंगे।"

"नहीं, उसकी आप तकलीफ़ न कीजिए। मैं कुछ काम कर के दिखाऊँगा तो खुद आपसे रुपये माँग लूँगा।"

और बिना उन्हें उत्तर का अवसर दिये, 'आदाब' में सिर झुका कर, वह चला आया था।

सूफ़ी हनुमान प्रसाद से विदा ले कर चेतन हीरा मण्डी के अड्डे की ओर चला तो उसका मन सहसा उदास हो आया। तिराहे पर आ कर वह क्षण भर को रुका—बायी ओर बढ़ कर सैद मिट्ठा बाज़ार से सीधा लोहारी गेट निकल जाय अथवा दायीं ओर हीरा मण्डी के अड्डे से ताँगे पर बैठ कर लोहारी गेट के बाहर, स्टेशन के अड्डे पर जा उतरे, चेतन तय न कर पाया। वह सुबह-सुबह कृष्णा गली से शीश महल रोड, पण्डित जी से मिलने गया था और उनको दफ़्तर रवाना कर के वहाँ से पैदल सूफ़ी साहब के घर हीरा मण्डी पहुँचा था। वह थक गया था। फिर न जाने क्यों, सूफ़ी साहब से मिल कर उसका उत्साह किंचित मन्द हो गया था। उसे कुछ अस्पष्ट-सा एहसास हो रहा था कि उसने ब्रोशर और रसीदें तो छपवा ली हैं और वह बड़े-बड़े सपने भी ले रहा है, पर यह काम उसके बस का है नहीं और इस एहसास ने उसे थका दिया था। वह दायीं ओर मुड़ा और हीरा मण्डी के अड्डे पर, चलने को तैयार, एक ताँगे की अगली सीट पर जा बैठा।

ताँगे में एक ही सवारी की कमी थी। उसके बैठते ही ताँगा चल पड़ा। पहले ऐसे में वह ताँगे में बैठा, हीरा मण्डी की भीड़ का लुत्फ़ उठाता; वेश्याओं और टखियाइयों की इस विशेष दुनिया में घूमने वाले

चेहरों को देखता; दुकानों पर निगाह डालता, इसलिए वह ताँगे की अगली सीट पर बैठता था।....बैठा तो वह अब भी ताँगे की अगली सीट पर ही था और उसकी आँखें भी प्रकट रूप से बाज़ार ही की ओर थीं, लेकिन सूफ़ी साहब की बातें सुन कर वह हठात आशंकित हो उठा था और उसी सिलसिले में सोच रहा था और सब कुछ देखता हुआ भी, किसी चीज़ को न देख रहा था।

यद्यपि उसने मन मे तय कर लिया था कि न तो वह सूफ़ी हनुमान प्रसाद से कोई और काम लेगा, न उनके लिए अपने मित्र-परिचितों की जासूसी करेगा (वह तो केवल दयानतदारी के तक़ाज़े से, दस रुपयों की रसीद देने, चला गया था) लेकिन सूफ़ी साहब की बातों से उसे लगता था, जैसे उन्होंने उस पर आँख रख ली है और वे उसे अपने जाल मे फँसा कर ही छोड़ेंगे। वह लालच से न मानेगा तो दूसरे दबाव उस पर डालेंगे। हो सकता है कि वे उसे किसी चक्कर ही में फँसा दे और फिर उसकी बेबसी का लाभ उठा कर उसे जासूसी करने के लिए विवश कर दें। उसने 'गुरु घण्टाल' मे जर्मन जासूसों के बारे में एक लेख मे ऐसे विवरण पढ़े थे।....चेतन दरअसल घबरा गया था। मूर्ख भी समझ लेता कि चेतन टाल रहा है, लेकिन साफ़ नजर आने वाली बात भी सूफ़ी साहब को, अपने स्वार्थ मे, दिखायी नही दे रही थी और उन्होंने उसकी बात का उल्टा ही मतलब लगाया था। 'ग़रज़मन्द वाकई बावला होता है,' चेतन ने मन-ही-मन कहा। 'उन्हे यह किसी तरह समझ मे नही आ सकता कि यह आदमी, जो मामूली तरजुमे का काम लेने के लिए इतनी दूर आता है, पचास रुपये का लालच छोड सकता है।'

तब चेतन के दिमाग में एक दूसरी ही बात आयी, 'क्या पण्डित रत्न ने जान-बूझ कर उसे उनके चंगुल में फँसाया है?....पण्डित जी का क्या है,' उसने सोचा, 'पहले उन्होने मुझे महाशय जीवनलाल कपूर के चक्कर में फँसा दिया था, कही अब वे मुझे सूफ़ी साहब के चक्कर मे न फँसा दें?....लेकिन वे तो मुझे अपने लड़के के बराबर समझते है।' उसने

अपनी शंका पर अपने आप को कोसा, 'वे मेरे साथ ऐसी ठगी नहीं कर सकते ।'

....लेकिन अपने आपको धिक्कारने के बावजूद, वह अपनी शंकाओं से छुट्टी नही पा सका । उसका भयभीत मन नये-नये तर्क सोचने लगा : पण्डित जी तो सरकार के खैरख्वाह हैं । हो सकता है, चेतन के मुखबरी करने में उन्हे कोई बुराई न दिखायी देती हो....जाने वे स्वयं भी मुखबरी करते हों, वरना उस व्यवस्था में, जहाँ उनका डायरेक्टर साम्प्रदायिक वृत्ति का कट्टर मुसलमान है, वे कैसे इतनी इज़्ज़त और सम्मान पाते हैं—सभी तो उन्हे मानते हैं । क्या इसी जासूसी की बदौलत वे इतनी साख बनाये हुए है ? 'ग़ैर मा'रूफ़ जर्नलिस्ट' के नाम से उनकी रचनाएँ बड़े-से-बड़े रिसाले में छपती है । कहाँ तो यह कि मुन्शी चन्द्रशेखर की कहानी (जो हिन्दी-उर्दू मे उपन्यास-सम्राट समझे जाते है) एम० असलम जैसे दुकड़िया कथाकार के बाद छपे और कहाँ 'कारवाँ,' 'अदबी दुनिया,' 'हुमायूँ'—सभी सम्मानित पत्रिकाओं में न सिर्फ़ पण्डित रत्न की कहानी रहे, वरन उन्हें रुपये भी मिलें । जितने रुपये उर्दू-अख़बारों के सम्पादकों को महीने मे वेतन के मिलते हैं, उतने तो वे कई बार अपनी कहानियों मे बना लेते है ।

....चेतन के मन में सहसा उबाल-सा उठा कि वह सोसाइटी के ब्रोशर वग़ैरा ले जा कर पण्डित रत्न को सौंप दे और कहे कि वह सोसाइटी नहीं चला सकता ।....'मैं इन सभी लोगों के चक्कर से ज़रूर निकल जाऊँगा ।' वह मन-ही-मन बड़बड़ाया, 'चाहे मुझे फिर रूमाल ही क्यों न बेचने पड़ें । मै दाख़िले भर के रुपये इकट्ठे करूँगा और बिना इन लोगों की मदद के. लॉ पास करूँगा । वरना कौन जाने मै डिस्टिंक्शन ले लूँ और कम्पीटीशन मे भी आ जाऊँ और सूफ़ी साहब अगर मुझसे नाराज़ हो जायें तो मुझे वाइवा में फ़ेल करा दें । इन लोगो की पहुँच और दबावों का कोई अन्त नहीं !'....

सूफ़ी साहब ने चलते वक्त चेतन पर जैसे ज़ोर दिया था और जैसे सर-

कारी हलकों में अपनी पहुँच की बात कही थी, उससे वह सचमुच घबरा गया था ।....लेकिन दूसरे ही क्षण उसने अपने आप को धिक्कारा....नहीं, यह सब उसकी अत्यधिक भावप्रवणता और अतिशय कल्पनाशीलता का करिश्मा है । जो नहीं है, शायद वह उसकी कल्पना कर रहा है ।....वह तत्काल कोई वैसी मूर्खता नहीं करेगा ।....अगर पण्डित जी ने सोसाइटी के सिल-सिले में उसके अचानक यूँ हतोत्साह होने की वजह पूछी तो वह क्या कहेगा ?....नहीं, वह अभी चुप रहेगा । सोसाइटी के सदस्य और सरपरस्त बनाने की मुहिम जारी रखेगा और इस बीच कोई दूसरा काम भी सोचता रहेगा । वह ऐसी सफ़ाई से इस चक्कर से निकल जायेगा कि किसी को शक न गुजरे....फिर वह पूरे दिलो-जान से लॉ की तैयारी करेगा....

तांगा लोहारी गेट के अड्डे पर (जो स्टेशन का अड्डा भी कहलाता था) आ कर रुका । चेतन ने ताँगे वाले को पैसे दिये और हाथ में सोसा-इटी के ब्रोशर और रसीद-बुक लिये हुए उतरा ।—तभी सामने सड़क की दूसरी ओर दो-मंज़िले पर 'कविराज राम दास बी० ए०' के जहाज़ी बोर्ड पर उसकी नज़र गयी, जो सरक्युलर रोड पर, हर आने-जाने वाले का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता था ।

चेतन क्षण भर खड़ा, उस बोर्ड को देखता रहा । कविराज के उठने का समय है, भीड़ नहीं होगी—उसने सोचा—क्यों न वह सोसाइटी के बहाने उनसे मिल ले । पिछले वर्ष शिमले में उन्होंने उससे अपने लिए एक और किताब लिख देने की फ़रमायश की थी; क्यों न वह उनकी बात मान ले । ठीक है, वह प्रेत-लेखन है, पर उसका पाप कविराज के मत्थे, जो दूसरे की रचना अपने नाम से छपवाते हैं; उसकी तो सच्ची मेहनत है । किसी मित्र की जासूसी करने की अपेक्षा, किसी के लिए पुस्तक लिख देना क्या बुरा है ! फिर इस तरह आसानी से वह लॉ कॉलेज में दाखिला ले लेगा और उसकी सारी समस्या हल हो जायगी ।....लेकिन वह मुँह खोल कर यह बात नहीं कहेगा । इशारा करेगा और उनका दिल टटोलेगा । बात बन गयी तो ठीक, न बनी तो भी ठीक !....

और वह चुपचाप सड़क पार कर, औषधालय की सीढ़ियाँ चढ़ गया था।

उस वक्त सिर्फ़ एक मरीज़ उस अर्ध-पारदर्शी कसीदा-कढ़े पर्दे के पीछे कविराज के कक्ष में उनके सामने बैठा था और दो, बाहर बेंच पर बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे। चेतन खुश हुआ कि उसे ज्यादा समय प्रतीक्षा नहीं करनी होगी। वह बैठा ही था कि दो मरीज़ और आ गये। चेतन को हल्की-सी भूख लग आयी थी, लेकिन उसने तय किया कि वह अन्त ही में जायगा।

सौभाग्य से उससे पहले प्रतीक्षा करने वालों में एक अपनी बारी का नहीं, नुस्खे के बन जाने का इन्तज़ार कर रहा था और बाद में आने वाले दोनों, दवा लेने आये थे। जल्दी ही चेतन की बारी आ गयी।

कविराज को अपनी कुर्सी पर बैठे हुए, उस अर्ध-पारदर्शी पर्दे से बाहर प्रतीक्षारत बैठने वालों की झलक मिल जाती थी और अन्दर आने तक वे अपने मरीज़ अथवा मुलाकाती के अनुसार अपना पोज़ तथा स्वर बना लेते थे। चेतन को भी उन्होंने पहले देख लिया था। वह पर्दा हटा कर अन्दर दाखिल हुआ तो सामने मेज़ के दूसरी ओर पड़ी कुर्सी की तरफ़ संकेत करते हुए उन्होंने कहा, "आओ अज़ीज़ बैठो!"

चेतन बैठ गया, लेकिन दूसरे ही क्षण उठ कर उसने बड़े तपाक से संस्था का परिपत्र उनकी खिदमत में पेश किया।

कविराज ने परिपत्र पर सरसरी दृष्टि डाली तो पण्डित रत्न के हवाले से चेतन ने संस्था की ज़रूरत बतायी और कहा कि कविराज जी ने सदा सभा-सोसाइटियों की मदद की है, नगर के सांस्कृतिक प्रोग्रामों में योग दिया है और उसकी बड़ी इच्छा है कि वे सोसाइटी के सरपरस्त बन जायँ। आजीवन सरपरस्त बन जायँ तो क्या कहने हैं, वरना साधारण सरपरस्त तो बनें ही।

"लाइफ़ पेट्रन का कितना चन्दा है?" कविराज ने सहसा गम्भीरता से पूछा।

चेतन का दिल धड़का। क्या कविराज आजीवन सरपरस्त बन सकते हैं! पर उसने अपने उत्साह पर नियन्त्रण रख कर कहा :

"जी, तीसरे सफ़े पर मेम्बरशिप के नियम हैं। लाइफ़ पेट्रन नहीं, पर पेट्रन तो सूफ़ी हनुमान प्रसाद भी बने हैं।"

कविराज जी कुछ क्षण चुपचाप परिपत्र पढ़ते रहे, फिर उन्होंने उसे बायीं ओर पड़े पेपरवेट के नीचे रख दिया और जेब से बटुआ निकाल कर पाँच रुपये का एक नोट चेतन की ओर बढ़ाया।

सौ रुपये की तो नहीं, पर चेतन दस रुपये की आशा ज़रूर रखता था। क्षण भर वह विमूढ़-सा नोट को देखता रहा।

कविराज जी ने नोट हाथ में लिये-लिये, ज़रा-सा झुक कर उसकी आँखों में देखा; फिर वे बोले :

"देखो अज़ीज़ हज़ार की तो मेरी बिसात नहीं, पर सौ मैं अभी दे कर साल भर के लिए पेट्रन बन सकता हूँ, लेकिन मैं बनूँगा नहीं। मैं ख़ास मेम्बर भी नहीं बनूँगा, मैं सिर्फ़ आम मेम्बर बनूँगा।"

और उन्होंने फिर नोट आगे बढ़ाया। चेतन ने बड़ी बेदिली से नोट ले लिया। उसकी आँखों में झलक आने वाली निराशा को लक्ष्य कर, कविराज जी बोले :

"अगर तुम इतने ही से निराश होते हो अज़ीज़, तो मेरी राय है कि तुम इस सोसाइटी वग़ैरा के चक्कर में न पड़ो। यह काम बहुत मुश्किल है—बीमा एजेण्टी जैसा! बीमा एजेण्ट बीस बार बीस प्रॉस्पेक्टिव क्लायण्टो[1] के पास जाता है और हर बार निराश लौटता है। इक्कीसवीं बार उनमें से एक का बीमा करने में वह सफल हो जाता है। इसी एक के लिए वह बीस बार बीस लोगों के इनकार सुनता है। जिसमें इतना धीरज और सहनशीलता हो, वही कामयाब बीमा एजेण्ट हो सकता है। यही हाल सभा-सोसाइटी चलाने वालों का है। मैं जानता हूँ, क्योंकि मैं दसियों सोसाइटियों

१. सम्भावित ग्राहकों,

के साथ जुड़ा हूँ। जिस शख्स में बेइन्तिहा धीरज और अपरम्पार लगन हो, उसे ही किसी सोसाइटी का काम अपने कन्धों पर लेना चाहिए। किसी को कैसे यकीन हो कि चन्दे की रकम खुर्द-बुर्द नहीं हो जायगी, जब तक दो-चार बैठकें न हो जायं, सदर और दूसरे ओहदेदारों का चुनाव न हो जाय, लोगों का विश्वास नहीं जमता....''

चेतन ने कुछ प्रतिवाद करने को होंट खोले ही थे कि कविराज जी ने ज़रा-सा हाथ उठा कर उसे रोक दिया, ''अपनी बात मत करो अज़ीज़! मुझे तुम पर पूरा भरोसा है। जहाँ तक मेरा ताल्लुक है, मैं दूसरी ही वजह से तुम्हारी बात नहीं मान रहा। मैं नहीं चाहता कि हज़ार या सौ रुपया दे कर, मैं तुम्हारा काम आसान कर दूँ....''

चेतन की समझ मे कुछ भी नही आया। ज़रा-सा मुँह-बाये वह चकित-सा पूर्ववत बैठा रहा।

कविराज ने अपनी बात जारी रखी—''इसलिए कि मैं तुम्हें अपना अज़ीज़ समझता हूँ और नहीं चाहता कि तुम नाकामयाब हो जाओ!''

चेतन की आँखें प्रश्न मे और भी फैल गयीं। कविराज जी की उलट-बाँसी उसके सिर पर से गुज़र गयी। तब उन्होंने अपने कथन की व्याख्या की :

''बात यह है अज़ीज कि सच्ची और दायमी कामयाबी[1] और इसी-लिए सच्चा सुख उसी को मिलता है, जो अपनी मंजिल पर पहुँचने के लिए मुश्किल रास्ता चुनता है। पगडण्डियो से मंजिल पर पहुँचने वाले कई बार मंज़िल को खो देते है। मैं चाहता हूँ कि तुम मुश्किल रास्ते से ही आगे बढ़ो; अपने धीरज और लगन और साबितकदमी[2] से रास्ते की सब मुश्किलें दूर करते हुए कामयाबी हासिल करो—ऐसी कामयाबी, जो आरज़ी[3] न हो, दायमी हो।....तुम छै महीना सोसाइटी चला ले जाओगे तो मेरे

१. स्थायी सफलता, २. अपने निश्चय पर अटल भाव से लगे रहना, ३. अस्थायी।

पास आना, मैं सरपरस्त बन जाऊँगा ।"

'स्साला !' चेतन ने मन-ही मन कहा, 'मुझे एकदम घामड़ समझता है ।' लेकिन अपनी निराशा को कही गहरे में दबा कर, प्रकृतिस्थ होते हुए, उसने नोट ले कर जेब में डाला, रसीद बुक खोली और बोला :

"हमारा यह इरादा है कि हर तीसरे महीने सोसाइटी का एक स्पेशल प्रोग्राम रखें—किसी बार मुशायरा या कवि-सम्मेलन और किसी बार संगीत सम्मेलन, कभी लोकल आर्टिस्टों के चित्रों की नुमाइश और कभी शामे-अफ़साना ! सोचता था कि आप सरपरस्त बन जाते तो दो-एक ख़ास मौकों पर आप का नाम प्रधान के रूप में पेश करता । सौ-हज़ार न सही, आप दस रुपया महीना तो दे ही सकते हैं ।"

मूँछों के नीचे बड़ी प्यारी-सी मुस्कान बिखेरते हुए कविराज ने कहा :

"दूँगा अज़ीज़, दूँगा ! जिस दिन तुमने पचास मेम्बर बना लिये, मेरे पास आना, मैं सरपरस्त बन जाऊँगा । प्रधान चाहोगे, प्रधान की कुर्सी पर जा बैठूंगा; दरबान चाहोगे, दरबान की जगह जा खड़ा हूंगा ।"

और मूंछों की मुस्कान को और फैलाते हुए, उन्होंने ग़ालिब का शे'र पढ़ा :

"मेहरबाँ होके बुला लो मुझे चाहे जिस वक्त
मैं गया वक्त नहीं हूँ कि फिर आ भी न सकूँ"

और दाद के लिए उसकी ओर देखते हुए उन्होंने कहा, "क्यों अज़ीज़ ।"

'हरामज़ादा !' चेतन ने कुढ़ते हुए मन-ही-मन कहा; लेकिन चेहरे पर उसने मन का भाव प्रकट नहीं होने दिया; चुपचाप रसीद काट कर दे दी और बोला, "दुआ कीजिए, मुझे कामयाबी हासिल हो और मैं आपको सरपरस्त बनाने के लिए जल्द ही हाज़िर होऊँ ।"

"ज़रूर-ज़रूर," उन्होंने रसीद को तहा कर जेब में रखते हुए कहा ।

चेतन उठा और हालाँकि कविराज के व्यवहार से शिमले वाली बात पूछने को उसका उत्साह नहीं रह गया था, तो भी चूँकि औषधालय की सीढ़ियाँ चढ़ने से पहले उसने तय किया था, इसलिए जब वह रसीद दे कर

उठा तो क्षण भर को रुक कर उसने पूछा :

"इस बार आप किस पहाड़ पर जाने की सोच रहे हैं ?"

कविराज चौंके, उन्होंने उस पर एक गहरी नज़र डाली और निमिष भर रुक कर बोले :

"तय तो नहीं किया, गया तो शिमला ही जाऊँगा। वहाँ लोअर माल की दुकान और रल्दू भट्टे के मकान—दोनों का, पूरे सीज़न का किराया दे रखा है।"

चेतन कुर्सी के हत्थे से टेक लगा कर रुक गया।

"मै सोच रहा हू, वैद जी," उसने कहा, "मै इस साल लॉ कॉलेज मे दाखिला ले लूं।"

"पर तुम तो सोसाइटी चलाने जा रहे हो ?" कविराज ने प्रश्न किया।

"मुझे पता चला है," चेतन बोला, "इस साल से लॉ कॉलेज में सुबह-शाम, दोनों वक्त क्लासें लगा करेंगी। मैं सुबह की क्लासें अटेण्ड करूँगा और बाकी दिन भर सोसाइटी का काम देखूंगा। काफ़ी मेम्बर बन गये तो फिर ज़्यादा काम नही रहेगा। लॉ कॉलेज का दाखिला तो सितम्बर में होगा। इतने महीनो मे तो मै सोसाइटी की बुनियादो मे कंकरीट भर दूंगा !"

"कानून पास करना तो मुश्किल नहीं," कविराज ने राय दी, "लेकिन प्रैक्टिस जमाना मुश्किल है।"

"प्रैक्टिस जमाने का मेरा कोई इरादा नही।"

"फिर दो कीमती बरस लॉ कॉलेज में बरबाद करने का मतलब ? इतने में तो तुम कहानियो के दो मजमुए तैयार कर सकते हो !"

"मे सब जजी के कम्पीटीशन में बैठने की सोचता हूँ।"

"तब ज़रूर करो," कविराज जी ने कहा, "लकिन राय मेरी यही है कि कदम उठाने से पहले अपने मन की इच्छा और अपने बाजुओं की ताकत का अन्दाज़ कर लो। ऐसा न हो कि दो बरस लॉ कॉलेज में रगड़-पट्टी के बाद तुम्हें लगे कि तुमने ग़लती की। ऊँची छलाँग भरो और मुँह

के बल आ गिरो, यह कोई अक्लमन्दी नही ।"

"ऊँची छलाँग लगाने का तय करूँगा तो पहले ताकत हासिल करूँगा।" चेतन ने ठण्डेपन मे कहा, "मेरे पिता कहा करते है कि ज़िन्दगी मे कुछ भी मुश्किल नही—एक मा का बेटा जो काम कर सकता है, दूसरी माँ का बेटा भी उसे सरअंजाम दे सकता है । मै पूरी कोशिश करूँगा और डिस्टिंक्शन लूँगा । ..और डिस्टिंक्शन लूँगा तो मुझे कम्पीटीशन मे आने से दुनिया की कोई ताकत नही रोक सकती ।" पल भर को वह रुका फिर उसने कहा, "गीता मे तो लिखा है कि कर्म करो और फल की चिन्ता न करो ।"

"तब ठीक है," कविराज जी ने कहा, "जरूर करो, भगवान तुम्हे जरूर कामयाबी देगा ।"

उन्होने घडी देखी और वे उठने के लिए कसमसाये ।

"एक ही मुश्किल है," चेतन ने कद्रे उदास हो कर उठते हुए कहा, "लॉ कॉलेज का दाखिला कुछ ज्यादा है—लगभग अस्सी रुपये । फीस वगैरह का इन्तजाम तो मै ट्यूशन-ऊशन से कर लूँगा, लेकिन दाखिले का इन्तजाम कैसे करूँ, यह मेरी समझ मे नही आता ।"

और वह चुप हो गया । लेकिन कविराज भी चुप बैठे रहे ।

चेतन चाहता था, उनसे कहे, आप एक और किताब लिखाना चाहते थे, मै लिख दूँगा, लेकिन उससे कहा नही जा सका ।

लेकिन कविराज जी जैसे उसके मन की बात भाँप गये । "मै तुम्हे इस बार भी शिमला ले जाता" उन्होने कहा, "पर मेरा जाना तय नही । तुमने जो किताब लिखी है, अभी तो उसे ही रिवाइज करना है । सोचता हूँ, यहाँ रह कर भी वह काम किया जा सकता है ।"

"हाँ, अगर वहाँ औषधालय चलाने या गर्मियाँ काटने की बात न हो तो इतना खर्च और परेशानी मोल लेना बेकार है," चेतन ने दार्शनिको के-से अन्दाज मे कहा, "आप फिक्र न कीजिए, मै कुछ-न-कुछ बन्दोबस्त कर ही लूँगा ।"

और उसने 'नमस्कार' के लिए हाथ उठाये।

"यह बात कही तुमने कुछ कर गुज़रने वाले नौजवानों वाली," सहसा कविराज उत्साहित हो उठे, "हिम्मते मर्दां मददे ख़ुदा। गॉड हेल्प्स दोज़ हू हेल्प देमसेल्ज़। मैं तुम्हें क्या बताऊँ, जब मैंने 'कविराज' की परीक्षा देने का तय किया था तो न मेरे पास रहने की जगह थी, न किताबों के पैसे...."

और कविराज अपने प्रिय विषय, 'मैं और मेरा संघर्ष' पर बोलने लगे।

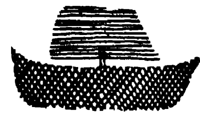
चेतन फिर बैठ गया। उसने वह सारा किस्सा कई बार सुन रखा था और यह भी जान लिया था कि कविराज जितनी बार सुनाते है, उसमें नये पत्ते लगा देते हैं, पर वह चुपचाप ऐसे सुनता रहा, जैसे उनके होंटों से निकलने वाला हर शब्द, वेद-वाक्य की तरह उसके मन पर नक्श हो रहा है।

लेकिन भूख से कुलबुलाती आँतों को भूल, आध घण्टे तक कविराज के उपदेश-भरे संस्मरण सुनने का कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि उन्होने ज़रा भी सहायता का वचन नहीं दिया।....वे उसे इतना 'अज़ीज़' समझते थे, कि नहीं चाहते थे, उसकी राह किसी तरह भी आसान करें।

जब उन्होंने अपनी वक्तृता बन्द की तो वे हठात उठे, उन्होंने मिलाने को हाथ बढाया और बोले, "अच्छा अज़ीज, मिलते रहना और अपनी सरगर्मियों का पता देते रहना।"

चेतन भी उठा, उसने हाथ मिलाया। कविराज अन्दर के कमरे में चले गये और चेतन परिपत्र और रसीद-बुक बग़ल में दबाये, दिल-ही-दिल में मन-मन भर की गालियाँ उन्हें देता हुआ नीचे उतर आया।



पन्द्रह

....वह कविराज से मिल कर आया था तो यद्यपि उन्होंने उसकी आशा पर पानी फेर दिया था, लेकिन बीमा-एजेण्टो की मिसाल दे कर, सब्र-सन्तोष और धीरज से अपने काम पर लगे रहने के सिलसिले में उन्होंने जो उपदेश दिया था, उससे वह बहुत प्रभावित हुआ था। वह सुबह से घूमता हुआ थक गया था, इसलिए खाना खा कर सो गया। चन्दा ने विद्यालय से आ कर और चाय तैयार करके उसे उठाया था। वह सो गया था, लेकिन उसका अर्ध-चेतन शायद नींद में भी निरन्तर उसी समस्या पर विचार करता रहा था। चाय पी कर वह मेज़ पर बैठा तो हठात एक अफ़सांचे[1] की थीम उसके दिमाग में आ गयी। 'भूँचाल' की नौकरी छोड़ने के बाद, जब वह कविराज से मिलने गया था तो उन्होंने उससे अपने नये मासिक 'फ़िक्र-ो-अमल' के लिए छोटी-छोटी, नीति-परक कहानियाँ लिखने के लिए कहा था। अपना अभियान शुरू करने से पहले, जैसे अपने आप को बल देने के लिए, चेतन ने एक छोटा-सा अफ़साचा लिख डाला :

"स्रष्टा ने संसार रचा। लेकिन वह उसे सच्ची खुशी न दे सका। उसके सामने दुनिया को सुखी देखने की समस्या थी। तब उसने घोषणा की कि जो देवी या देवता संसार में जा कर उसे सच्चा सुख प्रदान कर सकता है, वह सामने आये।

प्रेम की देवी आगे आयी। स्रष्टा ने उसे मर्त्य-लोक में

---

१. लघु-कथा

भेज दिया। लेकिन प्रेम ने ईर्ष्या को जन्म दिया और संसार पहले से भी ज्यादा दुखी हो गया।

भगवान ने फिर दरबार लगाया। अबकी धन-वैभव की देवी आगे आयी। लेकिन संसार को सुख देने में वह और भी असफल रही।

तब भगवान ने स्वयं चुनाव किया और इस बार उसने एक सुन्दर, गम्भीर देवकुमार को चुना और उसे दुनिया में भेज दिया। जहाँ-जहाँ उस फरिश्ते-बालक के पाँव पड़े, सुख-शान्ति का साम्राज्य फैलता चला गया।

उस फरिश्ते का नाम सन्तोष था।"

. चेतन उन दिनों जो भी अफसाना लिखता था, उसे महान लगता था। इस लघु-कथा को पढ़ कर भी उसने स्वयं ही अपनी पीठ ठोक ली कि क्या हकीकी नुक्ता उसने अफसाने में रख दिया है और उसने तय किया कि रोज वह एक-न-एक ऐसा मास्टर पीस अफसाना लिखेगा और उसमें ऐसे ही हकीकी नुक्ते पेश करेगा।

लेकिन यद्यपि उसने उस फरिश्ते के इतने गुण गाये थे, वह चेतन की कोई मदद न कर सका था और सोसाइटी रूपी देवी उसका सारा चैन-आराम छीन ले गयी थी।

चेतन सचमुच अपनी हकीकत समझता तो जान लेता कि सब्र-सन्तोष उसमें है नहीं और जो काम उसने अपनाया था, उसके लिए उस फरिश्ते की मदद पहली शर्त है। चूँकि वह मदद उसे प्राप्त नहीं, इसलिए उस काम को उसे हाथ में नहीं लेना चाहिए। लेकिन अपनी अत्यधिक भावप्रवणता को न जानने की वजह से, अपने पिता की इस नसीहत को सामने रखते हुए कि . कोई ऐसा काम नहीं, जिसे आदमी न कर सके, चेतन ने सोसाइटी के मेम्बर बनाने का अभियान शुरू करने का फैसला कर लिया था। उसने अपने सब मित्र-परिचितों की एक सूची कागज पर बना ली और दूसरे दिन दैनिक 'समाज' के दफ्तर पहुँचा।

अखबार के प्रोप्राइटर, श्री प्रभुदयाल 'मस्त' से उसे कोई उम्मीद नही थी, शिमला से आने के बाद अपनी नौकरी के सम्बन्ध मे वह पण्डित जी के साथ जा कर उनसे मुलाकात कर चुका था, लेकिन उनके बडे पुत्र, प्रसिद्ध क्रान्तिकारी कथाकार, श्री शत्रुघ्न लाल 'तीर' से उसे उम्मीद थी और उसने तय किया था कि पहले उनसे मिलेगा, फिर चौधरी ईशरदास से और उसे सफलता मिली तो दो-एक जगह और जायगा।

गनपत रोड पार कर जब चेतन एम० पी० एम० के० हॉल के सामने दैनिक 'समाज' के दफ्तर की सीढियाँ चढा तो ऊपर पहुंच कर क्षण भर के लिए रुक गया। सीढियो के ऐन सामने पार्टीशन के पीछे सम्पादकीय विभाग था और दायी ओर 'तीर' जी का कमरा। वह उनसे कैसे बात करेगा, चेतन ने मन-ही-मन दोहराया, फिर वह पर्दा उठा कर अन्दर चला गया।

'तीर' जी अपने काले भुजग शरीर, दोनो कोनो से कटी घनी, काली मूँछो के साथ मेज पर झुके, कुछ लिख रहे थे। चेतन क्षण भर वही खडा उन्हे देखता रहा और उसके मन मे वही खयाल आया, जो उन्हे (उनके जेल से रिहा होने के बाद) पहली बार देख कर आया था कि वह घुँघराले बालो वाली, सावली-सलोनी, प्रतिभा-सम्पन्न लडकी, कैसे उस काले-कलूटे भैसे पर फिदा हो गयी थी और उसके फिराक मे उसने यक्ष्मा मोल लिया था ?

शायद उसकी दृष्टि के पैनेपन से बिध कर, अथवा वाक्य या पैरा पूरा होने पर 'तीर' जी ने सिर ऊपर उठाया। चेतन ने उन्हे 'नमस्कार' किया। 'तीर' जी ने एक थकी-सी निगाह उस पर डालते और उसके 'नमस्कार' का जवाब देते हुए, कुर्सी की ओर सकेत कर दिया।

बैठने से पहले मेज पर जरा-सा झुक कर चेतन ने उन्हे सस्था का परिचय दिया, जबानी उसके उद्देश्यो का ब्योरा दिया और बोला, "तीर जी मै आपके पास बडी उम्मीद ले कर आया हूं। आप मेरे प्रिय कथाकार रहे है और मेरी बडी इच्छा है कि आप हमारी सोसाइटी के लाइफ मेम्बर बनें।"

'तीर' जी के पिता—श्री प्रभुदयाल 'मस्त' तो अपने कमरे के दूधिया चादर से ढँके तख्त पर बैठे-बैठे ही 'बानप्रस्थी' हो गये थे, लेकिन चेतन के अनुरोध के उत्तर मे 'तीर' जी ने जो कहा, उससे लगा कि वे अपने पिता मे एक कदम बढ कर अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे 'संन्यस्त' हो गये है। बड़ी बेजारी से, जैसे दुनिया की क्षण-भंगुरता का भेद उन पर पूरी तरह उजागर हो गया हो, उन्होंने कहा :

"भाई, मै तो कही जाता-आता नही। किसी सभा-सोसाइटी मे तुमने कभी मुझे देखा है ? जब से पिता जी ने बानप्रस्थ लिया है, मेरा वक्त और भी कम हो गया है। रोज लीडिंग आर्टिकल लिखना, हर हफ्ते अफ़साने की किस्त देना... मुझे किसी से बात करने का भी टाइम नही मिलता। मै तो घूमने तक नही निकलता। थक जाता हू तो ऊपर छत पर जा कर टहल लेता हूं। लिखना तो यूँ भी तप करना है भाई। जैसे संन्यासी दुनिया-जहान को भुला कर भगवान को पाने के लिए तपस्या करता है, लेखक भी अदब[1] के लिए रियाजत[2] करता है। शोहरत या इज्जत की मुझे आरज़ू नही। छोटी-सी ज़िन्दगी मे शोहरत और इज्जत की ख्वाहिश फ़िजूल है। मै तो बस अपने मन की खुशी के लिए लिखता हू, अखबार है तो छप जाता है, पढने वालो का मन बहलता है और उनमे देश-प्रेम का जज्बा बेदार[3] होता है। इससे ज़्यादा मुझे कुछ नही चाहिए। अखबार न होता तो मै लिख-लिख कर मेज के दराज और अलमारी के खाने भर देता। न किसी को सुनाने जाता, न कही छपवाता।"

क्षण भर वे रुके। चेतन की आँखो मे नासमझी के भाव को लक्ष्य कर उन्होंने कहा :

"पिछले दिनों साजिश केस के सिलसिले मे इतना शोर-शराबा देखा और झेला है कि अब तो इस कमरे से निकलने को मन नही होता। यही जी होता है, कुछ ऐसा लिखें, कुछ ऐसा (कैसा, यह 'तीर' जी ने नही बताया, दोनों हाथ हवा मे फैला कर रह गये; चेतन की आँखें, खुरदरे ब्रश-

१. साहित्य २. तप ३. जागृत

सी उनकी मूँछों और मोटे होंटों पर अटकी रहीं और क्षण भर रुक कर उन्होंने जैसे अपनी बात पूरी करते हुए कहा :)....और वह किसी सभा-सोसाइटी में जा कर वक्त जाया करने से नहीं, इसी मेज़ पर बैठ कर तप करने से होगा।"

और उन्होंने बिना पढ़े, ब्रोशर चेतन की ओर बढ़ा दिया।

तब चेतन ने पैंतरा बदला था :

"मैंने तो आपकी कहानियाँ 'समाज' के हफ़्तावार ऐडीशनों में पढ़ कर लिखना सीखा है, 'तीर' जी ! शोहरत की आपको क्या ख्वाहिश होगी, बड़ी शोहरत पायी है आपने। यह तो हमारी इच्छा है कि सोसाइटी का कथा-सम्मेलन हो तो आप उसके सभापति बनें।"

अनजाने ही 'तीर' जी ने फिर ब्रोशर उठा लिया और पढ़ने लगे।

कुछ क्षण उन्हें पढ़ने का अवसर दे कर चेतन ने रद्दा जमाया :

"मैं जानता हूँ सच्चे कलाकार कभी शोहरत के पीछे नहीं भागते, शोहरत खुद उनके कदम चूमती है। आप सोसाइटी के सरपरस्त बनें, इससे आपको कोई फ़ायदा नहीं, हाँ सोसाइटी की ज़रूर इज्ज़त बढ़ेगी और सूबे के सबसे बड़े बाग़ी अफ़साना-निगार को अपने दरमियान पा कर हम सब फ़ख्र[१] से सिर उठायेंगे।"

न जाने चेतन के स्वर में कृत्रिमता थी अथवा अविश्वसनीयता या फिर 'तीर' जी कुछ महीने पहले की उस घटना को नहीं भूले थे, जब चेतन उनके सम्पादक को बहुत तीखी बात सुना कर चला गया था....जो भी हो, उन्होंने जेब से पाँच का एक नोट निकाल कर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "छोड़िए, इन बातों में कुछ नहीं रखा, सोसाइटी-वोसाइटी से मुझे कुछ नहीं लेना। आप आये हैं, मैं मेम्बर बन जाता हूँ। जाऊँगा-वाऊँगा मैं कहीं नहीं। मेरे पास समय बिल्कुल नहीं है।"

और चूंकि चेतन ने नोट को तत्काल नहीं थामा, 'तीर' जी ने उसे मेज़ पर रख दिया था और अपने काम में व्यस्त हो गये थे।

---

१. गर्व

'तीर' जी के स्वर में कुछ ऐसी उपेक्षा थी कि चेतन को लगा, जैसे उन्होंने उसके मुँह पर तमाचा दे मारा हो। उसने तो उनसे आजीवन सरपरस्त बनने की बात नहीं की थी, लेकिन उसे उम्मीद थी कि वे वर्ष भर के लिए तो सरपरस्त बन ही जायेंगे। उसने कल्पना की थी कि वे सौ रुपये देंगे तो वह उन पर आजीवन सरपरस्त बनने के लिए जोर देगा और यहाँ वे साधारण सरपरस्त भी बनने को तैयार नहीं हुए और पाँच रुपये का नोट उन्होंने उस अपमानजनक ढंग से उसके सामने फेंक दिया था, जैसे वे चन्दा नहीं, उसे खैरात दे रहे हों।

चेतन को क्रोध कुछ ऐसा आया कि उसका जी हुआ, पाँच का नोट उठा कर उस क्रान्तिकारी, देशभक्त, कथाकार, आदि ..आदि ..के मुँह पर दे मारे, लेकिन तभी भगवानजी का उपदेश उसके कानों में गूँज गया कि जिसमें अपार धैर्य और सहनशीलता नहीं, उसे किसी सोसाइटी का काम अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए। उसने चुपचाप पाँच का नोट उठा लिया, होंठों में उन्हें 'शुक्रिया' अदा किया और रसीद काटने लगा।

"नहीं, रसीद-वसीद की जरूरत नहीं।" 'तीर' जी ने बदस्तूर लिखने अथवा लिखने का अभिनय करते हुए कहा।

चेतन रुका नहीं। उसने रसीद काटी। उठा और निहायत ठण्डेपन से बोला, "मैं आपसे कोई खैरात नहीं ले रहा। सोसाइटी का चन्दा है, पाई-पाई का हिसाब रखा जाता है। (चेतन क्रोध में यह भूल गया कि कुल-जमा पन्द्रह रुपये उसे तब तक चन्दे में मिले थे जिस रकम से उसने संस्था की स्टेशनरी छपवा ली थी। वह तो ऐसे बात कर रहा था, जैसे सोसाइटी को हजारों रुपये का चन्दा आता है, जिसका बाकायदा हिसाब रखा जाता है।) आपने मेरे कहने की लाज रखी, शुक्रिया। इफ्तताही मीटिंग[1] की खबर दूँगा। आइएगा।"

और रसीद उनके सामने मेज पर रख, तमाचे के जवाब में जैसे तमाचा मार कर वह उठ आया था।

१. उद्घाटन सभा। इफ़्तिताह = उद्घाटन

....हालाँकि मालिक से मिल कर फिर मुलाज़िम से मिलने की कोई तुक न थी, लेकिन 'तीर' जी के कमरे से बाहर निकल कर, जब वह सीढ़ियों और सम्पादन विभाग के बीच की पार्टीशन में आया तो अपने पूर्व-निश्चित प्रोग्राम के अनुसार उसने 'समाज' के कार्यकारी सम्पादक, चौधरी ईशरदास से भी मिलते जाने का फ़ैसला किया। लेकिन पार्टीशन के अन्दर कदम रखने से पहले वह कुछ क्षण वहीं खड़ा रहा। 'तीर' जी के व्यवहार से वह इतना झल्ला गया था कि तत्काल चौधरी साहब के पास जाना उसे ठीक नहीं लगा। पूरी तरह संयत और प्रकृतिस्थ हो कर उसने पार्टीशन के अन्दर कदम रखा।

उप-सम्पादकों में से तब तक कोई नहीं आया था। सिर्फ़ चौधरी ईशर-दास, छत को छूते हुए, अपने लम्बे शरीर और अपनी चिर-उनीदी आँखें लिये हुए, काम में तल्लीन थे।

चेतन ने 'नमस्कार' करते हुए उन्हें ब्रोशर दिया था, पण्डित रत्न के हवाले से सोसाइटी को शुरू करने की बात की थी और उन्हें वे लाभ बताये थे, जो मध्यवर्गीय इण्टेलेक्चुअल्ज़ को उससे होने वाले थे।

चौधरी साहब ने ब्रोशर पढ़ा भी नहीं। उसकी बात भर सुन कर, ब्रोशर उसे लौटाते और अपनी निद्रालस आँखें उसकी ओर उठाते हुए उन्होंने कहा :

"मेरे पास सभा-सोसाइटियों में जाने का वक्त होता तो मैं एक गेम क्रिकेट की न खेलता ! कभी ख़्वाब लिया करते थे कि कब्र भी बनेगी तो क्रिकेट के मैदान में, लेकिन अब लगता है कि 'समाज' के इसी दफ़्तर में बनेगी। (वे कुछ अजीब दर्द से हँसे) बनेगी क्या, बन गयी है।"

चेतन ने फिर एक शब्द भी नहीं कहा। परिपत्र उनके हाथों से वापस ले कर वह पलटा और तेज़-तेज़ सीढ़ियाँ उतर गया।

उसकी सूची पर अगला नाम 'ज़ख्मी' का था और उसे विश्वास था कि 'ज़ख्मी' साहब ज़रूर उसकी मदद करेंगे और वह 'वीर भारत' के

दफ़्तर की ओर चल दिया।

चेतन के सामने 'जख्मी' का पतला, छरहरा शरीर, सुन्दर मुख, मुस्कराती आखे और हंसते समय दाये गाल में बन जाने वाला गढा आ गया। वह सीढियां चढ कर ऊपर पहुँचा तो वे अपनी मेज़ पर झुके काम कर रहे थे। उसने जा कर उन्हे 'आदाब' कहा और ब्रोशर दिया।

'जख्मी' साहब ने ब्रोशर ले कर उसे कुर्सी पेश की और बोले, "सुना, तुमने भूँचाल' छोड़ दिया। कपूर साहब ने उसे तुम्हारे ही लिए शुरू किया था।"

और 'जख्मी' साहब हँसे। उनके गाल पर गढा बन गया। चेतन चुपचाप उन्हे देखता रहा। उसने कोई जवाब नही दिया।

"महाशय जी का काफी नुकसान हो गया। वो बहुत अफ़सोस कर रहे थे।"

"मै तो 'जख्मी' साहब आपके ज़ेरे-साया खुश था," चेतन ने कहा, "आपने मुझे उधर ठेल दिया। मेरी उनसे नही पट सकती। जो आदमी मेरी दयानत मे शक करे, उसके साथ मै एक मिनट काम नही कर सकता। उन्होने मेरी तनख्वाह के पैसे मार लिये...." चेतन कोई तीखी बात कहने जा रहा था कि अपने आप को बरबस रोक कर उसने कहा, "छोड़िए इस किस्से को, पण्डित रत्न की सलाह के मुताबिक यह सोसाइटी खोली है। आप इसके अगराज-ो-मकासिद[1] ध्यान से देखिए। कर सकें तो इस सिलसिले मे मेरी कुछ मदद कीजिए।"

'जख्मी' चुपचाप ब्रोशर पढने लगे। आद्योपान्त उसे पढ कर उन्होंने लम्बी सास ली और ब्रोशर उसकी ओर बढ़ाते हुए, 'गालिब' का एक शे'र दोहरा दिया :

"अर्ज-ए-नियाज़-ए-इश्क के क़ाबिल नहीं रहा
जिस दिल पे नाज़ था मुझे, वो दिल नही रहा।"

१. उद्देश्य और ध्येय

और वे अजीब दर्द से हँसे। उनके दायें गाल में हल्का-सा डिम्पल[1] बन गया और उनकी हँसी चेतन को शिशिर के सूरज की-सी फीकी और बुझी-बुझी लगी।

चेतन चुपचाप उठा। "अच्छा तो फिर हाजिर हूँगा।" उसने कहा, 'आदाब' किया और मुड़ा। वह सीढ़ियों के पास पहुँच गया था, जब उन्होंने उसे फिर आवाज़ दी।

वह पलट कर उनकी मेज पर गया तो ब्रोशर उन्होंने उससे ले लिया था और वायदा किया कि सोसाइटी के बारे में वे स्वयं 'वीर भारत' में एक नोट लिख देंगे।

'वीर भारत' के दफ़्तर से नीचे उतर कर पहले उसने सोचा था कि बराबर ही मे 'देश' के दफ़्तर जा कर पण्डित 'शाही' से भी मिल आये, लेकिन एक बजने को आ गया था। उसने तय किया था कि 'शाही' पण्डित से वह उनके घर पर मिलेगा।....'गुरु घण्टाल' के दफ़्तर के नीचे से गुजरते हुए, उसे पण्डित जीवनलाल कपूर से मिलने का भी खयाल आया था, लेकिन वह साहस नही कर सका। हाँ, जाते-जाते, रास्ते मे वह 'आज़ाद लाला' के दफ़्तर गया था।

वे सूट-बूट और टाई में सुशोभित, पगड़ी बाँधे, आँखों पर आधे शीशों वाला चश्मा लगाये, बिना क्लास अथवा स्टाफ़ के हेडमास्टर की तरह बैठे थे। चेतन ने ब्रोशर उनके सामने रखते और मिनमिनाते हुए पण्डित रत्न के हवाले से अपनी बात कही थी।

चश्मा नाक के बाँसे पर ज़रा आगे सरका कर, 'आज़ाद लाला' चुपचाप ब्रोशर पढ़ते रहे थे, फिर उन्होंने उसे पेपरवेट के नीचे रख दिया था और कहा कि वे उस सिलसिले में पण्डित रत्न से बात करेंगे।

अब चेतन क्या कहे, उसे कुछ भी न सूझ पाया था। वह 'नमस्कार'

१. हँसने पर गाल में बन जाने वाला छोटा-सा गढ़ा

कर, चुपचाप सीढ़ियाँ उतर आया था।

घर पहुँचते-न-पहुँचते चेतन का मन बेहद उदास हो आया था। कभी 'तीर' जी के और कभी चौधरी साहब के वाक्य उसके कानों में गूँजते रहे थे और कभी 'ज़ख्मी' की बेबसी और 'आज़ाद लाला' की बेरुखी उसकी आँखों में घूमती रही थी।—'इन लोगों को किसी ऐसी सोसाइटी की ज़रूरत नहीं,' उसने मन-ही-मन कहा। वह बेकार ही अपने जूते घिसा रहा है और अपना कीमती समय बर्बाद कर रहा है। उसे चुपचाप अपनी कहानियाँ लिखनी चाहिएँ।

और वह दो दिन घर से बाहर नहीं निकला और अपने मास्टरपीस अफ़साने लिखता रहा। उसने दो और वैसे ही छोटे-छोटे अफ़साने लिखे—'जन्नत और जहन्नुम,' 'बुलन्दी और पस्ती।' तीसरे दिन सुबह वह कविराज जी के औषधालय गया। उसने उन्हें वे लघु-कथाएँ सुनायी तो उन्हें बेहद पसन्द आयी और जेब से तीन रुपये फ़ौरन निकाल कर उन्होंने उसे 'नक्द नज़र'[1] किये।

चेतन की सारी उदासी जाती रही। वह चलने लगा तो वैद्य जी ने सोसाइटी की प्रगति के बारे में पूछा। चेतन यह कहना चाहता था कि वह सब चक्कर उसके बस का नहीं, लेकिन वह कविराज से पाँच रुपये चन्दे के ले गया था, इतनी जल्दी उनके संशय को यक़ीन में बदलना और अपनी हार मानना उसे स्वीकार नहीं हुआ। उसने अतिरिक्त जोश में कहा : "समाज के सम्पादक श्री शत्रुघ्नलाल 'तीर' हमारे मेम्बर बन गये हैं, आज मैं मशहूर अफ़साना-निगार, श्री देवदर्शन के यहाँ जा रहा हूँ। सोसाइटी का काम ज़ोर-शोर से चल रहा है।"

कविराज जी ने उसकी सफलता के लिए दुआ दी और वह उनका शुक्रिया अदा करके और वैसे ही कुछ और अफ़साने उनके लिए लिखने का वायदा करके चला आया।

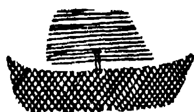
---

१. नक्द भेंट

उन छोटे-छोटे अफ़सानों के लिए, जो उसने सर्र से लिख डाले थे, एक-एक रुपया मिल जाने के कारण बढ़े हुए उत्साह से हो, (या कविराज जी के सामने कही हुई बात के कारण) जब वह मेयो हस्पताल के चौरस्ते पर पहुँचा तो रेलवे रोड पर अपने घर की तरफ़ कृष्णा गली मे मुड़ने की बजाय, वह कुछ और कदम आगे बढ़ कर, अस्तंगत 'भीष्म' के पुराने कार्यालय के सामने दो-मंज़िले पर, मासिक 'मन्दिर' के दफ़्तर की सीढ़ियाँ चढ़ गया, जिन के बाहर 'अदीबे फ़ितरत निगार'[1] महाशय देवदर्शन की नेम-प्लेट भी लगी थी।

१. प्रकृति का सच्चा खाका खींचने वाला साहित्यकार



सोलह

सीढ़ियां, महाशय जी की स्टडी ही में खुलती थी। पर्दा उठा कर चेतन ने अन्दर पाँव रखा तो महाशय देवदर्शन रेलवे रोड पर खुलने वाली खिड़कियों की तरफ पीठ किये, अपनी मेज पर बैठे कुछ लिख रहे थे। घुटी हुई आर्य-समाजी पगड़ी, बन्द गले का कोट और आँखों पर सुनहरे फ्रेम का चश्मा। चेतन जरा-सा पर्दा उठाये, एक पैर सीढ़ियों पर और दूसरा कमरे में रखे, चुपचाप प्रतीक्षा करने लगा कि वे जरा नजर उठायें तो वह 'नमस्कार' करके आगे बढ़े।

चेतन शुरू-शुरू में महाशय देवदर्शन के यहां प्रायः आता था। उन्होंने उसकी दो-तीन कहानियां भी 'मन्दिर' में छापी थीं, लेकिन उसकी एक कहानी में उन्होंने बिना उससे पूछे कुछ परिवर्तन कर दिया था और उसे बुरा लग गया था। फिर चेतन ने एक दिन उन्हें एक दूसरे कवि-कथाकार अब्दुल कुद्दूस 'वकार' अम्बालवी से एक अंग्रेजी कहानी की थीम के लिए झगड़ते देखा था। देवदर्शन कहते थे कि वे उस पर कहानी लिखेंगे, 'वकार' कहते थे कि वे लिखेंगे। और महाशय जी के प्रति चेतन के हृदय में जितनी श्रद्धा थी, वह उच्छिन्न हो गयी थी। किसी दूसरे की थीम पर कोई कैसे कहानी लिख सकता है और ऊपर से खुश भी हो सकता है, यह चेतन की समझ से बाहर की बात थी। बाद में उसे यह भी मालूम हुआ था कि वे तो बंगाली और हिन्दी कहानियों से विचार और प्लॉट चुरा कर उन्हें पंजाबी वातावरण में रख देते हैं और चेतन ने उनके यहाँ जाना लगभग छोड़ दिया था। कभी वह उधर से गुजरता तो यूँ ही ऊपर चला

जाता और इधर-उधर की बातें कर के चला आता, पर कहानी उसने फिर 'मन्दिर' में नहीं दी थी। कुछ दिन पहले उसने सुना था कि वे कलकत्ते चले गये हैं और फ़िल्मों के लिए कहानियाँ लिखेंगे और 'मन्दिर' को बेच देंगे। चेतन के मन में यह जानने की उत्सुकता भी थी कि फ़िल्मी दुनिया में वे क्या कर आये हैं और यह भी कि 'मन्दिर' वे किसे देने जा रहे हैं।

तभी महाशय देवदर्शन ने कलम मेज़ पर रख दिया और कुर्सी पर ज़रा-सा पीछे को हो गये। चेतन ने 'नमस्कार' करते हुए दूसरा पैर भी अन्दर रखा।

"आओ आओ! खूब मौके से आये!" महाशय जी ने कहा और उनका चेहरा खिल आया।

"मैं तो कई दिन से आने की सोच रहा था," चेतन बोला, "लेकिन आप कलकत्ता गये हुए थे। पण्डित रत्न ने बताया था कि आपको 'न्यू थियेटर्ज़' से बुलावा आया है; 'वकार' साहब कह रहे थे कि बुलाया तो किसी दूसरी कम्पनी ने है, लेकिन मिलेंगे आप 'न्यू थियेटर्ज़' के सरकार साहब से भी परसों ही मालूम हुआ कि आप आ गये हैं, सो मैंने सोचा, दर्शन करता चलूँ।"

"हाँ, मैं गया तो 'नेपच्यून सिनेटोन' के बुलावे पर था, पर जगदीश सेठी मुझे सरकार साहब से मिलाने ले गया। दो-एक कहानियाँ उन्होंने सुनी और जब मैं चलने लगा तो सरकार साहब ने कहा—'आप ऐसी मीठी प्यारी भाषा लिखते हैं कि आपके रास्ते में अशरफ़ियाँ भी बिछा दी जायँ तो कम है।'"

भाषा महाशय देवदर्शन सचमुच बड़ी प्यारी लिखते थे, लेकिन सरकार साहब के हवाले से उन्होंने जो बात कही, चेतन को लगा कि उन्होंने गप हाँक दी है, जगदीश सेठी यह बात कह सकते थे, पर सरकार साहब नहीं। वे बंगाली थे और बंगाली अपनी भाषा की मिठास के सामने किसी दूसरी भाषा की उतनी तारीफ़ नहीं कर सकता। फिर वह वाक्य तो प्रकट

ही महाशय देवदर्शन का था, किसी बंगाली का नही ।

महाशय जी निमिप भर के लिए सरकार साहब के उस कथन का प्रभाव चेतन पर जानने के लिए रुके । जब वह चुप रहा तो उन्होने कहा

"सरकार साहब ने मझे 'न्यू थियेटर्ज' के लिए एक कहानी लिखने को कहा ह । तुम्हारे ग्राने स मिनट भर पहले उसकी ग्राखिरी सतर मैन खत्म की है । लो, जरा सुनो ग्रौर राय दो ।'

ग्रौर बिना यह पूछे कि वह किसी काम से तो नही ग्राया महाशय देवदर्शन कहानी सुनाने लगे ।

कुछ ही पक्तियो के बाद चेतन ने जान लिया कि उसने वह कहानी 'चन्द्र पचीसो' मे पढ रखी ह । मन्शी चन्द्रशेखर ने उस देहाती वातावरण मे रखा था । महाशय देवदर्शन ने उसी प्लॉट को शहरी वातावरण म रख कर, फिल्मी जरूरतो के कारण उसम एक भावुकतापूर्ण प्रेम-प्रसग जड दिया था । चेतन चुपचाप कहानी सुनता रहा ग्रौर बोर होता रहा । जब वे सुना चके तो उसने रस्मी तारीफ कर दी ।

"बहुत ग्रच्छी कहानी लिखी ह ग्रापने," उसने कहा, 'सीमी पर्दे[1] पर यह बडी कामयाब होगी ।'

महाशय जी प्रसन्न हो गये । 'कहानी ग्रगर सरकार साहब को जच गयी तो मझे ही उसके डायलॉग लिखने पडेगे ग्रौर कलकत्ता जाना पडेगा ।' उन्होने परम गदगद भाव से कहा ।

" 'मन्दिर' तो ग्रापकी गैर-हाजिरी मे कौन देखेगा ?" सहसा चेतन ने मन की बात पूछी ।

" 'मन्दिर' ग्रगर मनाफा देता तो मै क्यो जाता फिल्मो मे !" महाशय देवदर्शन ने कहा, "दो साल हो गये घाटा खाते, ग्रब मुमकिन नही । 'नकार' कह रहे है । उन्ही को दे दूंगा ।"

१. रजत पट पर

'वह 'मन्दिर' का नाम 'मस्जिद' रखेगा, तभी चला पायेगा,' चेतन ने मन-ही-मन कहा, 'आपने दो माल खीच लिये, वह दो महीने भी नही खीच पायेगा।' लेकिन चेतन ने यह बात उनसे नही कही।

"पर्चा आपने निहायत खूबसूरत निकाला था," उसने प्रकारान्तर से उनकी तारीफ करते हुए कहा, "यह उर्दू वालों की बदकिस्मती है कि फायदे पर नही चल पाया।" वह क्षण भर रुका। सहसा उसे अपने मन्तव्य का ख्याल आ गया और उसने जोड दिया, "लेकिन दो बरस मे 'मन्दिर' के जो अंक आपने निकाल दिये हे, वे उर्दू अदब की तारीख मे हमेशा जिन्दा रहेगे।"

महाशय जी का चेहरा खिल गया। "कहो, तुम आजकल क्या कर रहे हो?" वे चहके, "मैने सुना था कि 'भूँचाल' भी तुमने छोड दिया।"

तब चेतन ने उठ कर उनको सोसाइटी का आशय दिया और तनिक विस्तार से अपनी बात कही और उनसे अनुरोध किया कि वे उसके सर-परस्त बन जायँ।

महाशय देवदर्शन हँसे। "तुम बडे भोले हो," उन्होने कहा, "कभी शायर और अदीब भी सोसाइटियों के मेम्बर बना करते है। वे पैसे देते नही, लेते हे। मै तो जैसे बिना मुआविजे[1] के कहानी नही देता, वैसे ही बिना कुछ लिये किसी अदबी मीटिंग मे नही जाता।"

"लेकिन 'एम० एफ० आई० ए० एम०' तो अदीबों और शायरों की अपनी अंजुमन[2] है।" चेतन ने कहा, "इसके मच पर वो एक-दूसरे को सुने-सुनायेगे। अब यही कहानी, जो आपने मुझे सुनायी है, मै प्रोपोज[3] करता हूँ कि सोसाइटी की पहली मीटिंग मे आप सुनायें।"

"मीटिंगो मे कहानियाँ कोई नही सुनता," देवदर्शन हँसे, "और मै तो यह भी दावे के साथ कह सकता हूँ कि शायर के गले मे रस न हो तो अच्छी-से-अच्छी गजल या नज्म भी कोई नही सुनता। अच्छी कहानी या

१. पारिश्रमिक २. सभा ३. प्रस्ताव करता हूँ

अच्छी नज़्म भीड में नहीं, दो-चार सुखन-शनास[1] लोगों में सुनाने की चीज होती है, इसलिए भीड को सुनाने का मआविजा लिया जाता है।"

अब चेतन क्या कहे, उसे कुछ भी सूझ न पाया।

महाशय जी क्षण भर चुप रहे। फिर उन्होंने कहा, "मेरा कोई ठिकाना भी नहीं। मैंने किसी से कहा नहीं, लेकिन मैंने 'नेपच्यून' वालों से एक साल के लिए कॉन्ट्रैक्ट कर लिया है। मैं तो यहाँ 'मन्दिर' का कुछ इन्तजाम करने और यहाँ के फैलाव को समेटने आया हूँ। सरकार साहब को मेरी कहानी पसन्द आ गयी तो मैं शायद कलकत्ता ही शिफ़्ट कर जाऊँ और 'नेपच्यून' के बाद 'न्यू थियेटर्ज' में चला जाऊँ।"

और वे उठे।

"माफ करना, मुझे सरदार हिरा सिंह के बड़े साहबजादे से मिलने जाना है," उन्होंने कहा, "तुम तो जानते हो, वो मेरे भक्त ही नहीं, मेहरबान भी हैं। 'मन्दिर' को शुरू करने में उन्होंने मेरी बड़ी माली मदद की थी। दो सँदेसे उनके आ चुके हैं। मैं कहानी लिख रहा था, जा नहीं सका।"

चेतन भी उठा। वह उन्हें 'नमस्कार' कर, तेजी से चला जाना चाहता था, पर महाशय जी हाथ बढ़ाये हुए थे। उसने भी हाथ बढ़ा दिया और अपने क्रोध पर बरबस काबू पा कर हसते हुए बोला, 'भगवान करे, आप फिल्मों में कामयाब हों, उनके लिए बढ़िया कहानियाँ दें और पंजाब का नाम रोशन करें।"

महाशय देवदर्शन क्षण भर उसे देखते रहे फिर उसके हाथ को गर्म-जोशी से हिलाते हुए और उसे धन्यवाद देते हुए सहसा उन्होंने कहा, "देखो भाई, उसूलन तो मैं किसी आर्टिस्ट और शायर का किसी ऐसी अंजुमन का पेड-मेम्बर बनना गलत मानता हूँ। फिर मैं एक भी मीटिंग अटेण्ड कर पाऊँगा, इसमें मुझे शक है, लेकिन तुम खुद आये हो, मेरे साथी अफसाना-निगार

---

१. मर्मज्ञ

हो, तुमने खुद सोसाइटी शुरू की है, तुम्हारा दिल तोड़ना मुझे ग़लत लगता है।"

और उन्होंने उसका हाथ छोड़ कर मेज़ की दराज़ में रखे बटुए से पाँच का एक नोट निकाल कर, चेतन की ओर बढा दिया।

"मुझे स्लीपिंग मेम्बर ही समझना।' उन्होंने अजीब-से पटाऊ अन्दाज़ में कहा, "और किसी मीटिंग मे शामिल होने के लिए परेशान न करना।"

चेतन को सहसा अपनी आँखों और कानों पर विश्वास न आया। उसने नोट ले लिया और फिर बैठ कर रसीद काटते हुए बोला :

"मै आपका बहुत शुक्रगुज़ार हूँ, लेकिन यह शर्त लगा कर आपने मेरी खुशी आधी कर दी है। (और उसने वही पुराना पत्ता लगाया :) मैं तो सोचता था, मैं आपसे सोसाइटी की शामे-अफसाना की सदारत[1] करने को कहूँगा। आप सूबे के सबसे बड़े अफ़साना-निगार है, आप ही नहीं आयेंगे तो...."

"न आने की मैंने कसम तो नही खायी है," महाशय जी हसे, "लेकिन पचहत्तर फ़ीसदी मै यहाँ से जल्दी ही चला जाऊँगा।" फिर पल भर रुक कर उन्होंने कहा, "तुम अगर एक काम मेरी खातिर कर दो तो बहुत अच्छा हो।"

चेतन चौंका। "हुक्म कीजिए!" उसने कहा।

"तुमने मेरी सभी कहानियाँ पढ रखी है।" वे स्वर को और भी अनौपचारिक और दोस्ताना बनाते हुए बोले, "मेरा नाटक, 'बन्दर की बला' भी पढ़ रखा है। अगर तुम लाहौर के किसी रोज़नामे, हफ़्तावार या माहनामे में उनके बारे मे एक आर्टिकल लिख दो—उनकी ज़बान की सादगी और मिठास और उनके डायलॉग्ज़ की चुस्ती और बरजस्तगी[2] के बारे में, तो मैं बहुत मशकूर हूँगा। किसी अंग्रेज़ी अखबार में लिख दो तो क्या बात है। यूँ तो मेरे दोस्तों ने सरकार साहब पर मेरे अफ़सानों की सादगी

---

१. सभापतित्व २. सम्वादों की चुस्ती और अनायासता

और ज़बान की मिठास का बड़ा रंग जमा रखा है, लेकिन छपी हुई बात का असर ही दूसरा होता है ।"

'तो यह बात है,' चेतन ने मन-ही-मन हँसते हुए कहा, 'जिसकी वजह से कारूँ की कब्र पर लात मारते हुए, महाशय जी ने पाँच रुपये का नोट ढीला कर दिया है और यह भूल गये हैं कि भाषा की उसी मिठास के लिए, उनके पैर के नीचे सरकार साहब अशर्फियाँ बिछाने की बात कह रहे थे और यह बात वे खुद कुछ ही मिनट पहले बता चुके हैं ।'

तब पाँच का नोट उन्हें वापस करते हुए चेतन ने कहा, "आप फ़िक्र न कीजिए, उसके लिए आपको मुझे रिश्वत देने की जरूरत नहीं । मैं तो आपका पुराना मद्दाह[1] हूं, मैं बहुत अच्छा मज़मून लिख दूँगा । आपने मुझे 'बन्दे मातरम' में जगह दिलायी थी; 'मन्दिर' के जरिए आपने अदबी हल्कों में इण्ट्रोड्यूस किया है, मैं आपके लिए क्या एक मज़मून भी नहीं लिख सकता ।"

रँगे हाथों पकड़े जाने वाले चोर की तरह, महाशय देवदर्शन का चेहरा लाल हो आया ।... "नहीं-नहीं, रुपये तुम रखो," उन्होंने कहा, "मैंने तो अपने उसूल की बात कही थी, लेकिन दोस्तों में उसूल कहाँ चलते हैं ।" वे खोखली-सी हँसी हँसे और बोले : "मैं चला न गया और यहाँ रहा तो मीटिंग में भी आने की कोशिश करूँगा ।"

चेतन ने नोट जेब में रख लिया और रसीद काट कर उन्हें देते हुए उठा, "आप निश्चिन्त रहिए, मैं मज़मून जरूर लिख दूँगा । दरअसल हमारी फ़िल्मों को अच्छी कहानियों की अशद[1] ज़रूरत है, जो उनका मैयार[2] बुलन्द कर सके । फ़िल्मी दुनिया में आपके जाने से यह कमी पूरी हो जायगी ।" (मन में उसने सोचा—आपके सामने दूसरा चारा भी नहीं । पंजाबी पाठक हिन्दी कहानियाँ और हिन्दी के माध्यम से बंगला कहानियाँ पढ़ने लगे हैं । आपकी चोरी का राज़ उन पर खुलने लगा है । फ़िल्मी दुनिया में मौलिक

---

१. प्रशंसक   १. बेहद   २. स्तर

प्रतिभा की ज़रूरत नहीं, सफ़ाई से चोरी कर सकने की प्रतिभा ही दरकार है। निश्चय ही आप वहाँ खूब कामयाब होंगे।)

और उसने उन्हें 'नमस्कार' किया। इस बार महाशय देवदर्शन उसके कन्धे पर हाथ रखे-रखे, सीढ़ियों तक आये। उसकी पीठ को थपथपा कर उन्होंने उसकी कामयाबी के लिए दुआ दी। चेतन सीढ़ियाँ उतरा तो उसे पीठ-पीछे महाशय जी की आवाज सुनायी दी :

"अगर मजमून लिखो तो कटिंग भेजना न भूलना।"

चेतन ने रुक कर और मुड़ कर कहा, "निशाखातिर रहिए! लिखूंगा तो ज़रूर भेजूंगा।"

नीचे रेलवे रोड पर पहुंच कर चेतन कुछ क्षण वहीं खड़ा रहा। उसके मन में क्रोध भी था और उसे हँसी भी आ रही थी। वह उत्साहित भी था और उदास भी। उसे पूरा यकीन था कि महाशय देवदर्शन कलकत्ता ज़रूर जायेंगे और जिस गुण से उन्होंने लाहौर के मशहूर उद्योगपति, सरदार डिंगा सिंह के सुपुत्र को पटा लिया था, उसी से वे सरकार साहब को भी पटा लेंगे। चेतन को उम्मीद नहीं थी कि अब वे वापस आयेंगे। वापस आने की ज़रा भी सम्भावना होती तो वे 'मन्दिर' को बेचने और यहाँ से बिसात उठाने की न सोचते। वे अब अपनी 'फ़ितरत निगारी' कायम रख पायेंगे और कहानियाँ लिखेंगे, चेतन को इसमें सन्देह था। 'तो क्या साहित्य उनके लिए सिर्फ़ फ़िल्मी कैरियर तक पहुँचने की सीढ़ी भर था?' चेतन ने सोचा, 'साध्य नहीं, केवल साधन था?'....और उसने तय किया कि ज़िन्दगी में वह कुछ भी करे, साहित्य का दामन नहीं छोड़ेगा। वह सब-जज बनेगा; सेशन जज बनेगा; हो सकता है, कभी हाईकोर्ट का जज भी बन जाय, लेकिन जैसे भी हो, रोज़ दो-एक घण्टे लिखता भी रहेगा। उसने 'बंगाल केमिकल,' कलकत्ता के मैनेजर की बात सुनी थी, जो साल में चार कहानियाँ लिखते थे और बंगला के प्रसिद्ध हास्यकार बन गये थे। तब जज होते हुए, वह क्यों महान कथाकार नहीं बन सकता? 'अ मैन कैन डू, व्हाट

अ मैन हैज़ इन !' अपने पिता के शब्द उसके कानों में गूँज गये। महाशय देवदर्शन इसीलिए साहित्य का दामन छोड़ रहे हैं कि वे चुरा कर लिखते थे। चेतन ने तय किया, वह कभी दूसरे के खज़ाने पर डाका नहीं डालेगा। भला-बुरा, अपना ही लिखेगा।

और वह चल पड़ा।

लेकिन दो ही कदम चल कर वह फिर रुक गया। हालाँकि महाशय देवदर्शन के यहाँ उसे काफ़ी समय लग गया था, लेकिन दायीं ओर की दुकान पर उसकी नजर गयी तो उसने देखा कि अभी साढ़े ग्यारह ही बजे थे। पण्डित टेकराम 'शाही,' 'भीष्म' कार्यालय से दो-तीन फ़र्लांग आगे, 'अमृतधारा बिल्डिंग' के सामने, गली में रहते थे। वे एक बजे दफ़्तर जाते थे। 'अभी वे घर ही पर होंगे,' चेतन ने सोचा, 'क्यों न मैं उनसे भी भी मिलता चलूँ।'....दफ्तर में उप-सम्पादकों की मौजूदगी में उनसे बात करना कठिन था। उनके घर ही पर उनसे बात करना उसे बेहतर लगता था। वह मुड़ा और 'अमृतधारा बिल्डिंग' की ओर चल पड़ा।

पण्डित टेकराम 'शाही' शायद अपनी छोटी-सी मेज़ पर बैठे हुए कुछ लिख रहे थे, जब चेतन ने उनका दरवाज़ा खटखटाया। वे किवाड़ खोलने आये तो होल्डर उनके हाथों में था। महज़ आँख के इशारे से उसे अन्दर आने के लिए कह कर वे अपनी मेज़ पर जा बैठे और लिखने में तल्लीन हो गये।

चेतन जब पहली बार पण्डित रत्न के साथ उनसे मिलने आया था तो वे अपना व्यंग्य-कॉलम, 'परवाज़े शाही'[1] लिख रहे थे। 'शायद पण्डित 'शाही' अपना वही कॉलम लिख रहे हैं', उसने सोचा, 'मुझे किसी दूसरे वक्त आना चाहिए था।' लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। बैठने के लिए पलँग के सिवा, उस छोटे-से कमरे में, कोई जगह नहीं थी। वह चुपचाप उनकी मेज़ के पास जा कर खड़ा हो गया। वे बदस्तूर लिखते रहे।

---

१. बाज़ की उड़ान

चेतन को पहली बार एहसास हुआ कि वे कद के बेहद ठिगने हैं। मेज़ उनके सीने तक आती थी और वे कुर्सी मे एकदम धँसे हुए लगते थे। पाँच-सात मिनट बाद (चेतन को लगा कि एक मुद्दत बाद, जिस बीच कि उसने 'नमस्कार' कर, लौट जाने की बात भी सोची) उन्होंने सिर उठाया, लेकिन उसे बैठने के लिए उन्होने फिर भी नहीं कहा।

चेतन ने उन्हे ब्रोशर दिया और जबानी अपनी बात कही। वे कुछ क्षण सरसरी नज़र से ब्रोशर पढ़ते रहे, फिर उनकी मक्खी-ऐसी मूँछों के नीचे, पतले-पतले होंटों पर एक व्यंग्य-भरी मुस्कान फैल गयी—ऐसे कि उनके बड़े-बड़े कान और भी बड़े दिखायी देने लगे।

"ये सभा-सोसाइटियाँ और मुशायरे वग़ैरह बेकार लोगों के मशग़ले है," उन्होंने तीखे स्वर मे कहा, "यहाँ दिन-रात दोनों शिफ़्टों में तेरह-चौदह घण्टे काम करते है। हमारे पास इस सब चकल्लस के लिए कहाँ वक्त है!"

वे क्षण भर रुके और फिर ब्रोशर पढ़ने लगे। उनकी मुस्कान जरा मुखर हो गयी और उसमे थोड़ा और जहर भर गया।

"यह पाँच रुपये महीना आपने मेम्बर-शिप का चन्दा रखा है, स्टेट्स-मैन का नामानिगार[1] तो पाँच रुपया महीना चन्दा दे सकता है, किसी उर्दू रोज़नामे[2] में काम करने वाला कोई जर्नलिस्ट नही दे सकता!"

"मैंने नाहक आपका वक्त जाया किया, माफ़ कीजिएगा," उदास भाव से क्षमा माँगते हुए चेतन मुड़ने लगा कि उन्होंने उसे रोक लिया और बैठने की और कोई जगह न होने के कारण, पलँग पर बैठने के लिए कहा।

"नही मै ठीक हूँ," उसने कहा, "आप फ़िक्र न कीजिए।" और वह पूर्ववत खड़ा रहा।

'शाही' पण्डित नर्म हो गये। उन्होंने स्नेह-भरे स्वर में कहा : "तुम अदीब हो, अफ़साना-निगार और शायर हो, तुम यह किस चक्कर में पड़

१. पत्र-प्रतिनिधि २. दैनिक पत्र

गये ?" उन्होंने ज़रा-सा सिर उठा कर उसकी ओर देखा, "यह तो उन लोगों का काम है, जिनके पेट और जेबें भरी हों, या फिर जिनके पास करने को कुछ न हो ।"

वे पल भर रुके । चेतन चुपचाप उनकी बात सुनता रहा । अपनी बात को जारी रखते हुए, वे बोले :

"तुम कहानियाँ लिखा करते थे, मुझे भेजते थे । तुम्हारे अन्दर अदब के जौहर को देख कर मैं छापता था । तुमने एक बार लिखा था कि तुम मशहूर अफ़साना-निगार बनना चाहते हो । सोसाइटी के इस चक्कर में, जानते हो, तुम्हारा कितना वक्त बर्बाद होगा ?"

वे चुप हो गये । चेतन भी चुप रहा । फिर उसने कहा :

"पण्डित रत्न की सलाह से मैंने सोसाइटी शुरू की है । अब इसे किसी सिरे पर चढ़ा कर ही पीछे हट सकता हूँ । आपकी बात मैं उन तक पहुँचा दूँगा । वे कहेंगे तो कल छोड़ दूँगा ।"

"वे कहें या न कहें," 'शाही' पण्डित ने कद्रे तल्खी से कहा, "तुम्हें अपना भला-बुरा खुद देखना चाहिए । पण्डित रत्न तमाशाई आदमी हैं । उनका क्या जाता है, तुम्हारी तो ज़िन्दगी बर्बाद हो जायगी ।"

चेतन क्या जवाब दे, उसकी समझ में कुछ भी न आया । कुछ क्षण वह असमंजस में चुपचाप खड़ा रहा । फिर उसने कहा, "आपकी हमदर्दी के लिए मैं बेहद मशकूर हूँ । मैं आपकी बात पर गौर करूँगा । आप मसरूफ़ थे, आपका कीमती वक्त ज़ाया किया, माफ़ कीजिएगा ।"

और उन्हें 'आदाब अर्ज़' कह कर वह चला आया ।



सत्रह

महाशय देवदर्शन और पण्डित 'शाही' से मिल कर चेतन फिर तीन दिन अपने घर में बैठा, अपने 'मास्टर पीस' अफ़साने लिखने की कोशिश करता रहा। लेकिन किसी अफ़साने का ख़याल चूंकि उसके दिमाग़ में पका नहीं था, इसलिए बार-बार कोशिश करने के बावजूद, उससे एक भी अफ़साना मुकम्मल नहीं हुआ....

कहानी लिखने की कोशिश में नाकाम हो कर, वह उसे लिखना छोड़, हार्मोनियम पर जा बैठता और अपनी कनसुरी आवाज मे कोई शास्त्रीय गीत या भजन गाने लगता। कुछ देर बाद फिर कहानी पर आ जुटता। लिखता, काटता, फिर लिखता और खीझ कर फिर बाजे पर जा बैठता.... इस प्रक्रिया मे, यद्यपि उस दौरान वह कोई कहानी तो दूर, उसका एक ऐसा पृष्ठ भी नही लिख सका, जिसमे वह पूर्णतः सन्तुष्ट हो, लेकिन यह ज़रूर हुआ कि उसके दिल-दिमाग़ पर जो बोझ था, वह कम हो गया....

सोसाइटी की मेम्बरशिप के सिलसिले मे अपने अभियान से वापस आ कर उसका दिमाग़ खासा परेशान रहा था—एक तरफ़ पण्डित 'शाही' की बातें उसके दिमाग़ में आती और उसे लगता कि वह बेकार अपना कीमती समय बर्बाद कर रहा है और उसे सोसाइटी के झंझट से मुक्ति पा लेनी चाहिए, दूसरी तरफ कविराज के उपदेश उसके कानों में गूंजने लगते और उसे महसूस होता कि उसे यूं हथियार नहीं डालने चाहिएं। उसने एक काम का बीड़ा उठाया है तो भरसक उसे पूरा करना चाहिए। ज़रा-सी रुकावट अथवा आलोचना से हतोत्साह हो कर अगर वह यूं उसे छोड़ देगा

तो वह किसी काम को सिरे न चढ़ा पायेगा।

आखिर उसने कविराज की ही बात मानी और चौथे दिन काग़ज़-कलम-दवात और हार्मोनियम को उनके हाल पर छोड़ कर, उसने सोसाइटी की रसीद-बुक और परिपत्र उठाये और घर से निकल पड़ा....

इस बार चेतन ने अपने हमले का रुख हिन्दू अखबारों के पत्रकारों की बजाय, मुस्लिम अखबारों की ओर मोड़ा—दैनिक 'सियासत,' 'ज़मींदार,' 'इन्कलाब' के सम्पादकों और पत्रकारों से वह मिला, मासिक 'आलमगीर' और 'नैरंगे-खयाल' के दफ़्तरों में वह गया और सरक्युलर रोड से ले कर अकबरी मण्डी और दिल्ली दरवाज़े तथा बीडन रोड से ले कर फ़्लेमिंग रोड तक—मुसलमान बस्तियों, गली-बाज़ारों, मुहल्लों और अहातों की खाक उसने छान डाली। लेकिन इस सब कूचा-गर्दी के बावजूद, वह एक भी मेम्बर नहीं बना पाया।

तभी, जब हताश और निराश, वह एक दोपहर फ़्लेमिंग रोड से गुज़र रहा था, सरक्युलर रोड से दो-तीन फ़र्लांग इधर ही, दायीं ओर एक अहाते के बड़े-से मेहराबदार गेट पर लगे छोटे-से चौकोर बोर्ड पर उसकी नज़र गयी। बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—'रोमान !'

अचानक चेतन के दिमाग़ में एक नाम गूँजा—अख़्तर शीरानी !—उर्दू का बदनाम रोमानी शायर—युवकों की श्रद्धा और बुज़ुर्गों की उपेक्षा का मरकज़[1] !....

उसने देखा—मेहराबदार गेट के साथ ही एक बेकरी थी। ज़रा-सा आगे बढ़ कर चेतन ने उसके मालिक से पूछा, "क्या अख़्तर शीरानी यहीं रहते हैं ?"

"अन्दर चले जाइए। अहाते के दायीं ओर दाय कोने वाले मकान की सीढ़ियों पर दस्तक दीजिए।"

---

१. केन्द्र

चेतन का मन हुआ, उसी वक्त वह अहाते मे चला जाय। लेकिन वह सवेरे से निकला हुआ था, डेढ़ बजने को आ गया था और उसका घर वहा से डेढ़-एक मील दूर था। वह अहाते के अन्दर जा कर, वही मे मकान देख आया और उसने तय किया कि सुबह उनसे मिलेगा।....

....और सुबह आठ बजते-न-बजते चेतन तैयार हो गया। अपनी कहानियों के तराशों की फाइल उसने बगल मे दबायी, सोसाइटी के ब्रोशर, रसीद-बुक तथा 'चमन बुक डिपो' से छपे, अपने कथा-संग्रह की एक प्रति हाथ मे ली और एक नये उत्साह मे अपने महबूब शायर से मिलने चल पडा।

फ्लेमिग रोड को जाते-जाते उसके सामने कॉलेज के दिन घूम गये, जब पत्र-पत्रिकाओ से अटे और सिगरेट के धुएं से भरे हमीद के कमरे मे वे मासिक 'खयालिस्तान' मे अख्तर शीरानी की नज्मे पढ कर सिर धुना करते थे। अख्तर के कलम से जितनी भी नज्मे 'खयालिस्तान' मे छपी थी, चेतन को सब कण्ठस्थ थी, लेकिन 'ख़यालिस्तान' एक-डेढ साल बाद ही बन्द हो गया था और लाहौर आ कर चेतन अपनी रोजी-रोटी के संघर्ष मे इतना उलझ गया था कि उसे अख्तर शीरानी का पता ढूंढने और उनसे मिलने का खयाल भी नही रहा था। कभी भूले-बिसरे, किसी सुखद सपने-ऐसे, हमीद के साथ गुजारे दिनों और अख्तर शीरानी की नज्मो का ख़याल उसे जरूर आता, लेकिन दैनन्दिन जिन्दगी की उलझनों मे खो जाता। एक-डेढ महीना पहले अनारकली के चौरस्ते मे 'फजल बुक डिपो' के स्टॉल पर पत्र-पत्रिकाएँ देखते हुए, यदि चेतन की नजर अचानक 'रोमान' के पहले अंक और उस पर सम्पादक के नाते अख्तर शीरानी के नाम पर न पडती तो शायद वह फ़्लेमिग रोड के उस बोर्ड को देख कर यूं न चौकता और न अपने महबूब शायर से मिलने की उत्कण्ठा उसके दिल मे यूं बलवती हो उठती।

उन लोगों के मन मे, जो भले-बुरे, गत-आगत की चिन्ता छोड़ कर

इश्क नही कर सकते, उस तरह के प्रेमियों के प्रति जो ईर्ष्या-भरा भाव होता है, कुछ वैसा ही चेतन के मन मे अख्तर शीरानी के प्रति था। वह कैसा शायर है, जो किसी प्रशंसिका का पहला पत्र पा कर ही भावना-भरी, लम्बी कविता लिखता है। उस पत्र पर पता न होने की शिकायत करता हुआ एक और कविता लिख डालता है। फिर जब इसी बेचैनी मे (कि उसे उस अनजान चाहने वाली का पता मालूम नही) वह दसियों रोमान-भरी कविताएँ कागज पर उतार देता है तो उसकी उस अज्ञात प्रेयसी का दिल पसीज उठता है और वह उसे पते-समेत एक सुगन्धित पत्र भेजती है, तब उसे पा कर वह एक और जोरदार कविता लिख देता है और अपनी कविता मे उससे मिलने की उत्कण्ठा व्यक्त करता है। आखिर जब उस अनजान चाहने वाली का पैगाम पहुँचता है कि वह आधी रात को उसका इन्तजार करेगी और अपने कमरे की खिडकी से संकेत देगी तो इसी सुखद आशा को वह एक और भावना-भरी कविता मे पिरो देता है। भेट करके आता है तो फिर कविता लिख डालता है। एक बार देख कर फिर देखने की हसरत (कविता ही मे) व्यक्त करता है और जब वह पत्र लिखती है (क्योंकि वह लाहौर के अच्छे घर की पढी-लिखी लडकी है) कि उसे बदनामी का डर है तो उसके उस खत को शायरी का लिबास पहना देता है।....जिस कवि की हर साँस मे मुहब्बत है, रोमान है और दिलो मे हलचल मचा देने वाली ऐसी भावनाएँ है, जो अनायास पंक्तियो का रूप ले लेती है, वह शायर देखने मे, मिलने मे, बात करने मे कैसा होगा?....चेतन जानता था कि वह स्वय वैसा नही कर सकता। उन दिनो, जब वह कुन्ती से प्यार करता था और सिर्फ उसकी खिडकी के नीचे से गुज़र जाने अथवा उसकी एक झलक पा लेने पर उसकी राते अख्तर ही की तरह सपनों से आबाद हो जाती थी, एक दिन उसके मित्र अनन्त ने कहा था कि वह चाहे तो उसकी शादी वहा हो सकती है, तब चेतन के तर्क ने उसका रास्ता रोक लिया था—कौन जाने वह लड़की, जो देखने में इतनी सुन्दर लगती है, पत्नी बन जाने के बाद भी उतनी

अच्छी लगेगी ?—पत्नी के साथ ज़िन्दगी भर का निबाह करना होता है, सूरत से ज्यादा सीरत चाहिए और उसने अनन्त को रोक दिया था.... लेकिन ऐसा शायर, जो विवाहित होते हुए भी किसी से वैसा तर्क-हीन प्यार कर सकता है; जिसकी नज़्मे दिल की धड़कनों को तेज़ कर देती है, चेतन उसे देखना चाहता था, उससे बात करना चाहता था। (और चूँकि वह शुरू से एक पन्थ दो काज में विश्वास रखता था, इसलिए उसने अपनी छपी हुई कहानियों के तराशो की फ़ाइल साथ ले ली थी कि यदि सम्भव हुआ तो वह 'रोमान' मे लिखने का डौल बैठायेगा। सोसाइटी का बहाना उसके पास था। कितना अच्छा हो, अगर अख़्तर उससे प्रभावित हो जायँ और उसकी रचनाएं 'रोमान' में छपने लगें।)

फ़्लेमिग रोड को जाते हुए चेतन के दिमाग़ मे अख़्तर शीरानी की कई नज़्में घूम गयीं....

....उस युवती का पहला ख़त पा कर लिखी हुई नज़्म के शे'र, जिसे अख़्तर ने 'सलमा' के नाम से मशहूर कर दिया था :

उस शोख़ ने लिखा है हमें पहली बार ख़त
जिस पर फ़िदा हज़ार नहीं, सौ हज़ार ख़त
हैरान हूँ कि इन में करूँ किस पे मैं यक़ीं
य' बे-हिजाब तर्ज़,[1] ये बेगानावार[2] ख़त

....सलमा के मकान का पता न होने से और (ख़त की मुहर से यह जान लेने पर कि वह लाहौर ही की है) गली-कूचो मे उसका घर ढूंढते-फिरने की कोशिश में लिखी गयी ग़ज़ल :

दिल-ए-महजूर[3] को तस्कीन[4] का सामाँ न मिला
शहर-ए-जानाँ में हमें मस्कन-ए-जानाँ[5] न मिला
कूचा-गर्दी[6] में कटी शौक की कितनी रातें

---

१. संकोचहीन शैली २. बेगानों की तरह ३. विरह के मारे ४. शान्ति ५. प्रिय के नगर में प्रिय का निवासस्थान ६. गलियों की ख़ाक छानना

फिर भी उस शम'ए-तमन्ना[1] का शबिस्ताँ[2] न मिला
यूँ तो हर राहगुज़र[3] पर थे सितारे रक्साँ[4]
जिसकी हसरत थी मगर वो मह-ए-ताबाँ[5] न मिला,

....खुशबू में बसा हुआ सलमा का खत पा कर लिखी हुई ग़ज़ल :

फिर वही नक्हत-ए-मस्ताना[6] किधर से आयी
महरम-ए-गेसू-ए-जानाना[7] किधर से आयी
एक दिन जिस से महकता था हरीम-ए-सलमा[8]
वही खुशबू दिल-ए-दीवाना किधर से आयी
एक भूला हुआ ख्वाब एक भुलाई हुई याद
लेके ऐ मूनिस-ए-जानाना[9] किधर से आयी

....सलमा का यह पैगाम पा कर कि वह आधी रात को अख्तर का इन्तजार करेगी, मसर्रत के जोश मे लिखी हुई लम्बी नज्म, जिस पर चेतन और हमीद ने न जाने कितना सिर धुना था :

कितनी शादाब है दुनिया की फ़ज़ा आज की रात
कितनी सरशार है गुलशन की हवा आज की रात
कितनी फ़य्याज[10] है रहमत की घटा आज की रात
किस कदर खुश है खुदाई से खुदा आज की रात
कि नजर आयेगी वो माहलिका[11] आज की रात
दास्तान - ए - दिल - ए - बेताब सुनायेंगे उन्हें
आप रोयेंगे, गले मिल के रुलायेंगे उन्हें
खुद ही फिर रोने में हँस देंगे हँसायेंगे उन्हें
और जुर्रत की तो सीने से लगायेंगे उन्हें
नित-नये जज्बों की है नश्व-ो-नुमा[12] आज की रात

---

१. आकांक्षा की शमअ याने प्रेयसी २. जहाँ आदमी रात गुजारे—घर, ३. रास्ता ४. नृत्य-मग्न ५. चमकता हुआ चाँद ६. मदभरी सुगन्ध ७. प्रिय के कुन्तलों से परिचित ८. सलमा का घर ९. प्रिय की साथिन १०. उदार ११. चाँद-सी तन्वंगी १२. पैदा होना और बढ़ना।

लेकिन इज़हार-ए-ख़यालात[1] करेंगे क्योंकर
शर्म आती है, मुलाकात करेंगे क्योंकर
बात करनी है, मगर बात करेंगे क्योंकर
ख़त्म यह ख़्वाब-की-सी रात करेंगे क्योंकर
आह ! यह आज की, यह ख़्वाब-नुमा आज की रात

....और फिर वो मशहूर नज्म, जिसमें अख़्तर ने सलमा से दोबारा मिलने, उसे एक बार और देखने की ख़्वाहिश जाहिर की थी

तुम्हें सितारों ने बे-इख़्तियार[2] देखा है
शरीर[3] चाँद ने भी बार-बार देखा है

सुनहरी धूप की किरनों ने बाम[4] पर तुमको
बखेरे गेसू-ए-मुश्कीं-बहार[5] देखा है

कभी जो उट्ठी हो गेसू सँवारने के लिए
तो आइने ने तुम्हें हमकनार देखा है

मगर मेरी निगह-ए-शौक को शिकायत है
कि उसने तुमको फ़कत एक बार देखा है

दिखा दो एक झलक और बस निगाहों को
दोबारा देखने की है हवस निगाहों को

और इसके जवाब में सलमा की वह नज़्म :

किसी की चश्म-ए-हवस-आशकार क्यों देखे[6]
किसी को यूँ कोई गुस्ताख़वार[7] क्यों देखे
'दोबारा देखने की है हवस निगाहों को'
कोई यह सुर्ख़ी-ए-अफ़सानाकार[8] क्यों देखे

१. विचारों की अभिव्यक्ति २. अनायास ३. उद्दण्ड, शरारती ४. छत ५. सुगन्धित कुन्तल ५. किसी की वासना की दृष्टि हमें खुले में क्यों देखे ६. उद्दण्डता से ७. ऐसा शीर्षक जिसमे कहानी छिपी हो ।

यह जुर्म कम है कि इक बार हम को देख लिया
कोई शरीर[1] हमें बार-बार क्यों देखे

लगाओ यूँ न कहीं बे-सबब निगाहों को
कलम को सब्र सिखाओ, अदब निगाहों को

...और यह देख कर कि उसे चाहने वाला शायर अपनी नज्मों में कुछ खास किस्म के इशारे करने लगा है, जब सलमा ने संकेत में सिर्फ एक पंक्ति लिखी :

जब्त ऐ इश्क इस अफसाने को यूँ आम न कर

तो अख्तर ने इसे यूँ कितआ[2] में बाँध दिया

शे'र में जिक्र किसी का दिल-ए-नाकाम न कर
उसने लिक्खा है कि तू यूँ हमें बदनाम न कर
गैरत-ए-हुस्न[3] को मंजूर नहीं रुस्वाई[4]
'जब्त-ऐ-इश्क इस अफसाने को यूँ आम न कर'

एक के बाद एक नज्म, एक के बाद एक गजल चेतन के दिमाग में घूम रही थी। और वह सोचता था कि उसका प्रिय शायर कैसा होगा? उससे मिलेगा भी या नहीं? बात भी करेगा या नहीं। 'खयालिस्तान' में उसने हैट लगाये हुए अख्तर का जो फोटो देखा था—उससे वह कुछ अन्दाजा न लगा पाया था, सिवा उसके कि अख्तर हाई-ब्रो शायर है और उसकी मूछें रॉनल्ड कोलमन स्टाइल में, थोड़ी कम लम्बी हैं। वह चेतन को मिलने का अवसर देगा तो वह उसे प्रभावित कर लेगा, इसका चेतन को पूरा विश्वास था।

उसे अख्तर के यहाँ जो सबसे अच्छी बात लगती थी, वो यह थी कि अख्तर हिन्दुस्तान का शायर लगता था फारस या अरब का नहीं। उस की नज्मों में चेतन को रावी और चनाब, गायों और बकरियों, चिड़ियों और

---

१. उद्दण्ड २. ग़जल की चार ऐसी पंक्तियाँ, जिनमें पूरा एक भाव व्यक्त किया गया हो ३. प्रेयसी की लज्जा ४. बदनामी।

कोयलों; बेला और गुलाब—हिन्दुस्तान के गाँवों, बाग़ों, दरियाओं, टीलों-टेकरियों, पशु-पक्षियों और यहाँ के लोगों की भावनाओं का ज़िक्र मिलता था और उस वक्त, जब वह लाहौर के मशहूर शिक्षाविद, हाफ़िज महमूद अहमद शीरानी का बेटा था; ख़ुद 'अदीब फाज़िल' था; न सिर्फ़ फ़ारसी का पण्डित था, उसमें शे'र भी कहता था—अपनी रोमानी गज़लों और नज्मों में वह ऐसी आसान ज़बान इस्तेमाल करता था कि वे सीधे दिल में घर करती चली जाती थीं। फिर प्रायः उर्दू शायरों का महबूब कोई कमसिन लड़का होता था, जब कि अख़्तर ने पहली बार अपनी तमाम नज्में एक युवती को सम्बोधित करते हुए लिखी थीं।

अख़्तर से मुलाकात करने में एक ही झिझक चेतन को थी; उस ने सुना भी था और पढ़ा भी कि अख़्तर ख़ूब पीते हैं और सलमा के इश्क में अपने आप को बर्बाद कर रहे हैं। पण्डित रत्न ने उसे बताया था कि जब उनके वालिद को इस बात का पता चला और उन्होंने उस मुहब्बत पर (जो वास्तव में एक अदीबा से लम्बे-लम्बे पत्र-व्यवहार, और केवल दो प्लैटॉनिक मुलाकातों तक सीमित थी) उन्हें डाँटा तो अख़्तर ने अपनी वह मशहूर नज़्म 'ऐ इश्क कहीं ले चल' लिखी। तब चेतन नहीं जानता था कि जिस नज़्म को वह और हमीद पागलों की तरह गाया करते थे, उनके महबूब शायर ने अपने घर वालों के परेशान करने पर इन्तिहाई मानसिक कष्ट में लिखी थी....

फ़्लेमिंग रोड को जाते-जाते अख़्तर की उस बदनाम, लेकिन रहस्यमय जिन्दगी और उनकी रोमानी नज्मों के भँवरों में डूबता-उतराता, चेतन कब उनके अहाते में पहुँच गया, उसे ध्यान नहीं रहा। वह तब चेता, जब वह अहाते से दायीं ओर वाले उस मकान के नीचे—चौड़ी, बन्द गली में खड़ा था। दायीं ओर वही मकान था, जिसकी सीढ़ियों पर दस्तक देने की बात पिछले दिन बेकरी वाले ने कही थी; उसके ऐन सामने गली की बायीं ओर, सिर्फ़ एक कमरा बना था, जिसका दरवाज़ा खुला था और जिस पर 'रोमान' का बोर्ड लटका था। सीढ़ियों पर दस्तक देने की बजाय चेतन उधर को

बढ़ा। मँझले कद का एक पहलवान-सा दीखने वाला आदमी, तहमद-कमीज़ पहने, फ़र्श पर झाड़ू दे रहा था।

"क्यों साहब, अख्तर शीरानी कहाँ रहते हैं?" चेतन ने पूछा।

झाड़ू लिये-लिये वह व्यक्ति उठा। अपने मोटे होंट ज़रा-सा विकुंचित करते हुए उसने पूछा, "कहिए।"

चेतन क्षण भर उसे देखता रह गया। चौकोर, लेकिन तंग माथे पर पीछे को सँवारे हुए बाल, चौड़ाई लिये हुए गाल चेहरा, रॉनल्ड कोलमैन-नुमा बारीक, लेकिन कद्रे छोटी मूँछें, भरे-भरे गाल, बड़ी-बड़ी बाहर को निकलती आँखें, गठा हुआ कसरती शरीर, मैली-सी कमीज़ और तहमद—'खयालिस्तान' में देखे हुए अख्तर के चित्र में और उस चेहरे में चेतन को थोड़ी समानता लगी, लेकिन उसे यकीन नहीं आया कि इस पहलवान-सिफ़त व्यक्ति के पहलू में वैसा नर्म-हस्सास और मुहब्बत-भरा दिल है और यही वह मशहूर शायर है, जिसकी नज़्में नौजवानों के दिलों में हलचल मचा देती हैं। एक निहायत बेतुका खयाल चेतन के दिल में आया—इस आदमी के हाथ में अगर छुरा हो और सामने छत से बकरे का गोश्त टँगा हो तो यह बिल्कुल कसाई लगे। लेकिन उसने इस खयाल को बरबस अपने दिमाग़ से भगा दिया।

उस शख्स ने 'कहिए!' कुछ इस अन्दाज़ में कहा था कि चेतन को यकीन हो गया, हो-न-हो, वह अख्तर शीरानी के सामने खड़ा है। क्षण भर चेतन चकित-सा खड़ा रहा। हालाँकि उसने अख्तर शीरानी का बस्ट 'खयालिस्तान' में देखा था, लेकिन उसने सपने में भी इस सरापे की कल्पना न की थी। उसका खयाल था, हैट के नीचे अख्तर के बाल घुंघराले होंगे, आँखों में मस्ती होगी; हृष्ट-पुष्ट ही सही, पर लम्बा-छरहरा शरीर होगा.... और यहाँ तहमद-कमीज़ पहने उसके सामने जो व्यक्ति खड़ा था, वह.... लेकिन दूसरे ही क्षण चेतन सँभल गया। उसने 'आदाब अर्ज़' करते हुए अपना परिचय दिया, ('बन्दे मातरम' के सम्पादन-विभाग में काम करने, 'मन्दिर' में कहानियाँ छपने और महाशय देवदर्शन तथा मुन्शी चन्द्रशेखर से

प्रशंसा पाने का उसने विशेष उल्लेख किया) फिर उसने बताया कि कैसे कॉलेज में वह और उसका मित्र हमीद, दोनों 'ख़यालिस्तान' पढ़ा करते थे और उनकी नज़्मों के शैदाई थे और कैसे उनकी अधिकांश नज़्में चेतन को उस वक्त भी याद थी ।

"यूँ तो मुझे यहाँ आये दो बरस से ऊपर हो चुके है," चेतन ने कहा, "लेकिन मै ज़िन्दगी की गर्दिश मे ऐसा फँसा रहा कि दम लेने की फ़ुर्सत नहीं मिली और मैं पहले आप से मुलाकात नही कर सका । आपका पता भी मेरे पास नही था । पिछले महीने अचानक 'रोमान' पर नजर पड़ी । बड़ी ख़ुशी हुई कि आपने फिर परचा निकाला है । इधर से गुज़र रहा था कि बोर्ड दिख गया, सो आप की ज़यारत को चला आया ।"

अख़्तर प्रकट ख़ुश हुए थे । लेकिन उन्होने कहा कुछ नहीं ।

चेतन की समझ मे नही आया कि अब वह क्या कहे और सोसाइटी की बात कैसे चलाये । जो व्यक्ति तीन-चार रुपये महीने का छोकरा अपने दफ़्तर की सफाई के लिए नहीं रख सकता, वह पाँच रुपये महीने चन्दा कैसे देगा ! चेतन अपनी छपी हुई कहानियों के तराशे दिखा कर 'रोमान' मे एकाध कहानी के छपने की बात भी चलाना चाहता था । लेकिन जिस स्थिति मे वह अपने महबूब शायर से मिला था, उसमे बात-चीत के रास्ते बन्द-से लगते थे । तो भी उसने कहा :

"आप ख़ुद क्यों झाड़ू-बुहारी कर रहे हैं । कोई छोकरा वग़ैरा क्यो नहीं रख लेते ?"

"छोकरा है, बीमार हो गया है ।" अख़्तर ने कहा, " 'रोमान' के लिए एक आदमी रखा है, जो आज से आयेगा । मेरा कमरा तो ऊपर है," उन्होंने पहली मंज़िल की खिड़कियों की तरफ़ इशारा किया, "वहाँ क्लर्क वग़ैरह के बैठने की सहूलत नहीं । यह कमरा बरसों से बन्द पड़ा था । अब्बा ऊपर क्लर्क का बैठना पसन्द नही करते, उन्होंने यही कमरा दिया है । सोचा खुद ही साफ़-वाफ़ कर दूँ, वरना जिस आदमी को रखा है, वो कहाँ बैठता ? यह तो अपना ही काम है, इसमें शर्म कैसी ?"

इतने में चेतन ने तय कर लिया था कि वह कैसे बात करे। उसने कहा :

"मेरे अफ़सानों की एक किताब छपी है, वह आप की नज़र करनी थी, आपको अपनी कुछ कहानियाँ दिखानी थीं और 'ग़ैर मारूफ़ जर्नलिस्ट' साहब की सलाह से मैंने एक सोसाइटी शुरू की है, उसके सिलसिले में भी आपकी कुछ मदद दरकार थी...."

"आप ज़रा यहीं रुकिए, मैं सफ़ाई खत्म कर लूं, फिर ऊपर चल कर बैठते हैं।"

चेतन धूल से बचने के लिए गली में ज़रा पीछे को हो कर खड़ा हो गया था और नौजवानों का वह महबूब शायर, पूर्ववत, कमरे में झाड़ू देने लगा था।

अहाते से निकली उस संक्षिप्त, चौड़ी-सी बन्द गली में, एक तरफ़ दफ़्तर 'रोमान' और दूसरी तरफ़ हाफ़िज महमूद शीरानी के मकान के बीचो-बीच हैरान-सा खड़ा चेतन यही सोचता रहा कि अख़्तर उसकी कल्पना से कितने भिन्न हैं ? उसने सूट-बूट में मलबूस, घुँघराले बालों वाले एक खुश-पोश शायर की कल्पना की थी, लेकिन बराबर के कमरे मे झाड़ू हाथ मे लिये, जो शख्स सफ़ाई कर रहा था, वह और चाहे जो लगता हो, शायर नहीं लगता था। तस्वीरें कितना धोखा देती हैं—वह मन-ही-मन उदासी से हँसा। अख़्तर को देख कर उसे थोड़ी निराशा हुई थी और इस शख़्स पर लाहौर के ही एक अच्छे घराने की पढ़ी-लिखी, खुद भी अच्छे शे'र कह लेने वाली, एक युवती मरती थी !....सचमुच हकीकत अफ़सानो से कितनी ज़्यादा दिलचस्प होती है !

तभी अख़्तर सफ़ाई खत्म करके, झाड़ू को कोने में टिका, कमरा बन्द कर, बाहर निकले—"आइए," उन्होंने चेतन से कहा और वे सामने के मकान की सीढ़ियाँ चढ गये।

सीढ़ियाँ चढ़ते ही, दायें-बायें, दोनों ओर दरवाज़े थे। अख़्तर दायीं

ओर के कमरे में चेतन को ले गये। वह एक छोटा-सा कमरा था। उसमें सीढ़ियों से आने वाले दरवाज़े के बिल्कुल सामने, एक दूसरे कमरे का दरवाज़ा था, जिस पर पर्दा पड़ा था। दरवाज़े की दायीं ओर, बाहर खुलने वाली खिड़की के साथ, एक मेज़ लगी थी। एक कुर्सी अख्तर साहब के लिए और दो कुर्सियाँ मेज़ की दूसरी ओर आने वालों के लिए रखी थीं। फ़र्श पर एक मैली-सी फ़र्शी दरी बिछी थी। बस इससे ज़्यादा फ़र्नीचर की गुंजाइश कमरे में नहीं थी।

"बैठिए। मैं आया।"

चेतन मेज़ के साथ लगी दोनों कुर्सियों में से एक पर बैठ गया। मेज़ एकदम साफ़ थी, उस पर किताबें और फ़ाइलें बड़ी करीने से सजी थी। मेज़ के पीछे दीवार में बनी एक बे-किवाड़ों वाली अलमारी में भी किताबें और कागज़ बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से रखे हुए थे। कमरे में कहीं बेतरतीबी या अव्यवस्था नहीं थी।—'यह शख्स चाहे कितना भी मस्त-अलस्त हो, पर है नफ़ासत-पसन्द,' चेतन ने मन-ही-मन कहा और अपनी कहानियों का संग्रह निकाला। उस पर बहुत खूबसूरत अक्षरों में :

शायर-ए-रोमान
जनाब 'अख्तर' शीरानी के लिए
उनके एक पुराने अकीदतमन्द[1] की तरफ़ से
मुहब्बत और ख़ुलूस[2] के साथ

समर्पण लिखा और हस्ताक्षर किये। फिर वह फ़ाइल में कहानियाँ देखने लगा कि किन कहानियों की तरफ़ उनका ध्यान दिलायेगा. इतने में साबुन से हाथ-मुंह धो, दूसरी कमीज़-तहमद बदल कर और शायद एकाध पेग चढ़ा कर, अख्तर साहब आ गये, क्योंकि जब वे उसके सामने आ कर अपनी मेज़ पर बैठे तो साबुन की हल्की-सी खुश्बू में मिली हुई शराब की बू चेतन के नथुनों को छू गयी।

"मेरे अफ़सानों का नया मजमूआ," चेतन ने कुर्सी से उठते हुए कहा

---

१. श्रद्धालु २. सौहार्द

और उसने दोनों हाथों से किताब उन्हे भेंट की।

अख्तर साहब ने किताब खोल कर समर्पण देखा। कुछ पृष्ठ उलटे, मुन्शी चन्द्रशेखर की भूमिका देखी। फिर उसका शुक्रिया अदा करते हुए किताब को दायी ओर रख दिया और वायदा किया कि 'रोमान' मे खुद उस पर लिखेंगे।

तब चेतन ने अपनी कहानियो की फाइल दिखायी और बताया कि वह अब तक रोजाना अखबारो के सण्डे एडीशनो मे ही लिखता रहा है, लेकिन उसकी बडी आरजू है कि माहवार निकलने वाले अदबी परचो मे भी उसकी कुछ चीजे छपे। 'मन्दिर' मे उसकी कहानियाँ छपी थी, पर महाशय जी 'मन्दिर' छोड, फिल्मी दुनिया मे जा रहे है।

"तुम 'रोमान' के लिए लिखो, हम छापेंगे," सहसा अख्तर साहब ने कहा।

"लेकिन मेरी रोजी का कोई सहारा नही, मै चाहता हूँ, मुझे थोडा-बहुत कहानियो मे मिलने लगे।"

"हम 'रोमान' मे हर महीने एक बहतरीन कहानी का ऐलान करते है और उस पर पाँच रुपये इनाम देते है," उन्होने कहा, "तुम कहानी लिखो—जिस महीने तुम्हारी कहानी छपेगी, इनाम तुम्ही को मिलेगा।"

"मै जरूर लिखूंगा," चेतन ने कहा, "लेकिन अभी मै दिमागी तौर पर कुछ परेशान हूँ। किसी कहानी का खयाल दिमाग मे पका नहीं, और बिना पकाये कहानी लिखना गलत है। 'रोमान' के लिए मै ऐसी कहानी लिखना चाहूँगा कि आप इनाम का ऐलान करे तो कोई उँगली न उठा सके।"

"किसी के उँगली उठाने की हम परवाह नही करते," अख्तर ने निचला होट जरा-सा बिदोरते हुए कहा।

चेतन को उनकी यह अदा बहुत भायी। वह मन्त्र-मुग्ध-सा उनकी ओर देखता रहा।

उसकी कहानियो की तराशो की फाइल पलटते हुए उन्होने अचानक

पूछा, "इनमें कोई बढ़िया कहानी नहीं।"

"दो-तीन हैं।"

"जिसे तुम बढ़िया समझते हो, 'रोमान' के लिए दे दो। हम छाप देंगे। उस पर इनाम भी देंगे।"

"लेकिन ये तो छपी हुई हैं!" चेतन ने हैरत से कहा।

"माहनामे पढ़ने वाले रोज़नामों की कहानियाँ नहीं पढ़ते!" और उनके चेहरे पर कुछ ऐसी उदारता-भरी नर्म मुस्कराहट आ गयी—बेपरवाही और मस्ती-भरी—कि चेतन को लगा, जैसे वह चेहरा, जो पहली नज़र में उसे किसी कसाई का चेहरा लगा था, किसी जादू के असर से बड़ा प्यारा, भोला और दर्दमन्द बन गया है। चेतन अब सोसाइटी का ज़िक्र करना चाहता था, पर जाने उसके मन में क्या आयी कि कहानी छापने का वायदा करने के लिए उनका शुक्रिया अदा करते हुए, उसने अचानक कहा, "मेरी बड़ी आरज़ू है कि आप मुझे अपनी कोई मन-पसन्द ग़ज़ल या नज़्म अपने दस्तख़तों के साथ लिख दें, ताकि मैं इस मुलाकात की याद के तौर पर उसे अपने पास रख सकूँ।"

अख़्तर क्षण भर गहरी नज़र से उसकी ओर देखते रहे। फिर वे उठे। कुर्सी के पीछे दीवार में बनी अलमारी के एक ख़ाने से उन्होंने आर्ट पेपर का एक टुकड़ा उठाया (शायद 'रोमान' के कवर का बचा हुआ तराशा था) और वे फिर मेज़ पर आ बैठे। दराज़ से उन्होंने कलम उठाया; दायीं ओर करीने से रखी चुटकी-लगी तख़्ती उठायी, उसमें काग़ज़ लगाया और चुपचाप लिखने लगे।

चेतन ने देखा उनके लिखने में त्वरा का दख़ल नहीं था। वे जैसे बड़े प्यार से धीरे-धीरे लिख रहे थे। तभी जैसे उसने पहली बार मेज़ और उनकी पीठ के पीछे बे-किवाड़ों की अलमारी में करीने से लगे सामान को देखा। चेतन ने अख़्तर की शराबनोशी और बेराहरवी के दसियों किस्से सुने थे, लेकिन मेज़ पर करीने से रखे काग़ज़-पत्रों और पीठ-पीछे अलमारी में सजी किताबों को देख कर उसे लगा था कि यह शख़्स चाहे जितनी पीता

हो (और वह उस वक्त भी—सुबह होने के बावजूद—थोड़ी पिये था) कहीं बहुत ही नफासत पसन्द है।—जिसको अपने नये क्लर्क का इतना खयाल है, नौकर की बीमारी में खुद उसका कमरा झाड़-बुहार आये, वह अपना कमरा कैसे बेतरतीब रख सकता है! चेतन चुपचाप उन्हे लिखते देखता रहा। नज्म खत्म कर, नीचे दस्तखत कर के और तारीख दे कर उन्होंने आर्ट पेपर का वह टुकड़ा तख़्ती से उतारा और उसकी ओर बढ़ा दिया।

चेतन ने देखा और कुछ क्षण वह देखता ही रह गया। लिखावट क्या थी—मोती पिरोये हुए थे। कातिब की लिखी दिखायी देती थीं। अख्तर ने एक बड़ी प्यारी-सी नज़्म लिख दी थी। वह चुपचाप पढ़ने लगा :

उन्हें जी से मैं कैसे भुला दूँ सखी, मेरे जी को जो आ के लुभा ही गये
मेरे मन में जो प्रेम बसा ही गये, मुझे प्रीत का रोग लगा ही गये
किये मैंने हज़ार-हज़ार जतन, कि बचा रहे प्रीत की आग से मन
मेरे मन में उभार के अपनी लगन, वो लगाव की आग लगा ही गये
रहे रात की रात सिधार गये, मुझे सपना समझ के बिसार गये
मैं थी हार, गले से उतार गये, मैं दिया थी, जिसे वो बुझा ही गये
सखी, कोयलें सावनी गायेंगी फिर, नयी कलियाँ भी छावनी छायेंगी फिर
मेरे चैन की रातें न आयेंगी फिर, जिन्हें नैन के नीर मिटा ही गये
मेरे जी में थी बात छिपाये रखूँ, सखि, चाह को मन में दबाये रखूँ
उन्हें देख के आँसू जो आ ही गये, मेरी चाह का भेद बता ही गये

और नज़्म की बायी ओर उन्होने शिकस्ता खत में नही, बल्कि खुशख़त में अपने हस्ताक्षर किये थे और नीचे तारीख लिख दी थी—२६ मार्च, १९३४।

नज़्म पढ़ कर चेतन बड़ा खुश हुआ। उसने शुक्रिया अदा करते हुए कहा—"आपकी लिखावट तो ऐसी खूबसूरत है कि कातिब को भी मात करती है।"

"अब्बा जान ने हमें बचपन से दो ही चीजें सिखायीं—पहलवानी और खुशखती। रिन्दी और इश्क हमने खुद सीखा और इन्हीं दो का उन्हें मलाल है।" अख़्तर की आँखों में एक शरारत-भरी चमक पैदा हुई। "तुम नहीं जानते," उन्होंने कहा :

"अब्र की तरह गँवायी है जवानी मैंने।"

सहसा चेतन भूल गया कि वह उन्हें सोसाइटी का मेम्बर बनाने के लिए आया है। उनके अपने हाथों लिखी हुई नज़्म उसने बड़ी सावधानी से फ़ाइल में रखी और उठ खड़ा हुआ। तभी उसकी नज़र सोसाइटी के परिपत्रों पर गयी, जो उसने मेज़ पर रख दिये थे। तब सहसा उसने बड़े संकोच से कहा :

"जिस काम के बहाने आया था, वह तो भूले ही जा रहा हूँ।" और ब्रोशर उनके हाथ में देते हुए उसने सोसाइटी की बात कही और डरते-डरते उनसे (आजीवन परस्त नहीं) सिर्फ़ मेम्बर बनने का अनुरोध किया।

अख़्तर ने ब्रोशर लिया। उसे सामने रखे हुए भी न जाने कहाँ देखते रहे। फिर उन्होंने कहा :

"हम खराब-हाल रिन्द हैं, सोसाइटियों वग़ैरा में नहीं जाते। और फिर चन्दा जिस जिन्स से दिया जाता है, उसकी हमारे यहाँ कमी है, अब्बा मुझसे बेहद नाराज़ हैं। वो चाहते थे, ओरियेण्टल कॉलेज में लड़कों को पढ़ाऊँ। वह सब मेरे बस का नहीं। यह 'रोमान' और उसका सारा खर्च मेरे एक मद्दाह और मेहरबान दोस्त उठाते हैं।" क्षण भर वे सोचते रहे, फिर बेपरवाही से बोले, "पर आइए, आपको चन्दा दिलवाते हैं।"

यह कह कर वे अचानक उठे, अन्दर कमरे में गये और कुछ क्षण बाद दायें हाथ की पिछली तरफ़ से होंट पोछते बाहर आये। "चलिए," उन्होंने चेतन से कहा और सीढ़ियों की ओर बढ़े।

चेतन भी उनके पीछे उतरा। अपने ही खयाल में मस्त, वे तहमद-कमीज़ पहने हुए ही तेज़-तेज़ चलते रहे। सरक्युलर रोड पर आ कर वे

एक खाली ताँगे पर जा बैठे।

"चलो भई, मोची दरवाजे के अन्दर।"

चेतन हमेशा ताँगे की अगली सीट पर बैठता था, पर अख्तर साहब उचक कर खुद अगली सीट पर बैठ गये थे, इसलिए वह अनिच्छापूर्वक पिछली सीट पर बैठ गया। ताँगे का घोड़ा सरक्युलर रोड पर दुल्की चलने लगा तो चेतन की दृष्टि अगली सीट पर दीन-दुनिया से बेपरवाह, महज तहमद-कमीज पहने, अपने में मस्त बैठे, उस तीस-एक वर्ष के पहलवान-सिफत शायर पर गयी। सहसा उसे खयाल आया—क्या सचमुच किसी शरीफ घराने की मुसलमान पढ़ी-लिखी अदीब लड़की उन पर मर सकती है? कहीं इतनी सारी नज्में उन्होंने किसी काल्पनिक हसीना के लिए ता नहीं लिखीं, और बिना सोचे-समझे, अगली सीट पर जरा-सा झुक कर उसने कहा

"अख्तर साहब, गुस्ताखी माफ हो तो एक बात पूछूँ।"

अख्तर को हल्का-सा नशा हो आया था। हाथ को हवा में उठाते हुए उन्होंने जरूरत से ज्यादा ऊँची आवाज में कहा, "शौक से!"

"आपने इतनी नज्में सलमा को ले कर लिखी हैं, क्या सचमुच सलमा नाम की कोई हसीना है, या यह सब आपके तसव्वुर[1] का कमाल है?"

अचानक अख्तर ने दायीं बाँह पीछे की ओर डाल कर, बैठे-बैठे करवट ली। उनका चेहरा चेतन के इतना पास आ गया कि शराब की हल्की-सी बू उसके नथुनों में घुस गयी।

"तुम क्या सोचते हो?"

"अगर सलमा सचमुच कोई हसीना है तब तो ठीक है और अगर यह आप के तखईल[2] का कमाल है तो आप एक अजीम[3] शायर हैं।"

फिर मुड़ कर पीछे बैठते और हाथ से हवा को चीरते हुए अख्तर शीरानी ने अपनी भारी बुलन्द आवाज में कहा, "मैं बहुत अजीम शायर हूँ।"

१. कल्पना २. कल्पनाशीलता ३. महान

और सीट मे धँस कर उन्होने टाँगें फैला ली ।

ताँगा मोची दरवाज़े मे कब का दाखिल हो चुका था । दो-एक बार अपनी मोटी नशीली आवाज़ मे अख़्तर ने वही वाक्य दोहराया, "मैं अजीम शायर हूँ ।"

चेतन को अस्वस्ति-बोध हुआ, क्योंकि हर बार दुकानदार और बाजार के दूसरे लोग ताँगे की तरफ देखने लगते । सौभाग्य से एक बहुत बडे गोल दरवाजे के पास पहुँच कर, जिस पर बहुत बड़ा बोर्ड लगा था—'दारु-शिफ़ा'[1]—अख़्तर साहब अचानक उठ बैठे और उन्होने ताँगे वाले को उस बड़े मेहराबदार दरवाजे के अन्दर ले जाने का हुक्म दिया ।

चेतन ने देखा कि एक बहुत बडी हवेली का कुशादा अहाता है—सामने एक खुला बरामदा है, जिसमे एक तख़्त पर मसनद और गाव-तकिया लगाये, काली दाढी वाले एक पतले-छरहरे नौजवान-हकीम, मरीजो मे घिरे बैठे है । उस वक्त वे एक मरीज की नब्ज देख रहे थे कि सामने से आते ताँगे की अगली सीट पर बैठे 'अख़्तर' साहब पर उनकी नजर पड़ गयी । मरीज की नब्ज छोड, वे उठे और दोनो हाथ फैलाये, "अरे अख़्तर साहब, आज सुबह-सुबह कैसे ?" कहते हुए दालान की सीढियाँ उतर आये और दोनो हाथो से अख़्तर का हाथ थाम, उन्हे ताँगे से उतारते हुए बडे प्यार और सत्कार के साथ, वे उन्हे ले गये और अपने साथ तख़्त पर बैठाया ।

चेतन उनके पीछे-पीछे गया और दालान की सीढियों पर ही खडा रहा ।

"अरे भाई नैयर, पाँच रुपये का एक नोट इन साहब को दे दो ।" उन्होने चेतन की ओर संकेत किया, "ये बडे जबरदस्त अफसाना-निगार है । हम 'रोमान' मे इनके अफ़साने छापेगे । लाहौर के इण्टलेक्चुअल्ज़ के लिए इन्होने एक सोसाइटी खोली है और मेम्बर ये मुझ जैसे कम-अक्ल को बनाना चाहते है ।" और वे नशीली-सी हँसी हँसे, "और एक रुपया ताँगे वाले को दीजिए, हम इसी मे चले जायेंगे ।"

---

१. आरोग्यशाला

और वे उठे।

हकीम साहब ने दोनों कन्धे थाम कर उन्हे बड़े अदब से फिर बैठा लिया।

' इतनी सुबह आप आये है, नाश्ता किये बिना आप नही जा सकते।" और उन्होने चेतन की तरफ देख कर कहा, "आ जाइए साहब, आप भी इधर आ जाइए।" और 'भुल्लन मियाँ' नाम के किसी व्यक्ति को दो बार आवाज दी।

चेतन भी अन्दर चला गया और तख्त के कोने पर जरा-सा बैठ गया।

तभी एक बुड्ढा नौकर आया। हकीम साहब ने उससे कहा कि बेगम साहब से उनका बटुआ ले आयें और दो मेहमानो का नाश्ता तैयार करने के लिए कहे।

अख्तर साहब ने फिर कुछ नशीली-सी बडबडाहट की कि : "नाश्ता छोड़ो, तुम्हारे मरीज बैठे है, हम शाम को आयेगे।"

हकीम साहब जिस मरीज़ की नब्ज देख रहे थे, उसकी कलाई उन्होने थाम ली थी। नब्ज देख कर उन्होने नुस्खा लिखा और अख्तर साहब की ओर मुड कर बोले, "शाम को भी आइएगा।"

भुल्लन बटुआ ले आया। हकीम साहब ने पाच रुपये चेतन को दिये। चेतन ने रसीद काटी और उठा। "बहुत-बहुत शुक्रिया," उसने हकीम साहब से कहा और फिर अख्तर साहब की तरफ मुड कर बोला, "मै फिर हाजिर हूँगा और अफसाना भी लाऊँगा। आज बेवक्त आपको परेशान किया, माफ कीजिएगा।"

हालाकि हकीम साहब ने कहा भी कि वह भी नाश्ता कर के जाय, पर उसने क्षमा माँग ली।

तब अख्तर ने हकीम साहब से कहा, "ताँगे वाले से कह दो, इनको इनके मकान पर छोड कर वापस आ जाय, हम इसी मे घर जायेगे। 'रोमान' के लिए एक क्लर्क को आज ही आने के लिए कहा है। बेचारा परेशान होगा।"

हकीम साहब ने भुल्लन को ताँगे वाले के सिलसिले मे आदेश दिया और चेतन दोनों को 'आदाब' कह कर दालान के नीचे उतर आया।

अख्तर साहब ने विदा के अन्दाज मे सिर्फ़ हाथ हवा मे उठा दिया।

ताँगे मे बैठा चेतन सोच रहा था—यह तो बहुत ही भोला शायर है। अख्तर को 'रोमान' के दफ्तर मे झाड़ू देते देख कर उसे निराशा हुई थी और 'खयालिस्तान' मे उनके चित्र की याद आने पर उसने सोचा था कि तस्वीरें कितना धोखा देती है। 'लेकिन तस्वीरें ही नही, सूरतें भी धोखा देती है,' चेतन ने मन-ही-मन कहा, 'खूब पढा-लिखा और सभ्य दीखने वाला आदमी अन्दर से निहायत फूहड और असभ्य हो सकता है और इसका उलट भी सही है, अख्तर के सन्दर्भ मे तो सौ फीसदी सही है।'....चेतन स्वयं कवि था और वह अपने आप कमरों को झाड़ता-बुहारता था, लेकिन वह अपनी आँखो मे हीरो नही था। उसने कुन्ती से इश्क किया था, या नीला या प्रकाशो से, लेकिन वे तो अनपढ लडकियाँ थीं, उनमे कोई भी सलमा-ऐसी, पढे-लिखे घर की खुद शे'र कहने वाली लड़की न थी। अख्तर के बारे मे उसने जो सुना और पढा था, उसने उसकी आखो मे ऐसे शायर की तस्वीर बना दी थी, जो आम लोगो से भिन्न था। इसी-लिए पहले साक्षात्कार मे उसे निराशा हुई थी—लेकिन उन्हे देख लेने के बाद, उस रिन्द-बलानोश[1] के लिए उसके मन मे कुछ अजीब-सी दया उमड आयी थी। सलमा भले ही कोई सचमुच की युवती हो या अख्तर के तसव्वुर की उपज, पर शायर ने जो रोमानी नज्मे उसे ले कर लिखी थी, वे उर्दू शायरी मे अद्वितीय थी—ऐसा शायर, जिसे भगवान ने अत्यन्त भाव-प्रवण और हस्सास दिल दिया है; जो आठों पहर शे'र की दुनिया मे डूबा रहता है और जिसका हर एहसास शब्दों और पंक्तियो का रूप धर कर उसके कलम की नोक पर आ जाता है; अपनी परम्पराओ और लीको पर

१. बला का पीने वाला मस्त व्यक्ति

आदिकाल से चली आने वाली दुनिया जिसे समझने में नितान्त अक्षम है, ऐसा शायर दुनिया की क्यों परवाह करे—सहसा अपार ममता और श्रद्धा से चेतन का मन उमड़ आया और उसने तय किया कि जैसे भी होगा, वह अख्तर को अपनी सोसाइटी के मंच पर खींच ले जायगा। दुनिया के बहरे कानों तक उनकी आवाज़ पहुँचायेगा और दुनिया की अन्धी आँखों को उनकी महानता देखने पर मजबूर करेगा।

चेतन अपने इन्ही खयालों में मगन, सरक्युलर रोड पर बढ़ा जा रहा था कि सहसा बायी ओर साप्ताहिक 'बहार' के दफ़्तर पर उसकी नज़र गयी और उसने ताँगे वाले को ताँगा रोकने के लिए कहा।

ताँगा रुक गया तो वह एक नये उत्साह से उतरा, "तुम वापस जाओ, अख्तर साहब इन्तजार करते होंगे," उसने कहा और इससे पहले कि ताँगा मुड़ता, वह दफ्तर 'बहार' की सीढियाँ चढ़ने लगा।



अट्ठारह

उसी शाम को 'सोसाइटी फॉर यू एण्ड मी' के सारे ब्रोशर और रसीद-बुकें बगल में दबाये, पण्डित रत्न के दरवाजे पर खड़ा, चेतन जोर-जोर से किवाड़ खटखटा रहा था।

दरवाज़ा खुला। चेतन के सामने दफ़्तर के लिबास मे पण्डित जी खडे थे—वे शायद तभी दफ़्तर मे आये थे। उनके चमचमाते पम्प शू पर हल्की-सी गर्द पडी थी; शलवार-कमीज़, जो सुबह लिश-लिश किया करती थी थोडी मुचड गयी थी; माथे पर मुसद्दी साफे का कोना पसीने से ज़रा-सा भीगा हुआ था और उनके चेहरे पर दिन भर के बाद काम की थकन थी।—कद्रे हैरत और खीभ से उन्होंने चेतन को देखा कि वह उतनी उतावली में क्यों किवाड खटखटा रहा था।

लेकिन चेतन ने उस ओर ध्यान नही दिया। बिना 'नमस्ते' या 'आदाब' कहे, ब्रोशर और रसीदें उनकी ओर बढाते हुए, वह बड़बडाने लगा :

"आपके और सूफ़ी साहब के पैसो से यह सब छपा है पण्डित जी, सो इस सब को आप ही रखिए। पिछले दस दिनो मे कुल पन्द्रह रुपये चन्दा मैंने इकट्ठा किया है और सुबह से शाम तक घूमते-घूमते मेरे जूते घिस गये है। मुझे इस दौरान कुछ ज़्यादा खुशगवार तजरुबे नहीं हुए, लेकिन आज सुबह लाला जीवनलाल कपूर और महाशय धर्मचन्द ने मेरे साथ जो सलूक किया और मुझे जो ताने दिये, उनसे तो मेरा हौसला बिल्कुल पस्त हो गया है और मुझे लगा है कि यह रोग मेरे बस का नहीं। मैं चन्दे के

रुपये भी ले आया हूँ। वो भी आप अपने पास ही रखिए। मैं....''

वहीं डेवढ़ी में खड़ा, वह धारा-प्रवाह बोले चला जा रहा था कि दरवाज़ा बन्द करके और कुण्डी लगा कर पण्डित जी ने उसे दायीं बाँह के घेरे में ले लिया और अपने साथ ही आँगन मे ले आये। ''तुम यहाँ पीढ़े पर बैठो। मैं ज़रा निबट-निबटा कर आता हूँ, फिर बातें करते है।'' उन्होंने बड़े स्नेह से कहा और उसे बरबस पीढ़े पर बैठा कर, कपड़े बदलने के लिए अन्दर चले गये।

मन-ही-मन खौलता हुआ चेतन, गुम-सुम बैठा रह गया। उसने यह भी नही देखा कि बायीं ओर खुले रसोई-घर मे बैठी बीबी जी सालन पका रही हैं।

''कहो चेतन कैसे हो ?'' क्षण भर उसकी ओर चुपचाप देख कर, उन्होने मुस्कराते हुए कहा।

चौंक कर चेतन ने उन्हे 'नमस्ते' की। ''अच्छा हूँ बीबी जी,'' उसने कहा और फिर चुप हो गया।

तभी पण्डित जी कमीज-तहमद पहने, बगल में कोई मैगज़ीन दबाये अन्दर से निकले। नल से उन्होंने लोटा भरा और ऊपर चले गये।

चेतन के लिए पीढ़े पर बैठे रहना कठिन हो गया। वह उठा और आँगन मे घूमने लगा।

हालाँकि कविराज रामदास, महाशय देवदर्शन और 'तीर' जी के यहाँ भी उसे खासी कोफ़्त हुई थी, लेकिन आँसू पोछने भर को उसे चन्दा तो मिल गया था और यह सोच कर कि बीमा-एजेण्टों से उसकी स्थिति बहरहाल अच्छी है, चेतन कचोके खाने के बावजूद, उस अभियान पर साबित-कदमी से डटा रहा था। लेकिन चन्दा देना तो दूर रहा, उन दोनों महाशयों ने, जो हफ़्तावार अखबारों के मालिक और एडीटर तथा छोटे-मोटे अदबी और सोशल लीडर थे, उसके साथ कुछ ऐसा व्यवहार किया कि चेतन का खून उबल उठा था। उसने तय किया था कि रूमाल या बनियान-मोज़े बेच कर गुज़र कर लेना, सोसाइटी चलाने से कहीं बेहतर

और स्वाभिमान-भरा है ।

सबेरे से ले कर तब तक उस घटना के बारे में न जाने वह कितनी बार सोच चुका था, लेकिन पण्डित जी की प्रतीक्षा में आँगन के चक्कर लगाते हुए, वह सारी-की-सारी घटना फिर उसकी आँखों में घूम गयी ।

अख़्तर शीरानी से अपनी कामयाब मुलाकात की ख़ुशी में तांगा छोड़ कर, जब वह 'बहार' के कार्यालय की सीढ़ियों पर चढ़ा तो बरामदे में कदम रखते ही अचानक चेतन के सामने क्षण भर के लिए 'गेटी थियेटर,' शिमला की घटना कौंध गयी, जब महाशय धर्मचन्द और महाशय जीवन-लाल कपूर उससे महज़ यह सूचना पा कर कि वह शाम को इम्तियाज़ अली 'ताज' के नाटक 'अनारकली' में पार्ट कर रहा है, 'गेटी थियेटर' पहुँच गये थे । उन्होंने उसे ग्रीन रूम से बरबस बुला लिया था और उसे बाँदी का लिबास पहने और नकली छातियाँ लगाये देख कर ठहाके मारने लगे थे । चेतन, महाशय धर्मचन्द को महाशय कपूर से किसी तरह बेहतर न समझता था । फ़र्क यही था कि महाशय कपूर ठहाके लगाते थे और महाशय धर्मचन्द भद्दे-से-भद्दा मज़ाक करते हुए, केवल अपनी कानी आँख से मुस्कराते थे ।

उस घटना की याद आते ही चेतन का मन हुआ, वापस मुड़ जाय । लेकिन अख़्तर साहब के सद्व्यवहार से वह इतना उत्साहित हो आया था कि उसने उनकी फूहड़ता के लिए अपने अर्ध-चेतन में उन्हें क्षमा कर दिया था और तय किया था कि उन्हें 'सोसाइटी फ़ॉर यू एण्ड मी' का सदस्य बनने का अवसर देगा । वे सच ही सोसाइटी के सदस्य बन जायेंगे, शायद उसको विश्वास नहीं था; वह तो अपने उत्साह में अपनी कारगुज़ारी दिखाने के खयाल ही से सीढ़ियाँ चढ़ गया और जिस जोश में सीढ़ियाँ चढ़ गया था, उसी जोश में उस घटना की याद आ जाने के बावजूद, वह लौट नहीं सका और बढ़ता गया ।

लम्बा बरामदा पार कर, उसके परले कोने में मेज़ पर ही दोनों बाँहें फैलाये, एक युवक (ग़ालिबन 'बहार' का नया उप-सम्पादक) ऊँघ रहा

था। जब वह महाशय धर्मचन्द के कमरे में दाखिल हुआ तो उसका दिल धक् से रह गया। महाशय धर्मचन्द तख्त पर तकिये के सहारे पसरे हुए, हुक्के की नय मुँह में लगाये थे और उनके पास ही एक आरामकुर्सी पर 'गुरु घण्टाल' के मालिक-सम्पादक, महाशय जीवनलाल कपूर बैठे अपने ही किसी मजाक अथवा लतीफ़े पर छत-फाड़ ठहाका लगा रहे थे।

अगर उनका ठहाका निमिष भर पहले उसने बरामदे में सुन लिया होता तो अपने उत्साह के बावजूद चेतन वहीं से पलट जाता, लेकिन उसने पैर चौखट के अन्दर रख दिया था, दोनों महाशयों ने उसे देख लिया था और वापस मुड़ जाना तब उसके लिए असम्भव हो गया था।

चेतन ने एक सम्मिलित 'नमस्कार' दोनों की ओर फेंका और महाशय धर्मचन्द ने कद्रे उठ कर 'मुण्डू' को आवाज़ दी कि वह एक कुर्सी लाये।

दोबारा आवाज़ देने पर भी 'मुण्डू' नही आया। वही लड़का, जो बाहर मेज़ पर बाँहों में सिर किये, ऊँघ रहा था एक कुर्सी ला कर रख गया। गोरा-चिट्ठा और वैसा, जिसे पंजाबी भाषा मे 'लैरा' कहते हैं और उर्दू में 'नमकीन !'

'शायद यही मुण्डू है,' चेतन ने सोचा, 'या हो सकता है कि यह मुण्डू और सब-एडीटर के बीच की चीज़ हो—'गूंगा,' जिसे 'महात्मा' बनने से पहले महाशय धर्मचन्द धता बता देंगे।'

उसने एक निगाह महाशय जी के उस दफ़्तर-नुभा कमरे पर डाली। चेतन पहले भी दो-तीन बार पण्डित रत्न के साथ वहाँ आ चुका था। उसे हमेशा वह साहित्यिक साप्ताहिक के बदले किसी पुराने होटल-नुमा-ढाबे का ही दफ़्तर लगा था—सामने तख्त था, जिस पर दरी, गद्दा, एक मैला-सा खेस बिछा था और एक पिचका हुआ गाव-तकिया रखा था। उस पर बन्द गले का कोट, घुटी हुई पगड़ी और घुटन्ना पायजामा पहने, महाशय धर्मचन्द बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। यदि उनके कन्धों पर रज़ाई भी होती तो तस्वीर एकदम मुकम्मल हो जाती। यूं कमरे में दरवाज़े के दायीं तरफ मेज़-कुर्सी भी लगी थी, लेकिन महाशय धर्मचन्द जिस तरह तख़्त पर बैठ

कर कभी ढाबा चलाते थे, वैसे ही 'बहार' का सम्पादन करते थे ।

चेतन अभी कुर्सी पर बैठा भी नहीं था कि महाशय धर्मचन्द ने चहक कर कहा, "कहो भई, आज अकेले कैसे ? पण्डित रत्न ने क्या तुम्हे अकेले घूमने की इजाजत दे दी है ?"

वे अपनी कानी आँख से मुस्कराये और उन्होंने ज़ोर से हुक्के का कश खींचा । महाशय जीवनलाल ने भी दाँत चियार दिये ।

चेतन ने उनके मज़ाक का कोई उत्तर नहीं दिया । उसने एक-एक ब्रोशर दोनों महाशयों को दे दिया और मिनमिनाते हुए उसके बारे में कुछ भूमिका भी बाँधी—यह बताते हुए कि सूफी हनुमान प्रसाद, कविराज रामदास, श्री शत्रुघ्नलाल 'तीर' और जनाब अख्तर शीरानी सोसाइटी के सदस्य बन गये है ।

तभी ब्रोशर मे छपे सदस्यता-शुल्क पर नजर पड़ते ही महाशय जीवनलाल कपूर ने सिर पीछे को फेंक कर एक छत-फाड़ ठहाका लगाया, "हम लोग रुपये दे कर मेम्बर नहीं बनते," ठहाका खत्म कर के उसकी ओर मुड़ कर उन्होंने कहा, "रुपये ले कर मेम्बर बनते है ।"

और वे फिर ज़ोर से हँसे ।

"अरे यार तुम्हें चन्दे-वन्दे वसूलते फिरने की क्या ज़रूरत है ?" महाशय धर्मचन्द जैसे अपनी आँख से हँसे, "पण्डित रत्न क्या तुम्हारी खातिर सोसाइटी का सारा खर्च नहीं उठा सकते, तुम यहाँ आ जाओ तो एक क्या, हम दस सोसाइटियाँ खोल दें ।"

"पण्डित की तबियत लगता है, अपने इस यार से ऊब गयी है," महाशय जीवनलाल कपूर ने, शरारत-भरी मुस्कान को (जो उनकी आँखों से निकल कर उनके होंटों पर फैलने को व्यग्र थी) बरबस दबा कर, यथाशक्य गम्भीरता से कहा, "तभी उन्होंने इसे यह चकला खुलवा दिया है ।"

"चकला !" महाशय धर्मचन्द को हठात उनकी बात समझ में नहीं आयी ।

"अरे यह सोसाइटी चकला नहीं तो और क्या है !" महाशय कपूर के

होंट विकुंचित हो गये और उनके स्वर में एक अजानी तिक्तता आ गयी, "चकले में बेस्वाएँ अपना हुस्न दिखाती हैं, नाच-गाने से शौकीनों को लुभाती हैं और सोसाइटियों की स्टेजों पर शायर या मुग़नी[1] अपने-अपने जौहर दिखाते हैं और पैसा पाते हैं।" और जैसे उन्होंने कोई बारीक नुक्ता पेश किया हो, कुर्सी पर महाशय धर्मचन्द की ओर आगे को झुक कर, उन्होंने आँखें फैलाते हुए पूछा—"क्यों ?" और वे फिर पीछे को पसरते हुए ज़ोर से हँसे, "पण्डित रत्न अपने जिस यार को दो घण्टे के लिए नहीं छोड़ते थे, अब उसे...."

चेतन ने आगे नहीं सुना। वह झटके से उठा। उसका जी हुआ, ज़ोर का उल्टा हाथ लाला के गाल पर जड़ दे, लेकिन वैसा न कर, उसने तमक कर, ज़हर-बुझे, तीखे स्वर में कहा :

"और आप जो अखबार चलाते हैं, वह किस चकले से कम है ! लोगों के सिफ़ले[2] और सूकियाना[3] जज़्बात की तस्कीन के लिए भड़कीले, सनसनी-खेज और नंगे मजमून छापते हैं ! आप किस दल्लाल से कम हैं !"

तमंचे की गोली-ऐसा यह वाक्य उनके मुँह पर मार, बिना यह देखे कि उसके इस अप्रत्याशित विस्फोट ने उन दोनों को कैसा चकित और हतप्रभ कर दिया है, वह पलटा और तेज़-तेज़ बाहर निकल गया।

तभी महाशय धर्मचन्द हुक्के की नली छोड़ कर, तख़्त से उछले और लपक कर बाहर बरामदे में उन्होंने चेतन को जा पकड़ा :

"अरे यार, तुम मजाक का भी बुरा मान गये...."

"जाइए, आप जा कर अपना वही ज़लील ढाबा चलाइए, किस हरामज़ादे ने आपको अदबी परचा निकालने की सलाह दी है," यह कहते हुए चेतन ने ज़ोर से अपनी बाँह छुड़ा ली थी और भाग कर सीढ़ियाँ उतर आया था। नीचे सड़क पर पहुँचा तो उसकी साँस फूली हुई थी, क्रोध से

१. संगीतज्ञ [सही उच्चारण 'मुग़न्नी' है।]

२. निकृष्ट ३. बाज़ारू, अश्लील

उसका चेहरा तमतमा रहा था और वह अन्धों की तरह तेज़-तेज़ चला जा रहा था।

हाथ में लोटा लिये और बग़ल में 'कॉलियर्ज़ वीकली' का (ग़ालिबन) ताज़ा अंक दबाये, पण्डित जी ऊपर से उतरे। जब वे मैगज़ीन को पीढ़े पर फेंक कर हैण्ड-पम्प की ओर बढ़े (पण्डित जी का मकान नयी आबादी में था और वहाँ अभी म्युनिसिपल कमेटी के नल न लगे थे) तो चेतन लपक कर पहुँचा और हैण्ड-पम्प चला कर उसने वहीं रखी छोटी बाल्टी भरी। पण्डित जी नल के चबूतरे पर आ बैठे। बाल्टी से लोटा भर कर उनके हाथ धुलाता हुआ, चेतन उन्हें अपने पिछले दस दिनों के अनुभव सुनाने लगा। अन्त में महाशय जीवनलाल कपूर और महाशय धर्मचन्द वाली घटना सुना कर उसने कहा :

"ये लोग इतने फूहड़, बद-अख़लाक[1] और गँवार हैं कि उन्हें इण्टलेक्चुअल कहना उस लफ़्ज की तौहीन[2] करना है। इन लोगों के लिए आप शे'र-ो-शायरी की मजलिसें जमायेंगे।...."

चेतन धारा-प्रवाह बोले जा रहा था। पण्डित जी ने एक भी बात का जवाब नहीं दिया। पहले हाथ और फिर लोटा माँज-धो कर, मुँह पर छींटे मार, वे अपने कमरे मे गये और खूँटी से तौलिया उतार कर मुँह पोंछने लगे। चेतन उसी तरह बड़बड़ाता, उनके पीछे चला गया।

दरवाज़े के सामने ही कमरे में पण्डित जी की बड़ी लड़की दुलारी रीढ़ की हड्डी के नासूर से लाचार, पलँग पर चित लेटी थी और उसके टख़नों से ईंटें बँधी थीं। दोनों हाथ उठा कर क्षीण-सा 'नमस्कार' दुलारी ने चेतन को दिया।

"कहो दुलारी कैसी हो," पल भर रुक कर चेतन ने बरबस हल्की-सी मुस्कान होंटों पर लाते हुए कहा।

१. अशिष्ट २. अपमान

दुलारी ने कोई जवाब न दिया था। वह कैसी है, यह सवाल बेमानी था। यह तो उसे देख कर ही जाना जा सकता था।

लेकिन चेतन ने भी यह जानने के लिए प्रश्न नहीं किया था। बस यह प्रश्न करके, बिना दुलारी का उत्तर सुने, वह बदस्तूर बड़बड़ाता हुआ पण्डित जी की ओर बढ़ गया।

हाथ-मुँह पोंछ कर पण्डित जी ने शीशा-कंघी उठा कर बाल बनाये और फिर चेतन के दोनों कन्धों को बायें हाथ मे घेरे, वे उसे बाहर ले आये।

और अब चेतन का खयाल था कि वे उससे कुछ कहेंगे, पण्डित रत्न ने उसे दोनों बाँहों से थाम कर पीढ़े पर बैठा दिया और बोले :

"बैठो, मैं आज आलू-बुखारे डाल कर कीमे के कोफ़्ते बनाने जा रहा हूँ। खाना खा कर चलेंगे और बात करेंगे।"





उन्नीस

पण्डित रत्न से मिल कर आने के बाद, दूसरी सुबह चेतन ने सबसे पहला काम यह किया कि अन्दर के कमरे से अपनी पुरानी खड़खड़िया साइकिल निकाली। ट्यूबें पिचकी हुई और टायर ज़ख्मी थे। चढ़ना उस पर सम्भव नहीं था। उसकी मरम्मत और ओवरहालिंग कराने के खयाल से, वह उसे लगभग उठाये हुए इब्राहीम मिस्त्री की 'वर्कशॉप' पर पहुँचा।

चेतन की साइकिल हरक्युलीज़ थी। काफ़ी मज़बूत, लेकिन चेतन ने उसे एफ़० ए० मे ख़रीदा था और तब से निरन्तर उसे चलाता आ रहा था। न केवल उसके कल-पुर्ज़े ढीले पड़ कर जवाब दे गये थे, चेन-कवर चेन से लड़ता हुआ बड़ी भद्दी, कर्कश आवाज़ करता था; फ्री ह्वील और हैण्डल की गोलियां घिस गयी थीं, बल्कि उसके टायर और ट्यूबें भी जवाब दे गयी थीं और गद्दी सूख-पिचक कर लोहा बन गयी थी और उसके चूतड़ों में गड़ती थी। यही वजह थी कि पिछले अभियान पर वह पैदल ही लाहौर की सड़कें नापता फिरा था और बेतरह थक गया था। पण्डित जी ने उसे सलाह दी थी कि वह सबसे पहले अपनी साइकिल बनवाये। रात भर उनकी बातों पर विचार करने के बाद अन्ततः उसने उनका परामर्श मानने का फ़ैसला कर लिया था।

मिस्त्री इब्राहीम, 'काने मिस्त्री' के नाम से प्रसिद्ध था। कारण यह कि उसकी बायीं आँख में बड़ा-सा फूला था। 'वर्कशॉप' उसकी, एक कोठरी भर थी, लेकिन कब्ज़ा उसने सड़क के आर-पार पूरी धरती पर कर रखा था। चेतन जब भी रत्नचन्द रोड से गुज़रता था, एक नज़र उधर ज़रूर

डालता—दुकान के अन्दर तो इतना मैला-कुचैला सामान था कि दुकान और भी अँधेरी लगती थी और चेतन उधर देख कर भी, न देखता था। हाँ, दुकान के बाहर एक मैली-सी बेंच पर, अपनी कानी आँख, चेचक-मारे चेहरे और मोटी-सी तोंद लिये हुए, सिर्फ़ मैले तहमद और बनियान में बैठा इब्राहीम उसका ध्यान खींच लेता था। बदसूरती में जो विकर्षण-भरा आकर्षण होता है, वही उस काने मिस्त्री को देखते हुए चेतन को बाँध लेता।

लेकिन इब्राहीम मिस्त्री का भाईवाल, 'सींकिया उस्ताद' भी कम दर्शनीय नहीं था। बहुत लम्बा और पतला-दुबला, उसकी कमीज़ के गिरेबान से उसके सीने की हड्डियाँ दिखायी देती थीं। तिस पर उसने मूँछें बढ़ा रखी थीं। नाम तो उसका उस्मान था, पर सब उसे 'सींकिया उस्ताद' कहते थे। कभी जब तोंदियल इब्राहीम की जगह वह उस बेंच पर बैठा होता, तब भी चेतन उस तरफ़ देखे बिना न रहता। कभी जब दुकान पर वे दोनों होते तो चेतन मन-ही-मन बचपन में माँ से सुनी हुई कहावत दोहरा लेता :

रब रलाई जोड़ी

इक अन्हा, इक कोढ़ी

इब्राहीम मिस्त्री दुकान पर नहीं थे। न 'सींकिया उस्ताद' ही अभी आये थे। दो लौंडे सड़क के किनारे, किसी साइकिल के अंजर-पंजर ढीले किये, उससे जूझ रहे थे। पूछने पर मालूम हुआ कि इब्राहीम थोड़ी देर में आ जायेंगे। वहीं दुकान के तख्ते से साइकिल टिकाये, चेतन उनकी प्रतीक्षा करने लगा। उसके दिमाग़ में पिछली शाम पण्डित जी से होने वाली बात-चीत फिर घूमने लगी और वह मन-ही-मन उनकी सलाह पर ग़ौर करता हुआ, अपना अगला कार्यक्रम पक्का करने लगा।

०

पण्डित रत्न सिल-बट्टे पर कीमा पीस कर, एक-एक आलू बुख़ारा डाल, बूँदी के लड्डुओं-ऐसे कोफ़्ते बनाते और उन्हें घी में तलते रहे थे। चेतन इस बीच लगातार सोसाइटी के सदस्यता-अभियान-सम्बन्धी अपने कटु

अनुभव बताता और कविराज, 'तीर' जी, महाशय देवदर्शन, लाला जीवन-लाल और महाशय धर्मचन्द को मल्लाहियाँ सुनाता रहा था; लेकिन जब तक पण्डित जी घर पर रहे, उस सिलसिले में उन्होंने एक बात भी नहीं की। चेतन को अपने साथ खाना खिला कर, कपड़े बदल, दो घण्टे बाद जब वे घर से बाहर निकले थे तो सड़कों पर बत्तियाँ जल चुकी थीं।

अपनी आदत के अनुसार पण्डित रत्न चुपचाप चलते हुए, पूरी शीश-महल रोड पार कर आये थे। हो सकता है, वे मन-ही-मन चेतन की समस्या का समाधान भी सोच रहे हों, लेकिन बात उस सिलसिले में उन्होंने कोई नहीं की। रावी रोड पार करते ही वे चेतन की ओर मुड़े थे और उन्होंने कहा था : "देखो चेतन, तुमने पूछा नहीं और मैंने बताया नहीं, लेकिन पण्डित 'शाहीं' ने तुमसे ठीक ही कहा है—वरनेक्यूलर प्रेस में काम करने वालों को मिलता ही क्या है, जो उसमें से पाँच रुपया महीना वो अपनी कल्चरल भूख मिटाने के लिए दे दें। अपने और अपने बीवी-बच्चों के पेट की भूख मिटाना उनके मुकद्दम[1] है, लेकिन इसमें भी कोई शक नहीं, कि लोगों की कल्चरल भूख मिटाने का आर्ट भी उनके पास है। उन्हीं में शायर हैं, उन्हीं में अफ़साना-निगार और मुगन्नी[2]। सो, तुम चन्दा तो उन लोगों से लो, जिनकी जेबें भरी हैं और सोसाइटी के जलसों में बुलाओ उन लोगों को, जिनकी जेबें ख़ाली हैं और दिल-दिमाग़ भरे हैं।"

"लेकिन पण्डित जी, फिर 'पंजाब लिट्रेरी लीग' और हमारी सोसाइटी में फ़र्क ही क्या रहा ?" चेतन ने आपत्ति की थी।

"फ़र्क यह रहा," पण्डित रत्न ने बड़े धैर्य से समझाया, "कि 'लिट्रेरी लीग' ऊँचे तबके वालों की अंजुमन है और उन्हीं लोगों के पैसे से, उन्हीं लोगों की दिलचस्पी का सामान जुटाती है, जबकि हमारी सोसाइटी चन्दा तो लेगी धनी-मानी लोगों से, लेकिन मन बहलायेगी हम-जैसे लोगों का, हम-जैसे लोगों के ज़रिये।—मेम्बरशिप-फ़ीस लिये बिना, यार-दोस्तों को बुलाया जायगा और उनका कलाम सुना-सुनाया जायगा।"

---

१. पहली शर्त, अनिवार्य २. संगीतज्ञ

और चेतन सोचने लगा कि यह बात उसे पहले क्यों नहीं सूझी ? वह दो-ढाई बरसों से लाहौर के पत्रकारों में काम कर रहा था, क्या वह उनकी माली हालत से वाकिफ़ नही था ? फिर क्यों वह अपनी मूर्खता मे उनके पास चन्दा लेने गया ?....शायद 'तीर' जी के यहाँ सफलता पाने पर वह इस बात को भूल ही गया था कि वे महज़ पत्रकार नही है, पत्र के मालिक है और शेष पत्रकारों के यहाँ उन जैसी आर्थिक क्षमता नहीं।....सोचने पर उसने यह भी पाया कि महाशय देवदर्शन और अख्तर शीरानी भी पत्रिकाओं के मालिक ही थे, मुलाज़िम नही। और मन-ही-मन अपने इस भोलेपन पर वह हँसा था।

तब उसने पण्डित जी से कहा था कि बड़े लोगों की कोठियां तो लॉरेंस बाग से परे, मज़ंग या टेम्पल रोड पर, नहर के किनारे या मॉडल टाउन मे है, वह उन सब से कैसे सम्पर्क कायम कर सकेगा, उसकी साइकिल ठीक होती तो कोई मुश्किल न थी, लेकिन अब....

"तुम अपनी साइकिल ठीक क्यों नहीं कराते ?" उन्होंने पूछा था।

"साइकिल बहुत ख़राब हो गयी है पण्डित जी," चेतन ने कहा था, "पूरी तरह ठीक कराने में आठ-दस रुपये उठ जायेंगे।"

"तो चन्दे के जो पन्द्रह रुपये तुम्हारे पास है, उनमे से पहले अपनी साइकिल ठीक करवाओ, फिर इस मुहिम पर निकलो। पैदल तो तुम दिन भर मे एक कोठी का भी चक्कर नहीं लगा पाओगे। ताँगे का इस्तेमाल करोगे तो पूरा चन्दा ताँगे वालों ही की नज़र हो जायगा। सोसाइटी के पैसों में से पहले अपनी साइकिल बनवाओ, फिर लिस्ट बना कर रोज एक तरफ़ निकलो और चार-पांच लोगों से मिलो; तुम्हे यकीनन कामयाबी हासिल होगी !"

लेकिन सोसाइटी के चन्दे को अपने ऊपर खर्च करने में चेतन को कुछ झिझक थी।

पण्डित जी उसके संकोच पर हँसे थे। "तुम यार अजीब आदमी हो," उन्होंने कहा था, "तुम कोई सरमायेदार नहीं हो कि शौक या वक्त-कटी के लिए सोसाइटियाँ चलाते फिरो। दिन भर सोसाइटी का काम

करोगे और पाँच-दस रुपये अपने ऊपर खर्च कर लोगे तो कौन-सी कयामत टूट जायगी ! मैंने तो यह सोसाइटी खोलने की तजवीज़ ही इसलिए रखी है कि तुम्हारी रोज़ी-रोटी की सबील हो जाय और एक नेक काम भी हो सके। मैंने तो बल्कि यह कहा था कि जब सोसाइटी चलने लगे तो तुम सेक्रेट्री के तौर पर बाकायदा तनख्वाह ड्रॉ करो।''

''सोसाइटी चलने लगती और इतना रुपया आ जाता कि उसका खर्च निकाल कर मेरे लिए कुछ बच जाता तो मुझे तनख्वाह लेने में भी कोई एतराज़ न होता, लेकिन अब....'' चेतन ने अपने संकोच का कारण बताना चाहा था।

''तो अब तुम भूखे रह कर, पैदल सारे लाहौर की गर्दिश करोगे !'' पण्डित जी अपनी वही बारीक और विशिष्ट हँसी हँसे थे और उन्होंने उसकी बात काट दी थी, ''तब चल चुकी सोसाइटी ! मियाँ, अपनी साइ-किल बनवाओ, सोसाइटी के लिए चन्दा इकट्ठा करो और अगर दो-चार रुपये इस सिलसिले में अपने ऊपर खर्च करने पड़ें तो मत झिझको। तुम्हे कोई कुछ न कहेगा, इसका मै ज़िम्मा लेता हूँ।''

चेतन आश्वस्त हो गया था और पण्डित जी को वापस घर छोड़ कर, जब वह लौटने लगा तो उसने चुपचाप सोसाइटी के ब्रोशर और रसीद-बुकें उठा लीं, जो उसने क्रोध में पण्डित जी के घर पटक दी थीं।

रास्ते भर वह अपना अगला कार्यक्रम बनाता आया था। उसने तय किया था कि वह सभी कवि-कथाकारों के पास जायगा, सोसाइटी की सभाओं मे शामिल होने और उसके कार्यक्रमों में योग देने का वचन उनसे लेगा, पर तब तक किसी को सदस्य नहीं बनायेगा, जब तक कि कोई खुद ही इस बात की इच्छा प्रकट न करे। रही चन्दे की बात, तो चन्दा वह उन्हीं से माँगेगा, जिन्हें पाँच रुपये देना ज़रा भी न अखरे।

रात जब वह घर पहुँचा था तो सोने से पहले उसने दो सूचियाँ बनायी थीं—एक उर्दू-हिन्दी के अदीबों और साहित्यकारों की और दूसरी उन लोगों की, जिन तक वह पहुँच सकता था और उम्मीद कर सकता था

कि वे सोसाइटी के सदस्य अथवा सरपरस्त बन जायेंगे—इस दूसरी सूची में सबसे ऊपर उसने अपने पुराने मालिक-मकान, सरदार जगदीश सिंह (लैण्ड लॉर्ड एण्ड हाउस प्रोप्राइटर) का नाम रखा था।

o

दो दिन मिस्त्री के सिर पर खड़े हो कर चेतन ने अपनी साइकिल की पूरी मरम्मत करा ली थी और तीसरे दिन, सुबह नाश्ते के वक्त ही खाना खा कर, सोसाइटी की रसीद-बुक और परिपत्र उसने साइकिल की टोकरी में रखे और नये उत्साह से अपने पुराने मकान-मालिक से मिलने, चंगड़ मुहल्ले चल दिया।

नौकर बाज़ार गया हुआ था। सरदारनी ने सीढ़ियों का दरवाज़ा खोला। चेतन ने 'सतश्री अकाल' बुलाया तो सरदारनी उसके आगे-आगे चलती, सरदार साहब के कमरे तक गयी और बरामदे ही में उसने सूचना दी कि चेतन जी आये हैं।

सरदार जगदीश सिंह (लैण्डलॉर्ड एण्ड हाउस प्रोप्राइटर) सूट-बूट पहने, टाई लगाये और दस्तार सजाये, दोनों हाथ सिर के नीचे रखे हुए, काउच पर दराज थे। लगता तो यही था कि वे किसी गहरी सोच में ग़र्क हैं, लेकिन चेतन जानता था कि वे घण्टों कुछ भी सोचे बिना, इसी तरह पसर रह सकते हैं। उनके मुख पर वही घनी-काली दाढ़ी थी, जिसमें आँखों के सिवा कुछ भी दिखायी न देता था। उसे डोरी या ठाठे से बाँधने की तकलीफ़ सरदार साहब ने कभी न उठायी थी। उतना तरद्दुद उनके बस का न था। शुक्र था कि उनकी दाढ़ी लम्बी नहीं थी और एक घनी झाड़ी की तरह उनके चेहरे पर फैली हुई थी। अजीब बात यह है कि उस वक्त, जब उनके पूरे चेहरे पर उस झाड़ी के सिवा कुछ भी दिखायी न देता था, उस पर कुछ अजीब-सी मूर्खता स्वतः विद्यमान थी।

सरदारनी ने जब उन्हें चेतन के आने की सूचना दी और चेतन ने बरामदे ही से 'सतश्री अकाल' कहा तो 'आइए....आइए!' कहते हुए, सरदार जगदीश सिंह उचक कर उठे और सीधे हो बैठे।

चेतन उनके सामने काउच पर जा बैठा और उसने उनका हाल-चाल पूछा।

उन्होंने बताया कि वाहे गुरु की कृपा से उनके हाल-चाल 'चौ-चक' है। उनके मित्रों की कृतघ्नता से जितनी जायदाद उनके हाथ से निकल गयी थी, उनके लावारिस चाचा के देहान्त पर, उससे कहीं ज्यादा उन्हें विरसे में मिल गयी है :

"मान्नूँ बई, वाहे गुरु दा हुक्म है कि असीं डक्का न तोड़िए ते ऐश लइए! ताँ असी ओहदा हुक्म दिलो-ने-जान नाल वजा छड्डना ए[1]।"

और यह कह कर सरदार जगदीश सिंह (लैण्ड लॉर्ड एण्ड हाउस प्रोप्राइटर) अपनी घनी, काली दाढ़ी में पूरी बत्तीसी दिखाते हुए, निहायत बेतुकेपन से हँसे।

क्षण भर के लिए चेतन को उनकी बात सुन कर बेहद गुस्सा आया और एक बड़ी-सी गाली मन-ही-मन उन्हें देते हुए उसने सोचा—'ओए टोडी दे बच्चे, शुकर कर कि तूँ अंग्रेज़ दे राज विच्च मौजाँ मान रिआ ऐं। किते जनता दा सच्चा राज हुन्दा ते तेरे जहे बदकाराँ, बेकाराँ ते हरामखोराँ नूँ सुअर पालन और खेत जोतन ते लगा दित्ता जान्दा। तेरी सारी चर्बी पिघल जान्दी अते तेरा वाहे गुरु तेरी ज़रा भी मदद न कर सकदा[2]।'

....और उस क्षण उसे अपने ऊपर भी ग्लानि हुई कि वह किस कुचक्र में पड़ गया है, जो उस मूर्ख के आगे हाथ पसारने आया है। लेकिन दूसरे

---

१. हमें भाई, वाहे गुरु का आदेश है कि हम तिनका न तोड़ें और ऐश करें और हमें दिलोजान से उसका हुक्म बजा देना है।

२. अरे सरकार के ख़ुशामदी (टोडी-बच्चे) शुक्र कर, तू अंग्रेज़ के राज्य में मौज मना रहा है, यदि कहीं जनता का सच्चा राज्य होता तो तेरे जैसे बदकारों, बेकारों और हरामख़ोरों को सुअर पालने और खेत जोतने पर लगा दिया जाता। तेरी सारी चर्बी पिघल जाती और तेरा वाहे गुरु तेरी ज़रा भी मदद न कर सकता।

ही क्षण उसने अपने आपको सँभाल लिया और 'सोसाइटी फॉर यू एण्ड मी' का ब्रोशर उनके हाथ मे देते हुए, उसकी योजना और उद्देश्य बताये और अपने आने का मन्तव्य प्रकट किया।

सरदार जगदीश सिह (लेण्डलॉर्ड एण्ड हाउस प्रोप्राइटर) ने बडे ध्यान से ब्रोशर पढने की कोशिश की, फिर उस प्रयत्न मे असफल रह कर, उसे एक ओर रख दिया और पूछा कि कौन-कौन उसके मेम्बर और सर-परस्त बने है ?

चेतन ने सोत्साह बताया कि साहित्यकारो मे, मशहूर रोमानी शायर अख्तर शीरानी और प्रसिद्ध कथाकार श्री देवदर्शन और पण्डित रत्न मेम्बर बन गये है, 'मस्ताना जोगी' के एडीटर सूफी हनुमान प्रसाद सरपरस्त तथा प्रसिद्ध वैद्य कविराज रामदास मेम्बर बने है। (श्री शत्रुघ्नलाल 'तीर' का नाम वह जान-बूझ कर टाल कर गया, क्योकि वे क्रान्तिकारी कहे जाते थे और राजनीति मे भाग लेने वालो के प्रति सरदार जगदीश सिह के भय से वह परिचित था।) हाँ, उसने इस बात का जरूर जिक्र किया कि वह राजा महेन्द्रनाथ तथा प्रसिद्ध उद्योगपति लाला हरकिशन लाल इत्यादि के यहाँ जायगा। बडे लोगो मे तो वह सबसे पहले उन्ही के पास आया है।

प्रकट ही चेतन की अन्तिम बात से सरदार जगदीश सिह बहुत प्रसन्न हुए, लेकिन सहसा कुछ गम्भीर होने का प्रयास कर, उन्होने कहा कि उनके चाचा की वसीयत तो पढ ली गयी है, लेकिन अभी उसके मुताबिक जाय-दाद का बटवारा नही हुआ और रुपया उनके हाथ मे नही आया, इसलिए वार्षिक या आजीवन सरपरस्त तो नही, फिलहाल वे साधारण सरपरस्त बन जाते है, बाद मे वार्षिक और आजीवन सरपरस्त भी बन जायेंगे। और उन्होने जेब से दस-दस के दो नोट निकाल कर चेतन की ओर बढाये कि अभी तो वह उन दोनो पति-पत्नी को सोसाइटी का साधारण सरपरस्त बना ले।

चेतन ने रुपये उनसे ले कर जेब के हवाले किये और उन्हे धन्यवाद देते हुए खुश-खुश रसीदे काटने लगा।

तब सरदार जगदीश सिंह (लैण्डलॉर्ड एण्ड हाउस प्रोप्राइटर) ने हठात कहा कि भई, यह शायरी-वायरी तो ठीक है, पर आप सोसाइटी की तरफ़ से कभी-कभार सोशल गैदरिंग भी रखा करो; हल्की चाय-काफ़ी पर दोस्तों से मेल-मुलाकात हो जाय, इसका इन्तज़ाम ज़रूर करो। हम जैसे लोगों को रखोगे तो हमारी दिलचस्पी का भी कोई प्रोग्राम आपको रखना होगा। इधर तो कुछ लड़कियाँ बहुत अच्छा गाने-नाचने लगी हैं। उनमें से कुछ को सोशल गैदरिंग में बुलाओ।....

सहसा चेतन को वह घटना याद आ गयी, जब उसके इस भूतपूर्व लैण्ड लॉर्ड ने मेहमानों की एक पार्टी पर उससे अपनी पत्नी को गाने के लिए भेजने की फ़रमायश की थी और चेतन उन पर बहुत बिगड़ा था... उस बात की याद आते ही चेतन का जी हुआ कि ये बीस रुपये उस 'लैण्ड लॉर्ड एण्ड हाउस प्रोप्राइटर' के मुँह पर दे मारे और कहे कि वह एक कल्चरल सोसाइटी खोलने जा रहा है, कोई चकला नहीं।....लेकिन कहा उसने कुछ नहीं। निमिष भर वह, काली झाड़ी में चमकती हुई उन आँखों में झलकती, अपार मूर्खता और हवस को देखता रहा, फिर उसने सिर्फ़ इतना कहा, "आप सोसाइटी में दिलचस्पी लेते रहेंगे तो मैं बड़ी-से-बड़ी सोशल गैदरिंग का इन्तज़ाम कर दूँगा।"

उसने रसीदें काट कर सरदार साहब की ओर बढ़ा दी और फिर एक बार धन्यवाद देता हुआ उठ खड़ा हुआ।

तभी सरदार जी ने, आँखों में मुस्कराते और तनिक झिझकते हुए, सरगोशी में पूछा कि क्या वह श्रीमती राधारानी को भी सदस्य बनायेगा?

चेतन क्षण भर के लिए फिर उन्हें देखता रह गया था। उनकी आँखों में वह मूर्खता-भरी लोलुपता और भी उभर आयी थी और उस क्षण चेतन के सामने वह सारी घटना घूम गयी थी, जब उनके मित्रों ने श्रीमती राधारानी को उनकी ओर से कीमती उपहार देने के बहाने, उनकी कोठियाँ बिकवा दी थीं....और चेतन की आँखों में शरारत की चमक कौंध गयी :

"आप कहें तो मैं जाऊँ उनके यहाँ," उसने कहा, "और उन्हें मेम्बर

बनाने की कोशिश करूँ ।"

"आप उसे मेम्बर बना लाओ तो मै वादा करता हूँ कि मै चार सरपरस्त आपको और दूगा ।" सरदार जगदीश सिह ने अपने-जाने लुकमा दिया ।

"मै जाऊँगा," चेतन ने कहा और कुछ सोचने का अभिनय-सा करते हुए बोला, "लेकिन मै उन्हे जानता हूँ, चन्दा देने के मामले मे.. ."

"चन्दे-वन्दे की आप परवाह न करो," उन्होने जेब मे पाँच रुपये का एक नोट निकाल कर उसकी ओर बढाते हुए कहा, "उसका चन्दा मै देता हू । आप उसे मेम्बर बना लो । हाँ, वह आपकी मीटिगो मे आ जाय, इसके लिए आप कोशिश करो ।"

"इस तरफ से आप निशाखातिर रहे," चेतन ने नोट ले कर जेब के हवाले करते और रसीद काटते हुए कहा "मै सिर्फ इन्वीटेशन कार्ड ही उनको नही भेजूंगा, खुद जा कर बुला भी आऊँगा ।"

सरदार जगदीश सिह (लेण्ड लॉर्ड एण्ड हाउस प्रोप्राइटर) खुश हो गये और उनकी आखो मे कुछ अजीब-सी चमक आ गयी । जोश और खुशी मे हाथ मलते और कमरे मे चक्कर लगाते हुए वे चेतन के अस्तित्व को एकदम भूल गये और शायद उतने भर मे, कल्पना-ही-कल्पना मे राधारानी के साहचर्य का सुख पाने लगे ।

चेतन पूर्ववत चुपचाप खडा उन्हे देखता रहा, फिर उसने उनकी तल्लीनता भंग करते हुए कहा, "अच्छा सरदार जी, सतश्री अकाल ! आपका बहुत-बहुत शुक्रिया, अब मुझे इजाजत दीजिए ।'

सरदार जगदीश सिह चौके । पलटे । उन्होने बडी गर्म-जोशी से उससे हाथ मिलाया और उसे सीढियो तक छोडने आये ।

जब सीढियाँ उतर और नीचे का अपेक्षाकृत अँधेरा बरामदा पार कर, चेतन बाहर आया तो कुछ क्षण साइकिल थामे, वही चकित-सा खडा रहा । वह

पन्द्रह दिन लाहौर के तूल-अर्ज[1] मे जरीबकशी[2] करता रहा था और उसे कुल पन्द्रह रुपये चन्दा प्राप्त हुआ था। यहाँ पन्द्रह-बीस मिनट मे उसने पच्चीस रुपये हथिया लिये थे। उसे जैसे अपनी सफलता पर विश्वास न हो रहा था। लेकिन पच्चीस रुपये उसकी जेब मे थे और रसीद-बुक उसके हाथ मे थी। चेतन ने उसे परिपत्र के साथ साइकिल की टोकरी मे डाल दिया और कुछ अजीब हल्केपन के एहसास से, दाये हाथ मे साइकिल का बायाँ हेण्डल थामे, पैदल ही चलने लगा। धीरे-धीरे आश्चर्य की जगह, एक व्यंग्य-भरी मुस्कान उसके होंटो पर फैल गयी—'हरामजादा,' उसने मन-ही-मन अपने उस पुराने लेण्डलॉर्ड और हाउस प्रोप्राइटर को गाली दी, 'समझता है कि मै कल्चरल सोसाइटी नही, क्लब खोलने जा रहा हू। कभी-कभार सोशल गैदरिंग भी रखा करो' उसने मन-ही-मन सरदार जगदीश सिह की नकल उतारी। 'साला सोशल गदरिंग का!' वह मन-ही-मन बमका, 'तेरे जैसो को तो सोसाइटी के अहाते मे पॉव नही रखने देना चाहिए। सोशल गैदरिंग के लिए 'फिरंगी लीग' ही क्या कम है। मै क्या दलाल हूँ, जो तेरे जैसे निठल्ले मूर्खो की दिलचस्पी का सामान जुटाता फिरूँगा!'.. और उसने तय किया कि वह न राधारानी से मिलने जायगा न उन्हे पत्र लिखेगा। वह सोसाइटी चलायेगा तो ऊँचे दर्जे की, नही तो किनारा कर लेगा। और झटके मे उसने साइकिल को अपनी ओर खीचा, उस पर सवार हुआ और फर्राटे मे उड चला।

लेकिन ला कालेज रोड की कच्ची, अन-भरी ढलान उतरते-न-उतरते उसकी चाल धीमी हो गयी। उसकी सारी खुशी और उत्साह तिरोहित हो गया। 'पण्डित रत्न की सलाह मान कर किस चक्कर मे फस गया हू?' उसने हठात सोचा क्या इस तरह रोजी-रोटी का जुगाड करने की बनिस्बत अनारकली मे रूमाल बेच कर, मेहनत और दयानत से जरूरत भर के लिए

---

१. लम्बाई-चौड़ाई २. पैदल घूमता रहा था। पुराने जमाने मे पटवारी, खेतो को मापने के लिए जरीब (लोहे की पतली जंजीर) लिये, पैदल घूमा करते थे।

चन्द टके कमा लेना बेहतर नही !'....

वास्तव मे, कविराज के साथ शिमले मे गुजारे गये तीन महीनों ने चेतन का सारा भोलापन उससे छीन लिया था। वह पहले की अपेक्षा सतर्क हो गया था। सामने वाले के प्रकट रूप के पीछे छिपे परोक्ष रूप को भी वह देखने लगा था और कविराज ही से नही, उसने जिन्दगी से भी समझौता करना सीख लिया था—इस सिलसिले मे पिता की नसीहतों का खज़ाना उसके पास था। अपने भावो को छिपाना और मुँह-देखी बात करना वह सीख रहा था, लेकिन दुनिया के साथ चलने की इस कोशिश में, हर कदम पर, माँ से पायी नैतिकता उसके मार्ग की बाधा बन जाती थी और उसकी सजग आत्मा का काँटा उसे बेतरह चुभने लगता था।....इसमें कोई सन्देह नही कि दो वर्ष पहले वह इस तरह सरदार जगदीश सिह के यहाँ चन्दा लेने गया होता और उन्होंने राधारानी वाला फ़हड़ प्रस्ताव उससे किया होता तो वह बीस रुपये उनके मुँह पर मार कर उठ आता और फिर कभी उनके यहा न जाता...लेकिन अब वह पुराना भोला-भाला चेतन था नहीं। उनकी फूहडता और लोलपता को जानने के बावजूद, वह उनके यहाँ गया था और अपने अर्ध-चेतन मे शायद इसीलिए उसने उनका नाम अपनी सूची मे सबसे पहले रखा था। पच्चीस रुपये की तो नही, पर दस रुपये मिलने की आशा उसे जरूर थी।

लेकिन उस वक्त, धीरे-धीरे कचहरी रोड पर साइकिल चलाते हुए, यह प्रश्न उसे बेतरह कचोट रहा था कि इस तरह लोगों से रुपया ऐंठना, नीलामकारों से कमीशन लेने से कैसे भिन्न है ?..वह सरदार जगदीश सिह जैसे मूर्खो से रुपया लेगा, लोगों का मनोरंजन जुटायेगा और इस सब के लिए खुद भी कुछ पायेगा !—फर्क बस यही था कि नीलामकार गरीब मूर्खों की जेबें काटते थे, वह अमीर मूर्खों की जेबे काटेगा।

अपनी सोच मे गर्क चेतन, एक दूसरे साइकिल वाले से भिड़ कर गिरता-गिरता बचा। वह साइकिल से उतर गया और उसने वैसे ही उसका हैण्डल दायें हाथ से थाम लिया और कचहरी रोड के किनारे-किनारे चलता

हुआ, फिर अपने विचारों में गर्क हो गया। एक बगूला-सा उसके मन में उठता कि एक ही झटके से वह क्यों न इस कुचक्र से निकल जाय और रोज़ी-रोटी और लॉ कॉलेज का दाख़िला जुटाने का कोई दूसरा उपाय सोचे, लेकिन फिर उसका अहं, बरसात की बड़ी-बड़ी बूँदों की तरह, अपने तर्कों से, उसके मन में उठने वाले इस बगूले को बैठा देता—वह इस अभियान से किनारा कर लेगा तो कविराज को क्या जवाब देगा, पण्डित रत्न को कैसे मुँह दिखायेगा ! मूर्ख और असफल कहलाना उसके अहं को स्वीकार नहीं था....सोच-सोच कर उसने एक राह निकाल ली। उसने तय किया कि सरदार जगदीश सिंह अथवा इसी तरह के लोगों से पाये हुए रुपयों का एक पैसा भी वह अपने ऊपर खर्च न करेगा और उसे सोसाइटी के काम में लगायेगा। जो लोग सोसाइटी के उद्देश्यों को जान-समझ कर चन्दा देंगे, उनके रुपयों ही से वह अपने लिए कुछ स्वीकारेगा। उसने यह भी तय किया कि उसके अनुभव कितने भी कटु क्यों न हों, उसने जिन लोगों की सूचियाँ बनायी हैं, उन सभी से वह मिलेगा। इस तमाम भाग-दौड़ में उसे कुछ भी हासिल न हुआ तो बेशकीमती अनुभव ही प्राप्त होंगे। इतने लोगों के मनोविज्ञान से वह परिचित हो जायगा। वह कथाकार है। अपनी कहानियों के लिए उसे अपरिमित सामग्री मिलेगी।

और जैसे दुगुने उत्साह से चेतन ने साइकिल को अपनी ओर खींचा और झटके से उस पर सवार हो कर, तेज़-तेज़ भाई साहब के क्लिनिक की ओर बढ़ गया।

आत्म-वंचना आदमी को कैसे-कैसे भुलावे दे कर ठगती है, तब चेतन यह नहीं जानता था। निर्द्वन्द्व हो कर, वह सीटी बजाता हुआ साइकिल उड़ाये जा रहा था। क्लिनिक पर पहुँच कर, उसने दुकान की सीढ़ियों से साइकिल टिकायी और परम उत्साह से खट-खट सीढ़ियाँ चढ़ गया।

भाई साहब पार्टीशन के पिछले हिस्से में हाउस-कोट पहने हुए, स्टूल पर बैठे, सेट बना रहे थे। वहीं खड़े-खड़े चेतन ने उन्हें अपनी कारगुज़ारी सुनायी और कहा था कि अब सोसाइटी के कायम होने और चलने में कोई

सन्देह नही। सरदार जगदीश सिह मे मिल कर अब वह टेम्पल रोड पर लाला हरकिशन लाल और राजा महेन्द्रनाथ मे मिलेगा और वहाँ से मियाँ बशीर अहमद, एडीटर 'हुमायूँ' के जायगा और भगवान ने चाहा तो उन सब को सरपरस्त बना कर ही लौटेगा।

"भाई साहब अगर आपके दो-चार ऐसे पेशेण्ट्स हो" अपनी बात खत्म कर चेतन ने कहा, 'जिनके पास सोसाइटी के सिलसिले मे आप मुझे जाने की सलाह दे सके, तो जरूर बतायें! मै उनसे मिलूँगा।"

"तुमने पहले नही कहा" भाई साहब ने हाथ का काम रोक, सिर उठा कर, उसकी ओर देखते हुए कहा 'अभी दस मिनट पहले नहर डिपार्टमेण्ट के सुपरिण्टेण्डेण्ट, लाला हाकिमचन्द आये थे। वो अच्छी तनख्वाह पाते है और तुम कोशिश करो तो शायद वो मेम्बर बन जायें।"

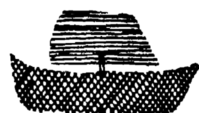
जरा उनका पता लिखाइए!" चेतन ने जेब से छोटी-सी डायरी निकाली, जिसमे पतली-सी गुलाबी पेंसिल लगी थी।

लेकिन भाई साहब के पास उनका पता नही था। उन्होने कहा कि हाकिमचन्द फिर अपनी माँ के दाँतो का सेट बनवाने आयेंगे तब वे उनका पता नोट कर लेगे।

'अगर आप कर सके तो बातो-बातो मे मेरा जिक्र कर रखिएगा" चेतन ने अनुरोध किया, 'सोसाइटी का जिक्र आप भले न कीजिएगा, पर यह जता दीजिएगा कि आपका छोटा भाई मशहूर जर्नलिस्ट और शायर है, नज्मे लिखता है, कहानिया लिखता है, वगैरा-वगैरा . इतना आप कर देगे और पता दे देगे तो परी को शीशे मे उतारना मेरा काम है...."

और वह हँसता हुआ पलट कर दुकान से निकल आया था। साइकिल उसने उठायी थी और सीटी बजाता हुआ, लाला हरकिशन लाल और राजा महेन्द्रनाथ से मिलने, मजग की ओर चल दिया था।



बोस

राजा महेन्द्रनाथ और लाला हरकिशन लाल की कोठियाँ एक ही सड़क पर थीं। पहले लाला की और फिर राजा की। लाला पंजाब के प्रसिद्ध उद्योगपति थे और राजा सरकार से खिताब-याफ्ता रईस। दोनों पढ़े-लिखे थे, विलायत घूमे हुए थे और दोनों थोड़ा-बहुत राजनीति में दखल रखते थे अथवा यूँ कहा जाय कि लाहौर के ऊँचे हलकों में विशेष स्थिति रखने के कारण, हर महत्वपूर्ण राजनीतिक विषय पर, लाहौर के (विशेषकर हिन्दू) दैनिक उनकी राय जानना और अपने विशेषांकों में छापना जरूरी समझते थे। वे न कांग्रेस के विरोधी थे, न सरकार के। यह भी कहा जा सकता है कि वे कभी-कभार सरकार का विरोध भी करते थे और कांग्रेस का भी। विचारों में वे लिबरल थे और सप्रू-जयकार गुट से सम्बन्ध रखते थे। इस नाते कांग्रेस के लिए भी उपयोगी थे और सरकार के लिए भी।

दो वर्ष पहले (जब चेतन 'बन्दे मातरम' में नया-नया गया था और अनुवाद करने में पारंगत न होने के कारण, रिपोर्टरी करता था) एक शाम वह राजा महेन्द्रनाथ से इण्टरव्यू लेने इधर आया था। उसके सम्पादक, महाशय धनपत राय, बी० ए० (नेशनल) ने उनसे टाइम लिया था और चिट पर उनका पता लिख कर उसे भेज दिया था। वह राजा साहब से पहले कभी न मिला था; न उसने उनका चित्र ही देखा था और न वह उनकी कोठी पहचानता था। उसने तो उस सड़क पर भी उससे पहले कदम न रखा था। हुनर साहब मज़ंग रोड पर रहते थे और 'बन्दे मातरम' के अपने शुरू

के दिनों में, उनके यहाँ कुछ दिन रहने के कारण वह मज़ंग तक कई बार आया था, लेकिन लाहौर तो उससे भी मीलों आगे तक फैला हुआ था और बड़े लोगों की कोठियाँ, शहर की भीड़-भाड़ से दूर, शान्त और एकान्त जगहों में बनी थी। ..सर्दियों की शाम थी और खूब धुन्ध छायी थी। सड़क की रोशनी, खम्भों पर लगे बल्वों के गिर्द, छोटे-छोटे वृत्तों में सिमट कर रह गयी थी। चार गज आगे कुछ दिखायी न देता था। चेतन साइकिल से उतर गया था और सड़क के किनारे-किनारे कोठियों की नेम-प्लेटें पढ़ने की कोशिश करता, चला जा रहा था। तभी एक लम्बी चारदीवारी के बाद (जो एकदम अँधेरे का अंग बन चुकी थी) दो ऊँचे, गोल स्तम्भ उसे धुन्ध में से सहसा उभरते दिखायी दिये थे।—बहुत ऊँचे, मोटे, गोल स्तम्भ! 'ज़रूर ही राजा साहब की कोठी है,' चेतन ने मन-ही-मन सोचा (वह राजा महेन्द्रनाथ को किसी रियासत का राजा समझता था)। बिना किसी दुविधा के, वह अन्दर चला गया था। काफ़ी दूर चलने पर उसे कोठी का सिर्फ़ लम्बा-सा बरामदा दिखायी दिया था, जिसमें मद्धिम रोशनी छन रही थी। उसके परे, बन्द दरवाज़ों के शीशों से (अन्दर लगे पर्दों के कारण) और भी मद्धिम रोशनी झिलमिला रही थी। अचानक बरामदे में बँधे दो कुत्ते ज़ोर से भूँक उठे थे। चेतन जहाँ-का-तहाँ खड़ा रह गया था। उसका दिल ज़ोर-जोर से धड़क उठा था। तभी एक साया-सा बरामदे की तरफ़ से उसे अपनी ओर आता दिखायी दिया। निकट आने पर मालूम हुआ कि चौकीदार है।

"राजा साहब ने मुझे टाइम दिया है, मैं 'बन्दे मातरम' के दफ़्तर से आया हूँ। उन से इण्टरव्यू लेना है।" चेतन ने एक ही साँस में कहा था।

चौकीदार विमूढ-सा खडा रहा था। फिर उसने कहा था—"राजा साहब—कौन राजा साहब?"

"राजा महेन्द्रनाथ।"

"यह लाला हरकिशन लाल की कोठी है।" और वह मुड़ चला था।

चेतन ने एक कदम बढ कर उससे कहा था कि वह पहले कभी उधर

नहीं आया और चौकीदार मेहरबानी करके उसे ज़रा राजा महेन्द्रनाथ की कोठी बता दे।

तब चौकीदार ने मुड़ कर यूं ही अँधेरे में हाथ बढा दिया था कि राजा साहब की कोठी आगे है, बायी ओर पाँचवीं !

चेतन उसका बहुत-बहुत शुक्रिया अदा करते हुए मुड़ा था।

और लाला हरकिशन लाल से अपने परिचय के बल पर नहीं, उनकी कोठी के इसी परिचय के बल पर ही चेतन ने उनका नाम अपनी लिस्ट मे शामिल कर लिया था और बड़े इत्मीनान से सोसाइटी के सिलसिले में उनसे मुलाकात करने चला आया था।

सर्दियों की धुन्ध-भरी शाम के अँधेरे में जिस कोठी की सिलहूत भी चेतन को ठीक से दिखायी न दी थी, दिन की रोशनी में उसकी भव्यता मे चेतन अभिभूत रह गया। गेट के स्तम्भ बहुत ऊँचे और गोल तो थे ही, लेकिन उन पर बड़ी ख़ूबसूरत उभारदार धारियाँ बनी थी। चेतन कुछ क्षण वहीं खड़ा, उन ऊँचे स्तम्भों और उनके परे उस भव्य, दोमंज़िली कोठी को देखता रहा। फिर वह आगे बढ़ा। वह बरामदा, जो उस शाम के अँधेरे में उसे ठीक से दिखायी न दिया था, दिन की रोशनी में संगमरमरी स्तम्भों और काले-सफ़ेद संगमरमर के चौकोर टुकड़ों वाले फ़र्श के साथ आँखो को चौंधिया रहा था। फ़र्श के सफ़ेद ही नहीं, काले टुकड़े भी धूप में लिश्कते और आँखों में चकाचौंध पैदा करते थे। बरामदे मे अन्दर के कमरों को जो दरवाज़े खुलते थे, उन पर आप-से-आप बेआवाज़ बन्द हो जाने वाले, जालीदार किवाड़ लगे थे। सामने दीवार के साथ बीचों-बीच एक ख़ूबसूरत हैट-स्टैण्ड पड़ा था, जिसमे चौकोर शीशा लगा था कि आगन्तुक हैट या छड़ी टाँगें तो शीशे मे एक नज़र डाल कर बाल या टाई सँवार लें। स्तम्भों के मध्य, छत से, जालीदार गमले लटक रहे थे, जिनमे रंग-बिरंगे फूल खिले थे। हैट-स्टैण्ड के पास स्टूल पर एक बावर्दी चपरासी बैठा था।

साइकिल को बरामदे से काफ़ी इधर खड़ा करके चेतन ने बढ़ कर उससे कहा कि वह डेली 'बन्दे मातरम' का एक्स-सब-एडीटर है और लाला हरकिशन लाल से मिलना चाहता है।

हैट-स्टैण्ड की खूंटी से एक रेशमी डोरी के सहारे कुछ स्लिपें टँगी थीं। बिना उठे, हाथ बढ़ा कर चपरासी ने एक स्लिप नोची और चेतन से कहा कि उस पर नाम और काम लिख दे।

चेतन क्षण भर सोचता रहा, फिर उसने अपना नाम लिखा। उसके नीचे 'जर्नलिस्ट एण्ड स्टोरी राइटर' लिख दिया। काम उसने नहीं लिखा। वह चपरासी को चिट देने ही वाला था कि फिर कुछ सोच कर उसने तीसरी पंक्ति में लिखा—'एक्स-सब-एडीटर डेली बन्दे मातरम एण्ड एडीटर वीकली भूँचाल[1]।'

यद्यपि चेतन की दृष्टि में सर्जक-कवि-कथाकार, किसी पत्रकार की अपेक्षा कहीं ऊँचा था, पर वह जानता था कि आम लोगों में उसकी कोई वकअत नहीं। रहे पूँजीपति, तो वे कवियों और कथाकारों के बदले पत्रकारों को ज़्यादा महत्व देते हैं। काम का चेतन ने उल्लेख नहीं किया। 'चन्दा माँगना भी कोई काम है कि उसका ज़िक्र किया जा सके,' वह मन-ही-मन हँसा और स्लिप उसने चपरासी को दे दी।

चपरासी अनिच्छापूर्वक उठ कर, (कि वह लिफ़ाफा देख कर मज़मून भाँपने वाले अनुभवी लोगों में से था) स्लिप लिये हुए, बायें कमरे में चला गया और चेतन बरामदे के स्तम्भ से पीठ लगाये, चपरासी की बेरुखी पर उसे मन-ही-मन गरियाता हुआ, वह बातचीत दोहराने लगा, जो वह लाला हरकिशन लाल से करने जा रहा था। चेतन कभी लाला जी से मिला न था, लेकिन उसने दो-तीन बार उनका फ़ोटो अखबार में देखा था—मंझला कद; दोहरा, गठा बदन; गोल चेहरा; छोटी, लेकिन गहरी आँखें; बड़ी-बड़ी, रोबदार, नुकीली मूँछें; बड़े गोल सिर पर सफ़ाई से सँवरे बाल; शरीर

---

१. भूतपूर्व उप-सम्पादक दैनिक 'बन्दे मातरम' तथा सम्पादक साप्ताहिक 'भूँचाल'।

पर अचकन और चूड़ीदार पायजामा—उस चित्र से आत्म-विश्वास और शक्ति जैसे फूट रही थी। चेतन को भय था कि वह उनके सामने अपनी बात कह भी पायगा या नहीं। वह उनसे अंग्रेज़ी में बात करेगा या पंजाबी में ? कमरे में दाखिल होते ही 'गुड मॉर्निंग सर' कहेगा या 'नमस्ते लाला जी।'....पहले उसने तय किया कि वह 'गुड मॉर्निंग' कहेगा और चूँकि अंग्रेज़ी में बात करने का ज़्यादा रोब पड़ता है, इसलिए अंग्रेज़ी ही में बात करेगा। अगर वे अंग्रेज़ी में उत्तर देंगे तो वह अंग्रेज़ी मे बात करता चला जायगा; वे एक वाक्य भी पंजाबी में बोलेंगे तो वह फ़ौरन पंजाबी में बात करना शुरू कर देगा....लेकिन फिर उसने सोचा कि लाला जी कोई सरकारी अफ़सर नहीं हैं, स्वतन्त्र उद्योगपति हैं और अपने लिबरल राजनीतिक दृष्टिकोण के बावजूद, दबंग और प्रसिद्ध हैं, पंजाबी हैं और वह खुद भी किसी दफ़्तर में क्लर्क नहीं, राष्ट्रीय दैनिक के सम्पादन-विभाग में काम करता रहा है और स्वतन्त्र पत्रकार है; वह क्यों अंग्रेज़ी मे बात करे ? वह सीधे पंजाबी मे बात करेगा। उसे अपनी बात कहने मे आसानी भी होगी। लाख वह बी० ए० पढ़ा हो और फ़र्राटे से अंग्रेज़ी बोल सकता हो, लेकिन जो भाव वह पंजाबी में व्यक्त कर सकता है, अंग्रेज़ी में तो नहीं कर सकता....वह इसी उधेड़-बुन में था कि चपरासी ने आ कर उसे संकेत किया कि अन्दर जाय।

धड़कते हुए दिल के साथ, ब्रोशर और रसीद-बुक हाथ मे लिये, दरवाज़ा खोल कर और यह देख कर कि वह बन्द हो गया, चेतन अन्दर गया। लाला हरकिशन लाल के कमरे की बजाय चपरासी ने उसे उनके मैनेजर अथवा सचिव के कमरे में भेज दिया था, क्योंकि दायीं ओर मेज़ पर जो व्यक्ति, सूट-बूट में लैस, बैठा था, वह लाला हरकिशन लाल नहीं था। उस व्यक्ति की मेज़ के सामने दो छोटी मेज़ों पर टाइपिस्ट और क्लर्क बैठे थे और बायीं ओर दीवार के साथ (कदाचित आगन्तुकों के लिए) काउच का सेट लगा था। 'मुझे यहीं बैठ कर लाला जी से मिलने की प्रतीक्षा करनी होगी,' चेतन ने मन-ही-मन कहा और एक चोर-दृष्टि

काउच पर डाली।

"कहिए !" मैनेजर-नुमा उस व्यक्ति ने किंचित रूखे, आदेशात्मक लहजे में कहा।

चेतन ने फिर अपनी सब-एडीटरी और एडीटरी का हवाला दिया और कहा, "मैं ज़रा दो मिनट के लिए लाला जी से मिलना चाहता हूँ।"

"काम बता दें तो मैं जा कर आपके लिए वक्त ले दूँ। लाला जी बिजी हैं।"

तब चेतन ने अपने आने का मन्तव्य बताया और सोसाइटी का ब्रोशर उसे दिया।

सेक्रेट्री या मैनेजर—जो भी वह था—बिना उसे काउच पर बैठने का संकेत दिये—अन्दर चला गया। कुछ मिनट बाद, वह तेज़-तेज़ वापस आया और मेज़ के साथ लगी, स्टील-कैबिनेट का एक दराज़ खोल, उसमें से एक फ़ाइल ले कर, तेज़-तेज़ अन्दर चला गया। पाँच मिनट गुज़रे, दस मिनट गुज़रे, पन्द्रह मिनट गुज़रे। चेतन खड़े-खड़े थक गया। उसका जी हुआ, चुपचाप काउच पर बैठ जाय, लेकिन उसे साहस नहीं हुआ। हालाँकि उसने वही सूट पहन रखा था, जो उसने गत वर्ष सिलवाया था, लेकिन बराबर पहनने के कारण उसकी सूरत बिगड़ गयी थी। वह चुपचाप खड़ा रहा।

तभी मैनेजर वापस आया। बिना चेनन की ओर देखे, अपनी कुर्सी पर बैठ गया। और दराज़ से दस रुपये का नोट निकाल कर उसने चेतन की तरफ़ बढ़ा दिया।

"लाला जी ने आपकी सोसाइटी के लिए गुड-विशेज़ भेजी है !" उसने अंग्रेज़ी में कहा।

क्षण भर के लिए चेतन को लगा, लाला जी ने उसे अन्दर न बुला कर और वहीं से चन्दा भिजवा कर, उसका अपमान किया है; कि उसका अपमान एक कवि और कथाकार का अपमान है और उसे कुछ ऐसा करना चाहिए, जिससे उन्हें अपनी ग़लती महसूस हो....लेकिन फिर उसे ख़याल

आया कि उसने जो चिट भेजी थी, वह तो मैनेजर के पास ही रह गयी; लाला जी को क्या मालूम कि शहर का एक नामी युवक-शायर और अफ़साना-निगार उनसे मिलने आया है !....यह खयाल आते ही चेतन ने एक कहर-भरी नज़र मैनेजर पर डाली, जो उसे नोट दे कर अपने काम में लग गया था ।

चेतन को पहले तो ग़ुस्सा आया कि क्यों उसकी चिट उस नामाकूल ने लाला जी को नहीं दी । फिर यह सोचने पर कि उस मुलाकात की अग्नि-परीक्षा से गुज़रे बिना, वह चन्दा पा गया है, उसे ख़ुशी भी हुई । उसने नोट उठा कर जेब मे रख लिया और मैनेजर के झुके हुए सिर को 'थैंक्स' कहा ।

"रसीद आप देंगे ?" सहसा मैनेजर ने फ़ाइल से सिर उठा कर कहा ।

'स्साला !' चेतन ने मन-ही-मन कहा, 'कैसे विज़ी होने की ऐक्टिंग कर रहा था, समझता है कि मैं कोई उठाईगीर हूँ, जो चन्दा ले कर सरक जाऊँगा ।' वह जल्दी से बोला, "हाँ-हाँ, रसीद-बुक मै साथ लाया हूँ ।"

और उसने रसीद काट कर मैनेजर की ओर बढायी और कहा कि वे उसकी ओर से लाला जी का शुक्रिया अदा करें और उनसे अनुरोध करें कि अपने अत्यधिक व्यस्त समय से वक्त निकाल कर, वे सोसाइटी की किसी-न-किसी मीटिंग में ज़रूर आयें ।

और तभी न जाने मन में क्या आयी कि उसने कहा : "चूंकि सोसाइटी के जलसों पर काफ़ी खर्च होगा, इसलिए बिना धनी-मानी लोगों की सरपरस्ती के, काम नहीं चल सकता, लेकिन दरअसल सोसाइटी मिडल-क्लास इण्टलेक्चुअल्ज़ के लिए है, इसका नाम—'सोसाइटी फ़ॉर यू एण्ड मी'—ही बताता है कि सोसाइटी हमीं लोगों के लिए है, आपके और मेरे लिए, लाला जी कृपा कर इसके सरपरस्त बन गये है, मै आपसे रिक्वेस्ट करूँगा कि आप कम-से-कम इसके मेम्बर ज़रूर बनिए ।"

मैनेजर ने रसीद चेतन से ले ली, उसे फ़ाइल करते हुए वह एकटक चेतन की ओर देखता रहा; उसके होंटों पर एक अत्यन्त व्यंग्य-भरी, क्षीण मुस्कान खेल गयी । फिर उसने फ़ाइल बन्द करते हुए कहा, "जाइए, मेरा

श्रौर श्रपना वक्त न बर्बाद कीजिए !"

चेतन को लगा, यह व्यक्ति सरासर उसका श्रपमान कर रहा है। उसके जी में श्रायी, उससे कहे कि साले, दिन भर जी-हुजूरी करने के सिवा तुझे श्रौर काम ही क्या है ! दिन भर किसी उद्योगपति की जूतियाँ सीधी करने को तू बड़ा भारी काम समझता है ? लेकिन क्रोध को दबा कर खिसियानी-सी हँसी के साथ उसने कहा. "श्राप चन्दा नहीं देना चाहते तो कोई बात नही, लेकिन श्राप सोसाइटी की मीटिंग्ज़ में ज़रूर श्राइएगा, मै श्रापको इन्वीटेशन भेजूंगा !"

श्रौर हाथ को माथे की श्रोर ले जाते हुए, बिना होंटों से एक शब्द भी कहे, वह मुड़ा श्रौर दरवाज़ा खोल कर स्टूल पर बैठे चपरासी की श्रोर 'श्रच्छा भई नमस्ते' फेंक कर, बरामदे के बाहर श्रा गया। उसने साइकिल उठायी, झटके से उस पर बैठ गया श्रौर दूसरे चरण गोली की तरह ऐसे उड़ चला, जैसे उसे कोई पकड़ने श्रा रहा हो।

o

जब उसकी साइकिल की चाल ज़रा धीमी हुई तो उसके कानों में श्रपना वाक्य गूंज गया : 'श्राप सोसाइटी की मीटिंग्ज़ मे ज़रूर श्राइएगा, मैं श्रापको इन्वीटेशन भेजूंगा।' प्रकट ही श्रपनी झेंप को कम करने के लिए, बिना सोचे-समझे, उसने वह बात कही थी, वरना जिस व्यक्ति का नाम श्रौर काम उसे मालूम नही, उसे वह इन्वीटेशन कैसे भेजता ! वह श्रपनी मूर्खता पर हँसा, लेकिन उस कठिन स्थिति से यूँ निकल श्राने पर, मन-ही-मन उसने श्रपनी पीठ ठोंकी।... फिर उसका क्रोध उस मैनेजर पर उतरा—'मै बेकार ही उसके सूट से रोब खा गया,' वह सोचने लगा, 'मैनेजर नही, वह ज़रूर ही लाला जी का सेक्रेट्री होगा, वरना क्या पांच रुपये भी न देता—जाइए, मेरा श्रौर श्रपना वक्त न बर्बाद कीजिए'—उसके शब्द तीर की तरह चेतन की स्मृति को भेद गये—'स्साला, वक्त न बर्बाद कीजिए का,' दाँत पीसते हुए, वह भुनभुनाया, 'जैसे लालाजी के सारे कार-खाने तेरे जैसे चपड़कनाती के बल पर ही तो चल रहे हैं....'

लेकिन तभी वह राजा महेन्द्रनाथ के बँगले पर पहुँच गया और लाला हरकिशन लाल के उस घटिया मुलाज़िम को मल्लाहियाँ सुनाने में दिमाग़ ख़राब करने की बजाय, उसने राजा साहब से अपनी मुलाकात पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया।

चेतन राजा महेन्द्रनाथ से दो बार पहले भी मिल चुका था। एक बार गोल-मेज़ कॉन्फ़रेन्स के सिलसिले में उनका मत जानने के लिए और दूसरी बार हरिजन आन्दोलन के बारे में होने वाले पैक्ट पर उनका वक्तव्य लेने के लिए। चेतन जब नया-नया लाहौर आया था, उसने दो-तीन बार उनके वक्तव्य अख़बारों में पढ़े थे और उसे वे काफ़ी सन्तुलित लगे थे। उनका चित्र कहीं भी उसकी नज़र से न गुज़रा था और जब दो-चार बार वह नाम उसके सामने आया तो राजसी वेश-भूषा में सुसज्जित, दोहरे बदन का कोई पैंतालिस-पचास का व्यक्ति उसकी कल्पना में उभरा—बड़ी-सी पगड़ी पर कलग़ी लगाये, रेशमी कुर्ते और चूड़ीदार पायजामे पर ज़री का चोगा सजाये, कमर में पेटी से सुनहरी मूठ वाली तलवार लटकाये और कीमती रेशमी मोज़े और ज़री के कामदार जूते पहने—अपने सिंहासन पर विराज-मान! फिर वह सोचता कि सिंहासन पर बैठा राजा, पॉलिटिकल वक्तव्य नहीं देता और वह चूड़ीदार पायजामे, अचकन और कलग़ीदार पगड़ी में या आधुनिक सूट-बूट पहने, राजनीति में दख़ल रखने वाले किसी राजा की कल्पना करता।....इसीलिए जब वह पहली बार उनसे मिला था तो अपनी कल्पना के विपरीत, घुटन्ने पायजामे, कुर्ते-जैकेट और नफ़ीस टोपी में मलबूस, पतले-छरहरे, गोरे-चिट्टे, पचपन-साठ बरस के एक नाज़ुक बुज़ुर्ग को देख कर चकित रह गया था। उसके सम्पादक, लाला धनपत राय (बी० ए० नेशनल) ने उसे आठ-साढ़े आठ बजे उनसे मिलने को कहा था और उस धुन्ध-भरी शाम में लाला हरकिशन लाल की कोठी में भटक कर और वहाँ के चौकीदार से पता ले कर, जब वह उनकी छोटी-सी कोठी में पहुँचा था तो कोठी और उसके मालिक, दोनों को देख कर उसे निराशा

हुई थी ।

छोटे-से बरामदे में जा कर, जब उसने कॉल-बेल का बटन दबाया तो अन्दर गैलरी से एक युवक आया था और उसे ड्राइंग-रूम मे ले गया था और चेतन ने राजा महेन्द्रनाथ को एक आराम-कुर्सी पर, पशमीने का धुस्सा अपने घुटनों पर लिये, अपनी प्रतीक्षा करते हुए पाया था। तब उसे वे राजा नहीं, राजा का ख़िताब पाये हुए कोई रईस लगे थे।

लेकिन जब उन्होंने वक्तव्य दिया था (चेतन जल्दी-जल्दी लिखता गया था) तो उनके स्वर का ठहराव और माधुर्य उसे अच्छा लगा था—वह वक्तव्य किसी रियासती राजा का वक्तव्य नही था; एक सुलझे हुए, बौद्धिक व्यक्ति का वक्तव्य था। उनका नफ़ीस पहरावा और सन्तुलित विचार, दोनों बार चेतन को अच्छे लगे थे। दोनों ही बार कुल-मिला कर, उन्होंने महात्मा गान्धी का पक्ष लिया था। चेतन को पूरा विश्वास था कि वे उसकी सोसाइटी में दिलचस्पी लेंगे और सोसाइटी के सरपरस्त बन जायेंगे। वे शहर में कई सभा-सोसाइटियों से सम्बन्धित थे और चेतन की इच्छा थी कि वे उसकी सोसाइटी की बैठकों को भी सुशोभित करें। मन में कहीं उसने यह भी सोच रखा था कि वह उन्हें अपनी सोसाइटी का सभापति बनायेगा।

आसमान बिल्कुल साफ़ था। राजा साहब की कोठी सड़क के किनारे, ज़रा नीची जगह बनी थी। गेट के बाद सीमेण्ट का एक पक्का रास्ता, छोटे-से चौकोर लॉन के ऊपर से हो कर, बरामद को जाता था। दायी ओर लगे, यूक्लिप्टस के पेड़ की परछाईं सीमेएट के उस मार्ग को पार करती हुई, बायीं ओर के कटे-छँटे लॉन पर पड़ रही थी। लॉन के किनारे लगी हुई छोटी मेहँदी बढ़ आयी थी, और उसमें कहीं-कहीं ऊदे फूल झलक रहे थे।

चेतन ने साइकिल को सीमेएट के रास्ते पर खड़ा किया और गेट को बन्द करके, साइकिल थामे, बरामदे की ओर बढ़ा। गेट से बरामदे तक जाते-जाते, उसने मन में दोहरा लिया कि वह पिछली दोनों बार की तरह

'वन्दे राजा साहब' कह कर उनका अभिवादन करेगा और बिना टाइम लिये चले आने पर क्षमा-याचना करता हुआ, सोसाइटी की बात उनके सामने रखेगा और इच्छा व्यक्त करेगा कि यदि वे उसके सभापति होना स्वीकार करें तो उसे खुशी होगी। (उसे पूरा विश्वास था कि पण्डित रत्न को इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी।)....और साइकिल बरामदे के पास टिका कर उसने परम उत्साह से कॉल-बेल का बटन दबाया। अन्दर की गैलरी से वही युवक आया, जिससे चेतन परिचित था, क्योंकि पहले दोनों अवसरों पर वही उसे ड्रॉइंग-रूम में ले गया था। चेतन ने बड़े उत्साह से, परिचितों की-सी भंगिमा में, उसे 'नमस्ते' की।

पहले दोनों अवसरों पर जब वह आया था, उसने उस युवक को न 'नमस्ते' की थी, न उसका कोई नोटिस ही लिया था। दोनों बार उसके सम्पादक ने उसे समय ले दिया था, राजा साहब उसकी प्रतीक्षा में बैठे मिले थे और सिर्फ़ यह बता देने पर कि वह 'बन्दे मातरम्' से आया है, युवक उसे अन्दर ले गया था। फिर वह पत्र-प्रतिनिधि की हैसियत से वहाँ आया था और यद्यपि राजा साहब का वक्तव्य उसे अपने पत्र के लिए चाहिए था, लेकिन उसके छपने से जितना लाभ पत्र को पहुँचता, उससे कम उनकी पब्लिसिटी न होती और दोनों बार चेतन के व्यवहार में आत्म-विश्वास और कद्र जोम था। लेकिन इस बार स्थिति में थोड़ा अन्तर था। पहली बात तो यह थी कि वह लगभग डेढ़ वर्ष बाद उधर आया था, फिर वह 'बन्दे मातरम' को छोड़ चुका था और अपने काम से आया था, इसलिए युवक उसे पहचान जाय, अचेतन में यही सोचते हुए, उसने उसे 'नमस्ते' की थी।

लेकिन उस युवक ने, न उसके उत्साह की ओर ध्यान दिया, न उसकी 'नमस्ते' की ओर, और पूछा कि उसे क्या काम है?

'इस अरसे में शायद यह मुझे भूल गया है,' चेतन ने मन में खुद को तसल्ली दी, 'इसे अपनी याद दिलानी पड़ेगी।' लेकिन उसने कहा इतना ही, "मुझे राजा साहब से सिर्फ़ पाँच मिनट के लिए मिलना है।"

"राजा साहब बारह बजे के बाद नहीं मिलते। ठीक एक बजे खाने पर बैठ जाते है। क्या आपने उनसे टाइम लिया है ?"

अपनी आवाज़ को यथाशक्य सहज बनाते हुए चेतन ने कहा, "मुझे सिर्फ़ पाँच ही मिनट उनसे बात करनी है, एक बजने में तो अभी वक्त है। मै जल्दी मे टाइम नही ले सका।" वह क्षण भर रुका, फिर उसने कहा, 'शायद आप भूल गये है। मैं पहले भी दो बार उनसे इएटरव्यू लेने आ चुका हूँ। आप जा कर उनसे इतना कह दो कि डेली 'बन्दे मातरम' वाले चेतन जी आये हैं। सिर्फ़ दो मिनट चाहते है। राजा साहब वक्त देंगे, मिल लूँगा; न वक्त देंगे, चला जाऊँगा।"

युवक ने एक तेज़, उपेक्षा-भरी दृष्टि उस पर डाली और वापस गैलरी मे ग़ायब हो गया।

चेतन को उसकी वह दृष्टि अच्छी नही लगी। उसे हैरत हुई कि पहली दो बार उस युवक ने वैसा बेरुखी का व्यवहार क्यों नहीं किया। चेतन के सामने आईना होता तो उसे इसका कारण मालूम हो जाता। वह ऊपरी उत्साह, जिससे उसने कॉल-बेल का बटन दबाया था और युवक को 'नमस्ते' की थी, उसके बिना जाने, उसके चेहरे से तिरोहित हो गया था और उसकी जगह कुछ अजीब-सी दयनीयता ने ले ली थी।...उसका दिल धड़कने लगा....वह युवक उसे राजा साहब से मिलायेगा या नहीं ?....उससे ग़लती हो गयी, उसे पत्र लिख कर अथवा बँगले पर पहले आ कर टाइम ले लेना चाहिए था। लेकिन हो सकता है, वे पत्र का उत्तर न देते और सिर्फ़ टाइम लेने के लिए तीन मील की मंज़िल मारना उसके बस में नहीं था। चेतन ने मन-ही-मन तय किया कि अगर राजा साहब ने वक्त न दिया तो वह युवक से यही कहेगा, उसे फिर किसी दिन के लिए पांच मिनट ले दे। वह टाइम ले लेगा, लेकिन फिर कभी उनसे मिलने नही आयेगा....

हालाँकि युवक को गये मुश्किल से दो मिनट हुए होंगे, लेकिन चेतन को लगा, जैसे बहुत देर हो गयी है। वह बेचैनी से बरामदे में घूमने लगा।....वहीं चक्कर लगाते हुए उसने यह भी तय किया कि अगर राजा

साहब ने उसे न पहचाना अथवा जरा भी रुखाई का व्यवहार किया तो वह सोसाइटी की बात नहीं चलायेगा। यही कहेगा कि वह उधर से गुज़रा था, उसने सोचा कि राजा साहब के दर्शन करता चले....

लेकिन तभी ड्रॉइंग-रूम का दरवाज़ा खुला और उस युवक ने कहा कि वह अन्दर आ कर बैठे, राजा साहब आ रहे हैं।

चेतन ड्रॉइंग-रूम में जा कर बिल्कुल उसी कुर्सी पर बैठ गया, जिस पर वह पिछली दो बार बैठा था। लेकिन पहले अवसरों पर उसे इर्द-गिर्द देखने का समय न मिला था, बैठते ही वह इण्टरव्यू लेने लगा था और उसके बाद तत्काल उठ आया था। इस बार ड्रॉइंग-रूम खाली था और चेतन अनचाहे भी उसे देखने लगा।....उसके उस्ताद किसी अच्छे शे'र की बहुत प्रशंसा करते तो कहते थे कि वह सादा और पुरकार है—चेतन को वह ड्रॉइंग-रूम भी किसी सादा और अर्थ-भरे शे'र ही-सा लगा।—सामने बिछे दीवान, उसके झालरदार रेशमी कवर और उस पर लगे रेशमी तकियों में; उसके इर्द-गिर्द रखी आराम-कुर्सियों और उनकी रेशमी गद्दियों में; कोनों में छोटी कश्मीरी मेज़ों पर सजी, महात्मा गान्धी और महात्मा बुद्ध की मूर्तियों में या दरवाज़ों के कीमती पर्दों में—कहीं भी ऐसा कुछ न था, जो देखने वाले को आतंकित करता अथवा खटकता हो—हालाँकि वह जानता था कि कमरे की हर चीज़ कीमती है। तभी उसने सोचा, कभी उसके पास पैसा आया तो वह अपना ड्रॉइंग-रूम ऐसे ही सादा और पुरकार तरीके से सजायेगा....

एक नज़र ड्रॉइंग-रूम पर डाल कर, अन्दर से आने वाले दरवाज़े की ओर निगाहें जमाये, चेतन चुपचाप राजा साहब के आने की प्रतीक्षा करने लगा। वह चाहता था कि राजा साहब आ जायँ, वह अपनी बात कह दे और चाहे वे सरपरस्त बनें या न बनें, उसके दिमाग़ का तनाव मिट जाय।—वास्तव में उस युवक ने अपने रूखे व्यवहार से उसे कुछ अजीब-सी मनःस्थिति में डाल दिया था—वह उत्साह और आत्म-विश्वास, जो कोठी में प्रवेश करते ही उसके मन में था, एक शंका-भरी उत्सुकता में

बदल गया था। बैठे-बैठे उसे घबराहट होने लगी थी और उसका जी हो रहा था कि उठे और कमरे ही में दो-एक चक्कर लगाये....

लेकिन तभी राजा साहब अन्दर के दरवाज़े का पर्दा उठा कर आ गये। उन्होंने नफ़ीस कुर्ता, तंग घुटन्ना पायजामा और जैकेट पहन रखी थी और उन सब पर एक रेशमी ड्रेसिंग-गाउन पहने थे।

चेतन कुर्सी से उठा और उसने उन्हें 'आदाब अर्ज़' कहा ('बन्दे' कह कर उनका अभिवादन करने की बात वह यक्सर भूल गया।)

राजा साहब बैठे नहीं। दरवाज़े के पास ही खड़े-खड़े, उन्होंने कुछ ऐसी निगाहों से उसकी ओर देखा, जैसे पहचान तो रहे हों, लेकिन यह न जान पा रहे हों कि उसे कहाँ देखा है ?

चेतन ने ज़रा आगे बढ कर अपना परिचय दिया और कहा कि वह दो बार पहले भी उनसे मिल चुका है और 'बन्दे मातरम' के लिए इण्टर-व्यू ले चुका है।

राजा साहब की आँखों में पहचान की निश्चयात्मकता और होंटों पर मुस्कान आ गयी। वैसे ही खड़े-खड़े उन्होंने पूछा :

"कहिए कैसे हाल-चाल है आपके अखबार के ? कैसा चल रहा है आजकल ?"

"जैसा कि नेशनल अखबार चल सकता है," चेतन ने स्वर को यथा-सम्भव सहज बनाते हुए कहा, "इश्तहार तो मिलते नही। घाटे पर चलता है, फिर मालूम नहीं कब सरकार जमानत माँग ले या बन्द कर दे।"

वह क्षण भर रुका। फिर उसने कहा, "लेकिन मैंने तो 'बन्दे मातरम' छोड़ दिया है।"

राजा साहब ने आँख उठा कर एक प्रश्न-भरी दृष्टि उस पर डाली।

"दिन-रात काम करने से मेरी सेहत खराब हो गयी थी," चेतन ने सफ़ाई दी, "लाहौर के मशहूर वैद्य, कविराज रामदास मुझे शिमला ले गये थे। उनके लिए एक पुस्तक लिखी, 'वीर भारत' और 'भूँचाल' में कुछ दिन काम किया, सोचता हूँ, इस सितम्बर में लॉ कॉलेज मे दाखिला ले

लूं...."

राजा साहब चुप रहे। चेतन भी तत्काल कुछ न कह सका। कमरे मे एकदम खामोशी छायी रही।

राजा साहब न स्वयं कुर्सी पर बैठे, न उन्होंने चेतन को बैठने के लिए कहा। शायद वे अन्दाज़ा लगाने की क़ोशिश कर रहे थे कि लड़का क्या चाहता है। हालाँकि चेतन ने यह सोचा था कि यदि उसके साथ अच्छा व्यवहार न किया गया तो सिर्फ़ दर्शन करने की बात कह कर लौट आयेगा, लेकिन वह उस क्षण की अचकचाहट मे यह भी भूल गया और उसी तरह खड़े-खड़े, उसने सोसाइटी का ब्रोशर उन्हे देते हुए, अपनी बात कहनी शुरू की।

राजा साहब का सुन्दर मुख हल्का-सा तन गया; उनके माथे पर तेवर पड़ गये; सहसा उसकी बात काट कर उन्होंने कहा, "आपको किसी ने कहा नही कि मैं बारह बजे के बाद नहीं मिलता!"

"कहा था," चेतन के स्वर में उसके अजाने ही कुछ अजीब-सी गिड़-गिड़ाहट आ गयी, "लेकिन मैं बहुत दूर से आया हूँ, लाला हरकिशन लाल हमारे सरपरस्त बन गये है, मैंने सोचा, आपकी ख़िदमत में भी हाज़िर होता चलूं।"

राजा साहब ने कोई उत्तर नही दिया। खड़े-खड़े, उन्होंने एक सर-सरी नज़र ब्रोशर पर डाली और फिर बिना कुछ कहे, मुड़ कर जैसे आये थे, वैसे चले गये।

चेतन विस्तार से सोसाइटी के उद्देश्यों और उन उद्देश्यों के कारण बौद्धिक वर्ग को जो 'लाभ' होने वाला था, उसकी चर्चा करना चाहता था, लेकिन उन्होंने अवसर ही नही दिया। वह उसी तरह खड़ा था। उसे यही लगा कि अचानक कुछ याद आने पर राजा साहब अन्दर चले गये हैं और वह इस प्रतीक्षा में था कि वे वापस आ जायँ तो वह अपनी बात आगे बढ़ाये।

लेकिन राजा साहब वापस नहीं आये। वही युवक आया। उसने पाँच

रुपये का एक नोट उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा कि राजा साहब को ख़िज़िर हयात खाँ टिवाना से मिलने जाना है, वे खाने पर बैठ गये हैं। आपकी सोसाइटी के लिए उन्होंने चन्दा भेजा है। फिर कभी वक्त से आइएगा।

चेतन का चेहरा और भी उतर गया। राजा साहब स्वयं अपनी व्यस्तता की बात कहते हुए, पांच रुपये ही उसे देते तो उसे बुरा न लगता, लेकिन अब उसे लगा कि उन्होंने उसे पीछे लगने से हटाया है और एक लुक्मा फेंक दिया है।

लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। रुपये ले कर रसीद काटी और चुप-चाप बाहर निकल आया: साइकिल उठायी और तेज-तेज़ चलता हुआ, गेट पार कर, सड़क पर आ गया; पैडल पर पाँव रखा और घर की ओर चल पड़ा—क्रोध में वह ऐसे साइकिल चला रहा था, जैसे पलक-झपकते, वह उन बड़े लोगों की कोठियों से दूर निकल जायगा....

०

चेतन के दिमाग़ में कुछ अजीब-सी खलबली मची थी—'स्साले, लिबर-लिज़्म के,' वह मन-ही-मन भुनभुना रहा था, 'ये सब लाला और राजा चोर-चोर मौसेरे भाई हैं। सब-के-सब टोडी बच्चे हैं! इनका सारा लिबरलिज्म 'स्टेटस को' बनाये रखने का ही दूसरा नाम है। हलवे-मांडे पर आँच भी न आये और देश-भक्त भी कहलाते रहें! सरकार ज़ुल्म करेगी तो इन्कलाब होगा, इसलिए सरकार को ज़ुल्म करने से रोको। कांग्रेस रैडिकल पॉलिसी अपनायेगी तो इन्कलाब पैदा होगा, सो कांग्रेस को नर्म बनाये रखो!—बातें चाहे इन्कलाब की, साले कितनी भी करें, लेकिन हैं सब दरअसल सरकार के पिट्ठू!'

और अपनी उस मनःस्थिति में चेतन को उन तमाम बड़े आदमियों पर बेहद ग़ुस्सा आया था, जो बड़े वतन-परस्त और देश-भक्त बनते थे, लेकिन जिनके पास किसी ग़रीब लेखक और कवि से मिलने तक का समय नहीं था। उसे याद आया कि राजा साहब ने उसे कुर्सी तक पेश नहीं की और

लगातार खड़े-खड़े बातें करते रहे।

'साले, अगर मैं कहीं तुझ से इण्टरव्यू लेने की बात करता तो कितना भी बिज़ी क्यों न होता, तू मुझे वक्त भी देता और कुर्सी भी पेश करता,' वह मन-ही-मन बमका, 'और अगर मैं कहीं तुझ पर एक मज़मून लिखने की बात करता तो तू मुझे अपने साथ बैठा कर खाना खिलाता।....कैसे सहज ढंग से बातें कर रहा था, लेकिन सोसाइटी का ब्रोशर हाथ में लेते ही तुझे वक्त ले कर न आने का ख़याल आ गया....साला वक्त की पाबन्दी का....!'

और चेतन ने तय किया कि बेवक्त मिलने की बात तो दूर रही, वह कभी बावक्त भी उस राजा से नहीं मिलेगा !....वह उन लोगों के पास जायगा, जो उससे सभ्यता और सम्मान के साथ पेश आयें !....वह मियाँ बशीर अहमद के यहाँ भी नहीं जायगा। उसने एक दिन में चालीस रुपये चन्दा इकट्ठा कर लिया है। वह कुछ दिन आराम करेगा। कोई कहानी या अफ़सांचा लिखेगा और तनिक स्वस्थ हो कर और पूछ-ताछ कर, फिर नयी सूची बनायेगा....वह बहुत साइकिलिंग कर चुका है, घर जा कर सोयेगा, पढ़ेगा, लिखेगा....और वह पागलों की तरह पूरे ज़ोर से साइकिल चलाने लगा।

लेकिन टेम्पल रोड पार करते-न-करते उसकी सोच ने दूसरी धारा पकड़ ली और उसकी चाल आप-से-आप धीमी हो गयी। वह बेकार ही में तिनक रहा था—उसने सोचा—वह कवि और कथाकार ही नहीं, एक सोसाइटी का संचालक भी है, जिसे अकेले दम, अपनी मेधा और प्रतिभा के बल पर नहीं, लोगों के सहयोग से चलना है। कवि-कथाकार भावप्रवण हो सकता है, ज़रा-ज़रा-से मान-अपमान पर तिनक सकता है, लेकिन संस्था चलाने वाला, यह ऐयाशी नहीं पाल सकता। उसके पास तो बीमा-एजेण्ट की-सी आशावादिता, धैर्य और बेहिसाब सहनशीलता होनी चाहिए। क्या 'पंजाब लिट्रेरी लीग' के चौधरी को इन स्थितियों से दो-चार न होना पड़ता होगा। व्यस्त लोगों से डील करने में, आये दिन ऐसी स्थितियाँ खड़ी होती

होंगी। तिनकने से काम नही चलेगा। वह सोसाइटी की दो-एक सभाएँ करेगा। उनकी सूचनाएँ राजा साहब को देगा। खीच-खाँच कर उनको किसी सभा का प्रमुख अतिथि या सभापति बनायेगा। तब वे आप-से-आप उसके मेम्बर ही नहीं, सरपरस्त बनना चाहेंगे।....ऐसे में अगर उन्होने मेम्बरशिप का चन्दा दे दिया तो बड़ा एहसान किया .. वे ज़रूर खाने पर बैठने वाले होंगे। क्या वह उम्मीद करता था कि वे उसे खाने की मेज़ पर साथ ले जा बैठाते....और लाला हरकिशन लाल....जिन्होंने बिना देखे, बिना मिले, सरपरस्ती का चन्दा भेज दिया, मिलने पर और यह जानने पर कि सोसाइटी सफलता से काम कर रही है, क्या आजीवन सरपरस्त न बन जायेंगे! वह घर जा कर उन सब को, जिनसे उसने चन्दा लिया है, शुक्रिया-भरे प्यारे पत्र लिखेगा और अनुरोध करेगा कि वे सोसाइटी के उद्घाटनोत्सव मे ज़रूर शामिल हों और अपने सद्-परामर्श से उसका पथ-निर्देश करें....

इसी उधेड़-बुन मे वह माल पर आ गया। तभी उसने तय किया कि वह घर नहीं जायगा। प्रोग्राम के मुताबिक, मियाँ बशीर अहमद, मालिक-सम्पादक 'हुमायूँ' से भी मिलेगा। और उसने उसने साइकिल को 'लॉरेंस' को ओर मोड़ दिया, जिसके पार कि उनका बँगला था।

क्षण भर के लिए उसने सोचा—वे भी तो लंच टाइम का ख़याल रखते होंगे। लेकिन मज़ंग पार करते-करते एक बज गया था। जब तक वह उनके यहाँ पहुँचेगा, लंच टाइम खत्म हो चुका होगा। उसके पहुँचने पर वे लंच से वापस न आये होंगे तो वह 'हुमायूँ' के कार्यकारी सम्पादक मौलाना हामिद अली खाँ के पास बैठेगा और मियाँ साहब की बाट देखेगा। उनसे मुलाकात हो या न हो, लेकिन वह दिन भर का अपना प्रोग्राम पूरा करके ही घर को लौटेगा।

और वह मज़े-मज़े सीटी बजाता हुआ साइकिल चलाने लगा।



इक्कीस

उर्दू की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'हुमायूँ' के मालिक-सम्पादक, मियाँ बशीर अहमद (जिन्हें इधर पंजाब के मुस्लिम-लीगी अदबी हलकों में 'मौलाना' के नाम से पुकारा जाने लगा था,) जस्टिस हुमायूँ के सुपुत्र थे। चेतन न कभी उनसे मिला था, न उसने उनका चित्र ही देखा था, लेकिन 'हुमायूँ' के वरक पलटते हुए, उसने दो-एक बार उनकी नज़्में पढ़ी थीं और उनमें से एक, अपने अत्यधिक छोटे छन्द के कारण, चेतन को कण्ठस्थ हो गयी थी। जब सीटी बजाते-बजाते उसके होंट थक गये तो वह मन-ही-मन मियाँ जी की वही नज़्म गुनगुनाने लगा :

सँगतरे रँगतरे, ख़ुशनुमा रस भरे
पाँच-छै लीजिए, उनका रस पीजिए
ज़िन्दगी आगही[1], आर[2] है बार[3] है
जब तलक रस न हो, जब तलक बस न हो
काम सब छोड़ के, बाग़ में शाख़ से
सँगतरे तोड़ के, उनका रस पीजिए
ऐश यूँ कीजिए

कविता पढ़ कर और यह सुन कर कि मियाँ बशीर अहमद विलायत में बैरिस्टरी पास करके आने के बावजूद, पक्के दीनदार और नमाज़ी हैं और 'मौलाना' कहाते हैं, चेतन के सामने शेरवानी और घुटन्ना पायजामा

१. पहचान। परिचय—याने ज़िन्दगी क्या है २. नफ़रत-भरी, ३. बोझ, भार

पहने और सिर पर तुर्की टोपी सजाये, दोहरे बदन के खूबसूरत अधेड़ व्यक्ति की सूरत आ जाती थी....बड़े खुले और कुशादा कमरे में, फ़र्श पर जाजम और ग़ालीचे बिछे हैं, कश्मीरी सिल्क के कसीदा-कढ़े गाव-तकिये लगे हैं और मुसाहिबों अथवा धनी-मानी मुवक्किलों में घिरे बैठे मियाँ साहब, खूबसूरत नक्काशीदार हुक्के की लम्बी नली मुँह से लगाये, अपनी यह नज़्म सुना रहे हैं और मँगतरों के रस की खूबियाँ बयान कर रहे हैं....

चेतन ने शराब कभी चखी न थी। बचपन ही से उसकी बू से उसकी तबियत घबराती थी और वह जानता था कि वह दवा-सी कड़वी है। उसके पिता जब बोतल से कटोरी में पेग उँडेल कर एक ही घूँट में पी जाते (सोडा वग़ैरा वे कभी न मिलाते) तो बुरी तरह मुँह बनाते थे और आम के अचार की फाँक चूसने थे। शराब में कैसा सरूर होता है, चेतन नहीं जानता था। उसे पी कर पिता उत्पात ही मचाते थे। लेकिन सन्तरे उसने कई बार चूसे थे और देशी सन्तरों की हल्की-सी, तुर्शी-भरी मिठास उसे बहुत प्रिय थी।

जिन दिनों उसके पिता दुसूआ के स्टेशन पर नियुक्त थे, बड़े दिन को वे अपने अंग्रेज़ अफ़सर के बँगले पर डाली पहुँचाते थे। डी० टी० एस० का बँगला जालन्धर स्टेशन की रेलवे वर्कशॉप के पीछे था। दो-तीन वर्षों तक, बड़े दिन के अवसर पर, चेतन दुसूआ से सन्तरों का टोकरा लाता रहा था। स्टेशन के पानी वाले को पिता उसके साथ भेज देते थे और चेतन टोकरे को उसके सिर पर लदवा कर साहब के बंगले पर ले जाता था। वह डी० टी० एस० को कैसे 'गुडमॉर्निंग' और 'हैपी क्रिसमस' कहेगा, इसकी रिहर्सल पिता ने उसे अच्छी तरह करा दी थी। चेतन को याद आया कि डी० टी० एस० से एक बार भी उसका सामना नहीं हुआ था। पहली बार, जब वह डाली ले कर गया तो डी० टी० एस० का बुलडॉग उन्हें देख कर बरामदे ही से गरजा था और चेतन बुरी तरह डर गया था। तब एक अंग्रेज़ महिला अन्दर से आयी थी और कुत्ते को डाँट-पुचकार कर उसने चुप करा दिया था। तब, सहमे हुए स्वर मे, उसने उसी महिला

को 'गुडमॉर्निंग' और 'हैपी क्रिसमस' कहा था और यह सूचना दी थी कि वह पण्डित शादीराम स्टेशन मास्टर का बेटा है और क्रिसमस का उपहार लाया है। महिला ने बैरे को बुला कर टोकरा अन्दर ले जाने को कहा था और जब बैरा सन्तरों का टोकरा ले जाने लगा था तो उस महिला ने एक बड़ा सन्तरा उठा कर उसको देते हुए कहा था कि वह अपने पिता को उनका सलाम और धन्यवाद दे।

बँगले से निकल कर चेतन सन्तरा छीलता और एक-एक फाँक को मज़ा ले कर चूसता आया था। वह तब छठी कक्षा में पढ़ता था। उसने पहले कभी सन्तरा न चखा था। उसे बड़ा अच्छा लगा—हल्की-सी खटास लिये हुए, मीठा और ठण्डा।

'इतने सारे सन्तरे साहब को पहुँचा दिये और घर के लिए चार-छै भी नहीं भेजे,' उसे पिता पर क्रोध आया था। लेकिन बँधा-बँधाया टोकरा बाग़ से आया था और पिता ने वैसे ही भेज दिया था। उसने माँ से शिकायत की थी। माँ ने ज़रूर उनसे कहा होगा, क्योंकि दूसरे वर्ष पिता ने स्वयं सन्तरे मँगा कर, बड़े-बड़े सन्तरे टोकरे में सजाये थे और जो बाकी बच गये थे, उनमें से कुछ नौकरों में बाँट दिये थे और बाकी झोले में, घर के लिए भेज दिये थे। तब सन्तरे ले कर गाड़ी में सवार होने से पहले चेतन ने पानी वाले से (जो माँ की अनुपस्थिति में स्टेशन पर पिता का खाना पकाता था) एक पुड़िया में नमक और काली मिर्च पिसवा कर रख ली थी। बड़े-बड़े सन्तरे टोकरे में ऐसे सजा दिये गये थे कि एक कोणाकार स्तूप-सा बन गया था। टोकरा चेतन के साथ इण्टर के डिब्बे में रख दिया गया था और पानी वाला थर्ड में बैठा था। तब चेतन ने झोले से दो-एक सन्तरे निकाल कर एक-एक फाँक को छील कर, उसकी तुरियों में नमक-मिर्च लगा कर, उन्हें चूसा था। चेतन को लगा था कि उस बड़े सन्तरे की अपेक्षा, जो साहब की मेम ने दिया था, वे कम मीठे थे। तब उसने टोकरे से एक-दो बड़े सन्तरे ले कर उन्हें चूसा और झोले से दो सन्तरे वहाँ रख दिये और पूर्ववत लाल बुर्जी काग़ज लगा दिया था। उन बड़े-बड़े सन्तरों का वह

हल्का-सा तुर्श, मीठा रस उस वक्त भी चेतन की ज़बान पर था और वह मस्त हो कर गुनगुना रहा था :

बाग़ में शाख़ से, सँगतरे तोड़ के
उनका रस पीजिए, ऐश यूँ कीजिए

और चेतन को लगा कि मियाँ साहब ने ठीक ही लिखा है। शराब पी कर तो लोग अपने होश-हवास खो देते हैं, लेकिन सन्तरों का रस पी कर कोई उत्पात नहीं मचाता और वह मियाँ साहब से सहमत था कि सन्तरों का रस लेना ही, सही तौर पर ऐश करना है। फिर मियाँ साहब ने अपनी नज़्म में ज़िन्दगी के बारे में जो यह बात कही थी :

ज़िन्दगी आगही, आ'र है बार है
जब तलक रस न हो, जब तलक बस न हो

चेतन उमसे भी पूरी तरह सहमत था। ज़िन्दगी एक नफ़रत-भरा बोझ है, अगर उसे झेलने के लिए कोई रस न हो या जब तक वह बस न हो, खत्म न हो !

और चेतन साइकिल चलाते हुए, झूम-झूम कर गुनगुनाये जा रहा था :

जिन्दगी आगही, आ'र है बार है,
जब तलक रस न हो, जब तलक बस न हो

उसने किसी से सुना था कि मियाँ बशीर अहमद, विलायत हो आने के बावजूद, शराब से परहेज़ करते हैं और पक्के नमाज़ी और दीनदार हैं, लेकिन इस नफ़रत-भरी ज़िन्दगी के भार को ढोने के लिए पक्के परहेज़गार को भी रस चाहिए और चेतन गुनगुना उठा :

बाग़ में शाख़ से....

गाते-गाते उसे कुछ ऐसा जोश आया कि कविता के एक-एक टुकड़े के साथ, वह गद्दी से ज़रा उठ कर, पैडल पर ज़ोर दे कर, साइकिल चलाने लगा। साइकिल की रफ़्तार बेहद तेज हो गयी; वह उछलता हुआ, साइकिल चलाये और गाये जा रहा था :

बाग़ में
शाख़ से
सँगतरे
तोड़ के
उनका रस
पीजिए
ऐश यूँ
कीजिए

बार-बार यही बन्द। यहाँ तक कि साइकिल हवा की तरह उड़ने लगी और मियाँ साहब का बँगला आ गया।

चेतन गेट के बाहर साइकिल से उतरा। तेज़ साइकिल चलाते हुए, उसे हल्का पसीना आ गया था। कुछ पल साँस दुरुस्त करते हुए उसने सोचा कि वह पहले 'हुमायूँ' के कार्यकारी-सम्पादक, मौलाना हामिद अली ख़ाँ से मिलेगा; फिर उन्हीं की मदद से मियाँ बशीर अहमद से मुलाकात करेगा। पहले वह 'हुमायूँ' की सादगी, उसकी रचनाओं की गम्भीरता और सोद्देश्यता का उल्लेख करेगा, उनकी नज़्म, 'सँगतरे रँगतरे' की सादगी और पुरकारी की प्रशंसा करेगा और बात-बात में अपनी सोसाइटी की बात चलायेगा, उन्हें उसके उद्देश्यों की माहीयत समझायेगा और भगवान ने चाहा तो उन्हें सोसाइटी का सरपरस्त बनायेगा।

थोड़ा साँस से ले कर और कपड़े ठीक करके, वह परम उत्साह से बँगले का गेट खोल कर अन्दर चला गया।

मियाँ बशीर अहमद का बँगला दो-ढाई एकड़ धरती पर फैला हुआ था। बँगले के चारों तरफ़ बाग़ था—घास के ख़ूबसूरत लॉन, फूलों की क्यारियाँ और कटी-छँटी रविशें। बँगला उनके पिता, जस्टिस हुमायूँ ने बनवाया था। मियाँ साहब ने तो गेट के दायीं ओर चारदीवारी से सटी हुई, दो कमरों की एक अनेक्सी ही बनवायी थी, जहाँ 'हुमायूँ' का दफ़्तर था।

चेतन पहले भी दो-तीन बार वहाँ आ चुका था। कभी उसके मन में इच्छा जगी थी कि उसकी भी दो-एक कहानियाँ 'हुमायूँ' में छपें और वह मौलाना हामिद अली खाँ से मिला था। उन्होंने कहानियाँ पसन्द भी की थीं, भाषा-सम्बन्धी कुछ सुझाव भी दिये थे और संशोधन के बाद छापने का आश्वासन भी दिया था। पर जब उसे मालूम हुआ था कि पारिश्रमिक के खाते 'हुमायूँ' मे कानी-कौड़ी भी नहीं मिलती तो चेतन स्वयं ही ढीला पड़ गया था और संशोधन करने के बहाने कहानियाँ ले आया था। उसने मौलाना हामिद अली खाँ के भाषा-सम्बन्धी सुझावों से लाभ उठाया था, लेकिन कहानियों को 'हुमायूँ' के बदले, मासिक 'गृहस्थी' में देना बेहतर समझा था। (जो किसी बड़े बँगले से नहीं, सूत्र मण्डी की एक गली से निकलता था और जिसके सम्पादक ने पारिश्रमिक के बदले उसके डेण्टिस्ट भाई की प्रशंसा मे पूरे पृष्ठ का विज्ञापन अपनी पत्रिका में छापना स्वीकार कर लिया था।)

उन तीन-चार मुलाकातों में, वह हामिद साहब को अच्छी तरह जान गया था। हालाँकि वे मौलाना कहाते थे, पर न उनके चेहरे पर शर'ई मूँछें थी, न दाढ़ी। कपड़े भी उनके एकदम आधुनिक थे। वे तीस-बत्तीस वर्ष के लम्बे-ऊँचे, गोरे-चिट्टे व्यक्ति थे। बहुत कम बोलते थे और बहुत धीरे बोलते थे। वे हमेशा मुफ़ियाने रंग के सूट पहनते थे और उनकी आवाज में कुछ अजीब-सी रुखाई-भरी मुलायमियत थी। चेतन ने उन्हें हमेशा नंगे सिर देखा था—न तुर्की टोपी न रूमी, न कश्मीरी! वे उर्दू के प्रसिद्ध नक्काद[1] थे, लेकिन उनकी आलोचनाओं में तेज़ी और तुन्दी का सर्वथा अभाव था—उनके व्यक्तित्व की तरह, उनके लेखों मे कुछ अजीब-सा ठहराव और कठोर-सी कोमलता थी, जो तमाम आधुनिक मुहाविरों और शब्दावली के बावजूद, उनको ठोस, गरिमामयी, लेकिन अन्ततः पुरानी, ऊबाऊ और ठस बना देती थी। शायद उनकी इन्हीं ठोस और ठस आलोचनाओं के कारण उन्हें 'मौलाना' का खिताब दिया गया था—वैसे ही, जैसे

---

१. आलोचक

महाशय धर्मदेव को, अरोड़ा खत्री होने के बावजूद, पण्डित का।

चेतन जब अनेक्सी में पहुँचा तो मौलाना हामिद अली अपनी मेज़ पर सीधे तने बैठे काम कर रहे थे। चेतन ने साइकिल बाहर रखी और जा कर उन्हे 'आदाब अर्ज़' किया। हामिद साहब ने सिर उठाया। उनके चेहरे पर बे-मालूम-सी मुस्कान फैल गयी।

"आइए-आइए चेतन साहब!" कहते हुए उन्होंने कुर्सी पेश की और बोले, "कहिए, कैसे तकलीफ़ की?"

चेतन ने सोचा था कि वह कुछ देर इधर-उधर की बातें करेगा, थोड़ा सुस्तायेगा, फिर सोसाइटी की बात चलायेगा और मियाँ बशीर अहमद से मिला देने के लिए कहेगा, लेकिन हामिद साहब के इस प्रश्न ने उसकी सारी योजना ही बेकार कर दी। उसने चाहा कहे, 'यूँ ही इधर से निकला था, आपकी 'ज़यारत'[1] को चला आया।' लेकिन उससे यह कहा नहीं गया। उसने उन्हें सोसाइटी का ब्रोशर दिया, पण्डित रत्न और सूफ़ी हनुमान प्रसाद के हवाले से 'सोसाइटी फ़ॉर यू एण्ड मी' कायम करने की बात कही, उसके उद्देश्य बताये और मियाँ बशीर अहमद से मिलने की इच्छा प्रकट की।

"हमने तय किया है," चेतन ने कहा, "कि हम अदीबों से कोई चन्दा नहीं लेंगे, आप हमारे मशहूर नक्काद हैं, इस नाते आप हमारे मोहतरिम[2] मेम्बर हुए, लेकिन सोसाइटी की सरगर्मियों पर और उन सरगर्मियो की खबर सभी मेम्बरों और सरपरस्तों तक पहुँचाने पर, काफ़ी खर्च आयेगा। उसके लिए रुपये की ज़रूरत पड़ेगी। पण्डित रत्न और सूफ़ी हनुमान परशाद ने तय किया है कि ऐसे अदब-नवाज़ लोगों को अंजुमन का मेम्बर या सरपरस्त बनाया जाय, जिनके लिए पाँच-दस रुपया इस नेक काम की मद में खर्च करना मुश्किल न हो। मैं इसी सिलसिले में मियाँ साहब से मिलने आया हूँ। आप उनसे पाँच मिनट की मुलाकात करा दें तो बहुत मशकूर हूँगा।"

---

१. दर्शन २. सम्मानित

"आप ज़रा तशरीफ़ रखिए," हामिद साहब ने कहा, "मैं देख आता हूँ, मियाँ साहब लंच से आ गये हैं कि नहीं।" वे उठे और ब्रोशर उठा कर जाने लगे।

सहसा चेतन की आँखों में लाला हरकिशन लाल के बँगले का अनुभव कौंध गया। उसने कहा :

"आप बुरा न मानें तो ब्रोशर आप उन्हें न दिखायें। यह मैं उनकी ख़िदमत में ख़ुद पेश करूँगा और इसी बहाने उनसे दो बातें भी कर लूँगा। वे लंच से आ गये हों तो दो मिनट का टाइम आप मुझे ले दें।"

और वह खिसियानी-सी हँसी हँसा।

हामिद साहब पल भर के लिए असमंजस में खड़े रहे। फिर उन्होंने ब्रोशर मेज़ पर रहने दिया और दफ़्तर से निकल गये। चेतन कुर्सी पर पसर गया और मियाँ साहब से होने वाली बात-चीत मन-ही-मन दोहराने लगा। दस मिनट बाद हामिद साहब ने आ कर सूचना दी कि मियाँ साहब दफ़्तर में आ गये हैं और वह जा सकता है।

चेतन ने मियाँ साहब के कमरे का पता पूछा तो हामिद साहब ने बाहर निकल कर संकेत से बता दिया कि पोर्च से बरामदे को चढ़ो तो बिल्कुल सामने वाला कमरा है।

उनका शुक्रिया अदा करते और यह कहते हुए कि वह मियाँ साहब से मिल कर अभी आता है, चेतन साइकिल लिये हुए, उधर को चल पड़ा।

लेकिन जब साइकिल बँगले के पोर्च की एक ओर खड़ी करके, स्तम्भों की भव्यता और बँगले की सीढ़ियों और बरामदे के फ़र्श की चमक पर चकित होता हुआ, वह सीढ़ियाँ चढ़ा; उसने चिक उठा कर अंग्रेज़ी में 'मे आई कम इन सर' कहा और संकेत मिलने पर अन्दर क़दम रखा तो इस मुलाक़ात के सिलसिले में उसने जो कुछ सोचा था, वह सब उसके दिमाग़ से यक्सर निकल गया।

चिक उठा कर उसने जिस कमरे को देखा, वह न केवल बहुत बड़ा हॉल-कमरा था, वरन आधुनिक ढंग से सजा भी था—फ़र्श पर मोटी, एकदम नयी लगती-सी, दरी और उस पर कीमती ग़ालीचे बिछे थे। दायीं ओर की बड़ी खिड़की और दरवाज़ों पर बहुत कीमती, भारी पर्दे लटक रहे थे। दायी-बायीं ओर, सामने की दीवार के कोनों में शीशों के दरवाज़ों वाली, ऊँची अलमारियाँ रखी थीं, जिनमें मोटी-मोटी जिल्दों वाली किताबें करीने से सजी थीं। (उनकी पुश्तों पर सुनहरे अक्षरों में उनके नाम खुदे थे।) सामने की दीवार के बीचों-बीच छत से ले कर तीन-चौथाई भाग पर बढ़िया सूट-बूट में लैस, जॉर्ज पंचम की-सी छँटी दाढ़ी-मूँछों वाले, एक व्यक्ति का तैल-चित्र था, जो हाथ में छड़ी लिये खड़ा, जैसे अपनी गम्भीर, पैनी दृष्टि से सारे कमरे को आतंकित कर रहा था। इसी चित्र के नीचे, पॉलिश से चमचमाती, एक बहुत बड़ी मेज लगी थी, जिस पर करीने से फ़ाइलें और किताबें रखी थीं। उसके पीछे जजों की-सी ऊँची पीठ वाली, गद्देदार कुर्सी पर, बढ़िया सूफ़ियाना सूट पहने, मियाँ बशीर अहमद बैठे, किसी फ़ाइल में डूबे हुए थे।—मँझला कद; पतला-छरहरा, धान-पान शरीर; गोरा रंग; चौड़ा चेहरा; किंचित धँसे कल्लों में दो-एक झुर्रियों की लकीरें; असमय गंजे होने के कारण लगभग आधी खोपड़ी को अपने अधिकार में लेता हुआ बहुत चौड़ा माथा !

चेतन ने चिक उठा कर अन्दर आने की इजाजत चाही थी, तो किसी शायर-मिज़ाज व्यक्ति ने कवि-सुलभ गर्मजोशी से नहीं, बल्कि एक बैरिस्टर ने, बिना फ़ाइल से नज़र उठाये, सिर की हल्की-सी जुम्बिश से उसे अन्दर बुलाया था। और सच्ची बात यह है कि जहाँ उस भंगिमा ने उसका सारा उत्साह भंग कर दिया था, वहाँ कमरे की भव्यता को देख कर, हठात उसका ध्यान अपने कपड़ों पर चला गया था—वह सूट, जिसे उसने पागलखाने के डॉक्टर पर रोब डालने के लिए सिलाया था, इस माहौल में उसे निहायत घटिया और वाहियात लगा था और जब उसने पायदान पर अच्छी तरह जूते पोंछ कर, दरी पर कदम रखा तो उसे इस बात का एहसास हुआ था कि

उसके जूते बेहद धूल-भरे हैं ।....जूतों से निगाह उठा कर, आगे बढ़ते हुए, उसने 'आदाब अर्ज़' किया था तो बिना होंट हिलाये, सिर के इशारे से उन्होंने उसे कबूल कर लिया था और कुर्सी की ओर संकेत किया था ।

चेतन जा कर कुर्सी पर बैठ गया तो क्षण भर विमूढ़-सा बैठा रहा । उसके अन्दर मे जो हीन-भाव आ गया था, उसने अचानक उसके मन-मस्तिष्क को जकड़ लिया । वह चुपचाप उजबकों की तरह कमरे की भव्यता को देखता रहा । फिर उसने अपने आप को व्यवस्थित कर, बात चलाने के लिए सामने लगे चित्र की प्रशंसा की और पूछा—"मियाँ साहब यह किनकी तस्वीर है ?"

मियाँ साहब उसके प्रश्न का जवाब दे देते तो शायद वह उनकी पत्रिका 'हुमायूँ', उसमें छपने वाली रचनाओं और खुद उनकी नज़्म, 'सँगतरे रँग-तरे' का ज़िक्र करते हुए, उनकी प्रशंसा करता और सहज भाव से अपनी बात कहता । लेकिन उन्होंने जैसे उसकी बात नही सुनी और चुपचाप उसी फाइल को पढ़ते रहे, जिसे वे उसके आने से पहले पढ़ रहे थे । चेतन का सारा हौसला पस्त हो गया ।

तभी चेतन की दृष्टि सामने के चित्र पर सफ़ेद रंग में लिखे उर्दू अलफ़ाज़—जस्टिस हुमायूँ—और उसके आगे लिखी डिग्रियों पर गयी । तब अपने प्रश्न की व्यर्थता उस पर सुस्पष्ट हो गयी, उसका हीन-भाव और भी बढ गया और जब क्षण भर बाद उन्होंने नज़र उठायी और पहली बार जैसे उसकी तरफ़ देखा तो हड़बड़ा कर वह उठा । अतिरिक्त अदब से उसने सोसाइटी का ब्रोशर उन्हे पेश किया और मिनमिनाते हुए, 'पण्डित रत्न और सूफ़ी हनुमान परशाद' के हवाले से सोसाइटी की स्थापना के बारे में जो कुछ कहा, वह उसे स्वयं भी सुनायी नही दिया ।

मियाँ साहब ने एक सरसरी नज़र ब्रोशर पर डाली और बिना एक शब्द कहे, बटुए से पाँच रुपये का नोट निकाल कर, ख़ैरात देने के अन्दाज़ में, बिल्कुल 'तीर' जी की तरह उसकी ओर बढ़ा दिया । फ़र्क यही था कि (चेतन 'तीर' जी की जो प्रशंसा करने जा रहा था, उसकी उपेक्षा कर)

उस पर एहसान का बोझ लादते हुए, 'तीर' जी ने (भले ही भीख देने की तरह) वह पाँच का नोट उसकी ओर बढ़ाया था, लेकिन कम-से-कम उसका मन रखने को यह तो कहा था कि वह आया है, इसलिए वे चन्दा दे रहे हैं, वरना वे सभा-सोसाइटियों में नहीं जाते। मियाँ साहब ने तो मुँह से एक शब्द भी नही कहा और चेतन को उनका यूँ ख़ामोशी-भरी उपेक्षा से नोट बढ़ाना, और भी ज़्यादा अपमानजनक लगा।

लेकिन जैसे चेतन इससे ज़्यादा की उम्मीद ही न करता हो, उसने नोट ले कर एक ठण्डा-सा शुक्रिया अदा किया, रसीद काट कर वहीं मेज़ पर रखी, एक 'आदाब' उनकी ओर फेंका और कमरे से बाहर निकल आया।

उसने हामिद साहब से कहा था कि मियाँ साहब से मिल कर वह उनकी तरफ़ आयेगा। क्षण भर के लिए उसने यह भी सोचा था कि पारिश्रमिक न मिले तो भी वह दो-एक कहानियाँ उन्हें देगा, सोसाइटी की खातिर उनसे राह-रस्म बढ़ायेगा और 'हुमायूँ' के हलके में शामिल होने की कोशिश करेगा; लेकिन अनेक्सी की तरफ़ जाने के बदले, वह सीधा गेट की ओर बढ़ता चला गया। उसने तय किया कि वह 'हुँमायूँ' में कभी अपनी रचना नहीं देगा और न 'सँगतरों' का रस पी कर ऐश करने वाले उन 'मौलानाओं' के हलके में शामिल होने की कोशिश करेगा। तभी वह नज़्म, जिसे वह बड़े जोश से गाता आया था, उसे निहायत वाहियात और बेतुकी लगी। ऐसी नज़्म वही लिख सकता है—उसने सोचा—जिसके बाग़ में सन्तरों के पेड़ हों और जिसे रोज़ पाँच-छै सन्तरों का रस पीने की सुविधा हो। उसने तो एक साथ पाँच-छै सन्तरों का रस एक बार भी नहीं पिया था....बड़े दिन को छोड़ कर घर में कभी इतने सन्तरे नही आये थे कि सब को एक-एक मिल सके। कुछ फाँकें ही हरेक के हिस्से में आती थीं और एक-एक फाँक को वे, मज़ा ले कर, देर तक चूसा करते थे। तभी उसने सोचा कि इतनी भव्यता में रहता हुआ जो शख़्स सन्तरों का रस

पी कर ही ऐश करता है, वह निश्चय ही निहायत कंजूस है, इसलिए पत्रिका में लिखने वालों को पारिश्रमिक नहीं देता। यह ठीक है कि शराब नशे में होश भुला देती है, लेकिन वह शायद दिल को उदार भी बनाती है। उसके पिता शराब पी कर भयंकर उत्पात मचाते थे, लेकिन यार-दोस्तों में खूब पैसा भी उड़ाते थे। उनके पास पैसा हो और किसी ने माँगा हो और उन्होंने इनकार कर दिया हो, चेतन को याद न था। एक बार बाज़ार शेखाँ से आते हुए रास्ते में उन्हें एक साधु मिल गये थे, जो तीर्थ-यात्रा को जा रहे थे तो उन्होंने दो सौ रुपये उधार ले कर उन्हें दे दिये थे—'साले, ऐश के....' वह मन-ही-मन बमका, 'सन्तरे पी कर ऐश करते हैं, माई-याह्व! सन्तरों का रस पी कर इन ऐश करने वालों के हलके में वह कभी शामिल नहीं होगा—हरगिज़-हरगिज़ शामिल नहीं होगा!'

और गेट के बाहर निकल कर उसने पैडल पर पाँव रखा और प्रबल आक्रोश में साइकिल उड़ाता हुआ, वापस घर को चल पड़ा।





बाईस

मियाँ बशीर अहमद के यहाँ से लौटने के पाँचवें दिन, चेतन अपने मित्र अनन्त को पत्र लिख रहा था :

'....यह खत मैं तुम्हें अपने नये पते से लिख रहा हूं। परसों हमने फिर मकान बदल लिया। कृष्णा गली वाला घर था तो अच्छा और हवादार, लेकिन उसमें गर्मियों के मौसम में सोने की सहूलत नहीं थी। हम लोग—याने मैं और भाई साहब—मई-जून में मकान के बाहर खुली जगह में सोते थे। वहाँ भी कुछ दिनों से बाँसों का टाल खुल गया है; आसमान को छूते हुए, लम्बे-लम्बे बाँसों ने सामने का सारा आकाश ढँक लिया है। सोने की जगह तो छिन ही गयी, इन बाँसों की वजह से मेरी बैठक भी (जो मेरे लिखने का कमरा भी थी) कृष्णा गली की दूसरी बैठकों की तरह एकदम अंधेरी हो गयी। गर्मियाँ अपनी आमद की धमकी दे रही हैं, सो उनके डर से हम पहले ही यहाँ आ गये....'

पत्र लिखते-लिखते अचानक चेतन को इस ख़याल से बड़ी तकलीफ़ हुई कि इन दो-ढाई वर्षों में एक बार भी वे ऐसा मकान नहीं ले सके, जिसमें दोनों भाई आराम से रह सकें। चंगड़ मुहल्ले में थे तो बिना किसी खिड़की, झरोखे या रोशनदान के, दो सीली, अँधेरी कोठड़ियाँ थीं; रात को बाहर सोते थे; ऊपर से गन्दी नाली गिरती थी; कोई पर्दा और प्राइवेसी नहीं थी। फिर दोनों भाइयों में से एक ही की बीवी वहाँ रह सकती थी।.... सरदार जगदीश सिंह के मकान में गये तो चाहे कमरा रोशन और हवादार

था और खिड़कियाँ-दरवाज़े रोग़न से चमकते थे, लेकिन दोनों भाई अपने परिवारों के साथ वहाँ भी आराम से न रह सकते थे। एक कमरे में आदमकद पार्टीशन करके, जो एक छोटा-सा कमरा रसोई के बराबर निकाला गया था, उसमें चारपाई न आ सकती थी और जब भाभी आ गयी थी तो चेतन ने अपनी पत्नी को जालन्धर भेज दिया था, फिर जब चन्दा बिना सूचना दिये चली आयी तो वह उसके साथ रसोई-घर में सोता था!.... कृष्णा गली के मकान में दो कमरे तो थे (एक वहाँ भी बेहद अँधेरा था) लेकिन गर्मियों में सोने की जगह न थी। दोनों भाई गर्मियों में भले ही सड़क के किनारे की खुली जगह में सो जाते थे, लेकिन चन्दा और उसकी बीमार जेठानी तो अन्दर आंगन की उमस और बेपनाह गर्मी में भुनती थीं और अब अमृतधारा मुहल्ले के इस घर में आये हैं तो यद्यपि गर्मियों में सोने के लिए छत थी, पर कमरा यहाँ भी एक ही था।

अनन्त को पत्र लिखते-लिखते चेतन यही सोचने लगा था, क्या कभी ऐसा दिन न आयेगा, जब दोनों भाइयों के पास ऐसा मकान हो, जिसमें दो कमरे हों, एक बैठक हो और वे आराम और इज़्ज़त के साथ, अपनी-अपनी प्राइवेसी में रह सकें।....'प्राइवेसी'....वह दूसरे क्षण मन-ही-मन हँसा—'यह प्राइवेसी, इस पुण्य-भूमि में, ऊँचे दर्जे के लोगों की ऐयाशी है। ग़रीब लोग दो जून पेट भर लें और जी ही लें तो बड़ी बात है....ये इतने हज़ारों-हज़ार लोग, जो फ़ुटपाथों पर सोते हैं और वहीं जिन्दगी की तमाम ज़रूरतें पूरी करते हैं, सिर के ऊपर सिर्फ़ छत चाहते हैं, प्राइवेसी नहीं....'

पिछले तीन-चार दिनों से वह दिन-रात इसी मकान को ले कर परेशान रहा था। भाई साहब दुकान जाते थे और चन्दा विद्यालय, इसलिए मकान बदलने का सारा भार चेतन के कन्धों पर आ पड़ा था। एक तरह से यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि राजा महेन्द्रनाथ और मियाँ बशीर अहमद के यहाँ से आने के बाद वह इतना परेशान था कि अपने दिमाग़ को किधर लगाये, उसकी समझ में न आ रहा था....

मियाँ बशीर अहमद से मिल कर, वह उनके बँगले से निकला था तो बेहद ग़ुस्से में था। उनके यहाँ जाने का फ़ैसला करने से पहले चेतन ने अपनी तुनुक-मिज़ाजी के लिए अपने आप को बहुत कोसा था। बीमा-एजेण्टों की साबित-कदमी और 'अ मैन कैन डू, व्हॉट अ मैन हैज़ डन' का सहारा ले कर, सब बाधाओं को पार कर, अपने उद्देश्य पर पहुँचने के लाख संकल्प किये थे, लेकिन मियाँ साहब के रूखे व्यवहार ने उसे बुरी तरह उद्वेलित कर दिया था और उसका सारा क्रोध तेज़ साइकिल चलाने पर ही निकला था।

लेकिन वह सुबह से साइकिल चला रहा था। तेज साइकिल चलाते हुए वह जल्दी ही थक गया था। माल रोड के फ़ुटपाथों पर घने, छतनार पेड़ लगे थे। बायीं ओर के फ़ुटपाथ के साथ-साथ सड़क पर बिछी, पेड़ों की धूपछाहीं झिलमिलियों में उसकी साइकिल अपने आप धीमी हो गयी। और वह निरन्तर उसी समस्या पर सोचता चला आया।....नेपोलियन के हवाले से उसके पिता कहा करते थे : 'असम्भव मूर्खों की डिक्शनरी का शब्द है।' लेकिन माँ की नसीहत थी : 'जो पत्थर उठ न सके, उसे छोड़ देना चाहिए।' और अपने उस मूड में चेतन को लगता था कि माँ ही की बात ठीक है। असम्भव को सम्भव बनाने के लिए प्राण देना और जो काम उसके बस का नहीं, उसे करते रहना ख़ालिस मूर्खता है।....'लिट्रेरी लीग' के चौधरी की खाल यकीनन मोटी होगी; बड़े लोगों के ऐसे व्यवहार को वह 'पार्ट ऑफ़ द गेम' समझता होगा, बुरा न मानता होगा और अपने आप को उनके मुताबिक ढाल कर, अपना उल्लू सीधा किये जाता होगा। लेकिन चेतन की अपनी खाल तो इतनी पतली थी कि प्रकट अपमान की बात तो दूर, अपमान का हल्का-सा आभास भी उसे बुरी तरह आन्दोलित कर जाता था।....ऐसा काम, जिसमें हर कदम पर उसका अहं आहत हो, उसके बस का नहीं था....

चेतन ने पहले सोचा था कि जब वह सौ रुपया चन्दा इकट्ठा कर लेगा तो अनारकली के इर्द-गिर्द, किसी केन्द्रीय जगह में सोसाइटी का

दफ्तर लेगा; पण्डित रत्न की सलाह से शहर के किसी बड़े आदमी से उसका उद्घाटन करायेगा; सोसाइटी के मेम्बरों को ही नहीं, शहर के प्रमुख पत्रकारों और लेखकों को बुलायेगा; कोई बहुत ही दिलचस्प प्रोग्राम रखेगा और धड़ल्ले से संस्था चलायेगा ।....लेकिन अपने उन पन्द्रह-बीस दिनों के अनुभवों से उसे लगा था कि यह काम आसान हो कर भी, उस जैसे भाव-प्रवण के लिए बहुत मुश्किल है....

और तब एक दूसरी समस्या उसके सामने आ गयी ।—दिन-दिन भर चन्दा उगाहते घूमना और अपमानित होना तो वह छोड़ देगा, लेकिन ये जो पचास-पचपन रुपये उसने इकट्ठे कर लिये हैं, उनका क्या करेगा ?—पहले उसने सोचा कि वह सब ले जा कर पण्डित रत्न को सौंप देगा; वे उसका जो चाहें करें, उससे कोई मतलब नहीं ।....लेकिन सोचने पर उसे लगा कि वह ऐसा नहीं कर पायेगा । पण्डित रत्न के आगे वह अपने आप को बेहद अशक्त पाता था । वही नाटक फिर-फिर करना तो बचकानापन होगा ।....तब उसने सोचा था, क्यों न वह डब्बी बाज़ार से जा कर, अनारकली के थोक-फ़रोशों की अपेक्षा और भी सस्ते में, पचास रुपये के रूमाल इकट्ठे खरीद ले और अनारकली तथा सिनेमा-घरों के सामने उन्हें बेच कर दुगुने पैसे कमा ले; जो रुपया उसने दूसरों से वसूल किया है, वह 'पंजाब लिट्रेरी लीग' के सेक्रेट्री को ही दे दे (कि वे एक वैसी ही संस्था चला रहे थे) और अपने मेम्बरों और सरपरस्तों को इसकी सूचना दे दे....

समस्या के इस समाधान पर वह बहुत प्रसन्न हुआ था ।—इस तरह वह अपनी मेहनत का एवज़ भी पा लेगा, आगे के लिए रोजी और लॉ कॉलेज के दाखिले की व्यवस्था भी कर लेगा और कोई यह भी नहीं कह पायेगा कि उसने सोसाइटी का रुपया मार लिया है ।....फिर उसे खयाल आया कि चौधरी क्या उसका भांजा या भतीजा लगता है कि वह उसको रुपये देगा । क्यों न वह सदस्यों और सरपरस्तों को ही जा कर उनका रुपया लौटा दे—वह भी, जो उसने अपनी साइकिल पर खर्च किया है ।....

सोचने पर उसे लगा था कि यही ठीक है। इस दुश्चक्र से मुक्ति पाने का यही बेहतर और बा-इज़्ज़त रास्ता है....

....वह कृष्णा गली वाले घर पहुँचा तो चन्दा स्कूल से आ चुकी थी और रसोई-घर में व्यस्त थी। बिना उससे कोई बात किये, साइकिल पिछले कमरे में रख कर, वह अपनी स्टडी मे आया था और कटे हुए पेड़ की तरह, जूतों-समेत, चारपाई पर ढह गया था।

थोड़ी देर बाद ही चन्दा आयी थी। क्षण भर चौखट में खड़ी, उसे देखती रही थी—चेतन आँखें बन्द किये, चुपचाप लेटा था। दीवार के साथ लगी आराम-कुर्सी उठा कर, बे-आवाज़ खोलते हुए, चन्दा ने बड़े धीरे से उसे चारपाई के पास बिछाया था। क्षण भर वह चुपचाप बैठी, अपने पति के थके-सुते चेहरे को देखती रही थी। फिर उसने पायंते की ओर कुर्सी खिसका कर, चेतन के जूतों के तस्मे खोले थे; जूते और मोज़े उतार कर चारपाई के नीचे रखे थे और अपने हाथो में उसके पैरों की पाँचों उँगलियाँ ले कर दबाने लगी थी।

चेतन निस्पन्द लेटा रहा था। सुबह से साइकिल चलाते हुए, उसके पैर सचमुच दुखने लगे थे। चन्दा के भरे-भरे, नर्म हाथो के दबाव से उसे बड़ी राहत मिली थी। कुछ देर पाँव दबा कर, चन्दा ने कुर्सी सिरहाने की ओर खिसका ली थी और उसके सिर पर हाथ फेरने लगी थी। चेतन वैसे ही आँखें बन्द किये, अपने ध्यान मे डूबा, लेटा रहा था। फिर सहसा वह उछल कर उठा था :

"चन्दा, मैंने तय किया है कि मै यह सोसाइटी-वोसाइटी का चक्कर छोड़ दूँगा। यह पत्थर मेरे बस का नही और माँ कहा करती है कि जो पत्थर न उठे, उसे छोड़ देना चाहिए!"

चन्दा कुछ नहीं बोली। सिर्फ़ उसकी बात सुनती रही।

"मैंने ख़ूब सोच लिया है," चेतन ने पल भर रुक कर कहा, "यह पत्थर मुझसे नही उठ सकता।" और वह फिर लेट गया। दोनों हाथ बाँध

कर उसने सिर के नीचे रख लिये थे और आन्तरिक बेचैनी से घुटने हिलाने लगा था।

"मैं तो आपसे पहले ही कहने वाली थी," चन्दा ने अपनी मीठी और धीमी आवाज में कहा था, "यह सोसाइटी का काम आप छोड़ दीजिए। न खाने-पीने का ठिकाना, न आराम-चैन की सुध! साइकिल लिये, दिन-दिन भर मारे-मारे फिरते हैं। देखिए तो इन थोड़े दिनों मे आपका मुँह कैसा निकल आया है।" और प्यार से उसके चेहरे पर हाथ फेरते हुए, वह उसके बाल सहलाने लगी थी।

चेतन की आँखें अचानक डबडबा आयीं और उसने करवट बदल ली।

चन्दा उठी थी : "आप लेटिए, मैं तुलसी के पत्ते और दाल-चीनी डाल कर, चाय बनाती हूँ, आपकी थकावट दूर हो जायगी।" और वह कमरे से निकल गयी थी।

चन्दा उसी तरह बैठी, उसके बाल सहलाती रहती तो शायद चेतन रो पड़ता। चन्दा के शब्दों ने जहाँ उसे अपनी परेशान-हाली के प्रति सचेत कर, उसे आत्म-करुणा से भर दिया था, वहीं उसके अव्यक्त स्नेह ने उसे अभिभूत भी कर दिया था।....लेकिन उसकी यह कमजोरी ज्यादा देर नहीं रही। उसकी पत्नी उसका विरोध करती और कहती कि उसने जिस काम का बीड़ा उठाया है, उसे पूरा करना चाहिए, तो चेतन सोसाइटी का चक्कर छोड़ देने के पक्ष मे दस दलीलें देता; यह भी हो सकता था कि वह उसी वक्त सोसाइटी के परिपत्र वग़ैरा उठा कर खिड़की के बाहर फेंक देता; लेकिन उसकी परम विश्वासी पत्नी ने तो सब कुछ उसी पर छोड़ दिया था....और उसकी सोच ने हठात दूसरी धारा पकड़ ली।

....यह उसकी आँखों मे पानी कैसे आ गया—उसने अपने-आप को धिक्कारा—क्या वह एकदम कमज़ोर शख्स है। बाऊ जी (पिता जी) ठीक ही तो कहते थे—यह दुनिया कमजोरों की नहीं। बैठे-बिठाये यह किसी को कुछ नहीं देती। जिसकी बाँहों में जोर न हो, वह दिमाग़ में ज़ोर पैदा करे और इससे जो चाहे, ले ले—और चेतन ने मन-ही-मन जोड़ा—'कम-

ज़ोर और असफल अपनी दीनता पर लाख टिसवे वहाये, कोई पूछने वाला नही। शहजोर जो चाहेगा, दुनिया से ले लेगा।'

सोचते-सोचते उसका ध्यान अपने से बाहर राजनीतिक क्षेत्र की ओर चला गया।

'महात्मा गान्धी ने इस राज को समझा है,' उसने सोचा, 'उस पतले-दुबले शख्स ने दिमाग का ही तो जोर पैदा किया है।'....लोग कहते हैं कि महात्मा गान्धी अहिंसा-अहिंसा चिल्लाते हैं, अंग्रेज क्या अपना राज-पाट उन्हें दे कर चला जायगा! आन्दोलन उठता है, हजारों-हजार लोग अहिंसा-पूर्वक लाठियां खाते हुए, स्वराज्य-मन्दिर जा बसते हैं। सरकार भयानक जुल्म तोड़ती है। सारा आन्दोलन ठप्प पड़ जाता है....लेकिन महात्मा गान्धी यह सब न समझते हों, ऐसी बात नही। उनके पास तोप-तलवार की शक्ति नही, दिमाग की शक्ति है, सूत के गोले से उन्होंने मैंचेस्टर की नाक में दम कर दिया है। विदेशी कपड़े के बाइकाट, शराब की दुकानों पर पिकेटिंग और खादी ने अंग्रेजों का हुलिया टाइट कर दिया है।....अंग्रेज आखिर हुकूमत तो हिन्दुस्तानियों के बल पर ही चलाते हैं। सिविल नाफ़र-मानी के नतीजे कहां-कहां नही पहुँच सकते? कल अगर क्लर्क दफ्तरों में काम करना बन्द कर दें, फौज में बगावत हो जाय, तो मुट्ठी भर अंग्रेज कर ही क्या सकते हैं? झख मार कर उन्हें समझौता करना पड़ेगा। गान्धी तन से चाहे धान-पान हों, पर मन तो उनका ईस्पाती है। दिमाग उनका भयंकर तेज है.. एक आन्दोलन बुझने लगता है तो नया शोशा छोड़ कर वे उसे फिर जगा देते हैं... अबकी उन्होंने कैसा पैतरा बदला है? असहयोग के बदले सहयोग—कांग्रेस असेम्बलियों में जायगी और हुकूमत के काम को अन्दर से ठप्प करेगी....अगर वे स्थिति को असम्भव मान कर छोड़ देते तो....और वह जरा-सी मुश्किल सामने पा कर, हथियार छोड़ बैठा...

चेतन उठा और बेचैनी से कमरे में घूमने लगा।

... नही, वह जल्दी में कोई फैसला नही करेगा—उसने मन-ही-मन कहा—वह अभी अपना दिल दो-एक अच्छे अफ़साने लिखने में लगायेगा।

इस बीच वह इस समस्या पर हर पहलू से विचार करके कोई और रास्ता निकालेगा—उसके पास धन की लाठी न सही, दिमाग की लाठी तो है, वह उसी से काम लेगा। चाणक्य ने उसके बल पर मौर्य-साम्राज्य खड़ा कर दिया, वह साली एक निकम्मी सोसाइटी भी खड़ी न कर सकेगा....

चन्दा एक थाली में अजवाइन के दो छोटे-छोटे परांठे और तुलसी-मिली चाय का गिलास ले आयी। चेतन जा कर चारपाई पर बैठ गया। तिपाई तो कोई थी नहीं। चन्दा ईज़ी-चेयर पर बैठ गयी और उसने थाली अपनी गोद में रख ली। परांठे देख कर चेतन को पहली बार एहसास हुआ कि उसे भूख लगी है। वह चुपचाप परांठे खाने लगा। चाय के गिलास की ओर देख कर उसने कहा, "चाय तुम बेकार लायी हो। मुझे खुश्की करती है।"

हालांकि चन्दा जाते वक़्त कह गयी थी, पर शायद चेतन का ध्यान उधर नहीं था, चन्दा ने फिर वही बात दोहरा दी, "इसमें तुलसी के पत्ते और दाल-चीनी पड़ी है। आपकी सारी थकन दूर हो जायगी।"

परांठे खा कर चेतन ने चुपचाप चाय की दो-एक चुस्कियाँ लीं और बोला :

"चन्दा, मैं सोचता हूँ कि हफ़ में कोई फ़ैसला नहीं करना चाहिए।"

"हफ़ में ?"—चन्दा कुछ नहीं समझी, हैरान-सी उसकी ओर देखती रह गयी।

चेतन हँसा, "हफ़—अंग्रेज़ी का शब्द है, अगर तुम ने अंग्रेज़ी पढ़ी होती तो ऐसे मुँह-बाये न बैठी रहती।....अंग्रेज़ी आज के सभ्य समाज की भाषा है और सारी दुनिया का ज्ञान अंग्रेज़ी के ज़रिये हम तक पहुँचता है।"....

चेतन ने अंग्रेज़ी भाषा के गुणों और ज्ञान-प्राप्ति के महत्व पर एक छोटा-सा भाषण अपनी पत्नी को दे डाला। फिर बोला :

"हफ़ का मतलब है : खीझ-भरी जल्दी, चिड़चिड़ाहट भरी जल्दी, क्रोध-भरी जल्दी। और मैं समझता हूँ कि ऐसे में आदमी को कोई फ़ैसला नहीं करना चाहिए। जल्दी में फ़ैसला करके फ़ुर्सत में पछताना, मूर्खों का काम है। मैं ऐसा नहीं करूँगा। दो-चार दिन कुछ लिखूँ-पढ़ूँगा और गहराई

से सोचूँगा; फिर तुम जो सलाह दोगी, वही करूँगा। छोड़ना तो एक मिनट का काम है; जब चाहे, छोड़ दूंगा। लेकिन बिना सोचे-समझे नहीं।" और वह चुपचाप चाय पीने लगा।

"हाँ, यह आप ठीक कहते हैं," चन्दा ने कहा, "सोच-समझ कर ही कोई फ़ैसला करना चाहिए। लेकिन जो भी कीजिए, अपनी सेहत का खयाल रख कर कीजिए।"

चेतन ने चाय खत्म की। चन्दा थाली और गिलास उठा कर चली गयी। ताज़ा-दम हो कर चेतन उठा। उसने सोसाइटी के ब्रोशर और रसीदें अलमारी में रखीं और मूड बनाने के लिए अपनी पुरानी कहानियों की फ़ाइल ले बैठा।

पुरानी लिखी कहानियाँ पढ़ते, उनके छपे तराशे फ़ाइल में लगाते, बीच-बीच में कोई पत्र-पत्रिका देखते, चेतन के दिमाग़ में एक अफ़साने का अस्पष्ट-सा ख़याल आया—ख़ुशामद एक कार-आमद हथियार है, जिससे तेज़ लोग बड़े-बड़े बुद्धिमानों को मूर्ख बना कर अपना उल्लू सीधा करते हैं—और चेतन ने फ़ट तख़्ती उठा कर आगे रखी, उसमें काग़ज़ लगाये और होल्डर से उस पर शीर्षक दिया—'हथियार'।

लेकिन बहुत सोचने पर भी, वह शीर्षक के नीचे एक पंक्ति न लिख सका। अफ़साने के नायक की बात सोचते-सोचते, वह सोसाइटी के नायक—याने खुद अपनी बात सोचने लगता....कैसे वह इसी हथियार से काम ले कर, बड़े-बड़े लोगों को सोसाइटी का सरपरस्त बना लेता है और उसकी सोसाइटी बड़ी शान से चलने लगती है और लाहौर के सारे अदीब उसके सदस्य बन जाते हैं....

तभी भाई साहब दुकान बन्द करके आ गये। सीधे अपने कमरे में जाने के बदले, वे चेतन की स्टडी में चले आये। चेतन तब चौंका, जब वे उसकी मेज़ के पास आ कर खड़े हो गये। उसने सिर उठाया, एक थकी-सी मुस्कान उसके होंटों पर फैल गयी।

"कहिए भाई साहब, क्या हाल-चाल हैं ?"

"तुम अपने हाल सुनाओ, कैसी रही तुम्हारी मुहिम ?"

"चन्दा तो मै एक दिन मे पैतालिस रुपया इकट्ठा कर लाया हूँ," चेतन ने कहा, "लेकिन हौसला मेरा खासा पस्त है ।" और चेतन ने अपने दिन भर के अनुभव सुनाये ।

"भाई, तुम यह मत भूलो," भाई साहब ने कहा, "कि बडे आदमियों के पास रोज तुम्हारे जैसा कोई-न-कोई शख्स चन्दा लेने पहुँचता रहता है—शहर मे आये दिन सोशल और धार्मिक सोसाइटियाँ खुलती रहती है और उनके चलाने वाले, बडे लोगो का आसरा देखते है । तुम्हे खुश होना चाहिए कि तुम नाकाम नही लौटे, कुछ-न-कुछ ले आये, वरना चन्दा लेने वालो को लोग बाहर ही से हरी भण्डी दिखा देते है ।"

हालाकि हर आये दिन सस्थाएँ खोलने और चन्दा वसूलते फिरने वालों के साथ ब्रैकेट किया जाना, चेतन को अच्छा नहीं लगा, पर भाई साहब की बात मे जो तथ्य और सच्चाई थी, वह उससे छिपी नही रही । 'भाई साहब ठीक कह रहे है ' उसने सोचा, 'मै बेकार परेशान हूँ । मुझे तो बल्कि शुक्र-गुजार होना चाहिए कि मै कही से भी खाली हाथ नही आया ।'

"जो लोग बडे लोगो से खूब चन्दा लेते है," भाई साहब ने कहा "वो पहले उनसे जाती ताल्लुक पैदा करते है, उनकी मुसाहिबी करते है, उनके खाली वक्त मे उनकी दरबारदारी करते है । तुम गये और रुपये ले आये । और क्या चाहते हो ? धीरे-धीरे तुम्हारा ताल्लुक बढेगा तो ज्यादा ले लोगे । जो आज मेम्बर बने है, कल सरपरस्त बनेगे ।"

भाई साहब पल भर चुप रहे । फिर उन्होने कहा : "अभी आते हुए रास्ते मे डॉ० सत्यप्रकाश की बहन कान्ता और उसका पति जिन्दत मिल गये । उन्होने अपने मकान के साथ एक खाली पोर्शन का पता दिया है । मै पिछली बार उनके यहा गया था तो कह आया था कि उस लोकलिटी मे कोई ऐसा पोर्शन मिल जाय जिसमे गर्मियो मे सोने के लिए छत हो तो बताये । इस मकान के सामने तो खुली जगह मे भी टाल खुल गया है, मकान तो बदलना ही पड़ेगा । कान्ता कहती थी कि छत वाली एक जगह तो उसके

पडोस में खाली हुई है। बाथरूम, रसोई, गोदाम—सब कुछ है, पर कमरा एक ही है। तुम जा कर देख आओ। गर्मियाँ तो आ गयी हैं, चन्दा दो महीने बाद जालन्धर चली जायगी। हम दोनो उसमे गुजारा कर लेगे। सर्दियो मे जरूरत होगी तो कोई दूसरा इन्तजाम हो जायगा।"

चेतन सोत्साह उठा और उसने कहा

"कहिए तो अभी देख आऊँ। चन्दा तो मई मे परीक्षा देते ही जालन्धर चली जायगी। जून मे उसकी डिलिवरी होनी है। बच्चे के जन्म के बाद मै उस वक्त तक उसे लाहौर लाने की नही सोचता, जब तक कि मै लॉ पास न कर लूँ और कम्पीटीशन न दे लूँ। अगर कमरा अच्छा हो और छत पर खुली जगह हो तो ठीक है।"

"अब तो देर हो गयी है। सुबह जा कर देख आना।" भाई साहब ने अपने कमरे को जाने के लिए मुडते हुए कहा था।

"आप भी चलिएगा। वहा-का-वही तय हो जायगा तो हम कल ही, वरना परसो मकान बदल लेगे।"

भाई साहब चले गये तो चेतन ने फिर अफसाना लिखने की कोशिश की और इस बार शीर्षक के नीचे उसने दो पंक्तियाँ भी लिख दी

'वह एक निहायत कमजोर नौजवान था। भूख, गरीबी, बेकारी और बेरोजगारी से लडने के लिए उसके पास कोई हथियार नही था. .'

लेकिन उस नौजवान का क्या हुआ अथवा उस नौजवान ने क्या किया, यह लाख सोचने पर भी चेतन की समझ मे न आया। उसने तख्ती को उठा कर एक तरफ़ रख दिया और तय किया था कि अब मकान बदल कर ही वह इस अफसाने को हाथ लगायेगा। इस बीच वह मन-ही-मन इस थीम को पका लेगा।

अपने नये मकान मे बैठा चेतन फिर पत्र लिखने लगा था .

"तुमने पिछले खत मे लिखा था कि शायद तुम दो-एक दिन के लिए

लाहौर, अपने चाचा के यहाँ आओगे और मुझे भी दर्शन दोगे !

तुम्हारी बात का कोई विश्वास नही। पिछले साल तुमने कितनी बार नही लिखा कि तुम आओगे, पर वह जगह हमने छोड भी दी और तुम नही आये। किसी शायर ने कहा है :

'वह वादा ही क्या जो वफा हो गया'

तुम भी शायद इसी मिसरे मे यकीन रखते हो। लेकिन इस उम्मीद मे कि तुम कभी अचानक आ धमकोगे, मै अपने इस नये मकान का जगराफिया देता हू, ताकि तुम बिना परेशानी यहाँ पहुँच जाओ।

रलवे रोड पर 'अमृतधारा बिल्डिग' मशहूर है और तुम्हारी देखी हुई है। अब तो मण्डी के बाद वह सड़क भी 'अमृतधारा रोड' कहलाती है। बहरहाल, उस सड़क पर तुम सब्जी मण्डी की तरफ से आओ तो जहा 'अमृतधारा बिल्डिग' खत्म होती है, (और रेलवे स्टेशन की तरफ से आओ तो जहाँ से शुरू होती है) वही बिल्डिग के साथ-साथ, पिछवाडे को एक गली मुडती है। थोडी दूर चल कर वह बाये को हो लेती है। यही नया मुहल्ला बसा है। कोई नाम न होने से 'अमृतधारा मुहल्ला' कहलाता है। पहली ही गली मे जालन्धर के डॉक्टर सत्यप्रकाश डेण्टिस्ट के बहनोई, विनोद जिन्दल ने अपना छोटा-सा मकान बनवाया है। हमारा मकान इनसे पहले है, इनके साथ ही लगा है। मकान क्या है—एक कमरा, एक रसोई, छोटा-सा गोदाम और छत है। नीचे मकान-मालिक रहता है, ऊपर की मंजिल का पोर्शन हमारे पास है। मैने अपना लेटर-बक्स बाहर सीढियों पर टाँग दिया है। तुम्हे दिक्कत नही होगी।

तुमने पूछा है कि मै आजकल किस अखबार मे काम कर रहा हूँ। अब मै तुम्हे क्या बताऊं ! मै किसी अखबार मे काम नही करता और वो पंजाबी मे जिसे 'चूतिया-चक्कर' कहते है, उसी में फँसा हुआ हूं। शिमले से आ कर 'वन्दे मातरम' तो छोड़ दिया था। फिर 'भूँचाल' की एडीटरी की, तो उसके मालिक, महाशय जीवनलाल कपूर से झगड़ा

हो गया। निहायत ही टुच्चा और बद आदमी है। उसके बाद एक दोस्त के कहने पर एक सोसाइटी खोली है—'सोसाइटी फ़ॉर यू एण्ड मी'। सपने यही लेता हूँ कि सोसाइटी चल जायगी तो इसमें से तीस-चालीस रुपये महीना मेरी तनख्वाह के निकल आयेंगे। लेकिन मन उसमें है नहीं। मैं इसे चला पाऊँगा, इसमें मुझे भारी शक है। पिछले महीने में, तीन बार इसे छोड़ कर कोई दूसरा काम करने की सोच चुका हूँ। चचा ग़ालिब ने कहा है :

रौ में है रख़्श-ए-उम्र कहाँ देखिए थमे

ने हाथ बाग पे है, न पा है रकाब में

मेरी हालत भी ज़िन्दगी के घोड़े पर सवार उसी शख्स जैसी है, जिसके हाथों में लगाम और पैरों में रकाब नहीं और जो यह भी नहीं जानता कि वह मुँह-जोर घोड़ा उसे किधर ले जायगा।

लेकिन अनन्त, वक्त आयेगा, जब मैं इस घोड़े पर ऐसे सवार हूँगा कि मेरे हाथ में लगाम भी होगी और मेरे पैर रकाब में भी होंगे और मैं इस मुँह-ज़ोर घोड़े को अपनी मरज़ी से चला भी सकूँगा।

शायद मैंने तुम्हें नहीं बताया—मैंने तय किया है कि इसी साल मैं लॉ कॉलेज में दाख़िल हो जाऊँगा और फर्स्ट डिवीज़न में पास हो कर, सब-जजी के कम्पीटीशन में बैठूँगा।

हालाँकि तुम्हारी बद-दुआ, दुआ से बेहतर लगती है, पर कभी भगवान को याद करो तो मेरे हक में दुआ करना—लेकिन दिल से, क्योंकि शायर ने कहा है :

'दुआ वही है, जो दिल से कभी निकलती है!'

पत्र के अन्त में चेतन ने अनन्त को ताकीद की कि वह अपनी माँ—चाची लालदेई—के स्वास्थ्य की खबर दे और मित्रों को उसकी याद दिलाये और पत्र बन्द करके वह उसे अमृतधारा डाकखाने छोड़ने चला गया।

०

मकान बदलने का फ़ैसला करने के दूसरे दिन, सुबह ही, दोनों भाई इस

महल्ले मे आये थे। डॉ० सत्यप्रकाश की बहन और बहनोई उनमे बडे स्नेह से मिले, उन्होने मकान दिखाया। मकान चेतन को पसन्द आया। एक कमरे का है, यह तो उसे पहले ही मालूम था, लेकिन दो महीने भाई साहब कहाँ सोयेगे—यही समस्या थी।

जब दोनो भाई मकान देख कर जिन्दल साहब की बैठक मे आये तो कान्ता एक ट्रे मे बर्फी और लस्सी के गिलास ले आयी। उसने पूछा कि मकान कैसा लगा तो भाई साहब ने अपनी समस्या बतायी

'दो कमरे होते कान्ता," भाई साहब ने कहा था, 'तो हम फौरन ले लेते। लेकिन कमरा एक है, पसन्द भी है, ले भी ले। यही सोचता हूँ कि दो महीने तक मुझे दुकान पर सोना पडेगा और गर्मी तो अगले महीने पडने लगेगी। मई मे इम्तहान दे कर चन्दा जालन्धर चली जायगी, तब कोई दिक्कत नही होगी लेकिन अब "

"अब आप दो महीने हमारे पास रह जाइए। हमारे मकान की दो छते है इधर आप सो जाया कीजिए, उधर हम सोया करेगे।"

किराया तो मकान का उतना ही था—ग्यारह रुपये। कान्ता ने समस्या का यह हल निकाल दिया तो उन्होने भी 'हाँ' कर दी। तब कान्ता ने चाबी ला कर चेतन को दे दी थी। मकान-मालिक किराया पेशगी माँगता था, पर कान्ता ने अपनी गारन्टी दे कर, उसे किराया महीने के अन्त मे लेने पर राजी कर लिया था। तब चेतन ने तय किया था दूसरे ही दिन मकान बदल लेगे।

जिन्दल दम्पति से छुट्टी ले कर दोनो भाई मेयो हस्पताल तक इकट्ठे आये, फिर भाई साहब अपने क्लीनिक जाने के लिए नीला गुम्बद की ओर मुड गये थे और चेतन चगड मुहल्ला जाने के लिए हस्पताल रोड पर हो लिया था। अनारकली पार कर, पैसा-अखबार स्ट्रीट की ओर से वह सीधा चगड महल्ले, रहीम चगड के यहाँ पहुँचा और उसे पक्का कर आया कि वह दूसरे दिन बैलगाडी तैयार रखे, वह स्वय लेने आयेगा। घर आ कर उसने अपना सामान सहेजना शुरू कर दिया था।

चूँकि कुछ सामान दुकान पहुँचाया गया, इसलिए पूरा सामान अमृत-धारा मुहल्ले पहुँचाने और ऊपर चढाने में शाम हो गयी। चेतन की यह आदत थी कि जब वह एक घर से दूसरे घर सामान बदलता था तो उसी दिन—चाहे कितनी भी रात क्यों न बीत गयी हो—नये घर मे सारा सामान यथा-स्थान सजा देता था। रात ही सब कुछ करीने से सजा, और दीवारो पर तस्वीरें लगाने का सबसे महत्वपूर्ण काम सरअंजाम दे कर, जब चेतन सोया तो एक बज गया था। उसकी कमर दुखने लगी थी और घुटनो तथा पिडलियो मे दर्द होने लगा था, लेकिन इस एहसास के साथ कि सुबह इस नये घर मे वह ऐसे ही काम शुरू कर देगा, जैसे पुराने मे, वह लेटते ही सो गया।

नयी जगह मे चन्दा को असुविधा न हो, इसलिए वह उसकी मदद करता रहा था और जब भाई साहब दुकान और चन्दा विद्यालय चली गयी थी तो वह नहा-धो कर नीचे कमरे मे आया और सबसे पहले उसने अनन्त को पत्र लिखा था।






तेईस

अमृतधारा पोस्ट ऑफ़िस में चिट्ठी डाल और ज़रा आगे, सब्ज़ी मण्डी के चौरस्ते पर हलवाई की दुकान में लस्सी का बड़ा-सा गिलास पी कर, चेतन अपने कमरे में वापस आया तो उसने जैसे पहली बार उस कमरे को ध्यान से देखा....

कमरा, कृष्णा गली के कमरे की तरह लम्बा नहीं था, चौड़ा था। उसमें दो खिड़कियाँ थीं और पहली मंजिल पर होने के कारण, वे कमरे को रोशनी से भर देती थीं। पहले चेतन ने सोचा था कि खिड़कियों के नीचे अपनी और चन्दा की चारपाइयाँ बिछाये और सीढ़ियों के दरवाजे के सामने मेज-कुर्सी रखे, लेकिन मेज अपेक्षाकृत अँधेरे में हो जाती, इसलिए उसने मेज़-कुर्सी एक कोने में और चारपाई दूसरे कोने में सजा दी थी। कुछ ही दिन बाद उन्हें ऊपर सोना था, इसलिए फ़ालतू चारपाइयाँ उसने ऊपर छत पर डलवा दी थीं।

चेतन ने चौखट में खड़े-खड़े, इत्मीनान से देखा कि यह व्यवस्था बहुत अच्छी है—उसकी मेज़ पर बायीं खिड़की से भी रोशनी पड़ती थी और पीछे की खिड़की से भी। चारपाई पर लेटा, वह मजे में किताब पढ़ सकता था। चूँकि सामान ज्यादा था, इसलिए चेतन ने पायों के नीचे दो-दो ईंटें रख कर, अपने और भाई साहब के ट्रंक चारपाई के नीचे रख दिये थे। चेतन ने देखा कि कमरे में आते ही उन पर नजर तो नहीं पड़ती और यह जान कर उसे परम सन्तोष हुआ कि पलँगपोश उसने जिस तरह बिछाया है, चारपाई के नीचे पड़े ट्रंक दिखायी नहीं देते।

दीवारो मे अलमारियाँ बनी थी। लेकिन उनमे किवाड नही लगे थे। चेतन ने एक मे चन्दा की किताबे और जरूरी सामान सजा दिया था; दूसरी मे अपनी किताबे, कापियां, फाइले और कागज रख दिये थे; तीसरी मे शेव का सामान रख दिया था, जिसमे चन्दा के शृङ्गार का सामान भी था और चौथी मे जो सीढियो के दरवाजे की ओर थी—साइकिल की टोकरी, सोसाइटी के ब्रोशर और रसीद-बुके लगा दी थी। ईजी-चेयर उसने सीढियो की चौखट के सामने दीवार के साथ बिछा दी, ताकि वह जगह भरी-भरी लगे।

चारपाई, मेज-कुर्सी, ईजी-चेयर और किताबो से बिछलती हुई चेतन की दृष्टि, ऊपर लगी तस्वीरो पर चली गयी। यह देख कर वह खुश हुआ कि यद्यपि तस्वीरे उसने रात को टाँगी थी—वह और चन्दा, दोनो थक भी गये थे—लेकिन चारो-का-चारो बिल्कुल ठीक लगी थी—न ज्यादा ऊंची, न नीची न ज्यादा एक तरफ, न दूसरी तरफ और एक सीध मे! एक तस्वीर जमीन से जितनी ऊंची थी, बाकी सब भी उतनी ही ऊँची थी। जिन्दल के घर से सीढी ले सब तरफ से माप कर चेतन ने निशान लगाये थे। चन्दा सीढी पकडे रहती और वह कीलें ठोक कर चित्र टाँगता—कितना आगे झुका रहे चन्दा पीछे हट कर राय देती और वह उसके अनुसार ठीक करता। बारह बजे तक चन्दा उसके साथ जागती रही थी। ....उसे सफाई का शौक हो रहा था, पहनने-ओढने का, पढने-लिखने का और अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद सुरुचि से रहने का शौक हो रहा था....चेतन ने उसके फोटो की ओर देखा—(जिसे उसने ऐसे लगाया था कि वह मेज पर बैठा हो तो वह सामने पडे) पूरी बाहो का स्वेटर और बुन्दे पहने हुए और (चूँकि चेतन ने ऐन वक्त पर हँसा दिया था इस-लिए) होटो के दरीचे मे मोतियो की बत्तीसी खिलाये हुए!

जिन दिनो (भाभी के पहन चुकने के बाद) चन्दा वह पूरी बाँहों का स्वेटर पहनने लगी थी, चेतन एक सुबह उसे और भाई साहब को अनारकली के एक फ़ोटोग्राफ़र मित्र के पास ले गया था, जिसने अपने स्टूडियो

की बाल्कनी मे उन्हे बैठा कर नेचुरल लाइट मे उनके फोटो लिये थे। एक उन दोनो का अलग-अलग, एक चेतन और उसकी पत्नी का इकट्ठा, एक उन दोनो का भाई साहब के साथ। चेतन को अपनी पत्नी का यह हँसता हुआ फोटो बहुत अच्छा लगता था—और यही भोलापन और यही हँसी उसे दिन-ब-दिन चन्दा से बाँधे जा रही थी। कहीं वह पढ़-लिख कर, सुशिक्षित और सुसंस्कृत हो जाय तो तो.. वह अपने आपको कितना सुखी और भाग्यशाली समझे ...

अपनी पत्नी के फोटो से उसकी निगाह अपने फोटो पर चली गयी, जो उसने दूसरी दीवार पर, ऐन उस चित्र के सामने टाँगा था। फोटो में चेतन अपना वही पुराना ओवरकोट पहने उसके कॉलर चढ़ाये, घुँघराले काकुल माथे पर बिखेरे खड़ा था, लेकिन फोटोग्राफर ने प्रकाश-छाया का कुछ ऐसा संयोजन किया था कि वह कोई बेपरवाह फिल्मी हीरो लगता था। चेतन मन्त्र-मुग्ध-सा अपने इस चित्र को देर तक देखता रहा। तभी उसके कानो मे अपनी पत्नी की मुँहफट सहेली, पम्मो का व्यंग्य गूँज गया....

.. कृष्णा गली के घर की बैठक मे (जिसे चेतन ने अपनी स्टडी और सोने का कमरा बना रखा था) यह फोटो ड्योढ़ी की ओर खुलने वाले दरवाजे के ऐन सामने, दीवार पर टँगा रहता था और ड्योढ़ी से आने-जाने वालो को अनायास दिखायी दे जाता था। चन्दा के साथ मँझले कद की एक पतली-दुबली, चौकोर शरीर वाली लडकी पढ़ती थी—प्रमिला !—सब उसको 'पम्मो', पम्मो' कह कह कर ही पुकारते थे। वह खासी बदसूरत थी—मोटे-मोटे होंट, चौडी नाक, छोटी आखे, बहुत चौडा माथा और चेहरे पर शीतला के हल्के दाग। वह बडी चंचल, चपल और मुँहफट थी। कई बार चन्दा के साथ विद्यालय से आती थी तो किचन मे उसके साथ बैठी बतियाती थी। वह आते-जाते चेतन को जरूर छेडती—'महाराज तो आज बहुत बिजी है,'....'महाराज तो आज संन्यासी बने बैठे है,'....'महाराज ने तो मौन-वर्त (व्रत) धार रखा है।'—वह चेतन से सीधे बात न करती

थी। चन्दा से बात करती हुई उसके दरवाज़े के आगे से गुज़र जाती थी। एक दिन चेतन की अनुपस्थिति में वह उसके कमरे में आ गयी थी और चेतन का फ़ोटो देख कर, उसने कहा था—'यूं तो महाराज घोसी बने रहते हैं, लेकिन फ़ोटो मे एकदम हीरो लगते हैं।'

चेतन घर में प्रायः कमीज़-तहमद के सिवा कुछ न पहनता था। बहुत सर्दी हो तो करघे पर बुनी हुई, घर ही की तूमी-कती, ऊन की लोई का फेंटा मार लेता था। उस फ़ोटो मे और उसके साधारण सरापे में बहुत अन्तर था। चन्दा ने अपने भोलेपन मे अपनी सहेली का रिमार्क उसे सुना दिया तो पहले उसे बहुत बुरा लगा था और वह कोई भद्दी-सी गाली पम्मो को देने जा रहा था, लेकिन दूसरे क्षण वह ज़ोर से हँस दिया था।

"मुझे तुम्हारी उस हूर-परी के साथ तो रहना नहीं," चेतन ने हँसते और अपनी तकलीफ को मज़ाक मे छिपाते हुए कहा था, "हाँ, तुम्हें एतराज़ हो तो घर मे भी हीरो बना रहूँ, लेकिन तब तुम्हे भी हरदम हीरोइन बनी रहना होगा।"

और ज़ोर से हँसते हुए उसने चन्दा को बाँहों में भर लिया था।

चन्दा ने लजा कर अपना सिर उसके सीने में छिपा लिया था, "मुझे तो आप, जो भी पहनें, अच्छे लगते हैं।"

....पम्मो की बात याद आते ही चेतन के होंटों पर मुस्कराहट आ गयी—'घोसी! स्साली! कभी शीशे में अपनी शक्ल भी देखी है तूने! तुझसे कोई घोसी भी इश्क नहीं कर सकता....'

अजीब बात है कि चेतन जब भी अपने उस चित्र पर निगाह डालता, उसको पम्मो का वह रिमार्क याद आ जाता। उसे बुरा भी लगता और हँसी भी आती। उसका वह फक्कड़ सरापा फ़ोटो मे ऐसे ग़ायब हो गया था, जैसे उसका कोई अस्तित्व ही न हो। और उसे पम्मो के व्यंग्य में सच्चाई लगती थी।

चेतन ने सिर को झटका दिया और चित्रों से ध्यान हटा कर, वह मेज़ पर जा बैठा और उसने तख्ती सामने रख ली, जिस पर उसने चित्रमय

अक्षरो मे अपनी नयी कहानी का शीर्षक—'हथियार'—दे रखा था और नीचे दो सतरे लिखी थी ।

लेकिन दिन भर 'हथियार' के साथ जोर-आजमायी करने के बावजूद, चेतन चार सतरे भी ऐसी न लिख सका, जो उसे पसन्द हो । शाम को जब चन्दा विद्यालय से आयी तो उसकी मेज पर कटी-छटी स्लिपो का ढेर लगा था और वह कुर्सी पर पीछे को झुका, 'कारवा' की वरक-गरदानी[1] कर रहा था ।

"आज तो लगता है आपने खूब लिखा है !" चन्दा ने विद्यालय से आ कर किताबे अपनी अलमारी मे रखते हुए कहा ।

चेतन ने 'कारवा' का रिसाला मेज पर उल्टा रख दिया और पैर मेज के नीचे करते और व्यंग्य से हँसते हुए बोला, "खाक लिखा है ! इसी को कहते है—नौ दिन चले अढाई कोस । स्लिपे देखो तो लगता है कि छोटा-मोटा नावल ही लिख डाला है, लेकिन हकीकत यह है, जो छोटा-सा अफसाना मै लिखना चाहता था, मन के मुताबिक शुरू नही हो पाया ।"

चन्दा जरा साँस दुरुस्त करने को ईजी-चेयर पर बैठ गयी । चेतन उठा और कमरे मे घूमने लगा ।

दरअसल सामान ढोते हुए लगातार सोचने के बावजूद, चेतन के दिमाग मे कहानी पकी न थी और वह बिना किसी तैयारी के, कहानी (भले ही बहुत छोटी) लिखने बैठ गया था । 'विराज के लिए जो तीन अफसाने उसने लिखे थे, उसके आधारभूत विचार उसके मन मे पक चुके थे, इसलिए वे उसने झपाके से लिख डाले थे, लेकिन अब वैसी बात नही थी । और उसका मन चारो तरफ भागता था । वह उसे बरबस कहानी पर ला कर दो-चार पंक्तियाँ लिखता, वह फिर किसी दूसरी ओर जा भटकता ।

पहले उसका ध्यान साज-सामान की सजावट ने भटका दिया था । वह मेज पर बैठा था और उसने कहानी की दो-चार पंक्तियाँ और लिखी थी

---

१. पृष्ठ पलट रहा था

कि उसकी नज़र ईज़ी-चेयर पर गयी—'यह साली यहाँ ठीक नहीं,' उसने मन-ही-मन कहा, 'इसे सामने होना चाहिए।' उसने उठ कर उसे सामने की दीवार के साथ लगा दिया था और वहाँ पड़ा छोटा-सा रैक, कुर्सी की जगह रख दिया था। आ कर उसने स्लिप पर लिखी पंक्तियाँ पढ़ी। ठीक नहीं लगी। उन्हे काट कर उसने दूसरी स्लिप पर कहानी का नाम लिखा और कहानी दूसरी तरह शुरू की :

'समाज का मैदान हो या जंग का, बिना मुनासिब हथियारों के आदमी उस मे फ़तह नही पा सकता....'

तभी उसकी दृष्टि फिर ईज़ी-चेयर पर चली गयी। 'नही यह इधर ही ठीक थी', उसने मन-ही-मन सोचा, 'वहाँ दीवार के साथ लगी हुई, बेकार लगती है। इधर बिछी होगी तो उस पर बैठे आदमी से मै यही मेज पर बैठा बात कर सकता हूं।' उसने उठ कर फिर अदला-बदली की और उधर से निश्चिन्त हो, फिर कहानी का आरम्भ पढ़ा, काटा, नयी स्लिप पर फिर शीर्षक लिखा।....लेकिन अब के उसका ध्यान शीशा-कंघी आदि की ओर चला गया कि वे ठीक अलमारी मे नही है....

ऐसा बराबर होता रहा। कई तरह की अदला-बदली उसने की और स्लिपें लिख-लिख कर काटता रहा। जब अन्ततोगत्वा वह कमरे की तरफ़ से सन्तुष्ट हो गया तो उसके दिमाग़ से कहानी यक्सर काफ़ूर हो चुकी थी और वह सोसाइटी के सिलसिले मे नया अभियान शुरू करने की सोचने लगा था।

कहानी लिखते-लिखते अटक जाने पर, बीच मे कोई पत्र-पत्रिका देखने की अपनी आदत के मुताबिक, वह 'कारवाँ' देखने लगा था। पत्रिका वार्षिकी थी; रायल साइज़ के ४०० पृष्ठो की; बहुत ही बढ़िया, ग्लेज़्ड काग़ज़; बेहद अच्छी किताबत, प्रथम कोटि की छपाई और प्रसिद्ध आर्टिस्ट, अब्दुल रहमान चग़ताई के चित्र और उन्ही का बनाया हुआ सादा और पुरकार मुख-पृष्ठ। चेतन ने इतनी ख़ूबसूरत उर्दू पत्रिका उससे पहले नहीं देखी थी। पण्डित रत्न की कहानी 'ग़ैर मा'रूफ़ जर्नलिस्ट' के नाम से उसमें छपी थी—

'लोमड'—किसी विदेशी कहानी का रूपान्तर। चेतन को कहानी अच्छी भी लगी थी। लेकिन उसे हल्का-सा यह एहसास भी हुआ था कि यह कहानी, भारतीय नामो के बावजूद, यहाँ की नही बन पायी। पत्रिका वह पण्डित रत्न से ले आया था और एक बार सरसरी नजर से पढ भी गया था। चेतन को कभी-कभी लगता था कि लाहौर मे उसके अधिकाश पूर्व-वर्ती मौलिक नही लिखते और अपनी रचनाओ के लिए पश्चिमी साहित्य का अनुवाद करते है या रूपान्तर करते है अथवा सीधा अमर लेते है। उसकी समझ म यह बात न आती थी कि उन्हे उसमे क्या लज्जत मिलती है। सिर्फ उर्दू काव्य इस दाग से मुक्त था।

'कारवा,' प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक, 'अनारकली' के प्रणेता, इम्तियाज अली 'ताज' ने अपने प्रकाशन गृह, 'दारुल अशाअत' म छापा था और उसमे उन्ही के गुट का प्रचुर प्रभुत्व था। 'ताज' का एक एकाकी था—'बर्फ गिरती है'—जिस पर कही लिखा नही था, पर जो प्रकट ही किसी पश्चिमी नाटक का अनुवाद था। 'पतरस' का हास्य-व्यग्य-भरा लेख—'लाहौर का जुगराफिया' था, जिसे पढ कर आदमी मन-ही-मन हँसता जाता। लेकिन चेतन को 'कारवाँ' मे जो रचनाए सबसे अच्छी लगी, वे मजीद मलिक 'तासीर' और हफीज जालन्धरी की कविताएँ थी। उन्ही को पढते हुए, उसे खयाल आया था कि वह क्यो न इन तीनो कवियो से सम्पर्क बनाये और उनके द्वारा—उनसे चिट्ठियाँ ले कर—बडे लोगो से मिले और उन्हे सोसा-इटी का मेम्बर अथवा सरपरस्त बनाये। इसी सोच-विचार मे कहानी लिखने का प्रयास करते हुए, उसकी मेज पर स्लिपो का अम्बार लगता चला गया था।

"क्या बताऊँ," अपनी पत्नी के सामने आ कर उसने कहा, "दिन भर बैठा रहा, लेकिन ध्यान टिका ही नही। उसूल यही है कि ऐसे मे आदमी लिखना छोड दे, लेकिन मैं छोड नही पाया—नतीजा तुम्हारे सामने है।"

और चेतन ने मेज पर रखी हुई स्लिपो के ढेर की ओर इशारा किया। फिर बोला, "देर तक कमरा ही सजाता रहा, चीजें इधर-उधर करता

रहा, अब इधर से इत्मीनान हुआ और अफ़सांचे में मन लगाने का जतन किया तो 'कारवाँ' को पढ़ते-पढ़ते, सोसाइटी की मुहिम को एक नया रूप देने का खयाल आ गया।"

चन्दा चुपचाप उसकी बात सुनती रही। चेतन क्षण भर वहीं चक्कर लगाता रहा। फिर बोला : "मैं सोचता हूँ, जब तक मैं इस सोसाइटी के मामले को इधर या उधर नहीं कर देता; मैं कोई कहानी नहीं लिख सकता।"

"हाँ, दो-चित्ते होने से कुछ भी नहीं हो सकता।" चन्दा ने अपने पति का समर्थन किया।

"मैंने फ़ैसला किया है," चारपाई के पायँते से कमर टिकाये हुए, चेतन ने कहा, "कि सोसाइटी के लिए एक कोशिश और कर देखूँ। जैसे मैं आज तक करता आया हूँ, वैसे नहीं। यह एप्रोच क्रूड है।—किसी बड़े आदमी से मिलने गये, जाते ही उसके हाथ में ब्रोशर थमा दिया और चन्दा माँगने लगे....भाई साहब ठीक ही कहते हैं। ऐसे में किसी ने गर्दनी दे कर बँगले से बाहर नहीं कर दिया तो बहुत एहसान किया।"

"हाँ, यह तो ठीक है," चन्दा मुस्करायी, "आपको तो कुछ ऐसा करना चाहिए कि लोग अपने आप चन्दा दे दें।"

चेतन प्रसन्न हुआ कि उसकी पत्नी अब उसके मामलों में दिलचस्पी लेने लगी है और उसका सुझाव मूर्खतापूर्ण नहीं है।

"तुमने मेरे मुँह की बात छीन ली, चन्दी," चेतन ने प्रसन्न हो कर कहा, "मैंने इस सिलसिले में दो तरीके सोचे है।"

दोनों हाथों की मदद से वह पीछे को उचक कर चारपाई बैठ गया और बोला : "एक तो यह कि अपनी एप्रोच बदल दूँ। जैसा कि मैंने कहा, जाते ही सोसाइटी की बात न करूँ। किसी ऐसी बात की चर्चा चलाऊं, जिसमे सामने वाले की दिलचस्पी हो; फिर उसे सोसाइटी की बात पर ऐसे लाऊँ कि उसे झटका न लगे। मुझे भी पता चल जायगा कि सोसाइटी में उसकी दिलचस्पी है या नहीं। अगर लगे कि है, तब उसे सोसाइटी का

ओशर दूँ, उसका महत्व समझाऊँ। वह क्या मदद करेगा, यह उस पर छोड़ दूँ। मेम्बर या सरपस्त बन जाय तो भला; न बने, तो भी बुरा न मानूं और कभी फिर उसे मेम्बर बनाने की आशा से, उसका शुक्रिया अदा कर के वापस चला आऊँ !"

अपनी बात खत्म करके, चेतन जिस तरह चारपाई पर चढ़ा था, उसी तरह हाथों के बल उचक कर उतरा और कमरे में घूमने लगा। वह बात तो अपनी पत्नी से कर रहा था, लेकिन उसकी आँखें अपनी पत्नी पर नहीं थीं। एक दीवार से दूसरी दीवार तक चक्कर लगाता हुआ, वह जैसे अपने आप ही से बात कर रहा था।

"और इस एप्रोच पर मैं अमल कर सकूं, इस ग़रज़ से मैंने सोचा है कि मैं उर्दू और हिन्दी के ऐसे लेखकों और कवियों से मिलूं, जिनकी पहुँच बड़े आदमियों तक है—आज 'कारवाँ' को पढ़ते हुए मुझे अचानक इसका ख़याल आया है—मजीद मलिक हैं, डॉ० तासीर हैं, हफ़ीज़ जालन्धरी हैं। बडे-बड़े खान साहबों, खान बहादुरों और नवाबों में उनका उठना-बैठना है। हो सकता है, वो खुद चन्दा न दें, लेकिन उनकी मदद से मैं बड़े-बड़े लोगों से मिल सकता हूँ। कुछ भी लाभ न होगा तो इन शायरों से मिलने की ख़ुशी ही हासिल होगी। मैं उन लोगों को जानता नही। उस हलके में मेरा गुज़र नहीं। ऊँचे लोगों का हलका है। मैंने सोचा है, पण्डित 'अख्तर' से मिलूं और उनकी मदद से इन लोगों से ताल्लुक पैदा करूँ। 'कारवाँ' में मजीद मलिक की दो, और डॉ० तासीर की तीन नज़्में छपी हैं। देखो तो कितनी अच्छी है—सीधी-सादी और गहरी !" चेतन जा कर अपनी कुर्सी पर बैठ गया और उसने 'कारवाँ की प्रति उठा ली।

लेकिन चन्दा उठ खड़ी हुई, "आप सिर्फ़ पाँच मिनट रुकिए। मुझे भूख लगी है, मैं दो फुल्के थाली में रख लाऊँ। यहीं आ कर खाऊँगी और सुनूंगी। आप क्या चाय का प्याला लेंगे ?"

"तुम अपने लिए ले आओ और मेरी चिन्ता न करो," चेतन ने ज़रा तीखे स्वर में कहा, "और जहाँ तक चाय का ताल्लुक है, जब तक मैं खुद

न कहूँ, कभी चाय न बनाओ। चाय ख़ुश्की करती है, और जिस शाम मैंने पी है, मुझे नींद नहीं आयी। बहुत ठण्ड हो, थकावट हो, बुख़ार हो तो चाय ले लें, वरना आँतें जलाने से क्या फ़ायदा। हम लस्सी पीने वाले लोग हैं, हमें चाय सूट नही करती।" और वह 'कारवाँ' देखने लगा।

प्रकट ही वह नाराज हो गया था। चन्दा क्षण भर उसे देखती रही। फिर उसने धीरे से कहा . "आप नाराज़ न हों, मैं कुछ नहीं खाऊँगी तो मैं ठीक से सुन न सकूंगी।"

"ठीक है, तुम जाओ और खाओ।"

चन्दा चली गयी। चेतन ने 'कारवाँ' उलट कर मेज़ पर रख दिया और जैसे झुँझलाया हुआ, अपनी कहानी की स्लिपें पढने लगा। लेकिन एक बार स्लिपें पढ कर, आगे कहानी बढ़ाने के लिए वह बैठा सोचता रहा और एक भी पंक्ति उसके ज़ेहन मे नही आयी तो उसने फिर 'कारवाँ' उठा लिया और उसके वरक पलटने लगा।

अपनी कहानी को पूरा करने के प्रयास मे चेतन ने कई बार पत्रिका उठायी थी। उसने दूसरी रचनाएँ भी देखी थी, लेकिन मजीद मलिक और डॉक्टर तासीर की नज़्मों पर हर बार नज़र डाली थी।—उसे ये दोनों शायर, हफ़ीज़ जालन्धरी और अख्तर शीरानी से भिन्न लगे थे—उतने ही सरल, बोध-गम्य और प्रभावी, लेकिन बात कहने का उनका अपना ढंग था। 'कारवाँ' में मजीद मलिक की दो कविताएँ छपी थी। उनमे 'आगाज़'[१] उसे बहुत पसन्द आयी थी :

मुझे तुझ से इश्क, नहीं-नहीं !
मगर ऐ हसीना-ए-नाज़नी,[२]
तू हो मुझ से दूर अगर कभी
तुझे ढूँढती है नज़र कभी

१. समारम्भ २. सुन्दर तन्वंगी

तो जिगर में उठता है दर्द-सा
मेरा रंग रहता है ज़र्द-सा
मगर ऐ हसीना-ए-नाज़नीं,
मुझे तुझ से इश्क, नहीं-नहीं !
मुझे तुझ से इश्क, नहीं-नहीं !
मगर ऐ हसीना-ए-नाज़नीं,
तू अगर हो मजमा-ए-आम[1] में,
किसी खेल में, किसी काम में,
तो मैं छुप के दूर-ही-दूर से
तुझे देखता हूँ ग़रूर[2] से।
मगर ऐ हसीना-ए-नाज़नीं,
मुझे तुझ से इश्क, नहीं-नहीं !
मुझे तुझ से इश्क, नहीं-नहीं !
मगर ऐ हसीना-ए-नाज़नीं,
तू कहे य' मुझसे अगर कभी,
मुझे ला दो लाल-ो-गुहर कभी,
तो मैं दूर-दूर की सोच लूँ,
मैं फ़लक के तारे भी नोच लूँ,
यह सबूत-ए-शौक-ए-कमाल दूँ,
तेरे पाँवों पर उन्हे डाल दूँ !
मगर ऐ हसीना-ए-नाज़नीं,
मुझे तुझ से इश्क, नहीं-नहीं !

चेतन इस कविता को पढ कर झूमता था। कवि इश्क करता है—बहुत गहरा, लेकिन कहता यही है कि मैं नहीं करता। अख्तर शीरानी की सीधी-सादी, भावुकता-भरी, इश्किया नज्मों की अपेक्षा, जहाँ कवि धारा-

१. आम लोगों की भीड़ २. गर्व

प्रवाह् अपने जज़्बात को बयान करता चला जाता है, चेतन को इश्क के बयान का यह अन्दाज़ पसन्द आया था। मजीद मलिक के बारे में चेतन ने पण्डित रत्न से पूछा था तो उसे मालूम हुआ था कि एक अमीर घराने के चश्मे-चराग़[1] हैं, और एक दूसरे घराने की पढ़ी-लिखी, हसीन लडकी, आमना बट्ट से प्यार करते हैं। मजीद ख़ूबसूरत शायर है, चेतन को इस बात का पता चल गया था।—मजीद मलिक और आमना बट्ट, दोनों ही प्यारे नाम थे और तभी उसने तय किया था—वह उस शायर से ज़रूर मिलेगा।

जहाँ तक डॉ० तासीर का ताल्लुक है, उनकी चार नज़्में 'कारवाँ' में छपी थीं। वह उन्हे गीत कहे या नज़्में, चेतन यह तय नहीं कर पाया था। लेकिन जो भी थीं, वे चेतन को अच्छी लगती थीं—विशेषकर उनमें पहली :

तुम भी प्रीत करो तो जानो
हम दुखियों की फ़रियादों को
दिल से टीस उठे तो दिल से
तुम भूलो सब बेदादों[2] को
प्रीत करो तो जानो !

प्रीत करो अपने जैसे से
सुन्दर सूरत, पत्थर-दिल से
दर-दर सर टकराओ जैसे
दीवानी मौजें साहिल[3] से
प्रीत करो तो जानो !

प्रीत के शोले ऐसे लपकें
जल बुझ जायें सब गुन-औगुन

१. आँख और दीपक—याने बेटे २. ज़ुल्म ३. किनारा

ना कोई अपना, ना कोई दूजा
ना कोई बैरी, ना कोई साजन
प्रीत करो तो जानो !
तुम भी प्रीत करो तो जानो !

उसके प्रिय कवि, अख्तर शीरानी के मुकाबिले में इन दोनों कवियों में क्या भिन्न था, चेतन उस पर उँगली न रख सकता था; लेकिन कुछ भिन्न है, यह बात वह शिद्दत से महसूस करता था और जिस तरह अख्तर शीरानी को एक नज़र देखने की तमन्ना उसके मन में उमगी थी, वैसे ही इन दोनों को देखने की उत्कण्ठा उसके मन में तीव्रतर हो गयी थी।

उन कविताओं को पढ़ते हुए, चेतन के मन में आया था कि क्यों न वह उन दोनों से मिले; उनकी नज़्मों की तारीफ़ करे और लह जाय तो बात-बात में सोसाइटी का ज़िक्र करे। उनकी दिलचस्पी देखे तो उनसे कहे कि सोसाइटी का दायरा बढ़ाने में उसकी मदद करें और अपने जान-पहचान वालों मे जो सुख़न-शनास और सुखन-फ़हम लोग हों, उनसे सोसाइटी की सिफ़ारिश करें।

लेकिन दूसरे ही क्षण उसके मन में फिर संशय ने सिर उठाया—'यह बहुत अमीर लोगों का तबका है,' उसने मन-ही-मन कहा, 'मैं पण्डित अख़्तर से सिफ़ारिशी चिट्ठियाँ तो ले लूंगा, पर क्या मिल कर ठीक से बात भी कर पाऊँगा ?'

और वह उठ कर कमरे मे चक्कर लगाने लगा। उसने तय किया कि वह जायगा ज़रूर। कुछ नहीं होगा तो उन्हें एक नज़र देख ही लेगा।

चन्दा, एक थाली में दो रोटियाँ और तरकारी रख कर आ गयी थी और ईज़ी-चेयर पर बैठ कर, थाली उसने अपनी गोद में रख ली थी। लेकिन चेतन ने उधर नहीं देखा। वह चुपचाप कमरे में घूमता रहा और फिर उसने अपनी सारी स्लिपें उठा कर फ़ाइल में रखीं और सोसाइटी के ब्रोशर उठा कर बाहर जाने को तैयार हो गया।

चन्दा नज़्में सुनने को उत्सुक बैठी थी। उसे जाने को तैयार देख कर उसने कुछ ऐसी निगाहों से चेतन की ओर देखा, जिनमें प्रश्न भी था, खेद भी और पश्चाताप भी।

"मैं सोचता हूँ कि पण्डित हरिचन्द 'अख़्तर' से उनके घर पर मिलूँ और उनसे मजीद मलिक और डॉ० तासीर के लिए सिफ़ारिशी चिट्ठियाँ ले लूँ।" चेतन ने अपनी पत्नी को सूचना दी।

चन्दा कहना चाहती थी, 'आप तो मुझे नज़्म सुनाने वाले थे।' लेकिन उसने कहा कुछ नहीं। केवल उसके मुस्कराते मुख की आभा न जाने कहाँ चली गयी और उसका चेहरा लटक आया।

चन्दा के चेहरे की कुछ अजीब बनावट थी। मुस्कराने मे वह बहुत आकर्षक लगता था और उदास होने पर कुरूप हो जाता था। उसका चेहरा यूँ तो गोल था, लेकिन जब गम्भीर या उदास होता तो उसका बायाँ जबड़ा ज़रा-सा लटक आता। हँसने पर उसके होंट फैलते तो वह ढीला माँस, चेहरे मे न जाने कहाँ घुल-मिल जाता और हँसी उसके सारे चेहरे को जैसे उद्भासित कर जाती।

चेतन ने अपनी पत्नी का उदास मुख देखा। उसके मन में कचोका-सा लगा। वह उससे कैसे कहता कि जो व्यक्ति पाँच-सात मिनट भूख को नहीं भूल सकता, उसे कविता सुनाना बेकार है। और, सुनाने की उमंग, इच्छा पर नहीं आती। वह उसी वक्त सुन लेती तो वह पूरे जोश से सुनाता, पर अब....लेकिन उसे उदास छोड कर चले जाने मे उसे उलझन हुई। वह यूँ चला जायगा तो रास्ते भर वही सूरत उसकी आँखों के सामने घूमती रहेगी। उसका जी हुआ, उसे किसी तरह हँसा दे। वह लौट पडा। सोसाइटी के ब्रोशर मेज़ पर रख कर उसने 'कारवाँ' उठाया। मेज़ से पीठ लगाते और पत्रिका का वह पृष्ठ ढूंढते हुए, जिस पर मजीद मालिक की नज़्म थी, उसने कहा :

"मैं नहीं जानता कि तुम कविता समझ या पसन्द कर सकोगी ? जिसे कविता के नाम पर भूख की याद आ जाय और जो पाँच-सात मिनट उसे

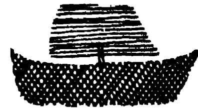
रोक न सके, उसे कविता सुनने का कोई अधिकार नहीं। पर तुम कहती हो तो सुनाता हूँ।"

चन्दा के चेहरे पर एक प्यारी-सी मुस्कान खेल गयी। बड़े भोलेपन से उसने अपने बढ़े हुए पेट की ओर संकेत करते हुए कहा, "ऐसे में लोगों की भूख सूख जाती है, तबियत मिचलाती है, पर जाने क्यों मुझे बहुत भूख लगने लगी है।"

उसकी मुस्कान और भी फैल गयी। चेतन क्षण भर विमुग्ध, अपनी पत्नी को देखता रहा, फिर बायें हाथ में खुली पत्रिका ले कर, नज़्म सुनाने लगा :

मुझे तुझ से इश्क, नहीं-नहीं।



चौबीस

आखिर काफी सोच-विचार और ऊहा-पोह के बाद चेतन, अपनी अनिच्छा पर अधिकार पा कर, चातक जी के यहाँ जाने के लिए तैयार हो गया।

पण्डित 'अख्तर' की मदद से चेतन पिछले दिनो डॉक्टर तासीर से मिला था, मजीद मलिक से मिला था, हफ़ीज जालन्धरी से भी मिला था और यद्यपि वह जरा भी अपमानित न हुआ था और कुल-मिला कर उसे वह सब अच्छा ही लगा था पर सोसाइटी के लिए चन्दा वह एक पैसा भी प्राप्त न कर पाया था। जो नयी एप्रोच उसने इख्तियार की थी, वह फल देने मे समय की अपेक्षा रखती थी, इसलिए उन लोगो से दोबारा मिलने और उनके माध्यम से अन्य धनी-मानी साहित्य-प्रेमी लोगो तक अपनी रसाई[1] करने के दौरान, उसने सोचा, वह हिन्दी-साहित्यकारो से भी मिले।

लाहौर के हिन्दी साहित्यकारों मे केवल दो ही थे, जो उस सिलसिले मे उसकी कुछ सहायता कर सकते थे—श्री चातक और श्री धर्मदेव वेदालंकार! शेष में, नीरव जी एक सनातनी स्कूल मे अध्यापक थे और शुक्ला जी, एक साधारण साप्ताहिक के सम्पादक। उनकी पहुंच पैसे वालो तक नही थी। चातक जी और वेदालंकार जी की थी।—चातक जी का हर काव्य-संग्रह किसी-न-किसी सेठिए को समर्पित था और वेदालंकार जब मिलते थे, कोई-न-कोई बडा नाम अपने मित्रो पर लाद देते थे, जिससे वे उस दिन मिले थे या जिसके साथ उन्होने लंच या डिनर लिया था या चाय

---

१. पहुंच सकने

पी थी।—लेकिन दुर्भाग्य से दोनों के प्रति चेतन के मन में घोर वितृष्णा थी। वेदालंकार जी से उनकी स्नॉबरी के कारण और चातक जी से इसलिए कि उन्होने उसकी ग़रीबी और ज़रूरत का अनुचित लाभ उठाना और उससे प्रेत-लेखन कराना चाहा था। चेतन ने मन में तय किया था कि वह उनसे कभी नहीं मिलेगा। वह इतने दिन से सोसाइटी के लिए दौड़-धूप कर रहा था, सदस्यता अथवा सरपरस्ती के लिए उनसे कहना तो दूर रहा, उसने उन्हें सूचना तक न दी थी। लेकिन इतने लोगों से मिल कर आने और उस सिलसिले में कई तरह के अनुभव प्राप्त करने के बाद, उसने सोचा कि अगर उसे सोसाइटी ढंग से चलानी है तो अपने निजी राग-द्वेष से ऊपर उठ कर उसे काम करना होगा। सोसाइटी उसकी तो है नहीं। वह तो एक सार्वजनिक संस्था है और जो लोग सार्वजनिक संस्थाओं के लिए काम करते है, उन्हें अपनी व्यक्तिगत भावनाओं की चिन्ता नहीं करनी चाहिए! —यही सोच कर, वह चातक जी से मिलने को तैयार हो गया था।

लेकिन चलने से पहले उसने यह सोच लिया था कि वह अपने चेहरे पर अपनी आन्तरिक वितृष्णा का ज़रा भी आभास नहीं आने देगा। जैसे वह पहले उनसे मिलता था; उनकी कविताएँ सुनता था; उनके घर खाना खाता था, वैसे ही वह अब भी करेगा। कोशिश करेगा कि सोसाइटी की सरगर्मियो मे चातक जी पूरा योग दें। सम्भव होगा तो उन्हे साथ ले कर वह श्री धर्मदेव वेदालंकार के यहाँ जायगा और उन्हे सोसाइटी का सदस्य बनाने का प्रयत्न करेगा। चूंकि उसने पूरा दिन चातक जी के साथ गुज़ारने का फ़ैसला किया था, इसलिए साइकिल का बोझ उठाना उसे कष्टकर लगा था—ख़ास तौर पर इसलिए कि पिछले कई दिन से वह लगातार साइकिलिंग करता आ रहा था और बेतरह उबिया गया था।

ओशर और रसीद-बुक बग़ल में दबा कर, कमरा बन्द करते हुए उसकी नज़र अपनी साइकिल पर गयी—पहली और दूसरी मंज़िल की सीढ़ियों के बीच की जगह, उड़सी रखी थी। चूंकि जगह वहाँ इतनी नहीं थी कि साइकिल सीधी रखी जा सके, सो वह दीवार के साथ ऐसे फंसा कर रखी

जाती थी कि उसका पिछला पहिया ऊपर की दूसरी सीढ़ी पर टिका रहता था और अगला, चेतन के कमरे की चौखट के साथ, कोने में !—चेतन को इस बात का तकलीफ़देह एहसास हुआ कि इस नये घर में साइकिल रखने की कोई जगह नहीं और हर बार उसे साइकिल को आधी सीढ़ियाँ चढ़ाना और उतारना पड़ता है और उसका पिछला पहिया काफ़ी ऊँचा उठा कर ऊपर को मुड़ने वाली सीढ़ी पर टेढ़ा करके रखना पड़ता है। उतारने और चढाने में खासा कष्ट होता है—'आज तुम यहीं आराम करो' की-सी दृष्टि साइकिल पर डाल कर, चेतन बडे हल्के मूड मे सीढ़ियाँ उतर गया। चाबियों का गुच्छा उसने कान्ता बहन को दिया और मज़े से चल दिया।

वह 'अमृतधारा बिल्डिंग' के मोड़ पर पहुँचा होगा कि उसे खयाल आया, यह रसीद-बुक और इतने ब्रोशर वह बेकार ही साथ लाया है। इनकी क्या जरूरत है। आज तो वह चातक जी के साथ गप-सड़ाके में समय गुज़ारेगा। और वह मुड़ा। कान्ता से चाबी ले कर वह फिर ऊपर कमरे में गया। अलमारी के खाने मे उसने रसीद-बुक और ब्रोशर रख दिये। क्षण भर वहीं खड़ा, सोचता रहा। फिर उसने एक ब्रोशर तहा कर जेब में रख लिया और कमरे को ताला लगा कर मजे से सीढ़ियाँ उतर गया।

वह कान्ता को चाबी देने जा रहा था कि उसके मन में आया—यदि चातक जी उसके संग वेदालंकार के यहाँ जाने को तैयार हो गये तो....? उसे कुछ और ब्रोशर साथ ले लेने चाहिएं। वह फिर ऊपर गया। उसने ब्रोशर उठाये। फिर यह सोच कर कि कारीगर को अपने हथियार हमेशा साथ रखने चाहिएँ, कहाँ कब कैसी ज़रूरत पड़ जाय, इसका भरोसा नहीं, उसने रसीद-बुक भी उठा ली और फिर इसी दलील के अन्तर्गत उसने अलमारी के खाने से साइकिल की टोकरी उठायी, उसमें काग़ज़-पत्र रखे और उसे नीचे रख आया। फिर कमरे को ताला लगा कर उसने साइकिल नीचे उतारी। उसमे टोकरी लगायी, चाबी फिर जा कर कान्ता बहन को दी। साइकिल उसने ले तो ली, लेकिन वह उस पर सवार नहीं हुआ। उसने तय किया कि 'मंजरी' कार्यालय कोई दूर तो है नहीं, वह मज़े-मज़े टहलता

हुआ जायगा और साइकिल हाथ में लिये हुये, खरामा-खरामा चल दिया।

मुहल्ले का मोड़ पार करने के बाद, 'अमृतधारा बिल्डिंग' के पास, सड़क पर आते ही उसकी नज़र बायीं ओर, अमृतधारा की लम्बी-चौड़ी, तिमंज़िली बिल्डिंग के परले विंग पर लगे हुए बोर्ड पर चली गयी। (चेतन अमृतधारा रोड से बीसियों बार गुज़रा था, पर वह हमेशा बिना इधर-उधर देखे, अपने ध्यान में मस्त चला गया था और उसने उस लम्बी-चौड़ी इमारत की ओर कभी ध्यान नहीं दिया था; लेकिन उस मूड में, जब वह धीरे-धीरे बाज़ार की रौनक देखता हुआ जाना चाहता था, उस बोर्ड ने उसका ध्यान अनायास आकर्षित कर लिया। उसे कोई जल्दी नहीं थी। दस बजे के करीब उसे 'मंजरी' के दफ़्तर पहुँचना था। चातक जी कभी दस बजे से पहले दफ़्तर नहीं आते थे, यह बात वह अच्छी तरह जानता था।) उसने थोड़ा निकट जा कर, बोर्ड को ग़ौर से देखा और उस पर क्या लिखा है, यह भी पढ़ा। ऊपर लाल रोशनाई में बड़े-बड़े उर्दू अक्षरों मे 'अमृतधारा' लिखा था। बायी ओर दवा की शीशी बनी थी और दायीं ओर, बन्द गले का कोट और बड़ी-सी पण्डिताऊ पगड़ी पहने, अपने गोल चेहरे पर दोनों होंटों, बल्कि चेहरे का अग्र भाग ढँकती हुई मूँछें धारण किये, एक अधेड़ व्यक्ति का चित्र था। नीचे, सफ़ेदे से, ख़ूबसूरत उर्दू अक्षरों मे लिखा था—वैद्यराज पण्डित ठाकुरदत्त, मूजिद अमृतधारा! (याने अमृतधारा के आविष्कारक!) चेतन ने मुड़ कर पीछे की ओर देखा—उधर के विंग पर भी ऐन-मैन वैसा ही बोर्ड लगा था। अमृतधारा और उसके आविष्कारक के चित्र का एक जहाज़ी बोर्ड बिल्डिंग के दोमंज़िले पर भी टँगा था।

पण्डित ठाकुरदत्त का नाम आंखों के आगे आते ही चेतन के सामने दो दूसरे नाम आ गये—सरदार बधावा सिंह और कविराज रामदास। ये तीनों व्यक्ति धुआँधार प्रचार से, केवल एक-एक चीज़ के बल पर लखपति हो गये थे—बधावा सिह अपने 'अचार शलजम,' कविराज रामदास अपनी पुस्तक 'विवाहित आनन्द' और पण्डित ठाकुरदत्त वैद्य अपनी

'अमृतधारा' के कारण !

चेतन ने पत्र-पत्रिकाओं में 'अमृतधारा' का, पूरे-पूरे पृष्ठ का विज्ञापन देखा था। उसके आविष्कारक का दावा था कि वह कसीरुल-अमराज़ दवा[1] है। कोई ऐसी बीमारी नही, जिसका इलाज वे 'अमृतधारा' से न कर सकें।....चेतन ने सामने बोर्ड पर निगाहें दौड़ायीं। वहाँ भी शीशी की एक ओर, उर्दू में 'कसीरुल अमराज़ दवा' लिखा था। दूसरी ओर हिन्दी में लिखे शब्दों पर चेतन ने निगाहें गाड़ी, उसने पढ़ा—'बहु-रोग-भेषज।' भेषज ?—उसे भेषज के अर्थ नही आते थे, पर उसे लगा, यह 'दवा' का हिन्दी-अनुवाद है। 'औषधि क्यों नहीं, भेषज क्यों ?' उसने मन-ही-मन कहा, 'बहुरोग भेषज....साले बहुरोग भेषज के !' उसने मोटी-सी गाली मन-ही-मन दे डाली और चल पड़ा। उसके दिमाग़ में लड़कपन की एक घटना घूम गयी....

....एक बार बचपन में चेतन को पेट में सख्त दर्द हुआ था। माँ ने किसी को भेजा था और वह चाचा हरलाल पंसारी से एक बताशे पर दो बूंदें 'अमृतधारा' डलवा लाया था। चेतन ने बताशा मुंह मे रख लिया था। उसका मुंह कड़वा गया था। हाँ, साँस लेने मे उसे खासी ठण्डक लगी थी। उसे एक-दो डकार आये थे और उसके पेट-दर्द को थोड़ा लाभ हुआ था। माँ ने तब चार आने की शीशी मँगा कर रख ली थी कि बच्चों वाला घर है, ऐसी दवा घर मे होनी चाहिए। एक बूंद बताशे पर डाल कर, माँ ने उसे और दी थी। फिर शीशी सँभाल कर रख दी। जब फिर कुछ महीने बाद चेतन के छोटे भाई का जी मिचलाने लगा तो माँ ने झट अन्दर से आधी छिगुली के बराबर 'अमृतधारा' की वह छोटी-सी शीशी निकाली थी। लेकिन लाख कोशिश करने पर भी, उसमे से एक बूंद दवा न निकली थी। सारी दवा उड़ गयी थी।....दूसरे लोगों के साथ उससे भिन्न होता होगा, चेतन को सन्देह था, पर अपरम्पार विज्ञापन के बल पर, वह

१. बहुत-सी बीमारियों की एक दवा

दवा (शायद कार्क ज़रा-सा ढीला रह जाने की वजह से उड़ जाने के बावजूद) घर-घर में ख़रीद कर रखी जाती थी—लाहौर में शायद ही कोई गली-मुहल्ला ऐसा होगा, जहाँ कहीं-न-कहीं बधावा सिंह के अचार-शलजम, कविराज के 'विवाहित आनन्द' तथा पण्डित ठाकुरदत्त की 'अमृतधारा' का बोर्ड न लगा हो; कोई ही ऐसा घर होगा, जिसमें इन तीनों चीज़ों में से कोई एक, न आयी होगी।....'इन तीनों ने बहुत ही मामूली हैसियत से ज़िन्दगी शुरू की है,' चेतन ने सोचा, 'लेकिन अपनी मेहनत, सूझ-बूझ और शक्ति के बल पर सारे देश से अपना सिक्का मनवा लिया है।' तब उसे कौन आगे बढ़ने से रोक सकता है। उसने एप्रोच बदल दी है, थोड़ी देर भले ही लग जाय, पर वह पक्के पैरों पर सोसाइटी खड़ी कर देगा।....यही सब सोचता और साइकिल का हैण्डल थामे धीरे-धीरे चलता हुआ, चेतन सब्ज़ी मण्डी के चौरस्ते पर जा पहुँचा।

हलवाई की दुकान पर बहुत भीड़ थी। चेतन ने दो पेड़े डाल कर पाव भर दही की लस्सी बनाने का आदेश उसे दिया; मलाई को अच्छी तरह मार ले, तब पानी डाले, इस बात की हिदायत हलवाई को देना वह नहीं भला और साइकिल से पीठ लगा कर, पैर ज़रा पसार कर, अपनी बारी का इन्तज़ार करने लगा। उसकी आँखें हलवाई के लोटे और मथनी पर थीं और दिमाग़ में उर्दू शायरों से अपनी मुलाकातें उभर रही थीं....

जब चेतन ने उर्दू शायरों से मिलने का फ़ैसला किया था तो सम्पर्क-सूत्र के रूप में पहले उसके ज़ेहन में पण्डित रत्न का नाम आया था, लेकिन थोड़ा सोचने पर इस सिलसिले मे उसने पण्डित 'अख़्तर' से ही मिलने का फ़ैसला किया था। पण्डित रत्न भी तमाम उर्दू अदीबों को जानते थे, पर चेतन को मालूम था कि अधिकांश से उनके सम्बन्ध औपचारिक थे। उन लोगों से पण्डित रत्न की उतनी घनिष्टता नहीं थी, जितनी पण्डित अख़्तर की। वे हफ़ीज़ जालन्धरी के दाहिने हाथ समझे जाते थे। अपनी हाज़िर-जवाबी, लतीफ़ागोई और काव्य की समझ के कारण वे उस गुट के एक सम्मानित

सदस्य थे और मुसलमान अदीबों से उनकी इसी मैत्री के कारण 'देश' के सम्पादक, पण्डित 'शाहीं' उन्हें 'पण्डित अख़्तर' के बदले 'मौलाना अख़्तर' पुकारते थे। दो वर्ष पहले, चेतन ने हफ़ीज़ जालन्धरी का दूसरा काव्य-संग्रह, 'सोज़-ो-साज़' देखा था। उस पर पण्डित 'अख़्तर' की एक लम्बी भूमिका थी। हफ़ीज़ चेतन के भी प्रिय कवि थे। उसने वह भूमिका पढ़ी थी। वह उन की कविताओं को एक नये कोण से पढ़ने की प्रेरणा देती थी। उसी भूमिका से चेतन को मालूम हुआ था कि 'तासीर' भी पण्डित 'अख़्तर' के घनिष्ट मित्र हैं।

वास्तव में उन लोगों का गुट सात-आठ वर्ष पहले, महाशय धर्मचन्द के ढाबे पर इकट्ठा हुआ करता था। उन्हीं की प्रेरणा से महाशय धर्मचन्द ने साप्ताहिक 'बहार' निकाला था। हफ़ीज़ और 'अख़्तर' में तभी से गहरी दोस्ती थी और इन वर्षों ने उसमें ज़रा भी अन्तर नहीं आने दिया था। पिछले वर्ष, जब चेतन ने अपना पहला कहानी-संग्रह—'औरत : एक पहेली'—संकलित किया था और मुन्शी चन्द्रशेखर ने उसकी भूमिका लिखी थी, जिसमें उन्ही कहानियों की आलोचना उन्होने की थी, जिनकी वे प्रशंसा कर चुके थे, तब अपना पक्ष देने के लिए चेतन को एक और लेख की आवश्यकता हुई थी और 'सोज़-ो-साज' की इसी भूमिका को पढ़ कर, उस ने तय किया था कि वह पण्डित 'अख़्तर' से अपनी भूमिका लिखवायेगा। उसने वह भूमिका लिखवा ली थी और वह उनके थोड़ा निकट हो गया था। सोसाइटी के सिलसिले में भी वह पण्डित 'अख़्तर' से मिला था। उन्होंने चेतन की सारी योजना ध्यान से सुनी थी, उसका हौसला बढ़ाया था और अपने तीनों शायर-मित्रों के नाम चिट्ठियाँ दे दी थीं। मजीद मलिक से उनके घर, डॉ० तासीर से इस्लामिया कॉलेज में और हफ़ीज़ जालन्धरी से अनारकली के दफ़्तर में मिलने की राय उन्होंने दी थी।

(जालन्धर के तो और भी शायर थे, हफ़ीज़ अपने नाम के साथ जालन्धरी विशेष रूप से लिखते थे। चेतन भी कुछ दिन उनकी नकल में 'चेतन जालन्धरी' और फिर जब उसने कश्मीरीलाल 'दाग़' के देहान्त पर

उनका उपनाम ले लिया तो 'दाग जालन्धरी' लिखता रहा था। लेकिन वह कहानियाँ लिखने लगा और सिर्फ चेतनानन्द हो कर रह गया। हफीज शायर रहे और जालन्धरी ही रहे)

चेतन ने जालन्धर ही मे सुना था कि हफीज लडकपन मे अपने पिता के साथ बाज़ार शेखाँ मे टोपिया बनाया करते थे, लेकिन आवाज़ मे बला का सोजो-गुदाज था, गुनगुनाने और शे'र कहने लगे तो उन्होने फौरन रसज्ञो का ध्यान अपनी ओर खीचा। चेतन ने उनके पहले काव्य-सग्रह, 'नग्माजार' मे देखा था—चौदह-पन्द्रह बरस की उम्र मे हफीज ऐसे शे'र कहने लगे थे

> टूट तो मौत ही से यह टूटेगा सिलसिला
> वरना शबे-फिराक की रस्सी दराज[1] है
> ये भी कमाल-ए-इश्क की है बे-नियाज़ियाँ[2]
> जो था नियाजमन्द वही बे-नियाज़[3] है

> फलक से आज शोर-ए-ना'रा-ए-मस्ताना आता है
> कोई मयनोश बादल जानिब-ए-मयखाना[4] आता है
> लिहाज-ए-खातिर-ए-अहबाब-ए-देरीना[5] है ऐ जाहिद[6]
> चलूँ क्या सू-ए-मस्जिद राह मे मयखाना आता है।

जालन्धर मे तब कहा जाता था कि ईट उठाओ तो नीचे मे शायर निकलता है, सो दूसरे शायरो के साथ हफीज, मुशायरो मे पढने और प्रशसा पाने लगे। उन दिनो जालन्धर मे उस्ताद 'गिरामी' का बहुत नाम था। हफीज उनके शागिर्द हो गये। 'गिरामी' के दर पर लाहौर के बडे-बडे साहिबे-जौक[7] आते थे, सो हफीज लाहौर के मुशायरो मे जाने लगे। महाशय धर्म-

१. लम्बी २. निरपेक्षताएँ ३. जो [illegible]नाभिलाषी था, मैत्री चाहता था, वह उससे बेपरवाह हो गया है, ४. मदिरालय की ओर ५. पुराने दोस्तों की इच्छा का लिहाज ६. ऐसा व्यक्ति, जो कोई नशा नही करता। ७. रसज्ञ।

चन्द के ढाबे पर इकट्ठे होने वाले शायरों और अदीबों में शामिल हुए। उनकी ग़ज़लों में गहराई और गीराई[1] आयी। वहीं पर अब्दुल कादिर की नज़र मे चढ़ गये। 'मख़ज़न' के सम्पादक बने और उनकी प्रगति को पंख लग गये। उनके दूसरे काव्य-संग्रह, 'सोज़-ो-साज़' की गजलें, 'नग़मा-ज़ार' की 'ग़ज़लों' से कहीं ज्यादा गहरी थी। चेतन को उस संग्रह की पहली ही ग़जल बहुत अच्छी लगी थी। थोड़ी कठिन, लेकिन अर्थ-भरी और वह अपनी कनसुरी आवाज मे प्रायः उसे गाया करता था :

वो सरख़ुशी[2] दे कि ज़िन्दगी को शबाब से बहरायाब[3] कर दे
मेरे ख़यालों में रंग भर दे, मेरे लहू को शराब कर दे
हक़ीक़तें आश्कार[4] कर दे, सदाक़तें[5] बे-हिजाब[6] कर दे
हर एक ज़र्रा यह कह रहा है कि आ, मुझे आफ़ताब[7] कर दे
य' ख़ूब क्या है, य' ज़िश्त[8] क्या है, जहाँ की असली सरिश्त[9] क्या है
बड़ा मज़ा हो तमाम चेहरे अगर कोई बे-नकाब कर दे
कहो तो राज़-ए-हयात[10] कह दूँ, हकीकत-ए-कायनात[11] कह दूँ
वो बात कह दूं पत्थरों के जिगर को भी आब-आब[12] कर दे
ख़िलाफ़-ए-तक़दीर कर रहा हूँ, फिर एक तकसीर[13] कर रहा हूँ
फिर एक तदबीर कर रहा हूँ, ख़ुदा अगर कामयाब कर दे
तेरे करम[14] के मुआमले को तेरे करम ही पे छोड़ता हूँ
मेरी ख़ताएँ शुमार कर ले,[15] मेरी सज़ा का हिसाब कर दे

इस ग़जल की बन्दिश, इसके शब्दों का चुनाव और इसके अर्थों की गहराई पर चेतन फ़िदा था, लेकिन एक दूसरी गजल अपनी सादगी और पुरकारी

१. व्यापकता २. मस्ती ३. भर दे ४. प्रकट ५. सच्चाइयाँ ६. बे-पर्दा, बेबाक सच्चाइयों से शर्म का पर्दा हटा दे ७. सूरज ८. निकृष्ट ९. प्रकृति १०. ज़िन्दगी की यथार्थता ११. संसार की वास्तविकता १२. पानी-पानी कर दे १३. ग़लती, अपराध १४. कृपा, १५. मेरे दोष गिन ले।

के लिए उसे पसन्द थी और इसीलिए कण्ठस्थ भी थी और कभी-कभी अपनी बेइन्तेहा कठिनाइयों और उदासियों में, वह उसे पागलों की तरह गाया और सिर धुना करता था :

वफ़ादारियाँ सख़्त नादानियाँ हैं
कि उनके नतीजे पशेमानियाँ[1] हैं
पशेमानियाँ हैं गुनाहों पे लेकिन
बड़े ही मजे की पशेमानियाँ हैं
मुहब्बत करो और निबाहो तो पूछूँ
ये दुश्वारियाँ[2] हैं कि आसानियाँ हैं
मेरा तजरुबा है कि इस ज़िन्दगी में
परेशानियाँ ही परेशानियाँ हैं

लेकिन हफ़ीज जालन्धरी, गजलों के लिए प्रसिद्ध नहीं थे। ग़जलें उनसे कहीं अच्छी, 'सौदा,' 'मीर' और 'गालिब' लिख गये थे और 'इकबाल' लिख रहे थे। वे मशहूर थे, उन नज्मों के लिए, जिनके बारे में स्वयं उन्होंने लिखा था :

किया पाबन्द-ए-नय नाले को मैंने
यह तर्ज-ए-ख़ास है ईजाद मेरी[3]

चेतन नवीं-दसवीं में पढता था, जब जन्माष्टमी पर, साप्ताहिक 'बहार' का एक शानदार 'कृशन-नम्बर'[4] निकला था। उसने देखा—पत्र के पूरे पन्ने पर भगवान कृष्ण की बहुत ही सुन्दर तस्वीर बढिया आर्ट पेपर पर छपी थी। (यह तस्वीर साप्ताहिक मे इसलिए अलग से रखी गयी थी कि पाठक उसे फ्रेम करा सकें) चित्र मे, केवल धोती, पीताम्बर और मुकुट पहने, मोर-पंख लगाये, बाँहो में बाजूबन्द और गले मे हार सजाये, पतले-छरहरे भगवान कृष्ण, टाँग-पर-टाँग रखे चट्टान पर बैठे बंसरी बजा रहे

१. पछतावे २. मुश्किलें ३. मैंने फ़रियाद को स्वर में बाँध दिया है, यह विशेष शैली मैंने अपनी आविष्कृत है। ४. कृष्णांक

थे। तस्वीर के नीचे बहुत ही सुन्दर लिखावट में हफ़ीज़ की नज़्म छपी थी :

बंसरी बजाये जा।
काहन, मुरलीवाले, नन्द के लाले,
बंसरी बजाये जा।

प्रीत में बसी हुई अदाओं से,
गीत में बसी हुई सदाओं से,
ब्रजबासियों के झोंपड़े बसाये जा,
सुनाये जा, सुनाये जा।
काहन, मुरलीवाले, नन्द के लाले,
बंसरी बजाये जा।
बंसरी की लय[1] नहीं है आग है,
और कोई शय[2] नहीं है आग है,
प्रेम की यह आग चार सू[3] लगाये जा।
सुनाये जा, सुनाये जा
काहन, मुरलीवाले, नन्द के लाले,
बंसरी बजाये जा।

स्वतन्त्रता आन्दोलन का जमाना था। हिन्दू-मुस्लिम एकता के गीत लिखे जाते थे। इकबाल ने अपना प्रसिद्ध राष्ट्रीय गीत—'तराना-ए-हिन्दी' :

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा

और हिन्दुस्तानी बच्चों का कौमी गीत :

मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है

लिखा था। ये दोनों नज़्में छपते ही पंजाब के बच्चे-बच्चे की ज़बान पर चढ़ गयी थीं। हफ़ीज़ जालन्धरी ने भी अपने इसी रंग में 'प्रीत का गीत' लिखा था और अपनी सादगी के कारण वह चेतन को बेहद पसन्द था :

---

१. सुर १. चीज ३. चारों ओर

अपने मन में प्रीत बसा ले
अपने मन में प्रीत
मन मन्दिर में प्रीत बसा ले, ओ मूरख ओ भोले-भाले
दिल की दुनिया कर ले रोशन, अपने घर में जोत जगा ले
प्रीत है तेरी रीत पुरानी, भूल गया ओ भारत वाले
भूल गया ओ भारत वाले
प्रीत है तेरी रीत
बसा ले अपने मन में प्रीत
भारत माता है दुखयारी, दुखियारे हैं सब नर-नारी
तू ही उठा ले सुन्दर मुरली, तू ही बन जा श्याम मुरारी
तू जागे तो दुनिया जागे, जाग उठें सब प्रेम-पुजारी
जाग उठे सब प्रेम पुजारी
गायें तेरे गीत
बसा ले अपने मन में प्रीत

अख्तर शीरानी ही की तरह, हफ़ीज़ जालन्धरी की सब से बड़ी खूबी उनकी नज़्मों का स्थानीय रंग था। वे अपने पूर्ववर्ती शायरों की तरह, ईरानी बाग़ों और मर्ग़ज़ारों[1] में खिलने वाले फूलों और चहचहाने वाले पक्षियों का ज़िक्र नहीं करते थे। उनके यहाँ, न नर्गिस-ए-शहला[2] थी, न गुल-ए-लाला, न बुलबुल-ए-हज़ार दास्ताँ, न कुमरी[3], न तूती ! हफ़ीज़ के यहाँ तो बसन्त मे सरसों फूलती थी; बाग़ों में, खेतों में हिन्दुस्तानी बहार आती थी; औरतें फूलों के गहने पहनती थी और लड़के डोर और पतंग के लिए आपस में लड़ते थे। यही नही, हफ़ीज ने अपनी कई नज़्मो के छन्द और तर्ज़ तक पंजाबी लोक-गीतों से उठायी थी। चेतन कॉलेज में पढ़ता था, जब हफ़ीज़ की एक नज़्म हमीद और उसके साथी समवेत स्वर में गाते थे :

१. दूब-भरे मैदानों—चरागाहों २. नर्गिस का वह फूल, जिसके भीतर पीलेपन के बदले कालापन होता है, ३. एक प्रसिद्ध सफ़ेद पक्षी।

जो निढाल है फ़ुर्क़त-ए-यार[1] में, जो निढाल है फ़ुर्क़त-ए-यार में
जी निढाल है, ऐ मेरे दोस्तो
मुझे ले चलो, हाँ मुझे ले चलो
या निशात में या शालामार में, जो निढाल है फ़ुर्क़त-ए-यार में

कॉलेज ही के दिनों में, उन लोगों ने बसन्त पर हफ़ीज़ का एक गीत साप्ताहिक 'बहार' में पढ़ा था और लड़के उसे गाते हुए, ताल देते और नाचा करते थे :

लो फिर बसन्त आयी, फूलों पे रंग लायी
चलो बे- दरंग[2]
लब-ए-आब-ए-गंग[3]
बजे जल तरंग
मन पर उमंग छायी, फूलों पे रंग लायी
लो फिर बसन्त आयी
फूली हुई है सरसों, भूली हुई है सरसों
नहीं कुछ भी याद
यूँही बा-मुराद[4]
यूँही शाद-शाद[5]
गोया रहेगी बरसों, भूली हुई है सरसों
फूली हुई है सरसों
लड़कों की जंग देखो, डोर और पतंग देखो
कोई मार खाये
कोई खिलखिलाये
कोई मुस्कराये
तिफ़ली[6] के रंग देखो, डोर और पतंग देखो
लड़कों की जंग देखो

१. प्रिय के विरह २. बे रोक-टोक, ३. गंगा के किनारे ४. सफल मनोरथ ५. ख़ुश-ख़ुश ६. बचपना ।

एक नाज़नीं[1] ने पहने, फूलों के ज़र्द गहने
है मगर उदास
नहीं पी के पास
गम-ो-रंज-ो-यास
दिल को पड़े हैं सहने, फूलों के ज़र्द गहने
इक नाज़नीं ने पहने

नीला की शादी के बाद, जालन्धर में, 'विधवा सहायक' के दफ़्तर को जाते हुए, चेतन ने हुनर साहब से हफ़ीज़ का मशहूर गीत, 'दिल है पराये बस में' सुना था और 'सोज़-ो-साज़' में उनकी इसी विशेष तर्ज़ में कई नज़्में पढ़ी थीं। हम-वतन होने के नाते, चेतन हफ़ीज़ जालन्धरी से पहले ही मिलता, लेकिन लाहौर का हफ़ीज़, बाज़ार शेखाँ का टोपी-फ़रोश हफ़ीज़ नहीं रहा था। सर अब्दुल कादिर ने उसे अपनी सरपरस्ती में ले कर बड़े-बड़े नवाबों के दरबारों तक पहुँचा दिया था, जाने कितनी रियासतों से हर महीने उन्हें वज़ीफ़ा मिलता था। लाहौर की सर्वाधिक पॉश नयी बस्ती—मॉडल टाउन—में उनका बँगला था; 'प्रीत के गीत' लिखने के बदले वे 'शाहनामा-ए-इस्लाम' लिखने में तल्लीन थे, सम्मिलित हिन्दू-मुस्लिम मुशायरों में अपना कलाम सुनाने के बदले, अब वे मस्जिदों में 'शाहनामा-ए-इस्लाम' सुनाते थे और 'अबुल-असर'[2] के बदले, 'फ़िरदौसी-ए-इस्लाम'[3] कहाने में सुख पाते थे। उनका आर्थिक और सामाजिक स्तर बहुत ऊँचा हो गया था। वे ख़ान साहबों, ख़ान बहादुरों और ऊँचे तबके के शायरों और अदीबों में उठते-बैठते थे, इसीलिए चेतन इच्छा रहने के बावजूद, उनसे मिलने का हौसला न कर सका था। लेकिन सोसाइटी के सिलसिले में उसे उन्हीं बड़े आदमियों से सम्पर्क बनाने की ज़रूरत थी और इसीलिए उसने पण्डित 'अख़्तर' से उनके नाम चिट्ठी ली थी।

---

१. तन्वंगी २. असर का जन्मदाता—याने प्रभाव पैदा करने वाला
३. इस्लाम का फ़िरदौसी।

हलवाई के लोटे और मथनी पर ध्यान जमाये चेतन, न जाने कहाँ खो गया था, कि अचानक आँखों के सामने बड़ा-सा लस्सी का गिलास देख कर चौंका। हलवाई ने दूसरों को निबटा दिया था और लस्सी बना कर, गिलास चेतन की ओर बढ़ा दिया था।

अचकचा कर चेतन ने गिलास ले लिया। लबालब भरा था और उसके ऊपर झाग का गुम्बद-सा बना था। चेतन ने पहला घूंट भरा। बहुत ही हल्की-सी खटास लिये हुए, बेहद ठण्डी, मीठी लस्सी—चेतन को लगा, स्वर्ग में जिस अमृत का उल्लेख धर्म-ग्रन्थों में मिलता है, वह ऐसा ही मीठा और ठण्डा होगा। वह एक ही साँस में लस्सी पी जाना चाहता था, पर वह बहुत ही ठण्डी थी। उसकी बायीं कनपटी दुखने लगी। चेतन पल भर रुका। होंटों पर लगी मलाई को उसने ज़बान से चाटा। फिर लस्सी को ख़त्म किया। हलवाई को पैसे दिये और परम सन्तुष्ट भाव से साइकिल का हैण्डल हाथ में थामे, चल पड़ा। लस्सी के मज़े की तरह ही वह कल्पना में उन तीनों शायरों से अपनी मुलाकातों का रस लेने लगा।

०

हफ़ीज़, मॉडल टाउन मे अपनी नयी बनी कोठी मे रहते थे। जब से वे 'शाहनामा-ए-इस्लाम' लिखने लगे थे, उन्होंने अपना प्रकाशन-गृह, 'कुतब-ख़ाना-ए-शाहनामा-ए-इस्लाम' अपने बंगले पर ही खोल दिया था। चूंकि मॉडल टाउन शहर से आठ मील दूर था, वहाँ से पुस्तकों की बिक्री की व्यवस्था करना कठिन था, इसलिए उन्होंने एक दफ़्तर अनारकली के एक चौबारे मे भी कायम कर दिया था। वे दोपहर के बाद दो घण्टों के लिए दफ़्तर में आते थे। पण्डित 'अख़्तर' की चिट्ठी और अपने कथा-संग्रह की एक प्रति ले कर चेतन उनके दफ़्तर में उनसे मिला। उसने उन्हें अपना परिचय दिया। उनकी कविताओं के प्रति अपने प्रेम का उल्लेख किया। अपना कथा-संग्रह पूरे अदब, मुहब्बत और ख़ुलूस[1] के साथ उनकी ख़िदमत

---

१. सौहार्द

में पेश किया। तब, यद्यपि वे अत्यधिक व्यस्त थे, उन्होंने उसे अपने पास बैठाया; उसकी पीठ थपथपायी; जालन्धर में वह किस मुहल्ले का रहने वाला है, यह जाना और जब चेतन ने उन्हें सोसाइटी का ब्रोशर दिया तो उन्होंने उसे दो दिन बाद, इतवार की शाम मॉडल-टाउन आ कर मिलने और वहीं खाना खाने की दावत दी।

चेतन 'कुतुबख़ाना-ए-शाहनामा-ए-इस्लाम' से उतरा था तो बड़ा प्रसन्न था। उसी जोश में वह इस्लामिया कॉलेज पहुँचा था। उसकी खुशकिस्मती से 'तासीर' साहब का पीरियड ख़ाली था और वे उसे मिल गये थे।

तासीर साहब, इस्लामिया कॉलेज में अंग्रेज़ी के अध्यापक थे—'पतरस', 'तासीर', 'ताज', 'हफ़ीज़', मजीद मलिक, 'सालिक', मेहर' और 'तबस्सुम'—इन लोगों का एक बहुत ही मज़बूत गुट लाहौर के अदबी हलके पर छाया हुआ था। 'तासीर' ही की तरह 'पतरस' गवर्नमेण्ट कॉलेज में अंग्रेज़ी के अध्यापक थे और हास्य-व्यंग्य की रचनाओं में उनका कोई सानी न था; 'तबस्सुम' भी फ़ारसी के अध्यापक थे। बाकियों में हफ़ीज़ और 'ताज' अपने प्रकाशन-गृह चलाते थे और 'सालिक' और 'मेहर' दैनिक 'इन्क़लाब' के सम्पादक थे। मजीद मलिक अभी विलायत से पढ़ कर आये थे, अमीर घराने से सम्बन्ध रखते थे और शे'र-ो-शायरी से दिल बहलाते थे।

तासीर साहब तीस-एक वर्ष के युवक थे: दोहरा बदन और ढीले-ढाले, अपनी उम्र से पाँच-दस वर्ष बड़े लगते थे। अभी तक उन्होंने शादी नहीं की थी और उनका पेट हल्का-सा निकल आया था। सूरत से भी वे चेतन को अतिरिक्त गम्भीर लगे। उन्हे देख कर उसे हल्की-सी निराशा भी हुई। शायरों के बारे में उसकी जो कल्पना थी, वे उससे बहुत भिन्न थे। लेकिन जब चेतन ने पण्डित हरिचन्द 'अख़्तर' की चिट्ठी दी और उन्होंने मुहब्बत से उसे अपने पास कुर्सी पर बैठाया तो उसे उनके व्यवहार में किसी तरह का अहंकार नहीं, वरन कुछ ऐसी गरिमा दिखायी दी, जो उनके ज्ञान ही की झलक थी और जो उसे बहुत अच्छी लगी।

सोसाइटी की बात करने से पहले चेतन ने 'कारवाँ' में छपी उनकी नज़्मों की तारीफ़ की थी। यही नहीं, उसने उनकी पूरी नज़्म (कि उसे वह कण्ठस्थ थी) उन्हे सुनाते हुए, एक-एक बन्द की सादगी और उसमें छिपे अव्यक्त दर्द को सराहा था। तासीर खुश हो गये थे और उन्होंने कहा था कि वे कॉलेज में अंग्रेजी पढ़ाते है और शिक्षण-सम्बन्धी उनकी ज़िम्मे-दारियाँ उन्हे इतना वक्त नहीं देती कि वे दिन-रात शायरी कर सकें, तो भी उन्होंने कुछ नयी तर्ज की कविताएँ लिखी है, वह उनके घर आयेगा तो वे जरूर उसे दिखायेंगे।

तब चेतन ने बड़े सरसरी ढंग से सोसाइटी की बात की थी कि पण्डित रत्न ने उससे ऐसी सोसाइटी खोलने के लिए कहा है, जो मध्यवर्गीय बौद्धिकों की अपनी सोसाइटी हो, उन्होंने ब्रोशर वग़ैरा छपवा लिये है और वह सोच रहा है कि अपनी तमाम सरगर्मियाँ ऐसी सोसाइटी को कामयाब बनाने में लगा दे।

तासीर साहब ने उसकी पीठ ठोकी थी, पूरे सहयोग का वचन दिया था और कहा था कि वह सोसाइटी की मीटिंग रखेगा तो वे ज़रूर उसमें शामिल होंगे।

चेतन उनके सद्व्यवहार और उनके बेतकल्लुफ़ाना ढंग से इतना प्रभावित और प्रसन्न हुआ था कि न उन्हे ब्रोशर दिखा सका था, न उनसे चन्दे के लिए ही कह सका था। वह उनसे घर पर मिलने की बात कह कर उठ आया था।

ऊपर के तबके के अदीबों का यह हलका चेतन के लिए हमेशा देवताओं की पाँत सरीखा रहा था। कल तक वह उन्हे दूर ही से सराहता था। अपनी सीमाओं के कारण उसने कभी उस पंक्ति मे शामिल होने की बात नहीं सोची थी और आज अचानक वह उस हलके के एक नहीं, दो-दो सरगर्म सदस्यों से मिला था, जिन्होंने न सिर्फ़ उससे बराबर का-सा बर्ताव किया था, वरन उसे घर पर भी बुलाया था। हालाँकि चेतन अच्छी तरह

जानता था, वह सब पण्डित 'अख्तर' की चिट्ठियों के प्रताप से हुआ है, उसकी खुशी का वार-पार नहीं था और अपनी आदत के अनुसार, वह सपने लेने लगा था....वह हफ़ीज और तासीर से उनके घर पर बैठा कविताएँ सुन रहा है....उन्हे अपनी रचनाएँ सुना रहा है और उनसे दाद पा रहा है.... अन्ततोगत्वा वह उन्हें सोसाइटी का मेम्बर बना लेता है....उन्हें अपनी सोसाइटी के मंच पर ले जाता है....उनके द्वारा बड़े-बड़े लोगों से मिलता है....सभी लोग उसकी सोसाइटी के सदस्य बन जाते है और वह शहर भर में मशहूर हो जाता है....

चेतन हवा के पंखों पर उड़ते हुए घर पहुँचा था। उसकी पत्नी विद्यालय से आ गयी थी और नाश्ता कर रही थी। वह रसोई-घर में उसके पास जा बैठा था। हफ़ीज और तासीर से अपनी मुलाकात का सविस्तार ब्योरा देता रहा था। उसने वहीं बैठे-बैठे, चन्दा को हफ़ीज़ जालन्धरी के कई गीत सुना डाले थे। उसकी पत्नी ने उससे वादा किया था कि वह किसी म्यूजिक टीचर से हार्मोनियम पर उनकी तर्ज़ें निकलवा देगा तो वह उन्हे गा कर सुनाया करेगी।

"तुम अपने संगीत गुरु से क्यों नहीं दो-चार गीतों की धुनें सीखतीं ?" चेतन ने सहमा कहा था।

"वे तो मद्रासी है। पक्के गाने में ही उनकी दिलचस्पी है। लाइट-म्यूज़िक से वे नफ़रत करते है।"

तब चेतन ने उससे वादा किया था कि वह पुराने म्यूज़िक टीचर से हफ़ीज़ के गीतों की तर्ज़े सीख आयेगा और उसे सिखाएगा।

चन्दा नाश्ता कर चुकी तो उसने बड़ी उदारता से उसे तुलसी के पत्ते और दाल-चीनी की चाय बनाने के लिए कहा था और जब वह चाय बना लायी थी तो उसे घुमा लाने के लिए तैयार भी हो गया था।

चन्दा तैयार हो गयी थी। कमरे का ताला बन्द कर, वे नीचे आये थे। क्षण भर सोच कर चेतन ने तय किया था कि अनारकली जाने के बदले, वे

ज़रा खुली हवा में जायेंगे और मुहल्ले के पिछली ओर के गन्दे नाले पर से होते हुए, वे सीधे 'गुलाम नबी बिल्डिंग' के पास मैक्लोड रोड पर जा निकले थे। अपने उस आह्लाद में, चेतन अपनी पत्नी को अपने सपने सुनाता गया था।....उसने उसे बताया था कि सोसाइटी चलाने के लिए जो वह इतनी दौड़-धूप कर रहा है तो महज़ सोसाइटी चलाना उसका ध्येय नहीं है। सोसाइटी वह ज़रूर चलायेगा; उसे सफल भी बनायेगा; लाहौर के सारे अदीबों और साहित्यिकों को वह उसमें घेर लायेगा; लेकिन 'पंजाब लिट्रेरी लीग' के चौधरी की तरह सोसाइटी चला कर और उसमें से अपनी रोज़ी-रोटी की व्यवस्था कर के, किसी पशु को उदरस्थ कर, धूप मे फैल जाने वाले अजगर की तरह वह पसर नहीं जायगा—एक पल के लिए भी वह इस बात को नहीं भूलेगा कि उसका उद्देश्य लॉ कॉलेज मे दाख़िला लेना है, इतना ही नहीं, उसमे फ़र्स्ट डिवीज़न मे पास होना है और सब-जजी के कम्पीटीशन में बैठना है। वे लोग, जो अपने उद्देश्यों पर नजर नही रखते, ज़िन्दगी के छोटे-मोटे प्रलोभनों मे भटक जाते है।

"आज तक मैं लगातार लुढ़कता रहा हूं," उसने कहा, "कभी एक काम करता रहा हूं, कभी दूसरा; किसी जगह मै जम नही पाया। लेकिन अब मैने तय किया है कि मैं अब और नही भटकूंगा।" फिर बिल्कुल अपने पिता की तरह, लगभग उन्हीं के शब्द दोहराते हुए, वह भाषण देने लगा, "अ रोलिंग स्टोन गैदर्ज नो मॉस! इस कहावत का अनुवाद तो यह होगा कि जो पत्थर लुढ़कता रहता है, उस पर जरा भी काई नहीं जमती—याने, लुढ़कता रहने वाला पत्थर जम नहीं पाता। हमारे-तुम्हारे लिए यह कहावत यही बताती है कि आदमी किसी उद्देश्य के पीछे पड़े तो उसे सिरे चढ़ा कर दम ले....वह साला अमीचन्द अपने को बहुत लगाता है। ऐसी ऊँचाई से देखता है, जैसे वह कुतुब-मीनार पर खड़ा हो और हम बेचारे, नीचे धरती पर रेंगने वाले, निहायत ज़लील कीड़े-मकोड़े हों! लेकिन तुम देख लेना, मैं यह सोसाइटी चलाऊँगा; इसी के बल पर लॉ कॉलेज में दाख़िल हूँगा; डिस्टिंक्शन लूँगा; सब-जज बनूँगा और यकीन जानो, अगर मैं अपने

बाप का बेटा हूँ तो इसी पर दम नहीं लूँगा, जितने इम्तहान आगे आयेंगे— सभी दूँगा और भगवान ने चाहा तो सेशन जज या हाईकोर्ट का जज बन कर ही रिटायर हूँगा। तुम महाराजिन की बेटी के नाते नहीं, एक सब-जज की पत्नी के नाते ही कृष्णा के ब्याह मे शामिल होगी। इसे तुम अटल समझो।"

गन्दे नाले पर उसकी नाक में बदबू का तेज़ भभका आया था। चन्दा ने साड़ी का पल्लू नाक पर रख लिया था, पर चेतन अपनी बातों में इतना मगन था कि उसे और किसी बात का होश नही था।

मैक्लोड रोड पर पहुँच कर चेतन ने अपनी पत्नी से पूछा कि वह 'लक्ष्मी बिल्डिंग' के ऊपर से हो कर, निस्बत रोड की तरफ़ से घर जाना चाहेगी या किला गुज्जरसिंह तक जा कर वापस आना चाहेगी।

"किला गुज्जरसिंह में कौन है?" सहसा चन्दा ने पूछा था।

"वहाँ मजीद मलिक रहते है," चेतन ने कहा था, "मुझे कल उनसे मिलने जाना है, मैं सोचता हूँ, इतने पास आ गये हैं तो उनका घर देखते चलें, कल आने में आसानी होगी।"

"जैसी आपकी मर्ज़ी," चन्दा ने ज़रा-सा सिर झुकाते हुए कहा था और पाँव किला गुज्जरसिंह की ओर बढ़ा दिये थे।

कॉलेज के दिनों मे चेतन जैसे कुन्ती की खिड़की के नीचे से गुज़र जाता था (चाहे उसे कुन्ती की शक्ल भी दिखायी न देती और खिड़की बन्द मिलती) और उतने भर से वह सन्तुष्ट और आह्लादित हो जाता था, इसी तरह वह मजीद मलिक की हवेली के सामने से गुज़र आया और इतने ही से प्रसन्न और सन्तुष्ट हो गया था। शाम को, जब भाई साहब घर आये थे तो कान्ता बहन के ड्राइंग-रूम में बैठे चेतन ने उन्हें मजीद मलिक की कविता सुनाते हुए, आमना बट्ट से उनके रोमांस का ज़िक्र किया था और यह भी बताया था कि वह सुबह ही उनसे मिलने जा रहा है।

लेकिन जब दूसरी सुबह पण्डित हरिचन्द 'अख्तर' की चिट्ठी और

सोसाइटी के ब्रोशर लिये हुए, चेतन उस हवेली पर पहुँचा था तो मजीद मलिक की खिड़की नहीं खुली थी। नौकर ने यह बताया कि मलिक साहब देर में सोते हैं, इसलिए इतनी सुबह नहीं उठते। चेतन नाकाम वापस फिरा था, लेकिन वह फिर दोबारा गया था। अबके उसे मालूम हुआ था कि दस मिनट पहले ही वे निकल गये हैं। तब यह सोच कर कि चाय पर वे ज़रूर मिल जायेंगे, वह चार बजे फिर उनकी हवेली पहुँचा था। काफ़ी प्रतीक्षा के बाद मलिक साहब आये थे—छब्बीस-सत्ताइस की उम्र; लम्बा कद; पतला-छरहरा, सुगठित शरीर; खुले-खुले हाथ-पाँव; सुन्दर गोरा मुख; चौड़े माथे पर घुँघराले बाल; लम्बी तीखी नाक; तेज आँखें और न पतले, न मोटे होंट—उन्होंने तंज़ेब का कुर्ता पहन रखा था, उस पर सिल्क की वास्केट थी, कमर में अलीगढ़ी पायजामा और सिर पर सिल्क ही की टोपी थी—चेतन को न केवल वे बहुत खूबसूरत लगे, वरन उनका पह-रावा भी शायराना लगा।

उसने उठ कर उन्हें 'आदाब' किया और 'कारवाँ' में उनकी नज़्म, 'आग़ाज़' की प्रशंसा करते हुए उनसे मिलने की अपनी पुरानी आरज़ू का ज़िक्र किया और उन्हे पण्डित 'अख़्तर' की चिट्ठी दी।

मजीद मलिक बहुत जल्दी में थे। उन्होंने हँसते हुए कहा कि नज़्म मे जिस 'आग़ाज़' का ज़िक्र है, वह अब अंजाम की तरफ़ बढ़ रहा है, और उन्हें उसी वक्त आमना के यहाँ चाय पर जाना है। (चेतन उन्हे पहली बार मिला है और उनके और आमना के बारे में जानता है या नहीं, उन्होंने इस बात की भी चिन्ता नहीं की।) 'अख़्तर' साहब की चिट्ठी उन्होंने तह कर के जेब में रख ली, उसके कन्धे को थपथपाते हुए, उसे दस-पन्द्रह दिन बाद आने को कहा और इशारों से बताया कि तब तक वह आग़ाज़ अपने मुकम्मल अंजाम तक पहुँच चुका होगा और उनके पास कुछ फ़ुर्सत होगी।

प्रकट ही ऐसी जल्दी में सोसाइटी की बात उनसे नहीं की जा सकती थी। चेतन ने अपनी शुभकामनाएँ उन्हें दीं कि उनकी सभी मुरादें बर

आयें और वह उन्हे जल्द ही मुबारक देने आये।

वह 'आदाब' कर के वहीं से रुख्सत होना चाहता था, लेकिन गर्म-जोशी से हाथ मिलाते हुए, वे उसे डेवढ़ी तक छोड़ने आये।

मजीद मलिक वास्तव में ऐसी सरखुशी के आलम में थे, जब नौजवान प्रेमी दरो-दीवार से अपनी कामयाबी की बात कहता फिरता है। चेतन उस वक्त पहुँचा था, जब आमना के घर वाले मान गये थे और उनकी सगाई होने जा रही थी और वे अपनी खुशबख्ती के नशे में सरशार थे। मजीद यह भी जानते थे कि उनके प्रेम की बात दोस्तों तक ही नहीं, लाहौर के तमाम अदबी हलकों तक फैल गयी है और शायद उन्होंने समझा था कि चेतन उसे जानता होगा, इसलिए उन्होंने उससे वैसी बात कह दी थी। लेकिन चेतन को लगा कि पहली ही मुलाकात मे उसे अपने राज़ का भागीदार बना कर, उन्होंने उसे बड़ी इज्ज़त बख्शी है और वह नशा, जो मजीद मलिक पर छाया हुआ था, अनायास चेतन के दिमाग पर भी छा गया। उसे इस बात की ज़रा भी चिन्ता न थी कि वह सोसाइटी के सिल-सिले में बात नहीं कर सका। वह तो कुछ अजीब-सी खुशी के आलम में, किला गुज्जरसिंह से घर लौटा।

चन्दा विद्यालय से आ चुकी थी और चारपाई पर कापियाँ और किताबें फैलाये, स्कूल का काम कर रही थी।

"मेरी जान उठो," चेतन ने साइकिल सीढ़ी में ठीक से टिका कर अन्दर आते और ब्रोशर और रसीद-बुक मेज़ पर फेंकते हुए कहा, "चलो, तुम्हें अनारकली तक घुमा लायें और तुम्हारा मन हो तो पलटू की दुकान से गोल-गप्पे और चाट खिला लायें।"

"मैं स्कूल का काम कर रही...."

"अरे उठो मेरी जान, स्कूल का काम तो तुम रोज़ ही करती हो।" और बिना उसे बात खत्म करने का अवसर दिये, चेतन ने एक बाँह उसके घुटने के नीचे और एक पीठ के पीछे दे कर उसे उठा लिया था और दूसरे

ही क्षण फ़र्श पर उतार दिया था।

तभी चेतन को लगा था, उसकी पत्नी बहुत भारी हो गयी है; उसका पेट काफ़ी बढ़ आया था। यूँ तो वह पहले ही उसकी अपेक्षा कहीं भारी थी, पर कभी वह जब जोश में होता तो उसे बाँहों में उठा कर दो-एक चक्कर दे दिया करता था। उस वक्त, यद्यपि उसने उसे उठा कर चारपाई से उतार दिया था, पर इस प्रयास मे वह ज़रा हाँफ गया और उसकी बाँहे दुखने लगी थी। लेकिन अपनी मस्ती में चेतन ने यह सब महसूस नहीं किया। वह उसी वक्त चन्दा के साथ अनारकली की सैर को निकल गया।

चाट खा कर अनारकली मे घूमते हुए वे भाई साहब की दुकान पर पहुँचे तो भाई साहब बाहर वेटिंग-रूम में अपनी मेज़ पर बैठे थे। चन्दा ने भाई साहब को 'नमस्ते' की और दायीं ओर, दीवार के साथ लगे काउचों मे से एक पर बैठ गयी। चेतन उनकी मेज़ के सामने जा बैठा और उसने कहा, "भाई साहब, मैं मजीद मलिक के पास गया था। वे बड़े तपाक से मिले। खूब बातें करते रहे। बड़े खुश थे। आमना ने उनकी बात मान ली है। शायद आज-कल में दोनों की सगाई हो जायगी।"

उसने यह बात ऐसे कही, जैसे आमना और मजीद मलिक उसके ही नहीं, भाई साहब के भी हमजोली हों और उनसे रोज़ का उठना-बैठना हो। बिना भाई साहब को कुछ भी कहने का अवसर दिये, वह सविस्तार उन्हे अपनी मुलाकात का किस्सा सुनाने लगा।

लेकिन भाई साहब को इसमें कोई ऐसी बात नही लगी, जिस पर उतना जोश प्रकट किया जाय। वे चुपचाप उसकी बात सुनते रहे थे। मजीद मलिक और आमना बट्ट के इश्क पर उन्होंने एक शब्द नही कहा और चेतन के बात खत्म कर चुकने पर जब उन्होंने मुँह खोला तो सिर्फ़ इतना ही पूछा था, "मजीद मलिक सोसाइटी के सरपरस्त बने या नहीं ?"

चेतन को हमेशा की तरह अपने भाई की इस कौर-ज़ौकी[1] पर बड़ा

---

१. अरसिकता

तरस आया था। क्षण भर वह दया-भाव से उनकी ओर देखता रहा, फिर उसने किंचित आक्रोश से कहा था, "क्या मैं बेवकूफ़ हूँ, जो ऐसे में सोसाइटी या चन्दे जैसी बात उनसे कहता ?"

भाई साहब चुप हो गये थे। उन्होंने फिर एक शब्द नहीं कहा। चेतन कुछ क्षण तक अपने में गुम, बैठा घुटने हिलाता रहा। फिर उसने अपनी पत्नी की ओर देखा, जो काउच में पसर कर बैठ गयी थी। अचानक वह उठा और कद्रे खीभ-भरे स्वर में उसने कहा, "चलो भई चन्दा, काफ़ी देर हो गयी है। घर पहुँचने में हां एक घण्टा लग जायगा और तुम्हें तो अभी खाना भी पकाना है।"

चन्दा थोड़ा थक गयी थी, शायद कुछ देर और बैठना चाहती थी, लेकिन वह चुपचाप उठी। चेतन दुकान से निकल गया था। भाई साहब से विदा ले कर, वह उसके पीछे चल दी थी।

मजीद मलिक और आमना बट्ट के रोमांस में उलझा, चेतन तब चौंका, जब वह 'मंजरी' का दफ़्तर पीछे छोड़, 'हिन्दी पुस्तक भवन' पहुँच गया था। अचकचा कर वह पीछे मुड़ा, साइकिल उठा कर उसने प्रेस के चौतरे पर रखी और 'मंजरी' के दफ़्तर की सीढ़ियाँ चढ़ गया।






पच्चीस

हालाँकि चेतन अपने घर से पैदल आया था, बीच में उसने हलवाई की दुकान पर भी दस-पन्द्रह मिनट लगाये थे और दस कब के बज चुके थे, पर कवि चातक अभी दफ़्तर नही पहुँचे थे।

चेतन उलटे पाँव वापस मुड़ा और नीचे प्रेस में जा कर उसने चातक जी का पता किया कि प्रेस आयेंगे या नही और आयेंगे तो कब आयेंगे ? (मन मे उसने सोचा था कि उनका आने का प्रोग्राम न हुआ तो वह उनके घर जायगा।) लेकिन प्रेस से उसे पता नहीं चला। तब वह बढ़ कर 'हिन्दी पुस्तक भवन' मे गया। नागपाल ब्रदर्ज़ में से मँझले—श्री कर्मचन्द नागपाल—अपना सीकिया शरीर और रौद्र, गम्भीर रूप लिये, मेज़ के पीछे शहीदी भाव से बैठे थे। चातक जी के बारे में पूछने पर, उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा कि उन्हें अब तक आ जाना चाहिए था, 'मंजरी' के इतने प्रूफ़ पड़े हैं।

और बिना काग़ज़ों से आँख उठाये, उन्होंने मेज की बायीं ओर रखे, प्रूफ़ों के थब्बे की ओर संकेत कर दिया।

चेतन का मन था कि वहीं दुकान पर बैठ कर हिन्दी की कोई नयी पुस्तक देखे, लेकिन महाशय कर्मचन्द नागपाल की मुहर्रमी सूरत ने उसका सारा उत्साह हर लिया। वह चुपचाप जा कर 'मंजरी' के दफ़्तर में बैठ गया और चातक जी की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ क्षण बाद वह उठा। उसने चातक जी की मेज़ से 'मंजरी' का पिछला अंक उठा लिया। लेकिन उसके दो-चार वरक पलटने के बाद ही उसका ध्यान हफ़ीज़ जालन्धरी के

साथ अपनी मुलाकात में जा उलझा

यद्यपि भाई साहब ने अनजाने ही, चेतन के जोश पर यथार्थता के दो-एक छींटे मार कर, उसे नॉर्मल करने की कोशिश की थी, पर जब वह दूसरे दिन शाम को हफ़ीज़ जालन्धरी के यहाँ, मॉडल टाउन जाने के लिए बस पर चढ़ा तो उस पर बदस्तूर हल्का-सा नशा तारी था। यदि उसे लाला हर-किशन लाल या राजा महेन्द्रनाथ खाने पर बुलाते तो शायद उसे उतनी खुशी न होती, जितनी अपने हम-वतन और प्रान्त के उस प्रख्यात, लोक-प्रिय शायर के यहाँ जाने पर हो रही थी।

अड्डे से हफ़ीज साहब का घर दूर नहीं था, मुश्किल से दो-एक फ़र्लांग होगा। यूँ भी अपने उत्साह में चेतन को फ़ासिले का कोई ज्ञान नहीं था। दो-एक जगह पूछ कर वह उनकी कोठी पर पहुँच गया।

शाम का वक्त था। पतलून-कमीज पहने, हफ़ीज़ किसी अंग्रेज़ महिला के साथ बैडमिण्टन खेल रहे थे। चेतन 'आदाब' कर के वहीं कोर्ट के किनारे खड़ा हो गया।

उन्होंने रैकेट ज़रा-सा माथे की ओर ले जाते, मुस्कराते और इस प्रक्रिया में नाक और बायाँ गाल ज़रा-सा ऊपर चढ़ाते हुए, उसके सलाम का जवाब दिया और फिर आती हुई चिड़िया की ओर लपके।

चेतन चुपचाप खड़ा, उन्हें खेलते देखता रहा। हफ़ीज़ बहुत ही पतले-दुबले आदमी थे। उनका नाक लम्बी, चेहरा लम्बोतरा और माथा चौड़ा था। चेतन ने उन्हें हमेशा अचकन और किश्ती टोपी में देखा था और उस लिबास में वे कबूल-सूरत लगते थे। पतलून-कमीज में नंगे सिर उन्हें देखने का यह उसका पहला अवसर था। सच्ची बात यह है कि उन्हें उस रूप में देख कर उसे बड़ी कोफ़्त हुई थी। वे बहुत ही पतले लगते थे—एकदम सीकिया। उनका गंजा होता हुआ सिर (जो प्रायः टोपी से ढंका रहता था) साफ़ नज़र आ रहा था और पंजाबी मुहावरे के अनुसार, चेतन को वे अजीब 'चिड़े-से' लग रहे थे। उसने सुना था कि हफ़ीज़, सर अब्दुल कादिर

के साथ इंग्लिस्तान गये थे तो वहाँ से एक मेम ले आये हैं, जिससे वे शादी करने जा रहे हैं। कुछ लोग तो यह भी कहते थे कि वह सर अब्दुल की रखैल थी, उन्होंने हफ़ीज के गले मढ़ दी है। उनके इस रूप को देख कर चेतन को लगा कि शायद उस बात में कुछ सचाई हो, वरना इस चिड़े-ऐसे शख्स पर कोई अंग्रेज औरत कैसे मर सकती है....

लेकिन वह अंग्रेज़ औरत तो उनके साथ बैडमिण्टन खेल रही थी.... चेतन ने चोर नज़र से उधर देखा—तीस-बत्तीस वर्ष की एक तगड़ी-सी मेम, स्कर्ट और आधी बाँह का ब्लाउज़ पहने, हाथ में रैकेट लिये, काफ़ी फुर्ती से इधर-उधर उछल-कूद कर रही थी। यह अजीब बात थी कि जब इश्क-ो-आशिकी की बात हो तो चेतन हमेशा मा'शूक को सुन्दर ही देखना चाहता था। जब उसने यह सुना था कि हफ़ीज़ एक मेम से शादी करने वाले हैं, तो उसने किसी सुन्दर तन्वी की कल्पना की थी। इस मेम को देख कर उसे एक साथ ही निराशा भी हुई और हफ़ीज़ के उस कार्टून-नुमा रूप को देख कर सन्तोष भी, कि वे आखिर किसी हूर-परी को ब्याहने नहीं जा रहे। चेतन को वह आदम-मार औरत लगी और वह मन-ही-मन सोचने लगा कि पतले-दुबले हफ़ीज़ उससे कैसे निपटेंगे....

चेतन इन्हीं विचारों में गुम था कि बाज़ी खत्म हो गयी। वह मेम चुपचाप कोठी की पिछली तरफ़ को चली गयी और हफ़ीज़ बायें हाथ में रैकेट लिये, दायाँ उसकी ओर बढ़ाते हुए, उसकी तरफ़ आये। चेतन ने उनसे हाथ मिलाया तो उसका हाथ अपने हाथ मे ले कर, यह पूछते हुए कि बस में या मकान का पता पूछते हुए उसे दिक्कत तो नही हुई, वे उसे अपने साथ ड्राइंग-रूम में ले गये।

"तुम बैठो, मैं अभी दो मिनट में आता हूँ," उन्होंने कहा, "इस पतलून-वतलून में मुझे वहशत होती है। यह कम्बख्त अंग्रेज़ों का पहरावा हम हिन्दुस्तानियों के लिए निहायत ग़ैर-मौज़ूँ[1] है।"

---

१. अनुपयुक्त

वे ज़रा व्यंग्य से हँसे और उन्होंने नाक और बायाँ गाल ऊपर चढ़ा लिया, जिससे उनके माथे तक झुर्रियाँ बनती चली गयीं। चेतन को उन्होंने काउच पर बैठाया। फिर जेब से एक गोल-सी डिबिया निकाल कर, उसमें से ज़रा-सी दवा चाटते हुए चले गये।

'शायद कोई मुक़व्वी मा'जून[1] है,' चेतन ने मन-ही-मन कहा, 'इसके बल पर शायद ये इस अधेड़-उम्री में उस आदम-मार औरत से पार पायेंगे!'

और वह मन-ही-मन हँसा। चेतन दरअसल सौन्दर्य-प्रेमी व्यक्ति था और मजीद मलिक के सुन्दर व्यक्तित्व को देख कर और उनके रोमांस की बात सुन कर, उस पर जो नशा तारी हुआ था, वह हफ़ीज को अचकन और टोपी के बिना देख कर हिरन हो गया था। बात करते हुए, व्यंग्य या मज़ाक में, उनकी नाक के साथ ही जो चेहरे का बायाँ हिस्सा ऊपर चढ़ जाता और गाल और नाक पर ही नहीं, माथे पर भी लकीरें बन जातीं, उससे चेतन को कुछ अजीब-सी वहशत होती थी।

हफ़ीज साहब अन्दर चले गये तो चेतन ने एक नजर ड्राइंग-रूम पर डाली—बड़ा-सा आयताकार कमरा; राजा महेन्द्रनाथ अथवा मियाँ बशीर अहमद के कमरों जैसी सजावट उसमें नहीं थी; एक तरफ़ सोफ़ा रखा था, दूसरी तरफ़ डाइनिंग टेबल पड़ी थी; दरवाजों पर भारी पर्दे नहीं थे, न फ़र्श पर सुन्दर तिपाइयाँ, न दीवारों पर तस्वीरें। 'हफ़ीज साहब ने किसी तरह जोड़-तोड़ कर, कोठी बनवा ली है,' चेतन ने सोचा, 'लेकिन उसे शानदार ढंग से सजाने के लिए शायद उनके पास अभी पैसे नहीं। या हो सकता है पैसे हों, पर वह कल्चर ही न हो। आख़िर टोपियाँ बनाते-बनाते ऊपर उठ गये हैं, वह नफ़ासत और नजाकत कहाँ से आये!'

हफ़ीज़ साहब अन्दर से कपड़े बदल कर आ गये तो चेतन ने देखा, ड्रेसिंग गाउन के नीचे, पतलून की जगह वे पायजामा पहने हुए हैं। आ कर

---

१. शक्तिवर्धक अवलेह

वे काउच पर पसर गये, पैर उन्होंने ऊपर उठा लिये और चेतन से यह जानना चाहा (यद्यपि वह अनारकली के दफ़्तर में उन्हें यह सब बता चुका था) कि जालन्धर में उसका घर कहाँ है और उसने कहाँ तक शिक्षा पायी है और वह लाहौर कब आया, आदि....आदि....

चेतन ने उनके सवालों के जवाब मे अपने घर-द्वार की, शिक्षा-दीक्षा की, लाहौर मे अपनी नौकरियों और संघर्ष की बात संक्षेप में कही। अपने लिखे दो-एक पंजाबी बैत और एक-दो आरम्भिक गजलें भी सुनायीं और बताया, कैसे वह गद्य की ओर झुका और पण्डित रत्न तथा मुन्शी चन्द्रशेखर ने उसे प्रोत्साहन दिया।

तब उन्होंने जानना चाहा कि उनकी कौन-सी रचनाएँ उसे पसन्द हैं।

और जैसे चेतन इसी प्रश्न की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने सोत्साह उन्हे बताया कि वह नवीं-दसवी मे पढ़ता था, जब उसने 'बहार' के 'कृशन नम्बर' मे उनकी नज़्म 'काहन मुरली वाले' पढ़ी थी। उसी क्षण वह उनका भक्त हो गया था। उसके बाद जहाँ कही उनकी नज़्म नजर आयी, उसने कण्ठस्थ कर ली। उनके दोनों संग्रहों—'नग़माजार' और 'सोज़-ो-साज़'—के अधिकांश गीत और नज़्म और ग़जलें उसे जबानी याद हैं। उर्दू मे जिन शायरो ने बिल्कुल हिन्दुस्तानी ज़िन्दगी और हिन्दुस्तानी फ़िज़ा को अपनी शायरी का विषय बनाया है, उनमें वे सबसे आगे हैं। उनकी ज़बान मे सरल और रवाँ उर्दू के साथ, हिन्दी, यहाँ तक कि पंजाबी शब्दो की दिलफ़रेब मिलावट है और हिन्दी और पंजाबी की मिठास मे रची-बसी उनकी भाषा, हिन्दू-मुसलमान, दोनो पाठकों के दिलों मे स्थान बना चुकी है। चेतन ने वे तमाम दलीलें भी अपनी बना कर दोहरा दी, जो उसने 'सोज़-ो-साज़' की भूमिका मे पण्डित हरिचन्द 'अख़्तर' के कलम से पढ़ी थीं।....

हफ़ीज़ साहब बड़े प्रसन्न हुए थे। उन्होंने कहा था कि मुश्किल ज़बान में शे'र कहना दुश्वार[1] नही है; दुश्वार, आसान ज़बान में शे'र कहना है

१. मुश्किल

और उन्होंने यह इस्ते'दाद[1] बड़ी मेहनत और काविश[2] के बाद हासिल की है।

एक बात चेतन के मन में देर से खल रही थी। वह जानता था कि जब से हफ़ीज मुस्लिम शाहों के कारनामे नज़्म करने लगे और 'फ़िरदौसी-ए-इस्लाम' कहाने लगे हैं, वे ऐसी मजलिसों से बचते हैं, जहाँ हिन्दू-मुस्लिम, दोनों जातियों के श्रोता हों और प्रायः मुस्लिम त्योहारों पर मस्जिदों में इकट्ठी होने वाली भीड़ के सामने 'शाहनामा-ए-इस्लाम' गा कर पढ़ते हैं। चेतन उनसे पूछना चाहता था कि देश-प्रेम और मानव मात्र के दुख-दर्द को अपनी नज़्मों का विषय बनाने अथवा उन्हें इतिहास ही लिखना था तो अपने देश के वीरों का इतिहास लिखने के बदले, वे ऐसी नज़्में क्यों लिखने लगे हैं, जो केवल मुसलमानों के लिए ही हों? इससे क्या वे देश-वासियों की अकमरिय्यत[3] से अपने आपको काट न लेंगे? वह उनसे कहना चाहता था कि इकबाल के 'तराना-ए-हिन्दी' या देश-प्रेम की अन्य कविताओं को जो लोकप्रियता मिली, वह उनकी किसी भी दूसरी नज़्म को हासिल नहीं हुई। अंग्रेज़ों ने उन्हें 'सर' की उपाधि दे दी और उन्होंने अपनी रविश बदल दी और मानवता के कवि होने के बदले, वे केवल एक कौम के शायर हो कर रह गये हैं। हफ़ीज भी क्यों उस राज-मार्ग को छोड़ कर, यह तंग पगडण्डी अपना रहे हैं? जैसे उन्होंने उर्दू शायरी की दूसरी परम्पराओं को तोड़ा और नरगिस-ए-शहला या सुम्बुल-ो-रेहाँ[4] का ज़िक्र करने के बदले, सरसों के गीत गाये हैं, वैसे ही उनको महाकाव्य लिखना था तो ऐसा विषय चुनना था, जो देश की सार्भी संस्कृति को अभिव्यक्ति देता....

लेकिन तभी अन्दर से नौकर ने कहा कि खाना तैयार है और हफ़ीज़ ने उसे खाना मेज पर रखने का हुक्म दिया।

नौकर उस वक्त न आ जाता तो चेतन अपने मन की बात ज़रूर उनसे पूछ लेता, लेकिन नौकर ने उसकी विचार-शृंखला तोड़ दी। दूसरे क्षण उसे

१. क्षमता २. सोच-विचार ३. बहुसंख्या ४. सुगन्धित घासें

ख़याल आया कि यह बहुत ही नाज़ुक विषय है; हफ़ीज़ ने पुरानी परम्परा तोड़ कर, हिन्दुस्तानी परिवेश को अपनी कविताओं में अभिव्यक्ति दी है, यही बहुत है, वरना हिन्दुस्तान का पढ़ा-लिखा मुसलमान सिर्फ़ तन से हिन्दुस्तान में रहता है, मन उसका हमेशा अरब और ईरान की उन्हीं फ़िज़ाओं में भटकता है, जो उसने कभी नहीं देखीं और शायद जन्म भर न देखे। 'मेरे मौला बुला लो मदीने मुझे'—पंजाब का हर मुसलमान पुकारता है। वह मुसलमान यह पुकारे, जिसके पुरखे बाहर से यहाँ आये थे तो कोई बात भी हो, लेकिन हिन्दुस्तान मे रह कर अपने देश को कोसने वालों में से अक्सर के पुरखे कुछ पीढ़ियों पहले तक हिन्दू थे; पर चूँकि हिन्दुस्तान पर अंग्रेज़ों का शासन होने से पहले मुसलमानों का शासन था, इसलिए वे अपने आपको हुक्मराँ कौम के समझते थे और गुलामी में रहते हुए भी, उन्हें अरब की आज़ाद फ़िज़ाएँ और वे मुजाहिद याद आते थे, जिन्होंने दुनिया के एक बहुत बड़े हिस्से पर विजय पायी और इस्लाम का झण्डा फहराया....कोई मुसलमान अदीब ऐसा महसूस करता और हफ़ीज़ साहब से पूछता तो दूसरी बात होती। चेतन को लगा कि उसके लिए यह सब पूछना ठीक नहीं....और उसने मन की बात मन ही में दबा ली।

डाइनिंग टेबल पर खाना लग गया था, नौकर आ कर खड़ा हो गया। कहा उसने कुछ नहीं, पर उसका रोआँ-रोआँ जैसे पुकार कर कह रहा था कि खाना मेज़ पर रख दिया गया है। हफ़ीज़ साहब काउच पर अध-लेटे हो गये थे। चेतन ने एक चोर आँख से उनकी ओर देखा। उस क्षण उसे लगा, जैसे बँगले और काउच आदि के बावजूद, वे बाजार शेख़ाँ के वही टोपी-फ़रोश हैं। नौकर को देख कर वे उछल कर उठे और चेतन से पंजाबी लहजे में बोले :

"उट्ठो भई, खाना तनावल फ़रमाओ।"

'तनावुल फ़रमाओ।' चेतन मन-ही-मन हँसा, 'सीधा-सादा 'खाओ' नहीं! यह उर्दू पचास-सौ साल तक यहाँ के आम लोगों की ज़बान नहीं बनेगी; यह अभी तक हुक्मरानों, जागीरदारों और ज़मींदारों की ज़बान है।

मुश्किल और तकल्लुफ-भरी ! हिन्दुस्तान मे बोली जा कर भी, लगता है कि यह अरब और फारस की बोली है ।'... वह उठा और जा कर हफीज साहब के सामने खाने की मेज पर बैठ गया ।

मुसलमानो मे पर्दा होता है, हफीज साहब के घर की कोई औरत खाने की मेज पर आयेगी, इसकी उम्मीद तो चेतन को नही थी, लेकिन वह अंग्रेज मेम जरूर होगी, इसका उसे हल्का-सा विश्वास था । लेकिन कुछ क्षण प्रतीक्षा करने पर भी कोई नही आया और हफीज साहब ने रोटी का ग्रास तोडते हुए, उसे शुरू करने को कहा तो उसने समझ लिया कि जिस औरत को एक मुसलमान की बीवी बनना है वह पर्दा भले ही न करे, पर गैर मर्द के सामने खाने की मेज पर तो नही ही बैठ सकती । वह चुपचाप खाने लगा । छोटे-छोटे चीनी के लकीरदार कटोरो मे दो-तीन तरह के सालन थे—दाल थी, भुर्ता था, रायता था, खड़े आलू-प्याज थे और एक बड़े कटोरे मे शोरबेदार सालन था । बायी ओर एक बड़ी चंगेर मे कपडा बिछा कर, उस पर रोटिया चौहरी करके रखी थी । चेतन ने एक रोटी उठा कर प्लेट मे रखी तो वह चकित रह गया—इतनी बड़ी और कागज-सी पतली और हल्की रोटी उसने पहले कभी नही देखी थी । एक ग्रास तोड कर चेतन ने शोरबेदार तरकारी का कटोरा पास खींचा तो उसकी तबियत मिचला गयी । शोरबे मे मछलियो के सिर तर रहे थे ।—केवल सिर—छोटी-छोटी आखे और जरा-से खुले मुँह ।....चेतन शोरबे मे ग्रास डुबोने जा रहा था । अचानक हाथ रोक कर शोरबे को छलाने का अभिनय करके उसने ग्रास रायते मे डुबो लिया और उधर से आँखे हटा ली । हालाँकि वह गोश्त खाने लगा था और मछली से भी उसे परहज न था, लेकिन मछली के सिर भी खाये जाते है और उनका शोरबेदार सालन पकाया जाता है, चेतन को मालूम नही था । उसने सुना था कि लोग, बकरो के सिर, पैर, यहाँ तक कि आँते भी पका कर खा जाते है....कल्पना मात्र से चेतन ने एक झुरझुरी ली और उसके मन की बात हफीज ताड़ न जायँ, इसलिए उसने उनसे पूछा कि जालन्धर से लाहौर आने पर तो उन्हे काफ़ी

संघर्ष करना पडा होगा और हफ़ीज़ अपने संघर्ष के किस्से सुनाने लगे। अन्त मे बोले, "मै खुशबख्त हूँ कि मुझे सर अब्दुल कादिर जैसे कद्रदान सरपरस्त मिल गये, जिनकी बदौलत बडे-बडे दरबारों मे मेरी रसाई[1] हो गयी, लेकिन फ़ारसी-जदा उर्दू के मुकाबिले मे जो आसान जबान मै लिखता हूं, उसे मनवाने के लिए तो अभी तक मुझे लडाइया लडनी पडती है।"

चेतन ज्यादा नही खाता था, लेकिन हफ़ीज उससे भी कम खाते थे। बहुत जल्दी ही वे उठ गये। हाथ धोते हुए उन्होने पूछा कि उसे मछली का सालन क्या अच्छा नही लगा ? तब चेतन ने बहाना कर दिया कि उसमे जरा मिर्च ज्यादा थी और वह मिर्च बिल्कुल नही खाता।

जब चेतन हाथ धो चुका तो वे उसे डाइनिग-रूम के साथ ही एक छोटे-से कमरे मे ले गये, जो उनकी स्टडी थी—कीमती सामान मे सजी और बडी आरामदेह ! उसमे एक पलंग भी था, जिस पर रेशमी बिस्तर बिछा था और रंग-बिरंगी रेशमी दुलाई रखी थी। इस पलँग के साथ एक छोटी-सी ढक्कनदार राइटिंग टेबल थी। उसका ढक्कन उठा हुआ था और उसके खानो मे कागज-पत्र पडे थे। पलँग के सिरहाने एक रैक मे किताबे करीने से लगी थी। पायते की ओर दीवार मे खूबसूरत दीवार-घडी लगी थी। हफ़ीज जूते उतार, पलग पर जा बैठे, दुलाई उन्होने घुटनो पर ले ली और चेतन को बताने लगे कि अपनी तमाम रचनाए उन्होने उसी पलंग पर बैठ कर या लेट कर की है। मेज़ उन्होने ऐसी बनवायी है, कि पलँग पर बैठे-बैठे, वे उससे काम ले सके।

चेतन ने एक नजर स्टडी पर डाली ! वह ड्राँइंग-रूम की अपेक्षा ज़्यादा शानदार ढंग से सजी हुई थी। 'शायद हफीज साहब अपने मित्र-परिचितो को यहीं बुला लेते है,' चेतन ने सोचा। उस क्षण वे फिर उसे बाज़ार शेखाँ के ऐसे टोपी-फ़रोश लगे, जिसके पास पैसा आ गया हो, लेकिन जिसे कुर्सी-मेज़ पर बैठने मे उलझन होती हो....लेकिन चेतन को यह छोटी-सी कोज़ी स्टडी पसन्द आयी। साथ ही, उडता हुआ-सा यह ख़याल

---

१. पहुँच

भी उसके मन में आया कि हफीज वैसे ही गीत लिखते रहते तो इतना बड़ा बँगला और ऐसी आरामदेह स्टडी उन्हें कैसे मयस्सर होती....'शाहनामा-ए-इस्लाम' और मुसलमान नवाबों के अनुदान ही उन्हें यह सब दिलवा सकते थे।

तभी हफीज साहब ने दुलाई घुटनों पर ओढ ली, बगल के नीचे तकिया ले कर अर्ध-लेटे हो गये और उन्होंने चेतन को भी बैठने के लिए कहा।

चेतन पॉयते पर बैठ गया। वह सोसाइटी के बारे में बात करना चाहता था, पर सोसाइटी की बात करने के बदले उसने कहा—"हफीज साहब, अगर आप इसे मेरी गुस्ताखी न समझें तो मैं एक छोटी-सी अर्ज करना चाहता हूँ।"

उन्होंने प्रश्न में आँखें उठा दीं।

"मेरी बड़ी आरज़ू है," चेतन ने कहा, "कि आपके मुँह से आपका कलाम सुनूँ। कोई छोटा-सा गीत भी आप सुना देंगे तो मैं बेहद मशकूर हूँगा।"

हफीज साहब ने कुछ कहा नहीं। वे अपनी उसी विशिष्टता से मुस्कराये, जिससे उनकी नाक, बायें गाल और माथे पर झुर्रियाँ बन गयीं; मेज पर से उन्होंने एक कापी उठाया और बोले : "एक छोटा-सा गीत सुनो और समझने की कोशिश करो! यह हफीज का खास रंग है, जिसे उसने बरसों की काविश के बाद इख्तियार किया है :

बस
दर्शन दर्शन मेरा
माली लाख करे रखवाली
भँवरा गूँजे डाली-डाली
फूल-फूल पर डेरा
बस
दर्शन दर्शन मेरा

हर कोई है कैद कफस[1] मे
बुलबुल रंग मे, मक्खी रस मे
अपना मन है अपने बस मे
जोगी वाला फेरा
बस
दर्शन दर्शन मेरा

जिस हिरदे में श्याम बिराजे
जिस गोकुल मे मुरली बाजे
साधू करे बसेरा
बस
दर्शन दर्शन मेरा''

हफीज की आवाज म जादू था गीत की जबान निहायत आसान थी। लेकिन गीत गाते हुए व अपने विशिष्ट ढंग स मुस्कराये, जिसमे चेतन को खासी कोफ्त हुई, उसका ध्यान भटक गया और उसके पल्ले कुछ नही पडा। इसके बावजूद उनकी आवाज के जादू ने उसको अपने से बाध लिया और वह अभिभूत सुनता रहा। उन्होंने गीत खत्म कर दिया तो पहले उसके जी मे आयी कि गीत का मतलब पूछे लेकिन वे उसे कमफहम या कोर-जौक न समझे, इस डर से वह चुप रहा। उसने गीत की सादगी और पुरकारी, प्रवाह और गहराई की प्रशसा की। उनसे दोबारा सुन कर अपनी डायरी मे गीत लिखा और उस 'दरीना आरज़ू'[2] को पूरा करने के लिए उनका बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया।

और तब पण्डित रत्न, सूफी हनुमान प्रसाद और पण्डित 'अख्तर' के हवाले से (चेतन ने उनका नाम भी अपने सरपरस्तो मे शामिल कर लिया था) बातो का रुख सोसाइटी की ओर मोड़ कर, उसने चाहा कि इस सिलसिले मे वे उसकी मदद करे।

१. पिंजरा, जेल २. पुरानी इच्छा

"मेरी मदद तो यही है," हफ़ीज़ साहब ने कहा, "कि तुम जब कोई मुशायरा करो तो हमवतन होने के नाते, मैं तुमसे बिना एक भी पैसा लिये, तुम्हारे मुशायरे मे अपनी नज़्म पढ़ दूँ। किसी भी लोकल मुशायरे में बिना सौ रुपये पेशगी धराये, मैं नहीं जाता, लेकिन तुम मेरे वतन के हो, मेरे अज़ीज़ दोस्त और मेहरबान, पण्डित अख्तर की चिट्ठी लाये हो, जब भी तुम कोई मजलिस रखोगे और मुझे पहले से इत्तिला दे दोगे, मैं आ जाऊँगा।—और क्या मदद चाहते हो ?"

"आपका बहुत-बहुत शुक्रिया," चेतन ने कहा, "आप पर मेरा हक भी है और आप से मुझे इसकी उम्मीद भी थी, लेकिन इतने खान साहब, खान बहादुर, राजा और नवाब आपके दोस्त है, दो-चार से भी अगर आप सोसाइटी का ज़िक्र कर देंगे और वे सोसाइटी को अपनी सरपरस्ती में ले लेंगे तो यह सोसाइटी चल निकलेगी।"

हफ़ीज़ फिर अपने विशिष्ट ढंग से मुस्कराये और बोले, "यह भी हो जायगा. तुम आते रहो, मिलते-मिलाते रहो, सबसे तुम्हारी मुलाकात करा देंगे।"

सहसा चेतन का ध्यान दीवार-घड़ी की ओर चला गया। बहुत देर हो गयी थी। अन्तिम बस जाने में दम-एक मिनट रह गये थे। उसने उस पुरलुत्फ़ मुलाकात के लिए उनका बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया और उनसे रुख्सत ले कर, लगभग भागता हुआ बस के अड्डे पर पहुंचा था।

"अरे चेतन ! कब से बैठे हो यहाँ ?"

'मंजरी' का अंक उसकी गोद में खुला पड़ा था और चेतन अपने उस वतनी—'फ़िरदौसी-ए-इस्लाम'—के साथ होने वाली अपनी मुलाकात मे खो गया था।

जब हफ़ीज़ साहब ने उसे खाने पर बुलाया था तो चेतन सोचता था कि वे उसकी सोसाइटी के मेम्बर तो बन जायेंगे, लेकिन (जिस तरह वे अपने काव्य के बारे में बात करने को उत्सुक थे) चेतन को लगा था कि

वे अपने फ़न की तारीफ़ में उसे कुछ लिखने को भी कहेंगे। हफ़ीज़ उसकी सोसाइटी के मेम्बर नहीं बने थे और न उन्होंने उससे कोई लेख-वेख लिखने को ही कहा था। प्रकट ही वे अनुभवी खिलाड़ी थे और ओछा निशाना नही लगाना चाहते थे कि गोली भी नष्ट हो और पंछी भी उड़ जाय। वे उससे काम लेंगे ज़रूर (चेतन को विश्वास था) और उसकी मदद भी करेंगे, पर इसके लिए उसे पाँच-सात बार मॉडल टाउन जाना पड़ेगा।

वह यही सब सोच रहा था, जब चातक जी की आवाज़ उसे सुनायी दी। वह चौंका, उठा और उसने उन्हे 'नमस्कार' किया।

"नमस्कार नमस्कार !" कहते हुए चातक जी उसके पास आ गये और उन्होने उसे बाँह मे ले कर फिर वही सवाल दोहराया कि उसे प्रतीक्षा करते देर तो नही हुई !

"पन्द्रह-बीस मिनट ही हुए है।" चेतन ने हँस कर कहा, "मेरी ग़लती है, मुझे रास्ते मे आपके घर होते आना चाहिए था।" •

"जाने भाई, तुम हमसे क्यों इतने नाराज़ हो," उन्होंने उसे कुर्सी पर बैठाते और घूम कर मेज़ के पीछे अपनी कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "एक युग बीत गया तुम्हारी सूरत देखे। दो-तीन बार तुम्हारी तरफ़ गये भी, लेकिन हर बार दरवाजा बन्द मिला। कहाँ रहते हो इन दिनों, कहीं नया काम लग गया क्या ?"

"मकान हमने बदल लिया है," चेतन ने कहा, "और काम तो ऐसा लगा है कि फ़ुर्सत एक पल की नही और आमद एक पाई की नहीं।"

"क्या मतलब ?" चातक जी ने प्रश्न में आँखें उठायी।

"अब आपको क्या बताऊं," चेतन ने फिर कुछ हँस कर कहा, "एक सोसाइटी खोली है—सोसाइटी फ़ॉर यू एण्ड मी—लेकिन जिन लोगो के लिए खोली है, उनके पास पैसा नहीं और जिनके पास पैसा है, उन्हे सोसाइटी की जरूरत नहीं।"

और चेतन ने संस्था के बारे में शुरू से ले कर सारी बातें चातक जी को बतायी और उन्हें संस्था का परिपत्र दिया।

चातक जी कुछ क्षण उसे ध्यान से पढ़ने का उपक्रम-सा करते रहे, लेकिन वे मैट्रिक के आगे पढ़े नहीं थे और पण्डित रत्न ने, पढ़ने वालों पर रोब डालने के लिए, खासी क्लिष्ट अंग्रेजी में सोसाइटी का ब्रोशर लिखा था।

प्रकट ही चातक जी के पल्ले कुछ ज्यादा नहीं पड़ा। बायें हाथ से ब्रोशर को मेज पर रखते और दायें से बालों की लट को पीछे हटाते हुए उन्होंने कहा, "बहुत अच्छे उद्देश्य हैं, हमसे जो हो सकेगा, तुम्हारी मदद करेंगे!" वे क्षण भर रुके। फिर उन्होंने कहा, "लेकिन यह तुमने अंग्रेजी में परिपत्र क्यों छापा? अब तुम हिन्दी में आ गये हो, तुम्हें हिन्दी में छापना चाहिए था।"

"लेकिन लाहौर हिन्दी वालों का नगर नहीं है।" चेतन हँसा, "यहाँ अंग्रेज़ी और उर्दू का बोल-बाला है। हिन्दी में छापते, तो बहुत कम लोगों तक पहुँच पाते। मेरे दोस्तों में ज्यादातर उर्दू वाले हैं, मैं चाहता हूँ कि जो संस्था मैं कायम करूँ, उसमें हिन्दी-उर्दू, दोनों के साहित्यकार और पत्रकार आयें!"

"तब तुम उर्दू और हिन्दी—दोनों में छाप देते!" चातक जी ने कहा।

"लेकिन जो धन से सोसाइटी की मदद कर सकते हैं, उन पर अंग्रेजी ही का रोब पड़ता है। अब महात्मा गान्धी हिन्दी-हिन्दुस्तानी को सारे देश की भाषा कहते हैं। खुद भी उसी भाषा में भाषण देते हैं, लेकिन जरूरत पड़ने पर अंग्रेजी में लिखते हैं, अंग्रेजी भाषा में पत्र-व्यवहार भी करते हैं।"

चेतन क्षण भर रुका। फिर बोला, "हमें तो दरअसल सब काम पंजाबी में करना चाहिए। लेकिन पंजाबी को यहाँ कोई पूछता नहीं। एक भी काम की पत्रिका पंजाबी में नहीं निकलती। यहाँ मुसलमान बोलते पंजाबी हैं, लिखते उर्दू में हैं। हिन्दू भी पंजाबी बोलते हैं; कॉलेज में पढ़े हों तो ज्यादातर अंग्रेज़ी में लिखते हैं, बाकी अक्सर उर्दू में और बहुत कम

हिन्दी मे। इसलिए यहाँ ज्यादातर काम अंग्रेजी मे होता है।" वह क्षण भर रुका, फिर बोला, "मै आपको ब्रोशर की सब बाते हिन्दी मे समझा देता हूँ।"

और मेज मे ब्रोशर उठा कर चेतन पढने लगा!

चातक जी ने हाथ बढा कर उसे रोक दिया, "मै समझ गया हू।" उन्होने कहा, "मैं तुम्हारी सोसाइटी का सदस्य बन जाता हूँ।" और उन्होने जेब से बटुआ निकाल कर, पाँच रुपये का नोट उसकी ओर बढा दिया।

चेतन ने धन्यवाद देते हुए रसीद काटी। वह जानता था कि चातक जी ने सोसाइटी के उद्देश्य वगैरह नही पढे। सिर्फ सदस्यता वाला पृष्ठ पढा है और चन्दा दे दिया है। इसलिए बात-बात मे चेतन ने उन्हे सोसाइटी के उद्देश्य विस्तार से बताये और उनसे कहा कि जब वह मुशायरा रखेगा, उन्हे आना पडेगा।

"भई, हमसे मुशायरे मे तो न पढवाओ," चातक जी ने कहा, "हाँ, कभी किसी गोष्ठी-ओष्ठी मे बुलवाओ तो हम एक नही, दस कविताएँ सुना देगे।"

"क्यो, मुशायरो से आप क्यो घबराते है?" चेतन हँसा, "लाहौर के मुशायरो मे तो इतनी भीड रहती है कि तिल धरने को जगह नही मिलती। जो शायर लाहौर के मुशायरो मे चमक जाय, धन और यश के दरवाजे उस पर खुल जाते है। हफीज जालन्धरी को देखिए, मुशायरो ने उन्हे कहा-से-कहाँ पहुँचा दिया। आप शायद नही जानते, मेरे तो वतन के है, बचपन मे खुद अपने पिता के साथ टोपिया बनाया और बेचा करते थे। अब देखिए, मॉडल टाउन मे कोठी है, अपना प्रकाशन है, बडे ठाठ से रहते है। उनकी छोटी-सी स्टडी कितनी सुन्दर और आरामदेह है, आप कल्पना नही कर सकते। मेरे मन मे कई बार आया कि कभी मेरे पास पैसा आया तो मै भी ऐसी ही स्टडी बनवाऊँगा। मै अभी कल ही उनसे मिल कर आया हूँ।"

जैसे-जैसे चेतन हफीज जालन्धरी के ठाठ का जिक्र करता गया, चातक जी की आँखें फैलती गयी (उनके दिल मे क्या उस तरह रहने की हसरत न होगी।) लेकिन जब चेतन ने बात खत्म की तो पल भर के लिए उन्होने

कोई उत्तर नही दिया। चुपचाप बैठे, होटों पर ज़बान फेरते रहे। फिर माथे की सरकश लट को हाथ से हटाते हुए उन्होंने उदार भाव से कहा, "हाँ, हफ़ीज़ सुन्दर पढ़ते है।" फिर कुछ रुक कर बोले, "बुरा न मानो तो हमारे निकट, वे कवि नहीं, गलेबाज़ है।" वे फिर चुप हो गये। चेतन उनसे किसी उर्दू शायर पर किसी तरह के कमेण्ट की आशा नही रखता था। उसने हल्की-सी खीझ से कहा, "आपने उन्हे सुना है?"

"हाँ, एक बार शुक्ला जी हमे एम० पी० एस० के० हॉल के एक मुशायरे में पकड कर ले गये थे," चातक जी बोले, "वहाँ हमने हफ़ीज को भी सुना। वास्तव मे सराहना उन्हे काव्य के सौन्दर्य की नही, कण्ठ के माधुर्य की मिलती है। और मुशायरा हो या कवि सम्मेलन, श्रोताओ की भीड काव्य को नही, गाने को सुनने जाती है। हिन्दी मे आजकल बच्चन का जोर है। उसके काव्य मे गहराई नही, बस गले का रस है, जो श्रोताओं को अपने साथ बहा ले जाता है। हमको भगवान ने कण्ठ नही दिया, दिल की कविताएं लिखते है और उन्ही लोगो को सुनाते है, जिनके पास मात्र कान नही, दिल भी हो।"

और जैसे इस दलील से उन्होंने चेतन को निरुत्तर कर दिया हो, चातक जी के चहरे पर एक दर्द-भरी आभा चमक आयी। चेतन चुपचाप उनकी ओर देखता रहा। उसने बच्चन को सुना नही था। चातक जी और शुक्ला जी, दोनो कहते थे कि बच्चन के कण्ठ मे अपूर्व रस है। उसने बच्चन की कुछ रचनाएं जरूर पढी थी। कम-से-कम चातक जी की कविताओ से उसे वे अच्छी लगी थी। लेकिन चातक जी की इस बात मे सच्चाई थी और वह अपने अनुभव से उसे जानता था कि मशायरो मे दाद गले ही की मिलती है और लाहौर के मुशायरो की भीड को झेलना, चातक जी जैसे 'सुकोमल' कवि के बस की बात न थी। पर उन्होंने बिना मांगे, उसे संस्था की सदस्यता के पाच रुपये दे दिये थे: वह उन्हे नाराज नही करना चाहता था। कुछ सोच कर उसने कहा, "आप ठीक कहते है। मुशायरों मे कण्ठ के सुरीलेपन ही की दाद मिलती हैं। पर यह भी सच है कि जहाँ कण्ठ के साथ

काव्य में भी रस हो, वहाँ सोने में सुगन्ध मिल जाती है। हफ़ीज़ के बारे मे यही सच है। जाने आपने एस० पी० एस० के० हॉल में हफ़ीज़ की कौन-सी ग़ज़ल सुनी और कितनी समझी। आपने पढ़ा होता तो आप जानते। मेरे पास गला नहीं है, वैसे ही आपको हफ़ीज़ के दो गीत सुनाता हूँ। देखिए, उनके काव्य में रस है या नहीं।"

और चेतन ने वहीं बैठे-बैठे, 'दिल है पराये बस में' और 'प्रीत का गीत' —हफ़ीज़ की दो नज़्में चातक जी को सुनायीं। वे लगातार कसमसाते रहे। कोई उर्दू कवि, हिन्दी कवि से बेहतर लिख सकता है, चातक जी को यह स्वीकार नहीं था। चाहते तो वे यही थे कि अपनी नयी कविता चेतन को सुना कर, न केवल उससे प्रशंसा पायें, वरन यह भी सिद्ध करें कि वह हफ़ीज़ के गीतों की अपेक्षा कितनी उत्कृष्ट है, लेकिन चेतन ने इतने उत्साह से हफ़ीज़ की नज़्में सुनायी थीं, कि उनकी निन्दा करके वे उसे नाराज़ नहीं करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने दबी ज़बान से माना कि हाँ, हफ़ीज़ के गीतों में रस है, लेकिन इतना उन्होंने और जोड़ दिया कि यह रस हिन्दी ही का है। हिन्दी शब्दों के माधुर्य ने उर्दू शब्दों की रुक्षता मे रस भर दिया है....

वे क्षण भर चुप रहे, लेकिन इतना कह कर वे सन्तुष्ट नहीं हुए। फिर बोले, "तुम्हें गीतों का रस देखना हो तो महादेवी के गीत पढ़ो। देखो, उनमे कितना माधुर्य, कितना संगीत और कितनी गहराई है।"

चेतन ने जैसे उनकी बात नहीं सुनी। वह अपनी ही रौ मे बोलता गया, "मुझे हफ़ीज से एक ही शिकायत है," उसने इस तरह कहा, जैसे हफ़ीज़ उसके साथी और समवयस्क शायर हों और उनके साथ उसका रोज़ का उठना-बैठना हो, "वे बिक गये है और जो रास्ता और रहन-सहन उन्होंने अपनाया है, वह बिकते चले जाने का रास्ता है। उर्दू शायरों में तीन ही शायर हैं, जो इस देश में रह कर इस देश की बात करते है— इकबाल, हफ़ीज़ और अख्तर शीरानी—इकबाल और हफ़ीज़ को सरकार और उसके नमकख्वार नवाबों और खान-बहादुरों और जजों ने अपने चंगुल

में फाँस लिया है। अब इकबाल सारे देशवासियों को मुख़ातिब करने के बदले, सिर्फ़ मुसलमानों को मुख़ातिब करने लगे है और हफ़ीज़ 'शाहनामा-ए-इस्लाम' लिखने लगे हैं। रह गये अख़्तर शीरानी, सो उन्होंने अपने आप को शराब में डुबो दिया है।"

चेतन कुछ क्षण चुप रहा। उसके सामने अख़्तर शीरानी से अपनी मुलाकात घूम गयी। उसे लगा कि तासीर, मजीद मलिक और हफ़ीज़—उन तीनों शायरों से मिल कर उसे वह सुख नहीं मिला, जो अकेले उस फक्कड़, लाउबाली, मस्त-अलस्त शायर से मिल कर हुआ था। यह ठीक है कि उन तीनों ने उसके साथ अच्छा व्यवहार किया था, पर चेतन को लगा, उस व्यवहार मे फिर भी औपचारिकता थी, वह स्निग्ध अपनापा नही था, जो उस रिन्द के थोडे-से साहचर्य मे उसे मिला था। उसके सामने शराब के नशे में चूर, अख़्तर शीरानी की सूरत घूम गयी। उदास भाव से उसने कहा, "गालिब ने ठीक कहा है :

दाम-ए-हर मौज में है, हल्क:-ए-सद काम-ए-निहंग
देखें क्या गुज़रे है कतरे पे, गुहर होने तक[1]।"

कुछ क्षण वह फिर चुप रहा। फिर धीरे-धीरे कहने लगा, "मै हफ़ीज का रहन-सहन देख आया हूँ। हमारे देश में उस तरह का रहन-सहन महज़ अच्छी शायरी से सम्भव नही। हफ़ीज़ अगर 'शाहनामा-ए-इस्लाम' लिखने लगे है और मस्जिदों मे जा कर पढ़ते हैं, तो इसलिए कि उस तरह रहने वाले के लिए दूसरा चारा नहीं।"

चातक जी को हफ़ीज़ से कोई ग़रज़ नहीं थी और चेतन ऐसे बात कर रहा था, जैसे चातक जी भी हफ़ीज़ की शायरी के प्रेमी हों। ज्योंही उसे इस बात का ख़याल आया उसने कहा :

"मैंने महादेवी का कोई गीत नहीं पढ़ा। शुक्ला जी कह रहे थे कि वे बहुत मुश्किल लिखती है। आप सुनायेंगे या पढ़वायेंगे तो आभारी हूंगा।"

---

१. हर लहर के जाल में शत-शत मगरमच्छों के जबड़े खुले हैं; एक बूँद पर मोती होने तक न जाने क्या बीत जाय।

फिर बात का रुख बदल कर बोला, "मैं आपको बेकार बोर कर रहा हूँ। असल में, कल मैं हफ़ीज़ के यहाँ गया था। वहीं खाना खाया। वे मेरे वतन के हैं। मैं उनके काव्य का शैदाई हूँ, उन्हें बिकते-भटकते देख कर मुझे दुख हुआ। एक गरीब टोपी-फ़रोश इतना ऊँचा उठ गया, हफ़ीज इसी पर खुश होंगे, लेकिन वे नहीं जानते कि वे कितना ऊँचा उठ सकते थे! पर छोड़िए इस किस्से को! आप हमारी संस्था के मेम्बर बन गये और आपने मुझे पूरे सहयोग का वचन दिया है, इसके लिए मैं आपका एहसानमन्द हूँ। मैं निश्चय ही सोसाइटी की एक स्पेशल गोष्ठी आपकी कविता सुनाने के लिए रखूंगा और उसमें हिन्दी-उर्दू, दोनों भाषाओं के पढ़े-लिखे लोगों को बुलवाऊँगा, लेकिन इस सिलसिले मे आप मेरी थोड़ी-सी मदद कीजिए!"

चातक जी ने आँखें फैला दी।

"बात यह है," चेतन ने कहा, "कि सोसाइटी का खर्च चलाने के लिए रुपये की ज़रूरत है। अदीब और साहित्यिक तो आम तौर पर खुक्ख होते है। आपने पाँच रुपये दिये, लेकिन नीरव जी, शुक्ला जी, करुण जी, कण्टक जी और दूसरे मित्रों मे कोई इतना भी नही दे सकता। सोसाइटी को सफ-लता से चलाना है तो पाँच-दस ऐसे नाम चाहिएँ, जो कम-से-कम दस रुपये महीना दे कर सोसाइटी के सरपरस्त बन जायँ।"

और चेतन ने बताया कि वह अब तक पचास रुपये इकट्ठे कर चुका है। तीन-चार सरपरस्त भी बना चुका है, लेकिन इतने से काम नहीं चलेगा। सोसाइटी को अच्छी तरह चलाना है तो कम-से-कम सौ रुपये महीना आना चाहिए।

"मैने यह तय किया है," उसने कहा, "कि जिस दिन सौ रुपया चन्दा हो गया, मै उदघाटन-समारोह करूँगा, सोसाइटी का दफ़्तर किराये पर ले लूँगा और काम चालू कर दूँगा। अब इसी सिलसिले में आप मेरी कुछ सहायता करें।"

चातक जी कुछ क्षण सोचते रहे। फिर बोले, "भई, मैं इस शहर में नया-नया आया हूँ। बहुत लोगों को नही जानता। नागपाल बन्धु हैं, लेकिन

यदि तुम्हारी संस्था ऐसी होती, जिसमें हिन्दी पाठ्यक्रम समिति के सदस्य होते ता पाँच-दस नही, बीस-तीस रुपया महीना वे परम उत्साह से देते, लेकिन केवल साहित्य-संगीत सम्बन्धी सांस्कृतिक आयोजनों के लिए वे कानी-कौड़ी नहीं देंगे। तो भी मैं शिव जी से बात करूँगा। कोशिश करूँगा कि वे सरपरस्त नहीं तो सदस्य अवश्य बन जायँ।"

चातक जी कुछ क्षण चुप रहे और सोच की मुद्रा में, बायें हाथ की अनामिका से माथे पर लकीरें खींचते रहे। फिर सहसा बोले, "तुम वेदालंकार जी से क्यों नही मिलते। वे तो शहर के सभी बड़े लोगों में उठते-बैठते है। वे चाहे तो आसानी मे दस सरपरस्त बनवा सकते है।"

"उनका नाम मेरे ज़ेहन में तो है," चेतन ने कहा, "लेकिन उनसे कुछ भी कहना मेरे बस का नही। वे बड़ी दून की लेते है और बड़ी ऊँचाई से बात करते है। आप साथ चलें और उन्हे मेरी सहायता पर राज़ी कर दें तो मैं आपका आभार मानूंगा।"

"ठीक है, चलेगे!" चातक जी ने कहा, "आजकल वे नीला गुम्बद वाले दफ़्तर के बदले, हमारे बरावर ही अपने 'विश्व साहित्य प्रकाशन' में बैठने लगे है। आ गये होंगे। चाहो तो अभी चल सकते है।"

"चलिए!" चेतन उठा।

चातक जी भी उठे। लेकिन कदम बढ़ाने से पहले, वहीं खड़े-खड़े उन्होंने स्वर को धीमा कर, लगभग सरगोशी मे कहा, "एक बात समझ लो! उनसे काम लेना हो तो उनको कोई ऊंचा पद देना होगा। कोई ऐसा पद, जिसका वे अपने मित्रो मे बड़े गर्व से उल्लेख कर सकें। यह उनकी बहुत भारी कमजोरी है।"

"और उनकी इसी कमजोरी से मुझे चिढ होती है।" चेतन ने कहा।

"हाँ, चिढ़ तो होती है," चातक जी बोले, "पर उनसे काम लेना होगा तो उनकी इस उत्कण्ठा को आँच देनी होगी। उन्हे संस्था का प्रधान बना दो तो तुम्हें साथ लिये दस जगह घूमेंगे।"

"नहीं, मैं उन्हे प्रधान तो नहीं बना सकता।" चेतन ने कहा।

कुछ क्षण दोनों मौन रहे। चातक जी फिर कुर्सी पर बैठ गये। चेतन भी बैठ गया। कुछ देर सोचता रहा। फिर बोला, "चलिए उठिए, मैंने सोच लिया है। हमारी संस्था के तीन विंग होंगे—एक साहित्य का, दूसरा संगीत का, तीसरा कला का। वेदालंकार जी को सोसाइटी के लिट्रेरी विंग का सभापति बनाया जा सकता है।"

"हाँ, यह ठीक है।" चातक जी भी उठे। लेकिन इससे पहले कि वे कदम बढ़ाते, सीढियों पर किसी के तेज़-तेज़ चढ़ने की आवाज़ सुनायी दी। दूसरे क्षण उन्होंने देखा कि सूट-बूट पहने और हाथ मे हैट लिये, श्री धर्म-देव वेदालंकार, सीढ़ियों की चौखट में खड़े हैं।

"नमस्कार वेदालंकार जी।" चातक जी ने कहा। चेतन भी ख़ामोशी से दोनों हाथ मस्तक पर ले गया।

"आपकी बड़ी उम्र है," चातक जी ने कहा, "हम आप ही की ओर आ रहे थे।"

"मेरे दाँत में दर्द है; घर जा रहा था कि बाजार से आपकी झलक मिली, ऊपर आ गया," वेदालंकार जी ने उनके 'नमस्कार' का जवाब दे कर अन्दर आते हुए कहा। फिर उन्होंने चेतन की पीठ पर तपाक से हाथ मारा, "कहिए चेतन जी, क्या खबर है?"

"इन्होंने तो भाई एक संस्था खोली है और ये आपसे कुछ मदद चाहते है," चातक जी ने वैसे ही खड़े-खड़े कहा।

"संस्था की बात फिर करेंगे," वेदालंकार जी बेसब्री से बोले, "इस वक्त तो आप मुझे कोई डेण्टिस्ट बताइए। मेरी ऊपर की दायीं दाढ़ में बेहद दर्द है। आज तो मुझसे काम भी नही हो सका। मैं थोड़ी देर पहले दफ़्तर आया था, और अब लौटा जा रहा हूँ। सोचा, घर जाने से पहले किसी डेण्टिस्ट को दिखा दूँ; दर्द बढ़ गया तो वहाँ टैप रोड पर तो इर्द-गिर्द कोई डॉक्टर नहीं।"

"हाँ, दाँत का दर्द बेहद कष्ट देता है," चातक जी ने कहा, "एक बार मेरे एक भाई के दाँत में दर्द हुआ। रात उन्होंने जैसे तड़पते काटी,

मैं ही जानता हूँ। लेकिन किस डेण्टिस्ट का आपको पता दूँ, मैं इस शहर में नया आया हूँ। आप तो...."

"मुझे इस वक्त कुछ भी नहीं सूझता," उन्हें जैसे बोलने से दर्द उठा और उन्होंने हाथ जबड़े पर रख लिया।

चेतन सोसाइटी की बात एकदम भूल गया। आगे बढ़ कर उसने कहा, "आप परेशान क्यों होते हैं। मेरे भाई बहुत अच्छे डेण्टिस्ट हैं। आप तो जानते हैं, बाइबल सोसाइटी के सामने उनका क्लिनिक है। मैं आपको वहाँ ले चलता हूँ। वे आपका बढ़िया इलाज कर देंगे। खोड़-वोड़ होगी, भर देंगे--सीमेण्ट या चाँदी, जिससे आप चाहें—निकालने की जरूरत होगी तो इंजेक्शन दे कर निकाल देंगे।"

"मैं माल रोड के किसी डेण्टिस्ट के यहाँ जाना चाहता था," वेदालंकार जी ने ऊँचाई से कहा।

लेकिन चेतन इतनी आसानी से उन्हें छोड़ने वाला नहीं था। कैसे माल रोड के डेण्टिस्टों के मारे हुए मरीज़ उसके भाई के पास आते और शफ़ा पाते हैं; कैसे वे बारीक-से-बारीक किरचें, किसी तकलीफ़ के बिना, निकाल देते हैं; कैसे उनके लगाये हुए सेट यूँ फ़िट बैठते हैं कि नकली-असली का फ़र्क पता नही चलता....

वह दस-पन्द्रह मिनट तक धारा-प्रवाह अपने भाई के कौशल की प्रशंसा करता रहा, यहाँ तक कि वेदालंकार जी ने हथियार डाल दिये।

सातवा खण्ड

छब्बीस

"भाई साहब, ये हमारे मित्र हैं, श्री धर्मदेव वेदालंकार।" चेतन ने वेदालंकार जी के साथ दुकान में दाखिल होते हुए कहा।

चेतन के बड़े भाई, डॉ० रामानन्द, बाहर वेटिंग-रूम में, पार्टीशन के साथ कोने में लगी मेज पर बैठे, एक जासूसी उपन्यास पढ़ रहे थे। सामने लगी चिक में से उन्होंने चेतन को वेदालंकार के साथ आते हुए देखा था तो उपन्यास एक ओर रख कर एक डेण्टल मैगज़ीन उठा ली थी और जब चेतन वेदालंकार जी के साथ दुकान में दाखिल हुआ था तो भाई साहब, जैसे दुनिया की सुध-बुध भुला कर, उसके पारायण में तल्लीन थे। चेतन की आवाज़ सुनते ही वे जैसे चौंके, अपनी जगह उठे और वेदालंकार जी की ओर हाथ बढ़ाते हुए अस्फुट स्वर में उन्होंने डॉक्टरों वाली अदा से अंग्रेज़ी में कहा, "ग्लैड टू मीट यू।"

"वेदालंकार जी हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार हैं," चेतन ने सोत्साह आगे बढ़ कर कहा, "आपने तो इनकी कहानियाँ 'विशाल भारत' में पढ़ रखी हैं," और वेदालंकार जी की ओर मुड़ कर बोला, "भाई साहब को साहित्य का बहुत शौक है, कोई उपन्यास-कहानी बस हाथ लग भर जाय, खत्म किये बिना नहीं छोड़ते।" फिर भाई साहब की ओर मुड़ कर उसने बताया, "आप शायद नहीं जानते, वेदालंकार जी की कई पुस्तकें कोर्स में पढ़ायी जाती हैं। अभी इन्होंने विश्व-साहित्य के प्रकाशन की योजना बनायी है और ये प्रसिद्ध पश्चिमी कथाकारों की कहानियों का खुद अनुवाद करके, प्रकाशित करने जा रहे हैं...."

भाई साहब ने तपाक से वेदालंकार जी से हाथ मिलाया और अंग्रेज़ी मे बोले, "वेल, ह्वॉट कैन आई डू फॉर यू ?"

चेतन मन-ही-मन भाई साहब की इस अदा पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने नये आने वाले सभ्य और सुशिक्षित रोगियो मे इस तरह बात करना, उन्हे लगातार प्रैक्टिस मे सिखाया था। इससे पहले कि वेदालंकार कुछ कहते, चेतन बोला "इनकी दाढ मे दो-तीन दिन से बहुत दर्द है। आप जरा चल कर देखिए, कोई खोड-खांड हो तो सीमेण्ट या चाँदी से, जैसे भी ये कहे, भर दीजिए और निकालनी हो तो निकाल दीजिए।"

भाई साहब उनका हाथ छोड कर अन्दर की ओर बढ़—"आइए !" उन्होने कहा और उन्हे अपने पीछे आने का इशारा किया।

वेदालंकार जी को ले कर चेतन पार्टीशन के पीछे गया। दुकान के इस हिस्से मे, बीचो-बीच, एक नये डिजाइन की घूमने और ऊपर-नीचे होने वाली विलायती डेण्टल चेयर रखी थी। उसी मे स्पिटून लगा था, जिसके अन्दर दो पतली नालियो से हर वक्त पानी बहता रहता था कि थूक एक सेकेण्ड के लिए भी स्पिटून मे न रहे और बह जाय। इसके साथ, जरा ऊपर को, गिलास-स्टैण्ड बना था जिसके ऊपर पतली-सी, गोल, ऊँची नली लगी थी। गिलास खाली हो तो एक छोटा-सा सुन्दर गोल स्क्रू घुमाने पर पतली, तेज धार गिलास को पलक झपकते भर देती थी—यह वही कुर्सी थी, जो चन्दा के गहने बेच कर, पुरानी की जगह खरीदी गयी थी। उसके साथ ही डेण्टल इंजन पडा था (यह भी चन्दा के गहनो की बदौलत आया था।) बायी दीवार मे रैक-नुमा ऊँची मेज थी, जिस पर मोटा शीशा लगा था। रैक के खानो मे विभिन्न औजार पडे थे। दोनो दराजो मे तरह-तरह के जम्बूर थे। मेज की बायी ओर, पार्टीशन के साथ, आगे-पीछे होने वाली कमानीदार फिटिंग मे सौ पावर का सफेद बल्ब लगा था। जरा-सा खीचने पर मरीज के मुँह के पास लाया जा सकता था और जरा-सा पीछे धकेलने पर अपने आप सिमट जाता था।

"बैठिए!" भाई साहब ने कुर्सी की ओर इशारा किया।

वेदालंकार जी कुर्सी पर बैठ गये। हालाँकि उन्हें जरूरत नहीं थी, लेकिन चेतन ने सहारा दे कर उन्हें कुर्सी पर बैठाया और खुद किसी बुजर्ग, खुशामदी क्लर्क की तरह सामने खड़ा हो गया, जो अपने बास के लड़के का इलाज कराने आया हो।

भाई साहब ने बड़ी तत्परता से कुर्सी के नीचे लगे खटके को एक पैर से दबाया और कुर्सी को ऊँचा-नीचा करके, वेदालंकार जी के कद के मुताबिक, उसे ऐसी स्थिति में फिक्स किया जिससे वे आसानी से उनके दाँतों का निरीक्षण कर सकें। फिर उन्होंने कुर्सी की पीठ पर लगे गद्दीदार हेड-रेस्ट को ऊँचा नीचा, इधर-उधर करके ऐसी स्थिति में सेट किया जिससे वेदालंकार जी के सिर को आराम मिल जाय। तब उन्होंने स्पिटून पर रखे गिलास में थोड़ी-सी लाल दवा छोड़ी और स्क्रू घुमा कर गिलास भर दिया—सब तरफ से निश्चिन्त हो कर, उन्होंने वेदालंकार जी से कहा कि सिर पीछे टिका कर और मुँह खोलें। वेदालंकार जी ने मुँह खोला तो भाई साहब ने मेज पर से माउथ-मिरर उठाया, उसे दायें हाथ में लिये हुए ही, बिजली के बल्ब को खींच कर आगे किया और उस छोटे-से शीशे को दर्द वाली दाढ़ के नीचे रख कर उसे ध्यान से देखा। फिर बायें हाथ में मिरर का हैण्डल थाम, दायें हाथ में डेण्टल प्रोब ले कर खोड़ वाली दाढ़ का निरीक्षण किया। प्रोब की छोटी-सी, टेढ़ी नोक के छूते ही वेदालंकार जी सहसा बिलबिला उठे।

"भाई साहब धीरे," चेतन ने कहा।

भाई साहब ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया और वेदालंकार जी को कुल्ला करने की हिदायत दी। वेदालंकार जी ने कुल्ला किया तो भाई साहब ने उनका सिर पीछे टिका दिया। माउथ-मिरर की मदद से उन्होंने डेण्टल प्रोब फिर खोड़ में डाला। औजार की नोक खोड़ के अन्दर पूरी गयी भी न होगी कि वेदालंकार जी फिर बिलबिला उठे।

"भाई साहब जरा धीरे," अबके चेतन ने किंचित सख्ती से कहा।

खीझ कर भाई साहब ने अपने छोटे भाई की ओर देखा और हाथ खींच लिया, बल्ब पीछे कर दिया और सीधे हो कर फतवा दिया कि दाढ निकालनी पडेगी, खोड इतनी गहरी हो गयी है कि भरी नही जा सकती।

"पहला जमाना होता," उन्होने कहा, "तो ईथल क्लोराइड की स्प्रे से मसूढे को सुला कर दाढ निकाल देता, लेकिन स्प्रे का असर ज्यादा देर नही रहता और दाढ टूट जाय तो किरचे निकालने मे बहुत देर लगती है और पेशेण्ट को बहुत तक्लीफ होती है। अब तो एक-दो इंजेक्शनो से पूरा मसूढा सुला दिया जाता है और दर्द नही होता। हाँ, डाक्टर अनाड़ी हो, दाढ टूट जाय तो दूसरी बात है।" भाई साहब ने बाये पैर पर दायाँ पैर जरा टेढा करके टिका लिया और ऐसे मरीज का किस्सा सुनाने लगे, जिसकी दाढ, माल रोड के डाक्टर रामनाथ ने निकाली थी। एक छोटी-सी किरच वहा रह गयी दाढ मे पस पड गयी और मुँह सूज गया। सब तरफ से निराश हो कर वह उनके पास आया और उन्होने जब वह किरच निकाल कर उसे दिखायी तो बडा हैरान और कृतज्ञ हुआ था।

"आप कल्पना नही कर सकते, कैसी बुरी हालत थी उसकी," चेतन ने रद्दा जमाया, "यह मुँह सूजा हुआ, (दोनो हाथो से बडा-सा गोला बनाते हुए चेतन ने बताया कि कितना सूजा हुआ था बात उसके मुँह से निकलती नही थी। लेकिन भाई साहब ने बडे आराम से उसकी किरच निकाल दी तो दो दिन मे हँसता हुआ इनका शुक्रिया अदा करने आया!"

"ठीक है आप इसे निकाल दीजिए!" वेदालंकार जी ने कहा।

भाई साहब इंजेक्शन की तयारी करने लगे। वही कुर्सी के पास खडा-खड़ा चेतन सोचने लगा, भाई साहब आराम से उनकी दाढ निकाल दें तो वह उन्हे टैप रोड उनके घर छोड़ने जायगा और वापसी पर चलते वक्त सोसाइटी की बात चलायेगा।

'मंजरी' कार्यालय से अपने भाई की दुकान तक, पूरी अनारकली पार करते हुए चेतन ने एक बार भी सोसाइटी की बात न की थी। दन्दानसाजी के

क्षेत्र में अपने भाई की दक्षता के किस्से वह उन्हें लगातार सुनाता आया था। दुकान के बाहर लगे जहाज़ी बोर्ड पर 'डॉ० रामानन्द' के आगे लिखी हुई डिग्रियों—एल० डी० एस० सी० (कराची), एम० जी० ओ० डब्लू० एफ़०, एडनबरा (स्कॉटलैण्ड)—पर वेदालंकार जी की दृष्टि गयी तो उन्होंने हठात पूछा था कि डॉ० रामानन्द स्कॉटलैण्ड हो आये हैं ? चेतन उन्हें कैसे बताता कि वे लाहौर के बाद मियाँमीर तक नहीं गये और वे सब डिग्रियाँ नितान्त नकली हैं। कराची-वराची के नहीं, भाई साहब तो डॉ० सोमप्रकाश डेण्टिस्ट, एल० डी० एस० सी० के कॉलेज, ब-मुकाम जालन्धर शहर के डिग्री-याफ़्ता हैं और एम० जी० ओ० डब्लू० एफ़० एडनबरा (स्कॉटलैण्ड) कोई डिग्री नहीं, इसका मतलब इतना ही है कि वे एडनबरा (स्कॉटलैण्ड) की उस सोसाइटी के मेम्बर हैं। लेकिन वह झूठ बोले, इसकी अपेक्षा चेतन ने ऐसे जताया, जैसे उसने उनकी बात न सुनी हो। तेज़-तेज दुकान की सीढ़ियाँ चढ़ कर, उसने चिक उठा दी थी और किंचित बेसब्री से कहा था—"आइए वेदालंकार जी !"....

भाई साहब ने स्पिरिट लैम्प पर सिरिज और सुइयाँ उबाल ली थीं। एक सुई सिरिज में लगा कर उसे मेज़ पर एक ओर रख लिया था और 'नोवोकेन' के एम्प्यूल की गर्दन काट रहे थे। अचानक एम्प्यूल की नोक कट कर सीमेण्ट के फ़र्श पर गिरी, उसकी आवाज से वह चौंका :

"भाई साहब वेदालंकार जी की दाढ़ ऐसे आराम से निकालिए कि इन्हें पता न चले।" उसने कहा।

"कोशिश तो यही करूँगा। आगे जो भगवान को मंज़ूर हो।" भाई साहब ने जवाब दिया; सिरिज उठा कर उसमें दवा भरी; उसे एक ओर रख, मेज़ की दराज़ से तीन-चार तरह के जम्बूर निकाले, फिर उन्होंने वेदालंकार जी के ऊपर के होंट और दाँतों के बीच रूई के दो-एक मोटे फाहे रखे, सिरिंज उठायी। देखा कि सुई में हवा तो नहीं, इस प्रक्रिया में दवा की एक बहुत बारीक धार हवा में उड़ी। तब, जब वे वेदालंकार जी

की दाढ़ के ऊपर तालू में इन्जेक्शन देने जा रहे थे, भाई साहब की नज़र चेतन पर गयी, जो दोनों टाँगें ज़रा-सी फैलाये, आलोचक की दृष्टि से उनकी हर गतिविधि का निरीक्षण कर रहा था। भाई साहब ने सुई वाला हाथ खींच लिया और सीधे खड़े होते हुए कहा :

"चेतन, तुम ज़रा बाहर बैठो !"

चेतन कुछ कहना चाहता था, लेकिन बिना एक भी शब्द कहे, वह बाहर आ कर काउच पर बैठ गया। तिपाई पर 'इलस्ट्रेटेड वीकली' का ताजा अंक पड़ा था। उसे उठा कर, अधलेटा हो, वह 'वीकली' के पन्ने पलटने लगा।

दो महीने पहले बिहार में ज़बरदस्त भूकम्प आया था। 'वीकली' में उसके बारे में एक सचित्र लेख छपा था। भूकम्प का प्रभाव, तीस हजार वर्ग मील में, लगभग डेढ़ करोड़ जनता पर पड़ा था। बीस हज़ार लोगों के प्राण गये थे, दस लाख के करीब घर नष्ट हो गये थे, या टूट-फूट गये थे और लगभग दस लाख बीघा खेती पर रेत छा गयी थी। इन ब्योरों के साथ जो चित्रावली छपी थी, उस के एक फ़ोटो में धरती बेतरह तड़क कर दो हिस्सों में बँट गयी दिखायी देती थी। चेतन हैरान-सा उस चित्र को देखने लगा।

पिछले दो-ढाई महीनों से लाहौर में बेगिनती संस्थाएँ 'बिहार रिलीफ़ फ़ण्ड' के लिए चन्दा इकट्ठा कर रही थीं। इस बहाने लाहौर की सांस्कृतिक संस्थाओं ने नाटक किये थे, कंसर्ट किये थे, मुशायरे और संगीत-सम्मेलनों का आयोजन किया था और इस तरह, मनोरंजन के साथ-साथ, भूकम्प-पीड़ितों को यत्किंचित सहायता भी दी थी। भूचाल से बिहार भले ही तबाह हो गया हो और कांग्रेस, हिन्दू महासभा तथा अन्य संस्थाएँ भूकम्प-पीड़ितों की सहायता के लिए दिन-रात प्रयत्न कर रही हों, लेकिन चेतन ने देखा था कि लाहौर की कल्चरल सोसाइटियों के लिए यह भूकम्प, वरदान-सरीखा आया था और पिछले दो महीनों से इस सिलसिले में

सांस्कृतिक सरगर्मियों की बाढ़-सी आ गयी थी।

....'वीकली' का लेख पढ़ कर, उन चित्रों को देखते हुए, इस बात का तकलीफ़देह एहसास चेतन को हुआ कि इकट्ठे किये जाने वाले धन का ज़्यादा हिस्सा लोगों की जेबों से निकल कर कंसर्टों में भाग लेने वाले कवियों, कलाकारों, संगीतज्ञों तथा संयोजकों द्वारा खर्च होगा और बहुत कम 'रिलीफ़ फ़ण्ड' में जायगा....और चेतन के सामने 'पंजाब लिट्रेरी लीग' का फ़ंक्शन घूम गया, जिसमें चौधरी ने एक मुशायरे का आयोजन किया था और अपने धनी-मानी सदस्यों और सरपरस्तों को भी टिकट लेने पर बाध्य किया था। चेतन को भी उन्होंने एक नज़्म पढ़ने के लिए आमन्त्रित किया था और आश्वासन दिया था कि ताँगे का किराया वे देंगे। उसके पास भूकम्प पर कोई कविता नहीं थी। उसने छोटे-से छन्द में—'अफ़सोस ऐ गरीबी'—शीर्षक अपनी पुरानी नज्म पढ़ दी थी। तीन घण्टे के प्रोग्राम में सिर्फ़ एक शायर ने 'बिहार का ज़लज़ला' शीर्षक से नज्म पढ़ी थी, शेष सब ने वही इश्किया ग़ज़लें और नज़्में पढ़ी थी—बल्कि गायी थीं और सभा में उपस्थित, उच्चवर्गीय श्रोताओं ने नितान्त भावनाहीन चेहरों से, फ़रमायशी दाद दी थी।....चेतन को वह फंक्शन और उसमें तरन्नुम से पढ़ी जाने वाली गजलें और नज़्में बे-वक्त की रागिनी जैसी हास्यास्पद लगी थी।

'वीकली' का लेख पढ़ते हुए, चेतन को लगा कि उस विपत्ति का, जिससे पूरे देश को हिल जाना चाहिए था, ऊपर तथा नीचे के वर्गों पर कोई असर नहीं पड़ा। उनको उसकी भयावहता का एहसास भी नहीं। ऊँचे वर्ग की बात चेतन नहीं जानता था; शायद वैसी विपत्ति उनके लिए मनोरंजन का एक और बहाना भर जुटाती थी, लेकिन जहाँ तक निचले वर्ग की बात है, अपनी रोज़ी-रोटी और दैनन्दिन जीवन की समस्याओं से इतर, किसी समस्या के बारे में सोचने का, उसके पास न समय था, न एहसास....वहीं बैठे-बैठे चेतन ने तय किया कि वह कभी अपनी संस्था का कोई ऐसा फ़ंक्शन रखेगा तो 'लिट्रेरी लीग' की तरह किसी छोटे-से हॉल

में नहीं, अव्वल तो ब्रैडलॉ हॉल, नहीं तो लाजपत राय हॉल जैसी खुली जगह करेगा; कवियों से अनुरोध करके समयानुकूल कविताएँ लिखवायेगा और चन्दा उस फ़ंक्शन के लिए चाहे वह बड़े लोगों से वसूल करे, लेकिन पढ़ने और सुनने वाले ऐसे बुलायेगा, जिनके पहलू में दिल धड़कता हो और जिनकी सम्वेदना मर न गयी हो....और वहीं काउच पर बैठा-बैठा, चेतन उस फ़ंक्शन का सपना लेने लगा....लेकिन उसका सपना अभी पंख भी खोल नहीं पाया था कि अन्दर से एक अमानुषिक-सी चीख सुनायी दी।

चेतन लपक कर अन्दर गया। उसने देखा, भाई साहब जम्बूर हाथ में लिये खड़े हैं, उनके माथे पर पसीना आ गया है और वेदालंकार जी स्पिटून मे खून थूक रहे हैं।

"क्या हुआ ?" चेतन ने कद्रे सख्ती से पूछा।

"मैं कहता हूँ चेतन जी, मुझे आप माल...."

"आप तो बच्चों की तरह बीहेव कर रहे हैं," चेतन ने वेदालंकार जी को निहोरा देते हुए कहा। "दाढ की जड़े आखिर खोपड़ी तक गयी रहती हैं, कुछ तो दर्द होगा ही," और वह भाई साहब की ओर मुड़ा, "क्या बात है भाई साहब ?"

भाई साहब का मुँह लम्बा-सा निकल आया था। हाउस कोट की बाँह मे माथे का पसीना पोंछते और कलाई का पिछला हिस्सा नाक की कोठी पर रगड़ते हुए, उन्होंने कहा, "कुछ बात नहीं, एक इंजेक्शन और देना पड़ेगा। मोलर की जड़ें काफ़ी ऊपर तक गयी हुई हैं, जवान दाढ है न...."

और अपनी बात अधूरी छोड़ कर, भाई साहब ने जम्बूर मेज़ पर रखा और दूसरे एम्प्यूल का सिरा काटने लगे। चेतन फिर बाहर आ कर काउच पर बैठ गया।

लेकिन उसका सपना फिर नहीं लौटा, क्योंकि सहसा उसके मन में संशय ने सिर उठाया और उसका मस्तिष्क दलदल-सरीखा हो गया : 'आज भाई साहब को क्या हो गया है,' वह सोचने लगा, 'इन दो-ढाई वर्षों में

न जाने उन्होंने कितने दाँत निकाले हैं, कभी किसी मरीज को तकलीफ नहीं हुई। हमेशा बड़े आराम से उन्होंने दाँत निकाल दिये हैं। आज क्यों उनसे एक दाढ़ नहीं निकल पायी ?' चेतन ने वेदालंकार जी से झूठ नहीं कहा था। सच ही भाई साहब ने माल रोड के डॉ० रामनाथ का एक बिगड़ा हुआ केस ठीक कर दिया था। जब अपना बेतरह सूजा हुआ मुँह लिये, मरीज़ आया था, चेतन दुकान पर ही था; लेकिन आज एक मामूली दाढ़ उन्हें परेशान कर रही थी। वह उठ कर अन्दर जाने की सोच ही रहा था कि फिर एक बेपनाह चीख़ सारे क्लिनिक में गूँज गयी—'यह तो बाहर सड़क पर भी सुनायी दी होगी,' चेतन सशंकित हो कर उठा और लपक कर अन्दर गया।

भाई साहब बायें हाथ से वेदालंकार जी का माथा कुर्सी से दबाये, दायें से जम्बूर को खींचते हुए लटक गये थे और वेदालंकार जी कुर्सी की दोनों बाँहों को पकड़े, कण्ठ के न जाने किस भाग से चीख़ रहे थे। तभी उनके बायें हाथ से कुर्सी छूट गयी और दायाँ झटके से नीचे आ गया। उस झटके से जम्बूर दाढ़ से फिसल कर, निचले मसूढ़े में लग गया और वेदालंकार जी का मुँह ख़ून से भर गया। चेतन ने लपक कर लाल दवाई का गिलास फिर से भरा और उठा कर उनके हाथ में देते हुए कहा, "कुल्ला कर लीजिए और कुर्सी के बाज़ू मज़बूती से थामिए !"

भाई साहब ने वह जम्बूर रख कर दूसरा उठाया और फिर दाढ़ से लटक गये। दाढ़ निकली तो नहीं, थोड़ी-सी टूट कर जम्बूर में आ गयी। भाई साहब गिरते-गिरते बचे और वेदालंकार जी बेतरह बिलबिला उठे। वे इतने ज़ोर से चीख़े की उनकी चीख़ बाइबल सोसाइटी तक सुनायी दी होगी। चेतन घबरा गया। कहीं बाज़ार वाले इकट्ठे न हो जायें, इस डर से वह जा कर बाहर का दरवाज़ा बन्द कर आया। वापस आया तो भाई साहब फिर दाढ़ से जूझ रहे थे। वेदालंकार जी का ही नहीं, उनका चेहरा भी विकृत हो आया था। उनके हाउस कोट की दोनों बाँहें चढ़ी हुई थीं और वे जैसे उस बेशर्म दाढ़ को नेस्त-नाबूद करने के लिए कृत-संकल्प थे।

इसके बाद क्या हुआ, चेतन को याद नहीं। उसने यही देखा कि भाई साहब कभी एक जम्बूर उठाते हैं, कभी दूसरा। वेदालंकार बड़े थके-हारे भाव से कुल्ला करते है और उनको रोकने का कमज़ोर-सा प्रयास करते हैं। भाई साहब उनका हाथ परे करके बरबस दाढ़ खींचते है। कभी माउथ-मिरर को अन्दर डाल कर दाढ़ का निरीक्षण करते हैं; कभी फ़ोर्सेप्स में रुई का फाहा ले कर वह जगह साफ़ करते है; कभी ऊपर के होंट मे नयी रुई भरते हैं....और उनके माथे से ही नही, पूरे बदन से पसीना चू रहा है।

"आख़िर बात क्या है भाई साहब ?" चेतन चिल्लाया।

भाई साहब ने अस्फुट स्वर मे जो सफ़ाई दी, उसका यह मतलब था कि शायद वेदालंकार जी की दोनों दाढ़ों की जड़ें अन्दर से जुड़ी हुई है—लाखों मे किसी एक के यहाँ ऐसा होता है—और जब तक दूसरी दाढ़ नहीं निकाली जायगी, वह भी नहीं निकलेगी....और भाई साहब जम्बूर ले कर दूसरी दाढ़ पर पिल पड़े।

लेकिन पाँच-सात मिनट बाद उसका भी वही हश्र हुआ। एक-दो किरचों के सिवा भाई साहब के हाथ कुछ नही आया और इस प्रयास मे वेदालंकार जी के मुँह की ऐसी दुर्दशा हो गयी कि वे चीखना-कराहना छोड़ कर, फफक-फफक कर रो पड़े।

उस सूट-बूट धारी स्नॉब को इस तरह रोते देख कर, चेतन को कुछ अजीब-सी दया आयी। भाई साहब जम्बूर ले कर फिर पिल पड़ने वाले थे कि चेतन ने बढ़ कर उनकी बाँह थाम ली और लगभग झिड़क कर कहा, "छोड़िए, आपसे नहीं होगा !" और उसने पानी का गिलास वेदालंकार जी को दिया कि वे कुल्ला करें और थोड़ी देर ऊपर परछत्ती पर चल कर आराम करें। वह उन्हें लाया है तो वही दूसरे डॉक्टर का प्रबन्ध भी करेगा।

वेदालंकार जी एकदम अशक्त हो गये थे। किसी तरह की प्रतिरोध-शक्ति उनमें नही रही थी। जब चेतन ने उनका हाथ पकड़ा तो उसी तरह

रोते और खून से भरा रूमाल मुँह पर रखे, वे उसके साथ चल दिये। पार्टीशन के पीछे दुकान का जो छोटा-सा हिस्सा था, उसमें दायीं ओर लकडी का एक तंग जीना, ऊपर परछत्ती को जाता था; बायी ओर, पिछली दीवार के साथ, एक मेज लगी थी, जिस पर न जाने कितना प्लास्टर जमा था कि उसकी असली सूरत पहचान में न आती थी। मेज़ के पास एक स्टूल पड़ा था, जिसकी हालत मेज़ से भी गयी-बीती थी। उस पर एक समाचार-पत्र तहा कर रखा हुआ था। भाई साहब उसी पर बैठ कर प्लास्टर-मॉडल वगैरह तैयार करते थे और वह जगह खासी गन्दी और अँधेरी थी।

वेदालंकार जी उस जगह मे गुज़रे तो सख्त तकलीफ़ के बावजूद उन्होंने बडी उपेक्षा से अंग्रेज़ी में चेतन से कहा—"आप मुझे कैसी गन्दी जगह ले आये है !"

चेतन ने तत्काल उनकी बात का जवाब नहीं दिया। "सीढ़ी जरा तंग है," उसने कहा, "ध्यान से चढिए।" और जब वेदालंकार जी चढ़ने लगे तो उन्हे सहारा देते और उनके पीछे चढते हुए चेतन ने कहा, "दुकान की पिछली जगह में भाई साहब दाँतों के सेट वग़ैरह बनाते है—प्लास्टर का काम है, इसलिए जगह थोड़ी गन्दी हो जाती है।"

ऊपर परछत्ती पर पिछली दीवार के साथ पलँग बिछा था। गत दो-ढाई वर्षों में कई बार ऐसा हुआ कि रिहायश के लिए एक ही कमरा होने के कारण भाई साहब अथवा चेतन दुकान पर सोये—विशेषकर सर्दियों में। एक-दो बार ऐसा भी हुआ कि उन्होंने किराये का मकान छोड़ दिया और दुकान पर आ गये—पलँग पर भाई साहब सोते, चेतन नीचे लकड़ी के फ़र्श पर बिछे टाट पर बिस्तर लगा लेता। बाज़ार से एक चौकी ख़रीद कर उसने वहाँ रख ली थी, जिस पर वह लिखता-पढ़ता था। भाई साहब ने एक पड़ोसी दुकानदार से प्रबन्ध कर रखा था। पीछे गली में उसका गोदाम था, जहाँ एक गुसलखाना और फ़्लश-लैट्रिन भी थी। वही दोनों भाई निबट-नहा लेते थे। सुबह हलवाई की दुकान से गिलास भर लस्सी पी कर, दोपहर को ढाबे से खाना खा लेते थे। इधर, जब से वे कृष्णा

गली में रहने लगे थे, भाई साहब कभी दोपहर को, लंच के बाद पाँच-दस मिनट को परछत्ती पर पीठ सीधी कर लेते। नीचे क्लिनिक की तरह ऊपर परछत्ती को भी रोज़ साफ़ किया जाता था और पलॅग-पोश झाड़ कर पुनः बिछा दिया जाता था। चेतन ने वेदालंकार जी को इस तरह ले जा कर पलॅग पर लिटा दिया, जैसे वे दूध-पीते बच्चे हों। तभी चेतन की नज़र भाई साहब पर गयी। वे उसके पीछे-पीछे ऊपर आ गये थे; चेहरा उनका फ़क हो गया था और परछत्ती के जँगले के पास सिर झुकाये, वे कि-कर्त्तव्य-विमूढ़-से खडे थे।

वेदालंकार जी को सिर के नीचे कुछ असुविधा हो रही थी। चेतन ने पलॅग-पोश के नीचे से तकिया निकाल कर ठीक से उनके सिर के नीचे रख दिया। उनके माथे पर पसीना बुरी तरह चुहचुहा आया था। वह अपने रूमाल से उनका माथा पोंछने लगा तो उस अशक्तावस्था में भी उन्होंने रूमाल वाला हाथ बरबस झटक दिया—"इतने गन्दे रूमाल से मेरा मुँह न पोंछिए!"

खिसिया कर चेतन ने रूमाल अपनी जेब में रख लिया और भाई साहब से कहा कि वे भाग कर नीचे से साफ़ नैपकिन लायें। भाई साहब बिजली की तेज़ी से नीचे गये। वे उन बडे नैपकिनों में से एक ले आये, जो उन्होंने विशेष रूप से अपने रोगियों के लिए बनवाये थे। नैपकिन चेतन को देते हुए, (प्रकट ही वेदालंकार जी को सुनाने की गरज़ से) भाई साहब ने सफ़ाई दी कि नैपकिन बिल्कुल धोबी-धुला है। यूं भी वे एक पेशेण्ट का नैपकिन दूसरे पेशेण्ट को कभी नहीं देते।

भाई साहब की इस सफ़ाई पर, उस कठिन और दुखद परिस्थिति में भी, चेतन को मन-ही-मन हँसी आ गयी (जैसे इस सफ़ाई की अब कोई ज़रूरत रह गयी थी!) लेकिन उसने कुछ प्रकट नहीं होने दिया। चुपचाप भाई साहब से नैपकिन ले कर उसने वेदालंकार जी का माथा और मुँह पोंछा। तब वेदालंकार जी ने तड़फड़ा कर दो-तीन बार सिर पटका और शिकायत की कि वह तकिया तो एकदम पत्थर-ऐसा सख्त है, उनकी गर्दन

दुखने लगी है।

चेतन को उनकी तुनुक-मिजाजी पर बेहद गुस्सा आया, लेकिन उसने सिर्फ़ इतना ही कहा कि अभी-अभी भरवाया है, रूई ज़रा ज़्यादा पड़ गयी है, सख्त हो गया है, वे किसी तरह पाँच मिनट लेटें, फिर उन्हें दूसरे डॉक्टर के ले चलेंगे।... और चेतन भाई साहब को फिर ज़रा परे, जँगले के पास ले गया और उसने उनसे सरगोशी में पूछा कि अब क्या किया जाय ?

भाई साहब के हाथ-पाँव फूल गये थे। उनकी समझ में कुछ भी न आ रहा था। तब चेतन ने उन्हें समझाया कि माल के किसी डॉक्टर के जायेंगे तो पैसे भी ज़्यादा खर्च होंगे और बदनामी भी बहुत ज़्यादा होगी। बेहतर यही है कि वे लोग वेदालंकार जी को रेलवे रोड पर डॉक्टर लखनपाल के ले जायँ। जालन्धर से आने के बाद भाई साहब कुछ महीने उनके यहाँ काम भी सीख चुके है और एक तरह से डॉ० सत्यप्रकाश के बाद वे ही उनके गुरु है। "आप जा कर ताँगा ले आइए," उसने कहा, "वहाँ पहुँचने पर आप ताँगे से उतर कर पहले डॉक्टर लखनपाल से मिल लीजिएगा। उन्हे कॉन्फ़ीडेन्स मे ले लीजिएगा। फिर मैं वेदालंकार जी को ले कर पहुँच जाऊँगा।"

भाई साहब चले गये तो चेतन वेदालंकार जी के सिरहाने आ कर बैठ गया। रोना तो उनका बन्द हो गया था, लेकिन उन्हें शायद बहुत दर्द था, तकिया उनकी गुद्दी मे चुभता था। चेतन ने उन्हे समझाया कि उसने भाई साहब को ताँगा लाने भेजा है। पाँच-दस मिनट मे वह उनको दूसरे डॉक्टर के ले जायेगा और सब कुछ ठीक हो जायगा। वे घबरायें नही। और चेतन बड़ी तत्परता से उनका सिर दबाने लगा। तभी भाई साहब ने नीचे से आवाज़ दी कि ताँगा आ गया है। चेतन सहारा दे कर वेदालंकार जी को नीचे लाया—इस बात का उसने ख़ास ख़याल रखा कि उतरते समय ज़ीने से उनका पाँव न फिसल जाय। (दाढें तो उनकी ज़ख़्मी हो ही गयी हैं, कहीं अगले दाँत भी न टूट जायें) सहारा दिये-दिये, वह उन्हे दुकान

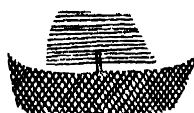
के बाहर लाया। चलते-चलते भाई साहब के कान में उसने कहा कि वे कुछ रुपये साथ रख लें और लखनपाल को फ़ीस स्वयं दें।

भाई साहब ने आश्वासन दिया कि रुपये हैं। उन्होंने फ़ौरन दुकान बन्द की और बग़ल के दुकानदार से कहा कि वे घण्टे-आध-घण्टे में आते हैं, कोई पेशेण्ट आये तो उसे बता दे। चेतन वेदालंकार जी के साथ पिछली सीट पर बैठ गया था। भाई साहब लपक कर अगली सीट पर जा बैठे।

जब ताँगा अनारकली में बढ़ने लगा तो चेतन ने रोक दिया। वह डरा कि अनारकली में कोई परिचित मिल जायगा और उन्हें सफ़ाई देनी पड़ेगी। यह भी हो सकता है कि वह वेदालंकार जी को किसी दूसरे डॉक्टर के ले जाय। उसने लगभग डाँटते हुए भाई साहब से कहा : "ताँगे वाले से कहिए, नीला गुम्बद की तरफ़ से, हस्पताल का राउण्ड ले कर चले। शाह आलमी से बायें मुड़ ले, वहीं तो डॉ० लखनपाल का क्लिनिक है। अनारकली में इस वक्त बहुत भीड़ होती है। ताँगा चींटी की चाल से चलेगा। कहीं ट्रैफ़िक जैम हो गया तो देर लग जायगी। अब थोडा चक्कर तो पड़ेगा, लेकिन जल्दी पहुँचेंगे।"

ताँगा दायीं ओर को मुड़ा और नीला गुम्बद का पँचरस्ता पार कर, सरपट भागने लगा।



सत्ताइस

सौभाग्य से धर्मदेव जी की पत्नी अपने मायके गयी हुई थी। वेरामन की गोली चाय के साथ वेदालंकार जी को दे कर, उनके हल्के सूज आये दाये गाल पर ईंट का सेंक दे, उन्हें सूजी की पतली खीर खिला कर और आराम से सुला कर, जब चेतन उनके शयन-कक्ष से ड्रॉइंग-रूम में आया तो दीवार-घड़ी में साढ़े तीन बजे थे।

उसने किचन में जा कर नौकर को वेरामन की एक और गोली दी थी कि जागने पर वेदालंकार जी दर्द की शिकायत करें तो चाय या गर्म पानी के साथ उन्हें दे दे। फिर जैसा कि स्वयं उसने उन्हें सेंक दिया था, ईंट के टुकड़े को खूब गर्म करके, पानी में डुबा कर तत्काल निकाल ले और साफ़ कपड़े में लपेट कर, उनके गाल और जबड़ों पर सेंक कर दे। यह सब समझा कर चेतन ने उसे भाई साहब की दुकान और अमृतधारा मुहल्ले वाले अपने नये मकान का पता दिया था कि कोई पेचीदगी हो या तकलीफ़ बढ़ जाय तो फ़ौरन खबर करे।

यह कह कर वह सीढियों की ओर बढ़ा था, लेकिन फिर रुक कर वहीं से उसने इतना और कहा कि वह सीधा दुकान जा रहा है, वहाँ से घर जायगा, आज कहीं और नहीं निकलेगा, आधी रात हो तो भी वह घर पहुँच कर उसे जगा ले, वह आ जायगा।

और यूँ वेदालंकार जी के नौकर को आश्वासन दे कर और बदले में स्वयं आश्वस्त हो कर, चेतन सीढ़ियाँ उतरा था। मन-ही-मन उसने यही मनाया था कि वेदालंकार जी की दोनों दाढ़ें निकालने के बाद, डॉक्टर

लखनपाल ने जो यकीन दिलाया था कि अब कोई किरच बाकी नहीं रह गयी है, वह सच हो और आगे कोई कॉम्प्लीकेशन न पैदा हो .. चेतन यही सोचता हुआ अपने ध्यान में मग्न, सीढ़ियाँ उतर रहा था कि सहसा अन्तिम सीढ़ी से नीचे पैर रखते ही, कीचड़ और गोबर मे लिथड़ी हुई चाबुक-सी, उसकी कनपटी और माथे को छीलती चली गयी। वह चौंका और उछला। —वह भूल ही गया था कि नीचे, सीढियों के पास ही, अधछते आँगन मे मालिक-मकान, प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह की मरकही भैस बँधी रहती है। उसके मरकहेपन के कारण ही उसके गले का रस्सा बहुत छोटा रखा गया था, लेकिन इस पर भी, जब वह दुम घुमाती थी तो वेदालंकार जी के फ़्लैट को जाने वाली सीढियों तक मार करती थी। चेतन भैंस की जद मे बाहर हो गया तो उसने माथे पर हाथ फेरा। उसका हाथ कीचड़ से लिथड़ गया। तब भैंस के पितरों के पितरो की माँ के साथ निकटतम सम्बन्ध स्थापित करते हुए, चेतन ने वही रूमाल निकाला, जिसकी गन्ध पर वेदालंकार जी ने नाक-भौं चढ़ायी थी और उससे माथे और कनपटी पर लगी कीचड़ पोंछने लगा।

वह अभी पूरी तरह चेहरा साफ़ न कर पाया था कि एक ज़ोर की 'ब-र्र-र्र-र्र' की आवाज़ आयी। वह फिर उछला। प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह के 'दुर्ग मोटे' की घोड़ी थी, जो तंग आँगन के एक ओर बँधी रहती थी और जब कोई पास से गुज़रता तो मुँह को ढीला छोड़ कर, अन्दर से कुछ ऐसे साँस छोड़ती थी कि उसके लटके होटों से कुछ अजीब-सी 'थब-र्र-र्र-र्र' की आवाज़ निकलती थी, घोडी की दुम अथवा दुलत्ती की ज़द से दूर जाने के प्रयास में चेतन एकदम सतर्क हो गया था। और जब उस आँगन की तीसरी बाधा सामने आयी—याने प्रोफ़ेसर साहब के उस क्रैंक सुपुत्र की प्यारी-दुलारी, छोटी-सी कुतिया (जो आँगन की ओर को खुलने वाले डेवढी के दरवाज़े की इस ओर, बायें कोने में बँधी रहती थी) चेतन पर लपकी और जंजीर से बँधी होने के कारण, बेतहाशा भूँकती हुई, पिछले पैरों पर तन गयी—तो वह न चौंका, न घबराया, बल्कि कन्नी काट कर

उछलता हुआ डेवढ़ी में आ गया।

[कुछ समय पहले आज़ाद लाला के 'नौजवान प्रेस' का बेइन्तेहा मोटा मशीन-कुली—दुर्गा मोटा—जो अपने तेल और मैल-सने नंगे बदन पर, सिर्फ़ एक लकीरदार मैला कच्छा पहने, प्रेस के बाहर कभी सड़क के किनारे पेशाब करता हुआ और कभी हाथी की तरह झूमता हुआ ढाबे पर जा कर चाय पीता दिखायी दे जाता था—एक फ़िल्म डायरेक्टर की नज़र में चढ़ जाने के कारण फ़िल्मों में चला गया था और दो फ़िल्मों में ही हीरो के नौकर की हास्य-भरी भूमिका निभाने के कारण उसका नाम पंजाब के बच्चे-बच्चे की ज़बान पर चढ़ गया था। चेतन जब चातक जी के साथ प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह के फ़्लैट पर गया था (मकान की पहली मंजिल पर अगले हिस्से में वे रहते थे और पिछले में वेदालंकार। उनके फ़्लैट की सीढ़ियाँ डेवढ़ी से चढ़ती थीं। वेदालंकार जी की, आगन की पिछले हिस्से से) तब चेतन ने पहली बार प्रोफ़ेसर साहब के उस गोरे-चिट्टे, हाथी-से बेटे को देखा था। वह एक बड़ी-सी—विशेषकर उसके लिए बनवायी गयी—आराम-कुर्सी पर (बैठा नहीं, क्योंकि बैठना अब उसके लिए दुश्वार हो गया था) बैठने की स्थिति में लेटा हुआ था और उसके पैरों के नीचे एक चौकी पड़ी थी। तभी से चेतन उसे प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह का 'दुर्गा मोटा' कहने लगा था।]

डेवढ़ी पार कर, टैंप रोड पर आते ही चेतन ने सबसे पहले कमेटी के नल पर अपना रूमाल अच्छी तरह धोया, निचोड़ा, फटका और उसे अपने कन्धे पर फैला लिया। इस दौरान उसका ध्यान आँगन के उस छोटे-से चिड़िया-घर के मोटे स्वामी की ओर चला गया और उसके पिता प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह के भाग्य पर उसे अफ़सोस हो आया।... ज्योतिष वग़ैरा में चेतन की उतनी आस्था नहीं थी। सेठ वीरभान की पत्री जब उसने भाई साहब को दिखायी थी तो उन्होंने कहा था— इस आदमी के भाग्य में सन्तान का सुख नहीं। यह किसी को गोद लेगा तो वह भी नहीं रहेगा।' चेतन को पूरा विश्वास था कि अगर वह प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह की पत्री

भाई साहब को दिखाता तो वे कुछ ऐसी ही भविष्यदवाणी करते।....
प्रोफ़ेसर साहब के कोई सन्तान न थी। उन्होंने अपने छोटे भाई के तीसरे बेटे को, पैदा होने के दूसरे ही महीने, गोद ले लिया था। बचपन में वह बेहद प्यारा, गोरा-चिट्टा, हँस-मुख और चंचल बालक था। लेकिन ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता गया, बेइख्तियार मोटा होता गया। यहाँ तक कि चलने-फिरने से लाचार हो गया। प्रोफ़ेसर साहब ने उसके लिए घोड़ी ख़रीदी, पर अब वह घोड़ी पर भी न चढ पाता था और पैरों के नीचे ऊँची चौकी रखे, आरामकुर्सी पर बैठा—याने लेटा—रहता था। दिमाग़ से कमज़ोर और शरीर की बेपनाह मोटाई से बेबस, प्रो० दिलबहार सिंह का यह बेटा उन्हें क्या सुख देगा—चेतन ने सोचा और उसका मन उदास हो आया।

वह चुपचाप सिर झुकाये भाई साहब के क्लिनिक की ओर चल पडा।

०

प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह की बेचारगी से उसका ध्यान अपनी बेचारगी पर चला गया—आज वह किसका मुँह देख कर उठा था कि पंजाबी कहावत के अनुसार, जिनका मुँह देखना उसे पसन्द न था, उनके चूतड़ देखने पड़े।
....उसका मतलब डॉ० लखनपाल और वेदालंकार जी से था। वह दोनों से सख्त नफ़रत करता था; उसे एक की बेतुकी डींगें सुननी पड़ी थीं और, प्रकटतः परम भक्ति-भाव से, दूसरे की सेवा-शुश्रूषा करनी पड़ी थी।....

उसकी आँखों में डॉक्टर लखनपाल की सूरत घूम गयी।—पैंतिस-चालीस की उम्र; मँझला कद; चौड़ा शरीर; चौड़ा मस्तक; ढीला-ढाला, कई दिन पहले का इस्त्री किया हुआ, गहरे भूरे रंग का सूट; नंगा सिर; रूखे खड़े-खड़े बाल और चेहरे पर एक स्थायी बेज़ारी का भाव।....जब उनका ताँगा डॉ० लखनपाल की दुकान के सामने रुका था तो चेतन ने देखा—डॉक्टर एम० एम० (सौभाग्य मल) लखनपाल अपने क्लिनिक के सड़क वाले चौड़े दरवाज़े के बीचों-बीच, ऊपर की पट्टी को दोनों हाथों से थामे, अँगड़ाई के पोज़ में तने, पेट बाहर निकाले, खड़े हैं। शायद वे थक गये थे अथवा यूँ

ही अँगड़ाई ले रहे थे, लेकिन चेतन को उनका सरे-बाज़ार अपने क्लिनिक की चौखट में, यूँ हास्यास्पद ढंग से खड़े होना निहायत बुरा लगा था। उसने कनखियों से वेदालंकार जी की ओर देखा था—कहीं उनकी नज़र उस उजबक पर पड़ गयी तो वे बिदक न जायँ! रास्ते भर वे अनुरोध करते आये थे कि वह उन्हें माल के किसी डॉक्टर के यहाँ ले जाय और चेतन उन्हें अपनी दोस्ती का वास्ता दिलाता हुआ, आश्वासन देता आया था कि वह उन्हें डेण्टल कॉलेज, कराची के डिग्री-याफ़्ता डेण्टिस्ट के ले जायगा और वे घबरायें नहीं। सौभाग्य से वेदालंकार दायें जबड़े पर हाथ रखे, सिर झुकाये बैठे थे। तब चेतन ने इत्मीनान से अगली सीट पर बैठे, अपने भाई को कोहनी से ठहोका दे कर चेताया था कि वे जा कर डॉ० लखनपाल से बात करें। भाई साहब चौंक कर उठे और बायें हाथ से ताँगे की छत के बाँस को पकड़ कर और दायाँ हाथ बम पर रखते हुए नीचे कूद गये थे।

पहले चेतन ने सोचा था कि वेदालंकार जी को ले जा कर क्लिनिक के वेटिंग-रूम में बैठाये, लेकिन वहाँ रखे काउच और कुर्सियाँ, देहाती रोगियों के कारण मैल-सनी थीं और वेदालंकार जी को वहाँ ले जा कर बैठाना उनके मन में शक-संशय पैदा करना था; इसलिए उन्हें उतार, कर चेतन ताँगे वाले के पैसों की बात करने के बहाने, वहीं फ़ुटपाथ पर खड़ा रहा। इतने में भाई साहब डॉ० लखनपाल से बात करके आ गये और उन्होंने चेतन को हल्का-सा इशारा किया कि वह वेदालंकार जी को अन्दर ले जाय।

"भाई साहब, आप ताँगे वाले को निपटाइए," चेतन ने कहा, "मैं वेदालंकार जी को डॉ० लखनपाल से मिलवाता हूँ।"

डॉक्टर लखनपाल इस बीच वेटिंग-रूम के काउच पर जा बैठे थे। चेतन ने जा कर उन्हें 'नमस्कार' किया और वेदालंकार जी का परिचय देने लगा कि वे उसके मेहरबान दोस्त हैं; कि वे और उनकी पत्नी लाहौर की कल्चरल सरगर्मियों के रूहे-रवाँ[1] हैं; कि वे स्वयं प्रसिद्ध कथाकार और

१. प्राण

नाटककार हैं....लेकिन इससे पहले कि वह वेदालंकार की प्रशंसा में पूरा क़सीदा कहता, डॉक्टर लखनपाल ने उसे उनको अन्दर ले जा कर डेण्टल चेयर पर बैठाने के लिए कहा था और स्वयं वहीं खूंटी पर टँगा सफ़ेद हाउस कोट पहनने लगे थे ।

चेतन हतप्रभ तो हुआ था और मन-ही-मन यह सोचते हुए कि साला नक्शा ले रहा है, हँसा भी था, लेकिन कुछ भी प्रतिक्रिया प्रकट किये बग़ैर, वह वेदालंकार जी को अन्दर ले गया था । उसने उन्हें डेण्टल चेयर पर बैठा दिया था और स्वयं इस बात के लिए मुस्तैद खड़ा हो गया था कि उसकी मदद की ज़रूरत पड़े तो वह तैयार रहे । भाई साहब भी ताँगे वाले को पैसे दे कर डॉ० लखनपाल के साथ अन्दर आ गये थे और मुँह लट-काये हुए, डेण्टल चेयर की एक ओर खड़े हो गये थे ।

जब डॉ० लखनपाल ने साइड-टेबल से माउथ-मिरर उठा कर और लाइट नीचे खींच कर (उनके क्लिनिक में कुर्सी के ऐन ऊपर, इच्छानुसार नीचे-ऊपर हो सकने वाला बल्ब टँगा था) वेदालंकार जी को मुँह खोलने के लिए कहा तो दर्द के बावजूद, वे अपनी दाढ की दुर्गति का किस्सा बताने लगे । लेकिन अभी उन्होंने पहला वाक्य ही मुँह से निकाला था कि चेतन ने आगे बढ कर उनकी बात काट दी, "भाई साहब ने डॉ० लखनपाल को सारी स्थिति बता दी है । आप ज़रा भी न घबरायें, डॉक्टर साहब सब ठीक कर देंगे ।"

"हाँ-हाँ, आप घबरायें नहीं," डॉक्टर लखनपाल ने चेतन का समर्थन करते हुए कहा था, "कभी-कभी बड़े डॉक्टरों के हाथों भी पेचीदगी पैदा हो जाती है (वे चेतन और भाई साहब की ओर देख कर हँसे थे) आप घबराइए नहीं, मुँह खोलिए !"

वेदालंकार जी ने अनिच्छापूर्वक मुँह खोल दिया था । डॉ० लखनपाल ने दाढ़ का निरीक्षण किया था और बोले थे, "मोलर में बड़ी खोड़ होने की वजह से शायद जम्बूर से दाढ़ टूट गयी है । अभी निकल जायगी ।" और इंजेक्शन के लिए सिरिंज तैयार करने लगे थे । चेतन ने आगे बढ़ कर

सिरिंज उबालने में उनकी पूरी मदद की थी, लेकिन जब डॉक्टर लखनपाल इंजेक्शन देने लगे तो वेदालंकार जी ने रोक दिया कि पहले ही काफ़ी दर्द है, अब और सुइयाँ मत चुभोइए।

"आप कतग्रन खौफ़ न खाइए !" डॉक्टर लखनपाल ने कहा था—वेदालंकार से, और देखा था उन दोनों भाइयों की तरफ़, "मैं ऐसे इंजेक्शन दूँगा कि आपको पता भी नहीं चलेगा और मसूढ़ा सो जायगा।"

चेतन ने देखा था कि सच ही, निहायत चुग़द-से नज़र आने के बावजूद, डॉ० लखनपाल ने बड़ी दक्षता से इंजेक्शन दिया और वेदालंकार जी से पूछा, "कहिए दर्द हुआ ?" तो वेदालंकार ने हैरत से कहा था, "क्या आपने इंजेक्शन दे दिया ?"

"मैंने तो इतनी सुई खुबो दी और आपको पता नहीं चला।"

डॉक्टर लखनपाल ने अँगूठा तर्जनी की जड़ में रख कर बताया कि कितनी सुई खुबो दी और चारों ओर देख कर हँसे। भाई साहब ने बड़ी कमज़ोर आवाज़ में कहना चाहा था कि मैंने जो इंजेक्शन दिये थे, अभी उनका असर बाकी है, पर चेतन ने उनकी ओर ऐसे कहर से देखा था कि वे बुदबुदा कर चुप हो गये थे।

तब डॉ० लखनपाल ने गर्व से भाई साहब की ओर देखते और जैसे उन्हीं को सुनाते हुए, वेदालंकार जी से कहा था, "असल में अनाड़ी डॉक्टर ठीक से इंजेक्शन नहीं देते, इसीलिए मसूढ़ा ठीक से सोता नहीं और दाढ़ निकालने में दर्द होता है। उसूल यह है कि ज़रा-सी सुई चुभो कर, थोड़ी-सी दवा इंजेक्ट की जाय; जैसे-जैसे मसूढ़ा सोता जाय, सुई आगे बढ़ायी जाय। मैंने तो आधी से ज़्यादा सुई अन्दर चुभो दी और इनको पता भी नहीं चला।"

भाई साहब को बुरा लगा था। चेतन को उनसे भी ज़्यादा लगा था, लेकिन मसलहत का तकाज़ा था कि वे चुप रहें और डॉ० लखनपाल को हवा लेने दें और वे दोनों, मुँह लटकाये हुए, चुपचाप उसकी लनतरानियाँ सुनते रहे थे। तब डॉक्टर लखनपाल ने मसूढ़े और गाल के बीच रुई के

फाहे रखे थे। डेण्टल प्रोब की दूसरी ओर से घायल दाढ़ को ज़रा-सा ठकोरा था। जब वेदालंकार जी ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की तो वे जम्बूर ले कर दाढ निकालने लगे—उन्होंने पहली किरच निकाली, उसे वेदालंकार जी को दिखाते हुए प्लेट में रख दिया। दूसरी निकाली; उसे भी उन्हें दिखाया और प्लेट में रख दिया। तब दाढ़ भी निकाल दी। चेतन ने हैरत से देखा कि वेदालंकार जी न चीखे, न चिल्लाये। चुपचाप बैठे रहे। हर बार किरच निकालने के बाद वे वेदालंकार जी से पूछ लेते कि दर्द तो नहीं हुआ और वेदालंकार जी सन्तोष से सिर हिला देते।

जब पहली दाढ़ निकल गयी और डॉक्टर लखनपाल ने फिर धर्म जी से पूछा कि दर्द तो नहीं हुआ, तब कुल्ला कर, (जिसके लिए चेतन ने तत्परता से लाल दवाई वाला गिलास उन्हें दिया था) उन्होंने डॉक्टर लखनपाल की दक्षता की तारीफ़ की और कहा था कि डॉ० रामानन्द के हाथों जितनी तकलीफ़ हुई थी, उसका सौवाँ हिस्सा भी नही हुई।

अपनी सफलता के नशे में डॉक्टर लखनपाल भूल गये कि रामानन्द ही वेदालंकार को वहाँ लाये हैं और डींगें मारने लगे थे: "मैं तो रोज़ ही पाँच-सात दाढ़ें निकालता हूं, कितनी दूर-दूर से पेशेण्ट मेरे यहाँ आते हैं, रामानन्द तो देख ही चुका है।" और उन्होने चारों तरफ़ देखते और हँसते हुए कहा था, "रामानन्द मेरा भी शागिर्द रहा है। काम तो इसने मेरे दोस्त, डॉक्टर सत्यप्रकाश से सीखा है, लेकिन अपनी प्रैक्टिस जमाने से पहले यह मेरे यहाँ भी कुछ दिन आता रहा है। जब एक दिन इसने मुझे बताया था कि अब यह अपनी इण्डीपेण्डेण्ट प्रैक्टिस शुरू करेगा तो मैंने इसे रोका था कि कुछ दिन और तजरुबा हासिल कर लो, फिर शुरू करना। लेकिन इसने नहीं सुना और देखिए, ज़रा-सी पेचीदगी में घबरा गया।" वे उसी बेतुकेपन से हँसे और फिर दूसरी दाढ निकालने लगे।

चेतन ने भाई साहब की ओर देखा था कि यही आपके उस्ताद हैं, जिन्हें इतनी समझ नहीं कि ऐसी बातें मरीज़ के सामने नहीं करनी चाहिएँ, लेकिन भाई साहब, जैसे आँखों-ही-आँखों में, उस पर अभियोग

लगा रहे थे कि वही वेदालंकार जी को वहाँ ले आया है।

दूसरी दाढ़ भी डॉक्टर लखनपाल ने उसी सुगमता से निकाल दी थी और उसे प्लेट में रखते हुए बोले थे, "रामानन्द घबरा ही गया होगा। वरना कोई मुश्किल नही थी।" फिर चेतन से उन्हे कुल्ला कराने के लिए कह कर, कद्रे सरगोशी मे उन्होंने कहा था, "अब तो आप अपने आदमी हैं, चेतन के दोस्त हैं, अगर किसी दूसरे पेशेण्ट के साथ यही हुआ होता, तो खाह-म-खाह बदनामी होती," और जैसे चेतन और उसके भाई को बात समझाते हुए, सोत्साह बोले थे, "यह ऐलोपैथी नहीं कि डॉक्टर की ग़लती कब्र में जा सोये; यह डेण्टिस्ट्री है, जहाँ डॉक्टर की ग़लती दूसरे दिन मुँह-बाये सामने आ खड़ी होती है।" और जैसे पूरे क्लिनिक से अपना समर्थन चाहते हुए, डॉ० लखनपाल फिर हँसे थे।

यह अजीब बात है कि स्थायी बेज़ारी का वह भाव, जो उनके चेहरे पर बना रहता था, उस बेतुकेपन से हँसने पर भी दूर न हुआ था। वेदालंकार जी ने कुल्ला कर लिया तो उनकी दाढ़ मे रखने के लिए रुई के फाहे को फिटकरी के पानी में डुबोते हुए डॉक्टर लखनपाल ने कहा था, "रामानन्द ने यह बहुत अच्छा किया कि आपको सीधे मेरे पास ले आया और आपने भी अक्लमन्दी की कि ग़ुस्से में किसी दूसरी जगह नही गये, वरना माल रोड के डॉक्टरो के मारे हुए पेशेण्ट भी काफ़ी परेशान हो कर, सूजे हुए मुँह और घायल मसूढ़े लिये, मेरे यहाँ आते है—ज़रा-सी किरच भी अन्दर रह जाय तो पूरा जबड़ा सूज आता है।"

डॉ० लखनपाल डीग मार रहे थे और चेतन मन-ही-मन कुढ़ रहा था। (वह यह भूल गया था कि यही चारा उसने स्वयं वेदालंकार जी को डाला था और माल के अलावा शहर के दूसरे बाज़ारो में प्रैक्टिस करने वाले दन्दानसाज़, अपने रोगियों के सामने इसी तरह प्रायः डीग मारते थे।) 'माल पर जाने वाले पेशेण्टों को उधर कोई डॉक्टर नहीं मिलता,' चेतन मन-ही-मन चिढ़ कर सोच रहा था, 'जो इतनी दूर चल कर इस घटिया सड़क पर तेरे इस सड़ियल क्लिनिक में आयेंगे। हमारे पास ही अगर

सोचने का वक्त होता तो कभी न आते ।'

दवा का फाहा मसूढ़े में उस जगह रख कर, जहाँ से दाढ़ें निकली थीं, डॉक्टर लखनपाल ने वेदालंकार जी को कुछ क्षण दाँत दबाये रखने के लिए कहा था और हाथ धोने के लिए वॉश-बेसिन की ओर बढ़े थे । तब चेतन ने पूछा, "अन्दर कोई किरच-विरच तो नहीं रह गयी ?"

"यकीन तो यही है कि अन्दर अब कोई किरच नहीं," उन्होंने वॉश-बेसिन मे हाथ धोते हुए कहा था, "लेकिन जरा-भी तकलीफ़ हो तो इन्हें फ़ौरन ले आइए ।"

तब चेतन ने भाई साहब को ठहोका दिया कि डॉक्टर की फ़ीस आप दीजिए ! भाई साहब आगे बढ़े थे और उनके पास जा कर जेब में हाथ डालते हुए, उन्होंने धीरे से कुछ कहा था । तब, तौलिये से हाथ पोंछते और वापस आते और उसका जवाब जैसे सारे क्लिनिक को सुनाते हुए डॉक्टर लखनपाल ने कहा था—"नहीं, फ़ीस तुम क्यों दोगे? फ़ीस इन्हीं को देनी चाहिए । काम तो इनका हो गया—तुमने किया या मैंने, बराबर है ।"

चेतन यूँ तो मन-ही-मन प्रसन्न हुआ था, लेकिन एक कदम आगे बढ़ कर उसने कहा था, "नहीं डॉक्टर साहब, आप भाई साहब से फ़ीस ले लीजिए । वेदालंकार जी मेरे मित्र है । मै ही इन्हे भाई साहब की दुकान पर ले गया था...."

तभी धर्मदेव वेदालंकार ने कोट के अन्दर की जेब से बटुआ निकालते हुए कहा था, "नहीं-नहीं, फ़ीस मैं दूँगा !" और उन्होंने डॉक्टर लखनपाल से पूछा था कि वे कितने रुपये उनकी सेवा में भेंट करें ?

"मैं दाँत उखाड़ने के दो और दाढ उखाड़ने के तीन रुपये लेता हूँ," डॉक्टर लखनपाल ने बडी ऊँचाई और बेपरवाही से कहा, "दो दाढ़ों की किरचें निकालनी पड़ी हैं, काफ़ी मुश्किल और पेचीदा काम है । होते तो आठ रुपये हैं, पर आप छै ही दीजिए, आप रामानन्द के पेशेण्ट हैं ।"

चेतन के बड़े भाई आम तौर पर दाँत उखाड़ने का एक रुपया और

दाढ़ का डेढ़ रुपया लेते थे। चेतन जानता था, डॉ० लखनपाल की भी यही फीस है, बल्कि देहातियों की तो दाढ़ भी वे एक रुपये में निकाल देते थे। फ़ीस के बारे में उनकी बात सुन कर, चेतन ने मन-ही-मन कुढ़ कर कहा, 'हरामज़ादा! अभी ज़्यादा ही नहीं ले रहा! दस मिनट में हम अनारकली से सरक्युलर रोड पर पहुँच गये होंगे। असर तो भाई साहब वाले इंजेक्शन का भी होगा। वे घबरा न जाते और वेदालंकार रोने न लगते तो यहाँ आने की जरूरत ही न पड़ती।'....लेकिन वह चुपचाप खड़ा, आग्नेय नेत्रों से डॉ० लखनपाल की ओर देखता रहा।

वेदालंकार जी ने बटुए से आठ रुपये निकाल कर डॉक्टर साहब के हाथ पर रख दिये और अंग्रेजी में बोले, "नो नो, प्लीज़ एक्सेप्ट दीज़ एट रुपीज, यू गाइटलीं डिज़र्व देम[1]!' और फिर मुक्ति की लम्बी साँस ले कर वे उठे थे।

डॉक्टर लखनपाल ने उन्हें 'थैंक्स' देते हुए, रुपये जेब के हवाले किये; बदले में उनको वेरामन की दो गोलियाँ दी कि एक अभी घर जाते ही गर्म चाय या कुनकुने पानी के साथ ले लें और दर्द कम न हो तो घण्टे बाद दूसरी ले लें। (चेतन ने गोलियाँ थाम ली थी कि वह वेदालंकार जी को घर छोड़ने जायगा और स्वयं दवा देगा।) एक छोटी-सी शीशी में डॉक्टर ने गम-पेण्ट भी दिया था और गर्म ईंट से सेंक देने का तरीका भी बताया था। चेतन ने उन्हें आश्वासन दिया था कि वह जानता है और ठीक से सेंक दे देगा।

वेदालंकार जी डॉक्टर लखनपाल को धन्यवाद दे कर बाहर को चले थे तो चेतन ने भाई साहब को आदेश दिया था कि बढ़ कर कोई ताँगा रोकें और डॉक्टर लखनपाल को धन्यवाद दे कर, वह बाहर निकल आया था।

१. नहीं, नहीं, आप ये आठ रुपये स्वीकार कीजिए, आप निश्चय ही इनके पात्र हैं।

भाई साहब ने बढ़ कर ताँगा रोक लिया था और यद्यपि अब धर्म जी को वैसे सहारे की ज़रूरत नहीं थी, लेकिन चेतन ने उन्हें सहारा दे कर ताँगे मे बैठाया और स्वयं उनके साथ जा बैठा था। भाई साहब से उसने कहा कि वे भी अनारकली के चौरस्ते तक साथ चलें। वहाँ से उतर कर सीधे क्लिनिक चले जायँ। उनके मरीज़ इन्तज़ार करते होंगे।

ताँगा चल पड़ा। वेदालंकार जी इतने निढाल हो गये थे अथवा इतने विक्षुब्ध थे कि दायें जबड़े को हाथ से दबाये, चुप बैठे थे। चेतन ने निगाह उठा कर देखा—डॉक्टर लखनपाल उसी तरह बाहर के दरवाज़े की चौखट को दोनों हाथों से थामे, अँगड़ाई के पोज़ में तन गये थे—अपनी तमाम परेशानी के बावजूद, वह मन-ही-मन हँस दिया था।

०

अपने ध्यान में मग्न चेतन, टैंप रोड और ब्रैडलॉ हॉल रोड को पार कर, डी० ए० वी० कॉलेज रोड पर आ गया था। हालाँकि बड़े इत्मीनान से वह सेंक दे कर, वेदालंकार जी को आराम पहुँचा आया था और उसे पूरी उम्मीद थी कि अगर कोई पेचीदगी पैदा न हुई तो वे उसके भाई की अथवा उसकी किसी तरह बदनामी न करेंगे। लेकिन अन्दर-ही-अन्दर, वह बेहद विक्षुब्ध और क्रुद्ध था। उसे कभी भाई साहब पर गुस्सा आता था, कभी डॉ० लखनपाल पर, कभी वेदालंकार जी पर और कभी उस सोसाइटी पर, जिसके कारण वह अनायास इस मुसीबत में फँस गया था। बार-बार वही-वही बातें सोचता हुआ, सिर लटकाये, मन-ही-मन जलता-भुनता, वह सड़क के एक किनारे ठण्डी-सड़क की ओर बढ़ा जा रहा था।

उसे भाई साहब की अक्षमता पर हैरत थी....ढाई साल होने को आये थे उन्हें अनारकली में प्रैक्टिस करते हुए; कुशल डेण्टिस्ट के नाते उनकी ख्याति दूर-नज़दीक फैल रही थी; पूरे छै महीने उनसे दन्दानसाज़ी की शिक्षा ले कर एक शागिर्द ने कुछ ही दिन पहले फ़ीरोज़पुर में जा कर अपनी प्रैक्टिस शुरू कर दी थी; और यहाँ एक मामूली दाढ़ निकालने में उनके हाथ-पाँव फूल गये....डॉ० लखनपाल ने जिस आसानी से उसे निकाल

दिया था, चेतन को पूरा विश्वास हो गया था कि दाढ में किसी तरह की पेचीदगी न थी; दाढ़ें अन्दर से हरगिज़-हरगिज़ नहीं जुड़ी थीं। जुड़ी होतीं तो डॉ० लखनपाल ही इस तथ्य की ओर संकेत न करते! भाई साहब ने यूँ ही अपनी अक्षमता को छिपाने के लिए झूठा बहाना गढ दिया! उसने उनकी प्रैक्टिस चलाने में कितना श्रम किया था—वे ढाई साल की प्रैक्टिस के बाद भी इस तरह घबरा सकते है तो चल चुकी प्रैक्टिस....उनकी इस कमज़ोरी के कारण उस साले लखनपाल से कितनी बेतुकी बातें सुननी पड़ी। उसे अपना आदमी समझ कर, वे अपना पेशेण्ट उसके पास ले गये थे और वह हरामज़ादा लगा उनकी ही बुराई करने, जैसे वह मामूली डेण्टिस्ट न हो कर, सर्जन खेड़ा का भी बाप हो।

....अगर भाई साहब ने ऐसी ग़लती न की होती तो क्या वह वेदालंकार जैसे स्नॉब की इतनी खुशामद और सेवा-शुश्रूषा करता! उसे लगा कि उनकी स्नॉब्री ने भाई साहब को नर्वस कर दिया होगा—चेतन के दिमाग़ में वेदालंकार जी के वे रिमार्क गूँज गये, जो उन्होंने क्लिनिक के पिछले हिस्से की गन्दगी और उसके मैले रूमाल के बारे में दिये थे और उसका ख़ून फिर खौल उठा....उसके जी में ऐसा बवण्डर उठा कि वह एक ही फुफकार से वेदालंकार ही को नहीं, उनके-ऐसे सारे सुविधा-सम्पन्नों को जला कर ख़ाक कर दे....उसके सामने परछत्ती पर लगा हुआ भाई साहब का पलँग और नीचे फ़र्श पर बिछा अपना बिस्तर घूम गया और फिर वेदालंकार जी का शयन-कक्ष—शानदार मसहरी-लगा पलंग, आरामदेह स्प्रिंगदार गद्दा और सेमल की रूई के तकिये... वह उनकी शादी से पहले (जब उनकी कमर की नस चढ़ गयी थी) उस कमरे में जा चुका था, लेकिन तब उसके मन में उस साज़-सामान को देख कर, ज़रा भी ईर्ष्या न जगी थी, न उसे क्रोध ही आया था। लेकिन अब वेदालंकार ने उसके भाई के क्लिनिक की गन्दगी, उनके नये-भरे तकिये की सख़्ती और उसके रूमाल की दुर्गन्ध पर जो नाक-भौं चढ़ायी तो पहली बार चेतन को उनकी और अपनी स्थिति के अन्तर का बेहद तकलीफ़देह एहसास हुआ....'हज़ार में

एकाध ही घर इस देश में ऐसा होगा,' उसने सोचा, 'जहाँ इतनी सफ़ाई और इतना आरामदेह साज़-सामान हो। .. साले अपने ज़मींदार पिता की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाते हैं और हम लोगों की ग़रीबी पर नाक-भौं चढ़ाते हैं....'

....उनके पास भी उतना पैसा और उतनी सुविधा होती तो क्या उन्हें यह सब सुनना और सहना पड़ता....उस स्नॉब की इतनी खुशामद करनी पड़ती! उसके भाई ने बाक़ायदा कराची से डिग्री ली होती; माल पर किसी दुकान अथवा कोठी में उनका क्लिनिक होता; मरीज़ों के बैठने, दाँत उखाड़ने, लगाने, प्लास्टर अथवा मोम के सेट वग़ैरा तैयार करने के लिए अलग-अलग कमरे होते और नौकर सुबह-शाम सफ़ाई करता; तब किसी को क्लिनिक की गन्दगी की शिकायत न होती। तब अगर कोई ऐसी पेचीदगी आ भी जाती तो इतना भय न होता। अब झूठी डिग्री के कारण वह इतना डर गया था कि उसे उस फूहड़ डॉक्टर और उस स्नॉब लेखक की चिरौरी करनी पड़ी।

चेतन के कन्धे पर रखा हुआ रूमाल सहसा सूख कर हवा के झोंके से उसके आगे सड़क पर जा पड़ा। चेतन ने उसे उठाया; पल भर, दोनों हाथों में फैलाये, देखता रहा—धोने के बावजूद मैला था। चेतन को उसमें किसी तरह की दुर्गन्ध नहीं आयी। हो सकता है, हमेशा गन्दी, ग़लीज़ जगहों में रहने के कारण उसकी सूँघने की शक्ति वेदालंकार जी-ऐसी नाज़ुक न रही हो। चेतन ने रूमाल को तहा कर जेब में रख लिया। उसे अपनी विपन्नावस्था पर अफ़सोस हुआ, जिसमें वह रोज एक साफ़ रूमाल न बदल सकता था या उसे रोज़ धोने का समय न पा सकता था....

तभी उसके क्रोध की धारा सोसाइटी की तरफ़ मुड़ गयी। वह सोसाइटी के चक्कर में न फँसा होता तो चातक जी के ही यहाँ क्यों जाता! उसने कसम खायी थी कि वह कभी उनके यहाँ नहीं जायगा....और वह चातक जी के न जाता तो वेदालंकार न मिलते और वेदालंकार न मिलते तो वह कभी उन्हें यूँ अनुरोध कर, भाई साहब के न लाता और भाई साहब की उस

ग़लती की ख़ातिर उसे इतना न सहना पड़ता....

सिर झुकाये, मन-ही-मन कुढ़ता-कोसता चेतन चला जा रहा था कि सहसा किसी ने पीछे से आ कर उसके कन्धे पर हाथ रख दिया।

उसने सिर उठाया तो आश्चर्य-भरे स्वर में उसके होंटों से निकला : "अरे, हुनर साहब !" और उसने मुड़ कर हाथ बढ़ा दिया।

उसके हाथ को अपने दोनों हाथों में ले कर, गर्मजोशी से हिलाते हुए, उन्होंने उसे दबाया और बोले, "कैसे आंख-कान मूँदे और सिर झुकाये चले जा रहे हो ?"

चेतन को उस वक्त उनका मिलना बहुत बुरा लगा। वह उनके चिपकू स्वभाव को जानता था और नहीं चाहता था कि वैसी मनोदशा में वे उसके साथ दस क़दम भी चलें, इसलिए उनके सवाल का जवाब देने के बदले, वहीं रुक कर उसने पूछा, "कब आये ?"

"आज ही आया हूँ," हुनर साहब ने कहा, "यहीं डी० ए० वी० कॉलेज में अपने शागिर्द के यहां ठहरा हूँ। हम लोग वहाँ होस्टल के सामने खड़े बातें कर रहे थे कि तुम्हें जाते देखा। आवाज़ दी, तुमने सुनी नहीं ! भाग कर आया, लेकिन न जाने तुम किस ख़याल में ग़र्क थे कि मेरे पैरों की आहट तक तुम्हें नहीं आयी।"

"हाँ, मैं कुछ ऐसे ही परेशान हूँ," चेतन ने कहा और फिर बात बदल कर बोला, "कैसे आये हैं और कितने दिन रहेंगे ?"

हुनर साहब हँसे, "अब तो आ गये हैं और इन्शा-अल्लाह[1] यहीं रहेंगे।"

चेतन उनसे अगले प्रोग्राम के बारे में बहुत-कुछ पूछना चाहता था, लेकिन उसे वापस दुकान पर पहुँचने की जल्दी थी, इसलिए उसने सिर्फ़ इतना पूछा, "मुकदमे का क्या हुआ ?"

१. ख़ुदा ने चाहा तो

"साईं बाबा की बात मान ली !" हुनर साहब हँसे, "छोड़ दिया। लिखना-पढ़ना सारा चौपट हो गया था। अब यहाँ बैठ कर अपने मन का कुछ लिखें-पढ़ेंगे। काफ़ी ग़ज़लें भी हो गयी हैं। सोच रहा हूं, डौल लग जाय तो एक दीवान छपवा डालूँ।"

साईं बाबा का ज़िक्र आते ही चेतन के मन में कई प्रश्न कौंधे, लेकिन बरबस अपने आप पर संयम रख कर, उसने फिर हाथ बढ़ाया, "अच्छा तो मैं फिर मिलूँगा। तीन-चार दिन में यहीं हाज़िर हूंगा। इस वक्त ज़रा जल्दी में हूँ और परेशान हूँ। क्या नाम है आपके शागिर्द का ? कितने नम्बर के कमरे में रहता है ?"

"नाम तो मेरे शागिर्द का बनवारीलाल 'शातिर' है और रहता है, कमरा नम्बर पैंतिस में," हुनर साहब ने कहा, "लेकिन तुम ऐसे नहीं जा सकते। अरे भाई, अगर दोस्तों से परेशानी नहीं कहोगे तो क्या दुश्मनों से कहोगे ! ग़ालिब के उस जुनूनी-सी तो तुम्हारी कैफ़ियत नहीं हो गयी, जिसने कहा था :

दोस्त ग़मख़्वारी[1] में मेरी स'ओ फ़रमायेंगे[2] क्या
ज़ख्म के भरने तलक नाख़ुन न बढ़ आयेंगे क्या ?"

और उसके कन्धे पर हाथ मारते हुए, उन्होंने फ़रमायशी ठहाका लगाया और चूंकि चेतन चल पड़ा था, इसलिए उसका हाथ बिना छोड़े, उन्होंने भी कदम बढ़ा दिये।

'जो होना था सो हो चुका,' चेतन ने मन-ही-मन सोचा, 'हुनर साहब मित्र हैं—मुझसे ज़्यादा भाई साहब के—उनसे क्या पर्दा ? फिर वे नम्बरी प्रोपेगैण्डिस्ट हैं। अगर वेदालंकार जी भाई साहब की बदनामी करने की कोशिश करेंगे तो हुनर साहब की मदद से उसका ज़ोर कम किया जा सकता है।' चेतन के मन में एक अस्पष्ट-सा यह विचार भी कौंधा कि सोसाइटी के सिलसिले में भी वे बड़े काम आ सकते हैं....और चन्द कदम चल

१. दुख बटाने में २. मदद करेंगे

कर वह रुक गया। बड़े ही धीमे, खेद और भेद-भरे स्वर मे उसने कहा : "क्या बताऊं हुनर साहब, भाई साहब से एक बहुत बड़ी गलती हो गयी है। मेरे एक दोस्त है—धर्मदेव वेदालंकार। हिन्दी के मशहूर अफ़साना-निगार है, लाहौर के बड़े ऊँचे हलकों में मूव करते है। मैंने एक सोसाइटी खोली है, जिसका मैं उन्हे मेम्बर बनाना चाहता हूं। उनकी दाढ में दर्द था, मैं उन्हे भाई साहब के ले गया कि खोड़ भर दें। खोड़ तो खैर गहरी थी, भरी न जाती, भाई साहब ने कहा कि दाढ निकालनी पड़ेगी। वेदालंकार तैयार हो गये और भाई साहब ने न सिर्फ़ वह दाढ, बल्कि साथ की भी तोड़ दी। सरक्युलर रोड के एक दूसरे डॉक्टर-दोस्त की मदद से किरचें निकलवानी पड़ी। वेदालंकार जी को बेहद तकलीफ़ हुई। सारा दिन इसी चक्कर में बीत गया। दोपहर का खाना तक गोल हो गया। अभी वेदालंकार जी को घर छोड़ कर आ रहा हूं। दुकान जा रहा था कि भाई साहब को समझाऊँ—इस तरह कैसे प्रैक्टिस चलेगी ? दोस्त हाथ से गया, सो अलग; बदनामी होगी, सो घाते मे...."

"लेकिन यार, हिन्दी वालों के दाढें भी होती है ?" हुनर साहब ने उसकी बात काटी। चेतन मुंह-बाये उनकी ओर देखने लगा कि वे क्या कह रह है।

"मैंने तो सुना है कि हिन्दी वालो के दॉत ही नही होते," हुनर साहब ने प्रकट गम्भीरता से कहा, "तुम्हारे वेदालंकार के आ गये थे तो अच्छा हुआ रामानन्द ने तोड़ दिये।"

एक शरारत-भरी मुस्कान हुनर साहब की आँखों से निकल कर उनके सारे चेहरे पर फैल गयी। चेतन झुँझला गया : "आपको मज़ाक की पड़ी है, यहाँ जान पर बन आयी है। इतनी मुश्किल से मैंने भाई साहब की प्रैक्टिस जमायी थी कि...."

"तो समझ लो, अब उनकी प्रैक्टिस और भी जमेगी," हुनर साहब ने कहा, "बिना दो-चार को शमशान पहुँचाये, कभी कोई बड़ा डॉक्टर हुआ है। तजरुबा ऐसे ही होता है। जो ग़लती रामानन्द से अब हुई है, फिर

नहीं होगी। बजाय झींखने के, चल कर उसे तसल्ली दो। ठहरो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।" और थोड़ा पीछे भाग कर, डी० ए० वी० कॉलेज होस्टल को जाने वाली सड़क के सामने रुक कर उन्होंने ज़ोर से आवाज़ दी—"शातिर....शातिर .. सुनो ज़रा !"

कुछ क्षण बाद, मोड पर दो लड़के नमूदार हुए। एक तंग माथे और चूहे की-सी शक्ल का ठिगना-सा लड़का था, दूसरा बाँस की तरह पतला और लम्बा। ठिगने लड़के ने काकुलों के कुण्डल बना कर, अपने पहले ही से छोटे माथे को ढँक रखा था; दूसरे लड़के के बाल लम्बे थे, पीछे को सँवरे हुए थे और गर्दन के पिछली ओर उनका समवेत कुण्डल बना हुआ था। चेतन ने मन में सोचा कि वही हुनर साहब का शागिर्द, बनवारी लाल 'शातिर' है। लेकिन जब वे पास आ गये तो वह ठिगने कद का लड़का 'शातिर' निकला।

"आओ शातिर, तुम्हें एक बड़े शायर और अफ़साना-निगार से मिलायें," उन्होंने ठिगने लड़के से कहा। मुड़ कर शातिर की प्रशंसा में उन्होंने जो ब्योरा दिया, उसका मतलब यही था कि वह अद्भुत मेधा का स्वामी है, और पालने ही से गुनगुनाने और तुक मिलाने लगा था।

"मैं अगर रणवीर की शादी में न गया होता," हुनर साहब ने बताया, "तो शातिर का जौहर बियाबान में फूल की तरह अजाना ही रह जाता। वहीं लालड़ाँ में साईं बाबा के यहाँ, इनके पिता, सेठ परमानन्द से मुलाकात हो गयी। कैसा सीधा-सादा मिजाज पाया है परमानन्द जी ने ! लखपति सेठ हैं, गरूर नाम को भी छू नहीं गया। चिरंजीलाल बाबा के हुज़ूर में गा रहा था। मैंने उसके अमृत-भरे गले की तारीफ़ की तो सेठ जी ने बताया कि उनका लड़का भी कुछ गुनगुनाता है। दूसरी बार मैं लालड़ाँ गया तो इन्हीं के यहाँ ठहरा। इसका कलाम सुना। शातिर के शे'र क्या हैं, तीर-ो-निश्तर हैं। मैंने चिरंजीलाल को इसकी दो ग़ज़लें दी हैं। शातिर की ग़ज़ल और चिरंजी की आवाज़—सोने पर सुहागा समझ लो !"

चेतन ने देखा, अपनी प्रशंसा से शातिर के चेहरे पर रौनक आ गयी है, उसके नथुने फूल गये हैं और वह अपने माथे के कुण्डल में उँगली घुमा रहा है। हुनर साहब ने कैसे, माई बाबा की संगत में बैठे, लाला परमानन्द को आंका होगा; कैसे उनके शील-स्वभाव की प्रशंसा कर, उनके घर 'चरण-रज डालने' का निमन्त्रण लिया होगा; कैसे उन्हें उर्दू में गीता और उपनिषदों के सरल पद्यानुवाद सुनाये होंगे; कैसे उन्हें सेठ के सुपुत्र के छिपे जौहर का पता चला होगा और कैसे उन्होंने उसे चंग पर चढ़ाया होगा और उसी के बल पर लाहौर चले आये होंगे—चेतन की कल्पना में एक-के-बाद-एक, सारे दृश्य घूम गये। उसे लगा कि 'हुनर' नाम का यह व्यक्ति अपने में एक संस्था है—अडिग, अडोल, अटल! महाशय जीवनलाल कपूर इंस्टीट्यूशन हों या न हों, पर हुनर साहब हैं। शातिर-जैसे कई चेले आयेंगे, चले जायेंगे, पर यह संस्था कायम रहेगी और हमेशा फलती, फूलती, फैलती रहेगी....और सख्त परेशानी के बावजूद, उसके होंटों पर एक व्यंग्य-भरी मुस्कान खेल गयी....

इस बीच हुनर साहब उस लम्बे सींकिया नौजवान का परिचय देने लगे थे : "ये हैं मिस्टर कन्हैयालाल—लेकिन कन्हैयालाल मुन्शी से इनका कोई ताल्लुक नहीं।" और उन्होंने एक खोखला ठहाका लगाया, "सुखनवर नहीं, सुखनफ़हम हैं, लेकिन इनकी आवाज़ में कुछ अजीब लोच और सोज है। हमारी संगत में रहेंगे तो यकीनन शे'र भी कहेंगे। फ़िलहाल इन्हें 'फ़िगार'[1] तखल्लुस दे दिया है। खुदा ने चाहा तो लाहौर के मुशायरे इनके कलाम से गूँजेंगे और एक बार इनकी पतंग चढ़ी तो हफ़ीज जालन्धरी की तुक्कल[2] अन्नी मार कर ज़मीन पर जा गिरेगी या कट कर, खला[3] में बेमुहार डोलेगी।"

और यह अछूती उपमा देते हुए, हुनर साहब ने अपने उस लम्बे शागिर्द की पीठ थपथपा दी। फिर चेतन की ओर मुड़ कर, उन दोनों को उसका

१. जख्मी २. पतंग की एक किस्म ३. शून्य

परिचय दिया, "और ये हैं जनाब चेतनानन्द 'दाग़ !' मेरे शागिर्द रहे हैं, लेकिन अब मैं इनका शागिर्द हूँ। बहुत अच्छे शे'र कहते हैं और अफ़साने तो ऐसे लिखते है कि महाशय देवदर्शन और मुन्शी चन्द्रशेखर ने उनकी दाद दी है। इनकी कहानियों का मजमूआ[1]—'औरत : एक पहेली'—हाल ही मे शाया[2] हुआ है और मुन्शी चन्द्रशेखर ने उसका दीबाचः[3] लिखा है। इनको शिकायत है कि मैं सीधा इनके यहाँ जाने की बजाय तुम्हारे यहाँ क्यों ठहर गया हूँ और ये मुझे साथ ले चलने पर ज़ोर दे रहे है।" (चेतन चौंका। उसने तो उन्हे कोई वैसा निमन्त्रण नही दिया था। बल्कि उसे तो उनका साथ चिपकना तक बुरा लगा था। लेकिन उसने कुछ नहीं कहा। वह हुनर साहब के स्वभाव और पैतरों से परिचित हो गया था। हुनर साहब बोलते गये :) "लेकिन इनको मैने समझाया है कि शातिर मेरे मेहरबान, मद्दाह,[4] और साईं बाबा के भक्त, सेठ परमानन्द के साहबज़ादे हैं, उसका दर छोड़ कर तो मैं खुदा के घर भी नहीं जा सकता।"

हुनर साहब ने शातिर के कन्धे को थपथपाया, "मै ज़रा चेतन जी के साथ जा रहा हूँ, दो-तीन घण्टे मे पलट आऊंगा। हो सका तो इनको भी साथ लेता आऊँगा।" और बायें हाथ से चेतन का हाथ थाम, दायाँ हवा में हिलाते हुए, हुनर साहब चल दिये।

०

"तुमको साईं बाबा कैसे लगे ?"

चेतन हुनर साहब के हाथ-में-हाथ दिये, चुपचाप चला जा रहा था। जब वे ठण्डी-सड़क पर पहुँच गये तो हठात उसकी एकाकी सोच को भंग करते हुए हुनर साहब ने पूछा।

"मेरी तो उनसे वही, रणवीर की शादी वाली, चन्द-मिनटी मुलाकात है," चेतन ने उत्तर दिया, "दो-चार बार जाता, बैठता, देखता तो कुछ कह सकने की पोज़ीशन मे होता।"

"लेकिन फिर भी हम लोग वहाँ आध-पौन घण्टा बैठे थे। मैं तो जब-

१. संग्रह २. प्रकाशित ३. भूमिका ४. प्रशंसक

जब बाबा के हुज़ूर में गया हूँ, मुझे अजब रूहानी तस्कीन[1] मिली है। उनके वुजूद[2] मे कुछ ऐसी मिक़नातीसी कशिश[3] है कि लोग लोह-चून के ज़र्रों की तरह खिचे चले आते है। आख़िर बुरा-भला, कुछ तो असर तुम पर भी हुआ होगा ?"

"अब हुनर साहब, सच्ची बात यह है कि मुझे उनकी शो'ब्देबाजी[4] पसन्द नहीं आयी। मै नहीं समझता, किसी पहुँचे हुए शख़्स को लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए ऐसे हथकण्डों की ज़रूरत है। यह बात मैंने साई बाबा से कह भी दी थी। लेकिन उनकी अपनी दलील है, अगरचे मै उससे मुत्तफ़िक[5] नहीं। इस पर भी गोविन्दपुर के रहमते की बात में कुछ सच्चाई ज़रूर है—साई बाबा अल्लाह वाले लोग है और कुछ सिद्धि उन्होंने ज़रूर पायी है।"

दोनों मित्र कुछ देर चुपचाप चलते हुए ठण्डी-सड़क पार कर गोलबाग़ को हो लिये थे कि फिर अचानक हुनर साहब ने पूछा, "क्यों चेतन, क्या तुम किस्मत को भी नही मानते ?"

चेतन कुछ क्षण चुपचाप चलता रहा, फिर उसने कहा, "नही मानता—कहना शायद ग़लत होगा। मैं दरअसल मानना नहीं चाहता। किस्मत को मानना मुझे अपने आपको नकारने के बराबर लगता है। अगर किस्मत ही सब कुछ है तो मैं क्या हूँ ? गीता मं लिखा है कि हम कर्मों के लिए आज़ाद है। लेकिन क़िस्मत को मानें और मानें कि हमारा हर पल और हर साँस नक्षत्रों की चाल से बँधा है तो हमारे कर्मो मे आज़ादी कैसी ?"

"लेकिन एक बार तुमने किसी संस्कृत की किताब का हवाला देते हुए कहा था कि जो भी विधाता करता है, अच्छे के लिए करता है।"

"मेरे अच्छे के लिए—!" चेतन ने कहा, "मेरे शुभ के लिए! मैं हमेशा यह सोचता हूँ। 'यथेव विधाता वधी॰[6] तथेव मह्यम शुभाय।'

---

१. आत्मिक शान्ति २. अस्तित्व ३. चुम्बकीय आकर्षण ४. जादूगरी ५. सहमत

यह मह्यम—याने मेरे लिए—शब्द मैंने जोड़ लिया है। दरअसल यह 'मीर' ही का ढंग है, जिससे कि अपनी नाकामियों से काम लिया जाता है। जब कोई मुसीबत पड़ती है तो मैं सोचता हूँ कि इसमें विधाता मेरी कौन-सी बेहतरी चाहता है और कैसी भी बुराई की सूरत क्यों न हो, मैं कुछ-न-कुछ भलाई की सूरत निकाल लेता हूँ।''

''क्या तुम ज्योतिष को भी नही मानते ?''

''ज्योतिष को देख कर काम करने वाले असल में काम करना छोड़ देते हैं।''

''तुम तो पहेलियाँ बुझाने लगे।''

''नही, पहेली नही बुझवाता,'' चेतन ने कहा, ''तजरुबे की बात कहता हूँ, भाभी बीमार हुई तो भाई साहब ने पत्री देखी थी और जब उन्हें मालूम हुआ कि उनके भाग्य मे दूसरी पत्नी लिखी है तो उन्होंने उसमें दिलचस्पी लेना छोड़ दिया! मैं जोखिम उठा कर भी उसका इलाज करता रहा, लेकिन भाई साहब ने ज़रा भी परवाह नही की।''

चेतन कुछ देर चुपचाप चलता रहा, फिर उसने कहा, ''मैं एक बार किसी दोस्त के साथ एक होम्योपैथ के गया। बड़े मशहूर होम्योपैथ थे। उनके करीब ही एक बूढ़ा ज्योतिषी रहता था। कोई सीरियस केस उनके पास आता तो वे बहाने से मरीज की पत्री मंगा कर, ज्योतिषी को दिखा लेते। कहीं उस पर मारकेश की दशा होती तो वे उसका इलाज करने से इनकार कर देते। मैंने अपने दोस्त से कहा कि ऐसे मूर्ख डॉक्टर से इलाज कराना बेवकूफी है। डॉक्टर का काम है आखिर तक, इमकान भर, इलाज करना—न कि पत्री देख कर इलाज से हाथ खींच लेना! कौन जाने पत्री कितनी ठीक है या ग़लत! मै यही मानता हूँ कि आदमी ज्योतिष-ज्योतिष का चक्कर छोड़, किस्मत जो भी पेश करती है, सिर-माथे ले ले, बेहतरी की कोशिश करे और हाथ के काम में अपनी पूरी ताकत लगाये।''

''लेकिन भाई, ज्योतिष शास्त्र है तो सच्चा,'' हुनर साहब ने कहा, ''मुझ पर शनि की दशा थी, देखो कितना भुगतना पड़ा। अब ग्रह कुछ

नर्म पड़ा है तो मुझे भी नजात मिली है। अच्छा ही ग्रह आया होगा कि साईं बाबा से मुलाकात हो गयी और उनके उपदेशों से मैं इस चक्कर से निकला।"

"ज्योतिष कभी ठीक नहीं होता, मैं यह कब कहता हूं," चेतन ने कहा "मैं सिर्फ़ यह जानता हूं कि आगे की चिन्ता करना और नक्षत्रों के पीछे पड़ कर अपना प्रोग्राम बनाना न सिर्फ़ गलत है, बल्कि निहायत नुकसान-देह भी है।"

वह पल भर चुप रहा फिर उसने कहा, "मैं उन्हीं होम्योपैथ की मिसाल दूं —एक दिन उनकी अपनी तबियत कुछ खराब हो गयी। उन्होंने पत्री दिखायी, मालूम हुआ कि मारकेश की भयंकर दशा है। दो महीने निकल गये तो पच्चासी साल तक जी सकते हैं, वरना ग्रह की पूजा करनी चाहिए, कौन जाने शान्त हो जाय। वे डॉक्टर तो ज्योतिष में अन्ध-विश्वास रखते थे। उन्हें पूरा यकीन हो गया कि उनका अन्त समय आ पहुँचा है। यूं वे अच्छे-भले थे, जरा-सी तबियत खराब हुई थी, लेकिन उन्होंने दूसरे लोगों का इलाज-विलाज करना छोड़ दिया और सिर मुँड़ा लिया। अच्छे-खासे, हँस-मुख और बातूनी आदमी थे। उनकी सारी हँसी-खुशी और बातूनीपन जाता रहा। बसन्त के मेले में उन्हें मैंने देखा था। सारी भीड़ और शोर-शराबे में हो कर भी उससे दूर, न जाने कहाँ गुम थे। दो महीने बाद सुना कि दिल के दौरे से उनकी मौत हो गयी।"

"तो," हुनर साहब ने सोत्साह कहा, "ज्योतिष तो ठीक उतरा।"

"मैं कब कहता हूं गलत उतरा!" चेतन ने खीझ कर कहा, "लेकिन इस किस्से का एक दूसरा पहलू है। अगर वे डॉक्टर पत्री न दिखाते तो मौत से दो महीने पहले उन्होंने जो दिली और दिमाग़ी तकलीफ़ पायी, उससे तो बचे रहते। मज़े से खाते-पीते, हँसते-बोलते, मरीज़ों का इलाज-उपचार करते और एक दिन (अगर उन्हें जाना ही था) चले जाते। फिर फ़र्ज़ कीजिए कि पत्री ग़लत होती या ज्योतिषी का हिसाब ही ग़लत होता

(ज़्यादातर यही होता है) तो जो ज़ेहनी तकलीफ़ उन्होंने दो महीने पायी, उसकी याद से उन्हे कितनी कोफ़्त होती....'' कुछ क्षण चेतन चुपचाप चलता रहा, फिर बोला, ''एक दूसरी मिसाल लीजिए ! किसी आदमी को ज्योतिषी बताता है कि उसे अगले दो बरसो मे लाखों रुपया मिलेगा। वह कारोबारी नही कि बिज़नेस में उसे लाखों मिल जायँ। बीच के दर्जे का मामूली नौकरी-पेशा आदमी है। वह डर्बी की लाटरी ख़रीदता है और लाखों के सपने लेता है। ज्योतिषी की बात में उसे इतना यक़ीन है कि लाटरी की उम्मीद मे, उसके घर वाले उस रकम के ख़र्च की दर्मियों स्कीमें बना डालते हैं। वह अपना काम-काज लगभग छोड़ देता है। ख़ासी मुसीबत के दिन गुज़रने लगते हैं। लाटरी निकलने के दो-तीन दिन बाद तक तार के इन्तज़ार मे घर भर जागता रहता है। आख़िर अख़बार मे छपता है कि लाटरी होनोलूलू के किसी शख़्स के नाम निकल गयी है.... और इस घपले में उस आदमी का काम ही चौपट हो जाता है।....लेकिन मान लीजिए कि ज्योतिषी की पेशीनगोई के मुताबिक, उसे लाखों मिल जाते हैं। तब क्या आप नही मानते कि इस सूरत मे वे लोग उस बेइन्तेहा ख़ुशी से महरूम रह जाते है, जो अचानक इतना धन मिलने से उन्हे होती....''

चेतन फिर चुप हो गया। कुछ क्षण बाद बोला, ''मैने जब-जब इस मसले पर ग़ौर किया है, मै इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि आदमी को भविष्य मे झाँकने की बजाय अपनी आँखे, हाल पर रखनी चाहिएँ। और मैं ऐसा ही करता हूँ।''....

वे लोग बातें करते हुए, पुरानी अनारकली के चौरस्ते पर पहुँच गये थे। सहसा क्लिनिक की ओर मुड़ते हुए चेतन ने कहा, ''अब आप कह सकते है कि आज भाई साहब की किस्मत का कोई सितारा ज़रूर टेढ़ा होगा। बात करने में आदतन मैं भी यही कह सकता हूँ, लेकिन सोचिए, तो यह महज़ उनकी नाकाबलियत है। जाने कैसे उनके औसान ख़ता हो गये। ऐसे दो-चार केस और ख़राब कर दें तो उनकी प्रैक्टिस ही चौपट हो

जायगी ।"

"तुम यार फिर वहीं आ गये ।" हुनर साहब हँसे, "तुम्हारा ध्यान दूसरी तरफ़ बँटाने की मेरी तमाम कोशिशें बेकार हो गयीं । तुम यह क्यों नही सोचते कि यह सब तुम्हारे भाई के बुरे नक्षत्र के कारन नहीं, वेदालंकार जी के बुरे नक्षत्र के सबब हुआ है । ज़रूर ही उनकी दाढ़ों पर राहू या केतू की बुरी नजर होगी । यह भी हो सकता है कि पिछले जनम मे उन्होने रामानन्द की एक दाढ़ तोड़ दी हो, जो इस जनम मे रामानन्द के हाथो उनकी दो दाढें टूटी है ।"

प्रकट ही यह बात हुनर साहब ने उसे हँसाने के लिए कही थी, लेकिन चेतन नही हँसा, उसी गम्भीरता से उसने कहा : "इस दलील से हर चोर, गिरहकट, डाकू और कातिल अपने आप को हक-बजानब[1] समझेगा । यह सब कमज़ोर लोगों की दलीलें है, शहज़ोरों की नहीं । यह भाई साहब की ऐन कमजोरी थी, जो उनसे ऐसी ग़लती हुई । उन्हे जरा भी शक था तो मुझे अलग ले जा कर कह देना चाहिए था कि चेतन, मुझसे तुम्हारे दोस्त का इलाज नहीं होगा । अब...."

वे भाई साहब की दुकान के पास पहुँचने ही वाले थे कि सहसा हुनर साहब ने उसे बाँह में भर लिया । "देखो चेतन," उन्होने कहा, "अपने भाई से कुछ न कहना । रामानन्द खुद परेशान होगा । तुम बल्कि उसे तसल्ली देना ।"

"ठीक है,' चेतन ने कहा, "मैं कुछ नही कहूँगा, लेकिन आप उन्हें समझाइएगा कि इस तरह काम करने से बदनामी होगी और उन्हे ज़रा अक्ल और हिम्मत से काम करना चाहिए । अब तो मै था । किसी-न-किसी तरह वेदालंकार जी को शान्त करके ले गया, वरना वो जैसे चीख रहे थे, सारा बाजार इकट्ठा हो जाता ।"

वे दुकान पर पहुँच गये थे । चेतन हुनर साहब के आगे-आगे खट-खट सीढ़ियाँ चढ़ गया ।

---

१. ठीक

भाई साहब लम्बे काउच पर ऐसे बैठे थे कि सिर उनका पीछे, काउच की पीठ से, लगा था; दायाँ हाथ कनपटी, आँख और आधे माथे को ढँके था और टाँगें फ़र्श पर पसरी थीं। चेतन ने एक नजर उन पर डाली और दायीं दीवार के साथ लगे छोटे काउचों में से एक पर बैठ गया। भाई साहब ने आँख से ज़रा-सा हाथ हटा कर, उसे और हुनर साहब को आते देख लिया और वैसे ही लेटे रहे।

"कहिए १००८ स्वामी शिरी रामानन्द जी सरस्वती, ऐसे क्यों लेटे हैं," हुनर साहब ने उनके पैरों के पास खड़े-खड़े किंचित हँस कर पूछा, "शत्रुओं का जी कुछ निढाल है[1] ?" और चेतन की ओर मुड़ कर कहा, "उर्दू मुहावरे का हिन्दी तरजुमा !" और आँख दबा दी !

भाई साहब ने कोई जवाब नहीं दिया, वैसे ही लेटे रहे। चेतन भी पूर्ववत, सुता हुआ मुँह लिये, बैठा रहा। तब हुनर साहब काउच पर, भाई साहब के पास ही बैठ गये और उनके कन्धों को ज़रा-सा थपथपा कर उन्होंने बेतकल्लुफ़ी से कहा : "उठिए साहब ! शायर ने तो कहा है :

ऐ 'ज़ौक' किसी दोस्त-ए-देरीना[2] का मिलना
बेहतर है मुलाकात-ए-मसीहा-ओ-खिज़िर[3] से।

और हम आपके हम-वतन और दोस्त आपके घर पर आये हैं और आप हैं कि सनद ही नहीं दे रहे।"

भाई साहब को निश्चय ही ऐसे में उनका आना खला था। लेकिन कहा धीरे से उन्होंने इतना ही, "मेरी तबियत बेहद मतला रही है, सिर में सख्त दर्द है।" और वे पूर्ववत हाथ से सिर-आँख ढंके, टाँगें पसारे, लेटे रहे।

"उठ यार !" हुनर साहब ने स्वयं उछल कर उठते और सारे अदब-

१. दुश्मनों की तबियत कुछ नासाज़ है। २. पुराना मित्र
३. भूले-भटकों को रास्ता दिखाने वाला फ़रिश्ता

आदाब छोड़ कर, भाई साहब की बाँह खींचते हुए, उस बेतकल्लुफ़ी से कहा, जिससे शायद वे कॉलेज के दिनों में काम लेते होंगे, "तेरी तबियत की ख़राबी का सबब मैं जान गया हूँ। तूने उस वेदालंकार की दाढ़ ही तोड़ी है ना, उसका कत्ल तो नहीं किया। अब के आयें तो उसकी बाकी दाढ़ें भी तोड़ देना।" और हुनर साहब ने अपना खास फ़रमायशी ठहाका लगाया।

भाई साहब उठ कर ऐसे बैठ गये, जैसे वर्षों के बीमार हों। उनका लम्बोतरा चेहरा और भी लम्बा लगता था, कल्ले पिचक गये थे, आँखें गूँथी हुई थी, मानो रो कर उठे हों। उन्होंने जैसे कुएँ में से कहा :

"जाने हुनर साहब मुझे क्या हो गया। पिछले ढाई बरसों में न जाने कितनी दाढ़ें मैंने निकाली है। सख्त सीरियस केस ट्रीट किये हैं। कभी गड़बड़ नही हुई। वेदालंकार की एक दाढ़ टूट गयी, वो तो खैर कोई बात नही, खोड़ वाली थी। टूटती ही। लेकिन दूसरी कैसे टूट गयी....मैं तभी से यह सोच रहा हूँ....!"

हालाँकि चेतन ने हुनर साहब को वचन दिया था कि वह बिल्कुल नहीं बोलेगा, लेकिन भाई साहब की बात सुनते ही वह तमक कर उठा और बमका, "सोच आप क्या रहे हैं! यह सरासर आपकी इनएबिलिटी[1] है, कन्सेंट्रेशन[2] की कमी है और क्या है।....आप तो कहते थे कि दोनों दाढ़ें अन्दर से जुड़ी हुई है। लेकिन कोई सानी जुड़ी हुई नहीं निकली और डॉक्टर लखनपाल ने दस मिनट मे न सिर्फ़ किरचें, बल्कि दाढ़ों की जड़े भी निकाल दी। आप तो ऐसे खींच रहे थे, जैसे दाढ़ नहीं, मसूढे में घुसा शहतीर खींच रहे हों!"

भाई साहब ने कोई जवाब नहीं दिया। सिर्फ़ एक कहर-भरी नज़र अपने उस छोटे भाई पर डाली, जो अपने सामने सारी दुनिया को मूर्ख समझता था और वे उसी तरह माथे पर हाथ रख कर, पीछे को ढलक

१. अयोग्यता २. एकाग्रता

गये। चेतन फिर बमका : "आप नहीं जानते, आपने मेरा कितना नुकसान कर दिया है। वेदालंकार जी मामूली आदमी नहीं हैं। बड़े ऊँचे लोगों से उनका मेल-जोल है। अगर आप ठीक से उनका काम कर देते तो सिकन्दर हयात ख़ाँ[1] तक आपके क्लिनिक में आ सकते थे और अब...."

भाई साहब व्यंग्य करना चाहते थे—'हाँ, सिकन्दर हयात ख़ाँ नहीं, उसका बाप मेरे यहाँ आ सकता था !'—वे उठे भी, लेकिन फिर वैसे ही पसर गये।

चेतन अपनी बात पूरी किये बिना, वहीं वेटिंग-रूम में चक्कर काटने लगा।

"तुमसे मैंने रास्ते में क्या कहा था !" हुनर साहब ने कहना चाहा।

चेतन पलटा, "आप नहीं समझते हुनर साहब, मैं वेदालंकार जी को अपनी सोसाइटी का सरपरस्त और उसके लिट्रेरी विंग का सदर बनाना चाहता था और...."

"अरे भाई, तुमने एक बार पहले भी सोसाइटी का ज़िक्र किया है। यह कौन-सी सोसाइटी है, जो तुम्हारे वेदालंकार के बिना जहन्नुम-ब-रसीद हो जायगी[2]।"

चेतन ने वहीं खड़े-खड़े हुनर साहब को सोसाइटी की स्थापना और अपने अभियान की बात बतायी और बोला, "भाई साहब वेदालंकार जी की दाढ़ का ठीक से इलाज कर देते तो मैं उन्हें यकीनन अपनी सोसाइटी का सरपरस्त बना लेता। वे सरपरस्त बन जाते तो उनकी मदद से दस-बीस नहीं तो चार-छै सरपरस्त मैं और बना लेता। इन्होंने मेरी सारी स्कीम ही चौपट कर दी।"

"अरे यार, तुम्हारे वेदालंकार का मुर्ग़ा न बोलेगा तो क्या सुबह ही न होगी !" हुनर साहब ने उस कटु और दुखद बहस को सहज बनाते और फिर काउच पर बैठते हुए कहा, "तुम चार-छै की बात करते हो, तुम हमें

१. पंजाब के पहले भारतीय गवर्नर २. नरक में चली जायगी।

ज़रा सोसाइटी की पूरी स्कीम समझा दो। हम सौ मेम्बर न बना दें तो हुनर नाम नहीं। अब रामानन्द से ग़लती हो गयी, तो क्या इसकी जान ले लोगे ?"

"यह मुझे बेकार ही परेशान कर रहा है," हुनर साहब की शह पा कर भाई साहब ने उठ कर जोश से कहा, "यह आ कर मेरे सिर पर खड़ा न हो जाता तो मेरी कन्सेंट्रेशन[1] हरगिज़ कम न होती, न मैं नर्वस होता।"

"नाच न जाने आँगन टेढ़ा!" चेतन ने व्यंग्य से हाथ चमकाते हुए और अंग्रेज़ी मुहावरे में थोड़ा-सा परिवर्तन करते हुए कहा, "अ बैड वर्क-मैन ऑलवेज़ ब्लेम्ज़ हिज़ टूल्स[2]।"

"ज़रूर ही रामानन्द को तुमने नर्वस कर दिया होगा।" हुनर साहब ने भाई साहब का पक्ष ले कर उसे डाँटा।

"इसने अपनी ग़लती कभी मानी है, जो आज मानेगा?" भाई साहब ने हुनर साहब को सुनाते हुए ज़रा ऊँचे स्वर में कहा, "तुम जानते हो, डॉक्टर कभी अपना और अपने परिवार का इलाज नहीं करता और न कोई सर्जन अपने सगे-सम्बन्धी का ऑपरेशन ही करता है। इसने यह कह कर कि वेदालंकार इसका दोस्त है और फिर वहाँ मेरे सिर पर खड़े रह कर, मुझे नर्वस कर दिया।"

"लेकिन मैं तो बाहर जा कर बैठ गया था।"

"बाद में! मेरे कहने पर! लेकिन मुझे हर मिनट तुम्हारा और तुम्हारे उस सिकन्दर हयात खाँ के बाप का खयाल बना रहा।"

"रामानन्द बिल्कुल ठीक कहता है," हुनर साहब ने रद्दा जमाते हुए कहा, "तुमने उस मशहूर सर्जन की बात नहीं सुनी, जो अपने इकलौते लड़के के अपेण्डिक्स का ऑपरेशन कर रहा था कि नर्वस हो गया और उसका इकलौता जवान लड़का उसके अपने हाथों जान से जाता रहा।

---

१. एकाग्रता २. अक्षम कारीगर हमेशा अपने औज़ारों को दोष देता है।

रामानन्द किस बाग़ की मूली है, बड़े-बड़े डॉक्टर ऐसे में नर्वस हो जाते हैं।"

चेतन चुप हो गया और जा कर फिर काउच पर बैठ गया।

भाई साहब का तनाव कम हो गया था। उनका चेहरा लगभग अपनी असली हालत पर आ गया। "यह डॉक्टर लखनपाल की बात करता है," वे हुनर साहब की ओर मुड़ कर बोले, "और वो ख़ुद भी ऐसे डींगें मार रहा था, जैसे दुनिया में उससे बड़ा डेण्टिस्ट कोई दूसरा न हो, लेकिन जिन दिनों मै वहाँ काम करता था, उसने एक पेशेण्ट को मार दिया था।"

"मार दिया—जान से !" हुनर साहब ने हैरत से कहा।

"हाँ, जान से !" भाई साहब ज़ोर दे कर बोले। "एक दिन उसके यहाँ शेख़ूपुरे का एक मरीज़ आया। तीस-पैंतिस बरस का होगा। अच्छा तगड़ा-तन्दुरुस्त था। उसे सख़्त पायरिया था और वहाँ के डॉक्टर ने उसे सारे दाँत निकलवाने की सलाह दी थी। वह लाहौर मे अपने दाँत दिखाने आया था कि सभी निकलवा डाले या नहीं ? डॉक्टर लखनपाल ने उसे सलाह दी कि एक मिनट की देर किये बिना, उसे सारे दाँत निकलवा देने चाहिएँ। और आव देखा न ताव, एक साथ उसके चार दाँत निकाल दिये। अब ख़ून जो बहने लगा, सो थमा ही नहीं। उसे थी डायबिटीज़, लेकिन लखनपाल ने ख़ून का मुआयना तो किया नहीं था। दांत निकाले और घर भेज दिया कि जाओ गीली ईंट का सेंक करो ! जब ख़ून बन्द नहीं हुआ तो रात को उसके रिश्तेदार उसे मेयो हस्पताल छोड़ आये। वे भी कुछ नहीं कर सके और दूसरे दिन ज़्यादा ख़ून बह जाने से हस्पताल मे उसकी मौत हो गयी। ज़ाहिर है कि उसके घर वालों को तार गया। कुछ दिन बाद उसके माँ-बाप छाती पीटते, डॉ० लखनपाल के आ बैठे और आज तो वह इतनी बातें बना रहा था, उस दिन आप देखते तो जानते—उसकी सारी बोलती बन्द हो गयी थी। हाथों के तोते उड़ गये थे उसके ! मै न होता तो जाने उसकी क्या हालत होती ?"

"तुमने क्या कहा उन लोगों से ?"

"किन लोगों से ?"

"मरहूम[1] के माँ-बाप से ?"

"मैंने उनको समझाया कि इसमें डॉक्टर लखनपाल का नहीं, पहले उन लोगों का कसूर है, जिन्होंने आपके बेटे को हस्पताल भेजा, फिर हस्पताल वालों का है, जो खून न बन्द कर सके। उसका खून नहीं थमा था तो उसे यहाँ लाना चाहिए था। ये इस काम के माहिर हैं, फ़ौरन खून बन्द कर देते। हस्पताल वाले डॉक्टर क्या जानें ?"

"अगर वो लोग उसे लखनपाल के ले जाते तो क्या वो खून बन्द कर देता ?" हुनर साहब ने पूछा।

"खाक बन्द कर देता !" भाई साहब ने कटुता से कहा, "उसकी तो खुद 'दम' में खून जाने लगता।....वो तो मैंने किसी तरह उन देहातियों को समझा-बुझा कर भेजा और लखनपाल की जान-में-जान आयी।—मैं उसकी सारी हकीकत जानता हूँ।" और जैसे अपनी इस जोरदार दलील से उन्होंने अपने छोटे भाई को परास्त कर दिया हो और इस प्रयास में खुद भी निढाल हो गये हों, भाई साहब ने उसी तरह टाँगें फैला लीं और सिर पीछे काउच की पीठ में टेक कर, वैसे ही दायाँ हाथ माथे पर रख कर लेट गये।

चेतन लखनपाल का वह किस्सा पहले ही उनसे सुन चुका था। वह सचमुच निरुत्तर हो गया था। कुछ क्षण वह चुप बैठा रहा। फिर उसने कहा, "अच्छा उठिए, इस चक्कर में दोपहर का खाना भी नहीं खाया; चलिए, सिन्धी होटल में खाना खा आयें।"

"हाँ....हाँ..." हुनर साहब ने कहा, "अब गिरे हुए दूध पर टिसवे बहाने से कुछ हासिल नहीं।"

"मुझे भूख नहीं !" भाई साहब ने वैसे ही लेटे-लेटे कहा और जेब से एक रुपये का नोट निकाल कर चेतन की तरफ़ फेंक दिया और बोले, "जाओ तुम हुनर साहब को ले जाओ और खाना खा आओ !"

---

१. दिवंगत

लेकिन चेतन नहीं हिला। दोनों हाथों पर ठुड्डी टिकाये, अपनी जगह बैठा रहा। न जाने वे कब तक ऐसे ही बैठे रहते, अगर उसी वक्त भाई साहब के एक पेशेण्ट न आ जाते।....बाहर सीढ़ियों पर कदमों की चाप सुन कर चेतन चौंका। उसने रुपया उठा लिया। लेकिन भाई साहब वैसे ही बैठे रहे। दूसरे क्षण एक मँझले कद के, गोरे-चिट्टे साहब, बढ़िया सूट-बूट पहने और सिर पर क्रिस्टी टोपी लगाये, अन्दर आये और बोले, "डॉक्टर साहब, माता जी मुलतान से आ गयी हैं, कल इतवार है, कहिए ले आऊँ ?"

भाई साहब बड़े थके भाव से उठे। "मेरी तबियत ठीक नहीं लाला जी," उन्होंने मरी-सी आवाज़ में कहा, "दो-तीन दिन मैं कोई पेचीदा काम हाथ में नहीं ले सकता। आपकी माता जी के दाँतों का इम्प्रेशन लेना है, जरा भी हाथ हिल गया तो सेट ख़राब हो जायगा।"

"मैं तो सेक्रेटेरिएट ही से इधर चला आया था। ठीक है, परसों शाम फिर पता करूँगा।" और वे साहब जैसे आये थे, वैसे ही निकल गये।

"कौन थे ?" चेतन ने पूछा।

"हाकिमचन्द !"

"आपने मेरा ज़िक्र क्यों नहीं किया, आपसे कहा था कि वे आयें तो ज़रा...."

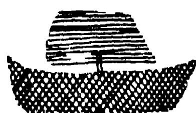
"लोक्कां नूं लोक्कां दी, गिगड़ी नूं जोक्कां दी[1]।" भाई साहब ने एक कहर-भरी नज़र चेतन पर डालते हुए, व्यंग्य और चिड़चिड़ाहट से कहा।....

लेकिन चेतन ने, न तो अपनी बात पूरी की, न उनकी सुनी। वह उठा और दूकान से निकल कर, लाला हाकिमचन्द के पीछे भागा।

---

१. लोगों को लोगों की (चिन्ता), जोंक वाली को जोंकों की (चिन्ता)।



अट्ठाइस

दूसरी सुबह, जब दस बजने में दस मिनट पहले, चेतन मलतान रोड के सरकारी क्वार्टरों में १८-बी के आगे खड़ा था तो सांस दुरुस्त करता हुआ, वह यही मना रहा था कि लाला हाकिमचन्द अपने वचन के अनुसार मिल जाय और उसका आना व्यर्थ न जाय। पिछली शाम लाला हाकिमचन्द अभी पुरानी अनारकली के चौरस्ते तक भी न पहुँचे थे कि चेतन ने भाग कर उन्हें जा लिया था और डॉ० रामानन्द के छोटे भाई तथा पत्रकार और कथाकार के नाते अपना परिचय दे कर उनसे घर पर मिलने का समय और घर का पता ले लिया था। सुबह वह जल्दी तैयार हो कर, साइकिल उड़ाता हुआ अमृतधारा रोड से पूरे ढाई मील की मंजिल मार कर, मलतान रोड पहुँचा था और सरकारी क्वार्टरों में १८-बी का पता पूछता हुआ लाला हाकिमचन्द के दरवाजे पर आ गया था।

उस सरकारी कॉलोनी में तीन तरह के क्वार्टर थे—ए, बी, सी। ए-सेक्टर के क्वार्टर तो नाम मात्र के क्वार्टर थे, वास्तव में वे छोटे-छोटे बँगले थे। उनके आगे-पीछे घास के लॉन और फूलों की क्यारियाँ थीं, दोनों ओर सड़कें थीं और उनमें ऊँचे दर्जे के अफसर रहते थे। बी-सेक्टर के क्वार्टर भी छोटे-मोटे मकान ही थे—कम-से-कम दो-दो सोने के कमरे, एक ड्राइंग-रूम और दो तरफ बरामदे और आँगन, गोदाम, रसोई-घर, गुसलखाना वगैरा। इनमें हेड क्लर्क और सुपरिण्टेण्डेण्ट आदि, बीच के अफसर रहते थे। सी-सेक्टर के क्वार्टर, सच्चे अर्थों में क्वार्टर थे। उनमें सिर्फ एक कमरा, छोटी-सी रसोई, छोटा-सा आँगन, स्नान-घर और शौचालय

था। ये क्वार्टर, क्लर्कों के क्वार्टर थे। चपडासियों और मेहतरो आदि के लिए कालोनी से जरा दूर, बैरके बनी थी, जिनमे एक-एक कोठरी थी और छोटे-छोटे बरामदे, जिनमे वे लोग खाना पकाते थे। सबके लिए इकट्ठे शौचालय बने थे और प्रकट ही उन गरीबो के लिए किसी तरह की प्राइवेसी अथवा पर्दा जरूरी नही समझा गया था।—यह सरकारी कॉलोनी शासन और समाज के विभिन्न वर्गों का आईना थी। लाला हाकिमचन्द अपने विभाग के सुपरिण्टेण्डेण्ट थे। इसलिए बी-सेक्टर मे रहते थे। चेतन क्षण भर उनके दरवाजे के आगे रुका, साँस दुरुस्त करता रहा। फिर उसने साइकिल को एक ओर खडा कर के दरवाजे पर दस्तक दी।

किवाड एक पतले-दुबले, सावले मुण्डू ने खोले। चेतन क्षण भर उस नौकर-छोकरे को देखता रह गया। आम मध्यवर्गीय घरो के मुण्ड, जैसे मैले-कुचैले कपडे (कोई पुरानी कमीज या फटी, पैबन्द-लगी निक्कर) पहने रहते है, वैसे उसके तन पर नही थे। घर का धुला, साफ कमीज-पायजामा उसने पहन रखा था और बाल सफाई से सँवार रखे थे। 'लडका शौकीन लगता है,' चेतन ने मन-ही-मन कहा। लाला हाकिमचन्द की सुरुचि-सम्पन्नता का भी वह कायल हुआ, जिन्होने अपने नौकर को इतने साफ-सुथरे कपडे दे रखे थे।

"किससे मिलना है ?" मुण्डू ने पूछा।

"लाला हाकिमचन्द जी ने मुझे वक्त दे रखा है।" चेतन ने कहा।

"आप कहा से आये है ?"

चेतन ने जवाब न दे कर, एक चिट पर अपना नाम लिखा और मुण्डू को देते हुए कहा, "यह उन्हे दे दो।"

मुण्डू चिट ले कर अन्दर चला गया तो चेतन ने झट से अपनी साइकिल को ताला लगा कर, उसे दीवार से टिका दिया। इतने मे छोकरा वापस आ गया चेतन को साथ ले जा कर, उसने ड्राइंग-रूम मे बैठा दिया।

कैसे वह सोसाइटी की सदस्यता के अभियान-सम्बन्धी अपने पुराने अनुभवों से लाभ उठाये और लाला हाकिमचन्द के किले को सफलता से

सर कर दे—चेतन रास्ते भर यही सोचता आया था। अपनी रण-नीति उसने बड़े सोच-विचार के बाद तय की थी। इस सिलसिले में उसे डेल कार्नेगी के उस लेख की याद आयी थी, जिसे उसने कभी उपेक्षा से फेंक दिया था। हालाँकि उस वक्त तो 'हाउ टु विन फ्रेण्ड्स एण्ड इन्फ़्लुएन्स पीपल' के लेखक को मन-ही-मन उसने बेभाव की सुनायी थी, लेकिन अजाने ही डेल कार्नेगी के सूत्र उसके दिमाग और ग्रहणशील मन पर अंकित हो गये थे। यह बात उसे भाई साहब से मालूम हो चुकी थी कि लाला हाकिमचन्द मामूली जूनियर क्लर्क से उन्नति कर, विभाग के इंचार्ज बन गये हैं और डेल कार्नेगी के उन्हीं सूत्रों की रोशनी में चेतन ने तय किया था कि वह उनकी इसी कार्यपटुता, फुर्ती और प्रशासकीय योग्यता की प्रशंसा कर के अपने में उनकी दिलचस्पी पैदा करेगा।

उसे बैठे चन्द ही मिनट हुए होंगे कि लाला जी, पायजामा-कमीज और उस पर रेशमी ड्रेसिंग गाउन पहने हुए, बिल्कुल इतवारी मूड में अन्दर से आये। चेतन ने कुर्सी से उठ कर उन्हें 'नमस्कार' किया और बोला, "मैं तो पहली बार इधर आया हूँ। यह कालोनी तो काफी दूर है।"

"हाँ, दूर तो है!" लाला जी ने स्वयं आराम-कुर्सी पर बैठने और उसे भी बैठने का संकेत करते हुए कहा, "लेकिन इतनी साफ़ और खुली जगह शहर में नहीं मिल सकती।"

"हाँ यह तो है!" चेतन ने समर्थन किया। "हार्डी का एक रोमानी उपन्यास है—फ़ार फ्रॉम द मैडिंग क्राउड—इस कॉलोनी को देख कर मुझे उसी की याद आ गयी।" और वह बड़े तकल्लुफ से हँसा।

चेतन ने फ़ौरन सोसाइटी का जिक्र नहीं किया; न उसने उनकी प्रशासकीय क्षमता की ही तारीफ की, बल्कि उसने एक दूसरी ही तरफ़ से सेंध लगाने का प्रयास किया : "आपके सुपुत्र को देख कर बड़ी खुशी हुई," चेतन ने कहा, "मैं जर्नलिस्ट हूँ, न जाने कितने लोगों से मेरा वास्ता पड़ता है, इतना साफ़ नौकर तो मैंने बड़े-बड़ों के नहीं देखा।" वह क्षण भर को रुका। लाला जी चुप रहे। चेतन ने रद्दा जमाया, "हमारे यहाँ

कहावत है कि घर के भाग्य का पता दहरी से चलता है और मालिक के भाग्य का, नौकर से, लेकिन मैं हमेशा भाग्य की जगह कल्चर रखता हूँ, क्योंकि धनी-मानी सेठों के घरों में भी नौकर मैले-कुचैले, तार-तार कपडों मे दिखायी दे जाते है। मालिक कल्चर्ड होगा तो नौकर को साफ कपड़े पहने देखना चाहेगा।"

"मुझे गन्दे नौकर पसन्द नहीं।" लाला जी ने सिर्फ इतना कहा।

तब चेतन ने तीसरा तीर छोड़ा।

"आपसे मिलने का बहुत मन था," उसने कहा, "भाई साहब आपको बहुत मानते है। कई बार उन्होंने इस बात का जिक्र किया है कि उनके यहा बडे-बड़े अफसर आते है—लेकिन पहरावे और चाल-ढाल मे आप जैसे एफिशियेण्ट[1] एडमिनिस्ट्रेटर[2] कम ही दिखायी देते है। अफसरी आम तौर पर लोगों को ढीला कर देती है लेकिन भाई साहब कहा करते है कि लाला हाकिमचन्द अफसर हो कर और भी ज्यादा एफिशियेण्ट हो गये है।"

चेतन जरा भर रुका। लाला हाकिमचन्द ने इस प्रशंसा की भी कोई सनद नही दी। वे चुपचाप चेतन को गहरी नजर से देखते रहे, जैसे इस बात का अन्दाजा कर रहे हों कि लड़का आखिर चाहता क्या है?

उनकी तेज निगाहों से चेतन विचलित नही हुआ। उसने कहा, "भाई साहब एक दिन कह रहे थे," चेतन ने बात जारी रखी, "कि लाला हाकिमचन्द मे कुछ ऐसी खूबियां है, जो जरूर ही उन्हें संस्कारों मे मिली होगी। बड़े-बड़े अफसर काम करा लेते है, लेकिन फीस देते वक्त खिट-खिट करते है। लाला हाकिमचन्द कभी ऐसा नही करते शुरू मे चाहे वे कितनी भी बहस करें पर तय हो जाने पर कभी परेशान नही करते।" निमिष भर को वह रुका, फिर बोला, "भाई साहब तो आपकी मिसाल हमेशा अपने दूसरे मरीजों को देते है।"

१. कुशल २ प्रशासक

लाला हाकिमचन्द पिघले। "नहीं, बचपन के संस्कारों में तो मुझे कुछ नहीं मिला।" वे बोले, "मेरे भी वैसे ही संस्कार हैं, जैसे आम लोगों के। पिता मेरे प्राइमरी स्कूल के टीचर हैं। हाँ, रियाजी[1] के उस्ताद मेरे बहुत अच्छे थे। उनसे मैंने जरूर कुछ सीखा है। वे काबिल उस्ताद ही नहीं जबरदस्त डिसिप्लिनेरियन[2] भी थे। उनसे सीखा या फिर जिन्दगी से—उसे खुली आँखों देख कर।"

लाला हाकिमचन्द पल भर चुप रहे, फिर जैसे कुछ याद करते हुए बोले, "या फिर कुछ सीखा अपने डायरेक्टर डाब्सन से! अब तो वो विलायत चले गये, पर कुछ साल पहले वो हमारे डिपार्टमेण्ट के हाकिम थे—चुस्त और चाक-चौबन्द ही नहीं होशियार और काबिल भी थे। टालमटोल और हेकी-पैची[3] उन्हें पसन्द नहीं थी। मैंने जो पाया, अपने उस्ताद और मिस्टर डॉब्सन से! दफ्तर हो या बाहर, मुझे चालबाजी पसन्द नहीं। एक बार जो बात कह दी, एक बार जो वादा कर लिया, जो काम जिम्मे ले लिया, वह पूरा होना ही चाहिए। हिन्दुस्तानी अफसर तो इन खूबियों की कद्र नहीं करते, लेकिन अंग्रेजों के यहाँ इन की बड़ी कद्र है। मैं पन्द्रह बरस पहले इसी डिपार्टमेण्ट में चालीस रुपये माहवार पर एक मामूली क्लर्क की हैसियत से आया था, लेकिन इस अर्से में चार बार मैं सीनियरों को फलांग कर आगे चला गया और आज मैं उस कुर्सी पर बैठा हूँ, जहाँ मेरे हेडक्लर्क को होना चाहिए जो मुझसे दस-बारह साल बड़ा है और एक-डेढ़ साल में रिटायर हो जायेगा। हमारे उस्ताद कहते थे: कोई काम लेने या वायदा करने से पहले सोच लो, लेकिन वायदा करके या काम हाथ में ले कर, पीछे न हटो। मैंने भी अगर कभी कोई मुश्किल काम हाथ में लिया है तो उसे जी-जान से पूरा किया और वक्त पर पूरा किया।..."

"और यह कम छोटी खूबी नहीं है," चेतन ने लुक्मा दिया, "भाई साहब कहते थे, मैंने लाला हाकिमचन्द के मातहत काम तो नहीं किया,

---

१. गणित २. अनुशासन-प्रिय ३. चालबाजी

लेकिन जैसे वो चलते या बात करते है, उससे लगता है कि वो यकीनन निहायत काबिल एेडमिनिस्ट्रेटर होगे !"

(उसके बड़े भाई ने कभी लाला हाकिमचन्द की तारीफ़ मे एकाध बात कही थी, चेतन ने उसी की नीव पर प्रशंसा का किला उठा दिया ।)

लाला हाकिमचन्द उसकी बातो से निश्चय ही बहुत प्रसन्न हुए । वे थोड़ा और पसर कर बैठ गये और उन्होने परम उदारता से पूछा : "कहिए आपने कैसे तकलीफ की ?"

चेतन अपने बारे मे संक्षिप्त रूप से पिछले ही दिन बता चुका था । अब उसने किंचित विस्तार से अपने हिन्दी-उर्दू अदीब दोस्तो की बात की और कहा कि दोनो एक ऐसी सोसाइटी की जरूरत महसूस करते है, जिसके स्टेज से दोनो भाषाओ के लेखक और कवि लाहौर के आम पढ़े-लिखो तक पहुँच सके ।

दिलचस्पी लेते हुए लाला जी ने कहा, "हा, अभी तक तो आम तौर पर लाहौर की मजलिसो मे उर्दू वालों का ही जोर रहा है, अगर आपकी सोसाइटी के जरिये हिन्दी वाले भी आगे आयेगे और भारती भावनाओं को अपनी नज्मो मे रखेगे ता बहुत अच्छा होगा ।"

चेतन मन-ही-मन प्रसन्न हुआ । उसे लगा कि यह तो लाला जी का प्रिय विषय है । वह ऐसे अपनी आखे उनके चेहरे पर जमाये बैठ गया, जैसे उनके 'मुखारविन्द' से निकलने वाला हर शब्द उसके मन पर अंकित हो रहा हो । लाला जी सोत्साह कहने लगे : "पण्डित देशबन्धु कहते है कि उर्दू भाषा मे हिन्दू कल्चर और, सच्ची बात कहे तो, भारती कल्चर की तरजुमानी हो ही नही सकती । हिन्दुओ के जज्बात की बात तो दूर रही, हिन्दू देवी-देवताओ, तीर्थो और दरियाओ के नाम तक उर्दू मे ठीक से नही लिखे जा सकते । इसलिए आपकी संस्था के स्टेज पर अगर उर्दू वालो के साथ हिन्दी वाले भी आयेगे तो यह अच्छा ही होगा ।"

लाला जी ने उसकी बात को जो मोड़ दिया था, उससे चेतन चौका—'लाला आर्य समाजी है,' उसने मन-ही-मन कहा, लेकिन उसने टोका नहीं,

चुपचाप बैठा सुनता रहा। लाला जी कहने लगे : "आप तो जानते होंगे, मुग़लों के आने से पहले हिन्दी का ही दौर-दौरा था और मुसलमान उर्दू शायरों ने भी हिन्दी में ही कविताएं लिखी, लेकिन फिर उन्होंने अरबी लिपी को ही राजलिपी बना दिया और धीरे-धीरे उर्दू जबान में सब काम होने लगा। जब अंग्रेज़ आये तो राजकाज चलाने के लिए उन्होंने भी उर्दू को आगे रखा और हिन्दी को कहीं भी जगह नहीं दी।"

लाला जी क्षण भर रुके, फिर बोले, "यहाँ उर्दू तो पहली जमात से पढ़ायी जाती है, लेकिन हिन्दी छठी से शुरू की जाती है। ज़ाहिर है कि बहुत-से लोग, जो उर्दू सीखे होते हैं, हिन्दी-संस्कृत में कोई दिलचस्पी नहीं लेते। इसलिए हम लोगों ने (लाला जी का मतलब आर्य समाजी स्कूल-कॉलेजों से था) हिन्दी को अहमीयत दी है। हिन्दी 'रतन,' 'भूषन,' और 'प्रभाकर' की परीक्षाएँ महकमा-ए-तालीम से मंजूर करायी हैं और उनके जरिये बहुत-से लोग हिन्दी सीख और पढ रहे हैं। हम लोगों ने सरकारी एड[1] की परवाह नहीं की और अपनी संस्थाओं में हिन्दी की तालीम शुरू की।" और लाला हाकिमचन्द ने बताया कि उनकी अपनी लड़की उस वर्ष हिन्दी 'रत्न' की परीक्षा देगी और इस कॉलोनी में 'रत्न,' 'भूषण' या 'प्रभाकर' की परीक्षाओं के लिए तैयारी करने वाली बीस-पच्चीस लड़कियाँ ज़रूर होंगी।

चेतन उनकी बातें ऐसे ध्यान से सुन रहा था, जैसे लाला हाकिमचन्द उपनिषदों के किसी गहन सूत्र का भाष्य कर रहे हों और उसने वह सब ज्ञान पहले न पाया हो। मन-ही-मन उसने यह भी तय किया कि उनसे दूसरी ही तरह बात करनी होगी और जब लाला हाकिमचन्द काफी देर तक हिन्दी के बारे में आचार्य देशबन्धु के हवाले से अपने बहुमूल्य विचार, काफ़ी मुश्किल उर्दू में (जिसके बीच वे कभी-कभी धाराप्रवाह अंग्रेज़ी भी बोलने लगते थे) व्यक्त कर चुके तो चेतन ने उनका भरपूर समर्थन किया :

---

१. अनुदान

"आपने बिल्कुल बजा फ़रमाया है," चेतन ने कहा, "मैं खुद बड़ी शिद्दत से यही बात महसूस करता रहा हूँ। कई बरसों से मैं उर्दू में कहानियाँ, ग़ज़लें और नज़्में लिखता आ रहा हूँ, लेकिन इधर मैंने अपनी नज़्मों में हिन्दी शब्दों का इस्तेमाल करना शुरू कर दिया है ।" और चेतन ने इस भूमिका के साथ कि हिन्दी-उर्दू-मिली गंगा-जमुनी भाषा में लिखी उसकी एक नज़्म बहुत मक़बूल हुई है, 'बन्दे मातरम' के 'बसन्त एडीशन' के लिए लिखी गयी अपनी रचना :

पतझड़ बीता, बदला मौसम सब ओर है शोर बसन्त आया
मन पगले देखने लायक है, यह छटा निराली सरसों की
पीताम्बर ओढ़ खड़ा जग है, पट आँखों के अब खोल ज़रा
तू देख ज़रा सूरत कैसी मनहर, मतवाली सरसों की

सारी-की-सारी सुना डाली । बीच-बीच में उसने हिन्दी शब्दों की तरफ़ लाला जी का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया और यह बताया कि उर्दू के सोने में कैसे उसने हीरे-मोतियों की तरह हिन्दी शब्दों के नगीने जड़ दिये हैं ।

लाला जी ने नज़्म की दाद दी । बोले, "अब पीताम्बर हमारे कल्चर में एक ख़ास मा'नी रखता है । 'पीले कपड़े' या 'ज़र्द कपड़े' कहने से वह बात नहीं बनती । पीताम्बर की जो कॉनोटेशन[1] हिन्दी में है, उर्दू में हो ही नहीं सकती । यहाँ के अदीबों और शायरों को अगर अपने देश और उसके कल्चर के बारे में कुछ लिखना है तो हिन्दी में ही पूरी तरह से लिखा जा सकता है ।"

"आपने बड़ी बारीक बात कही लाला जी," चेतन ने जैसे उनकी बात लोकते हुए कहा, "उर्दू स्क्रिप्ट में तो बहुत-से हिन्दू नाम लिखे ही नहीं जा सकते । जब हरेन्द्र-सा सीधा-सादा नाम हरिन्दर, हरन्दर, हरुन्दर या हरन्दुर पढ़ा जा सकता है तो मृत्युंजय उपाध्याय या मृणाल कान्ति घोष

१. अर्थ-ध्वनि

की तो बात ही जाने दीजिए। शक्ति और शान्ति जैसे सरल शब्द उस लिपि में शक्ती और शान्ती बन जाते हैं, कृष्ण और ब्रह्मपुत्र, क्रिशन और बरहमपुत्तर !"

चेतन हल्के से हँसा। लेकिन बात उसने जारी रखी : "फिर धर्म-ग्रन्थों का तरजुमा तो उर्दू में हो ही नहीं सकता। मैंने तय किया है कि अपनी सोसाइटी में हिन्दी के सारे साहित्यकारों को ले आऊँगा। मैं अगर एक जलसे में उर्दू अदीबों को बुलाऊँगा तो दूसरा, हिन्दी साहित्यकारों के लिए रखूँगा।" इस मरहले पर चेतन ने अपने तमाम हिन्दी मित्रों के नाम लिये और उनके कारनामे गिनाये और यह भी कहा कि उन सब ने सोसाइटी का स्वागत, दिल से किया है।

"क्या नाम रखा है आपने सोसाइटी का ?" सहसा लाला जी ने पूछा।

चेतन का दिल बल्लियों उछल गया। लाला जी सोसाइटी में दिलचस्पी ले रहे हैं। उसकी लाइन ऑफ़ ऐक्शन एकदम ठीक उतर रही थी। उसने धड़कते दिल के साथ नाम बताया—"सोसाइटी फ़ॉर यू एण्ड मी।"

"नाम तो अच्छा है—तेरी-मेरी सोसाइटी !" और वे हँसे।

तब चेतन ने इतनी देर बाद उन्हें सोसाइटी का परिपत्र दिया।

लाला जी ने बड़े ध्यान से उस को एक-एक पंक्ति पढ़ी। फिर सहसा उन्होंने पूछा, "इसका प्रेज़िडेण्ट कौन है ?"

"प्रेजिडेण्ट जनरल बॉडी की मीटिंग में चुना जायगा।" चेतन ने कहा, "कुछ और मेम्बर और सरपरस्त बन जायें, फिर मैं जनरल बॉडी की मीटिंग बुलाऊँगा। (यहाँ चेतन ने बताया कि तब तक कितने मेम्बर और सरपरस्त बन चुके हैं) सोचता हूँ, राजा महेन्द्रनाथ या लाला हरकिशन लाल से प्रेज़िडेण्ट बनने को कहूँ। आपकी क्या राय है ?"

"लाला हरकिशन लाल मान जायँ तो क्या बात है।" लाला जी ने कहा।

"दो-एक बार जाना पड़ेगा," चेतन ने कहा, "मान तो वे जायेंगे

ही ।"

"क्या वाइस-प्रेज़िडेण्ट भी रखेंगे ?" लाला जी ने पूछा ।

लाला जी की बढ़ती हुई दिलचस्पी देख कर चेतन ने मन-ही-मन तय किया कि लाला हाकिमचन्द कुशल प्रशासक है, यदि वे सोसाइटी के सदस्य या सरपरस्त बन जायँ तो उन्हें वह उप-प्रधान बना देगा । प्रधान तो कभी-कभी आया करेंगे, सब काम तो उप-प्रधान ही करेंगे और उसी वक्त सोच कर उसने कहा, "हाँ, सोसाइटी का एक वाइस-प्रेज़िडेण्ट भी होगा । आप तो जानते है, लाला हरकिशन लाल हों या राजा महेन्द्रनाथ, वे बहुत मस-रूफ़ लोग हैं, सोसाइटी की हर मीटिग मे आना उनके लिए मुश्किल होगा । सब काम वाइस-प्रेज़िडेण्ट ही करेगा । प्रेज़िडेण्ट और वाइस-प्रेज़िडेण्ट के अलावा, संगीत, आर्ट, कहानी और कविता—सोसाइटी के चार विंग होंगे और इनके अलग-अलग प्रधान और उप-प्रधान होंगे ।"

"और एग्ज़िक्यूटिव ?"

"चार से दस तक एग्ज़िक्यूटिव के मेम्बर होंगे," चेतन ने सोत्साह बताया, "मेम्बरों और सरपरस्तों की तादाद के मुताबिक ! उनका चुनाव भी जनरल बॉडी की मीटिग में होगा ।"

"सेक्रेट्री तो आप ही होंगे ।"

"फ़िलहाल तो मै ही हूं, लेकिन आख़िरी फ़ैसला जनरल बॉडी की मीटिग मे होगा !"

"दो सुझाव मेरे भी है ।" लाला जी ने कहा ।

"जी फ़रमाइए !" चेतन जैसे बिछ-बिछ गया ।

"एक तो यह," लाला जी बोले, "कि आप सोसाइटी के स्टेज से कभी-कभार स्वामी शुद्धदेव या स्वामी सत्यदेव जैसे विद्वानों की कथा कराइए और कभी आचार्य देशबन्धु जैसे ज्ञानियों के भाषण रखिए, ताकि सोसाइटी के सदस्यों का अध्यात्म-ज्ञान बढ़े ।"

"आप ठीक कहते हैं," चेतन ने कहा "मैं ज़रूर इसका प्रबन्ध करूँगा ।"

"दूसरे यह कि आप आचार्य देशबन्धु को सोसाइटी का प्रधान या उप-प्रधान बनाइए।"

चेतन को उनके दोनों सुझाव हास्यास्पद लगे थे—विशेषकर अपनी सोसाइटी के सन्दर्भ में—लेकिन तत्काल सोच कर उसने कहा, "सोचता हूँ, हम सोसाइटी का एक धार्मिक विंग भी रखें, उसका प्रधान आचार्य जी को बना दें।"

"हाँ, यह ठीक है!" लाला जी ने सन्तोष से कहा।

तब चेतन को लगा कि जिस काम के लिए वह आया है, अब उसकी चर्चा का वक्त आ गया है।

"मैंने यह सोचा है कि आप सोसाइटी के सरपरस्त भी बनें और वाइस-प्रेज़िडेण्ट भी।" चेतन ने ऐसे कहा, जैसे उनका सरपरस्त बनना तो मानी हुई बात है, उप-प्रधान के पद का लालच उसने और दे दिया। "प्रेज़िडेण्ट तो कभी-कभार आयेगा, वाइस-प्रेज़िडेण्ट को ही सब ज़िम्मेदारी निभानी होगी।"

"नहीं, मै तो किसी संस्था में कोई जिम्मेदारी का ओहदा नहीं ले सकता।" लाला जी ने कहा, "दफ़्तर में मेरा काम बहुत ज़िम्मेदारी का है; ये फ़ाइलों का थब्बा (उन्होंने जमीन से कुर्सी के बराबर ऊंचा हाथ रख कर बताया) घर लाना पड़ता है।"

और जैसे उनके रास्ते में यही बाधा हो, चेतन ने कहा, "आप सर-परस्त बन जाइए और वाइस-प्रेज़िडेण्ट बनने के लिए 'हाँ' भर कर दीजिए, आपका सारा काम तो मैं ही कर दूंगा। आपसे समय ले कर ज़रूरी काग-ज़ात पर आपके दस्तखत करा जाया करूँगा।"

"नहीं, मै सरपरस्त नहीं बन सकता।"

चेतन का दिल बैठ गया। उसका चेहरा भी जरा-सा उतर गया। उसे लगा कि शायद दस रुपया महीना देना, लाला हाकिमचन्द के लिए कठिन है। ऐसे व्यक्ति को, जिसने सोसाइटी में इतनी दिलचस्पी दिखायी हो, सिर्फ़ इसी बिना पर छोड़ देना, चेतन को स्वीकार नहीं हुआ। उसने

कहा : "आप आम मेम्बर भी बन जायेंगे तो मुझे खुशी होगी। मैंने इतने सरपरस्त और मेम्बर बनाये हैं, किसी ने मुझे इतने कारआमद सुझाव नही दिये। आप...."

"नही, मैं मेम्बर भी नहीं बन सकता।" लाला जी ने उसकी बात काटते हुए कद्रे रुखाई से कहा।

चेतन एकदम हतप्रभ हो गया। उसने आँख उठा कर देखा—लाला हाकिमचन्द, परम सन्तुष्ट भाव से आराम-कुर्सी पर पसरे थे। उसके मन में क्रोध का भयंकर तूफ़ान उठा। उसके जी में आयी, कहे, 'साले, अगर तू मामूली मेम्बर भी नहीं बन सकता था तो घण्टे भर से सोसाइटी के कायदे-कानून के बारे में इतनी मीन-मेख निकाल कर क्यों मेरा दिमाग़ चाट रहा था? तू इतना बड़ा अफ़सर है, क्या यह भी नही जान सका कि यह जो कमबख़्त इतनी लम्बी मंजिल मार कर, सोसाइटी के ब्रोशर उठाये, तेरे घर आया है, सिर्फ़ तेरी सूरत तो नही देखने आया। साला, मैं मेम्बर भी नही बन सकता का...." लेकिन मन के भावों का सहस्राश भी उसने चेहरे पर नहीं आने दिया। पहले उसने सोचा, उठे, लाला जी को 'नमस्कार' करे और चल दे; लेकिन यूं असफल हो कर उठ जाना उसे स्वीकार नही हुआ। उसने नये सिरे से सोसाइटी के महत्व का ज़िक्र करना शुरू किया और वे दलीलें पेश कीं, जो प्रायः वह दूसरी जगहों में बात शुरू करने से पहले देता आया था कि लाहौर में सिर्फ़ एक ही वैसी संस्था है—'पंजाब लिट्रेरी लीग'! लेकिन वह तो लाहौर के जजों, बैरिस्टरों, कौंसिल के मेम्बरों और प्रसिद्ध और सफल एडवोकेटों की सस्था है, आदि....आदि....और अन्त में उसने कहा कि वह तो आशा ले कर आया था कि लाला जी ही सदस्य नही बनेंगे, अपनी लोकैलिटी के अन्य मित्रों को भी संस्था के सदस्य बनायेंगे।

लेकिन लाला हाकिमचन्द टस-से-मस नहीं हुए : "बात आप ठीक कहते है," उन्होंने कहा, "आपकी सोसाइटी कारआमद भी है, मेरी सारी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं, लेकिन मैं इस सिलसिले में आपकी कोई मदद नहीं कर सकता, क्योंकि मेरा दफ़्तर और मेरे सारे कलीग्ज़ पहली मई को

पाँच महीनों के लिए शिमला जा रहे हैं। मैं तो दो दिन पहले ही चल दूँगा। जिस सोसाइटी के किसी जलसे में चार-पाँच महीने तक मैं कोई हिस्सा नहीं ले सकता, उसका मेम्बर बनने और मुफ़्त चन्दा देने के लिए तो आप मुझे नहीं कह सकते।" (बिना रुके दूसरी ही साँस में उन्होंने कहा :) "आप कहें तो भी ऐसा करना मेरे उसूल के खिलाफ़ है, और मैं मेम्बर नहीं बन सकता।"

लाला हाकिमचन्द के स्वर में कुछ ऐसी निश्चयात्मकता और सख्ती थी कि चेतन को लगा, अब आगे इस सिलसिले में एक भी शब्द कहना बेकार है। वह एकदम हतोत्साह और विक्षुब्ध हो कर उठा कि उन्हें 'नमस्कार' करे और चल दे कि तभी लाला हाकिमचन्द ने एक ऐसी बात कही कि वह रुक गया।

"मै जानता हूं, आपको बुरा लग रहा है," उन्होंने कहा, "लेकिन आप ज़रा अपने आपको मेरी पोजीशन में रख कर देखिए, आप मुझसे मुत्तफ़िक हो जायेंगे," वे क्षण भर को रुके। फिर उन्होंने कद्रे हँस कर कहा, "मैं तो आपकी कोई मदद नहीं कर सका, लेकिन आप चाहें तो मेरी थोड़ी मदद कर सकते है।"

अपने तमाम क्रोध और निराशा को दबा कर, हल्का-सा सिर को झुकाते और मुस्कराते हुए चेतन ने कहा, "हुक्म कीजिए, मैं आपकी क्या खिदमत कर सकता हूँ ?"

"मैने आपसे ज़िक्र किया था न, कि मेरी लड़की चन्द्रा 'हिन्दी रत्न' मे पढ़ती है। पिछले साल वह मैट्रिक में फ़ेल हो गयी थी। मै खुद तो पढ़ा नही सकता। ट्यूटर रखा था, लेकिन वह पास नही हुई। आप तो इतने हिन्दी वालों को जानते है, अगर किसी पण्डित का पता दें, जो उसकी ट्यूशन ले सके और उसे यकीनन पास करा सके, तो मै बेहद मशकूर हूँगा।"

चेतन चौंका। उसका दिमाग़ बड़ी तेजी से काम करने लगा। अगर यह ट्यूशन उसे मिल जाय तो वह अगले चार महीनों में ही लॉ-कालेज के

लिए प्रवेश-शुल्क के रुपये जोड़ लेगा !....दोबारा बैठते हुए उसने पूछा, "आपकी लड़की कहाँ तक पढ़ी है ?"

सीधा जवाब देने के बदले लाला जी ने घुमा कर बात की, "मेरे पास तो ज़्यादा समय नहीं रहता," उन्होंने कहा, "जैसा कि मैंने आपको बताया है, सारे डिपार्टमेण्ट की ज़िम्मेदारी मेरे सिर है। फ़ाइलें मेरे साथ ही घर आती हैं और गयी-गयी रात तक मुझे दफ़्तर का काम करना पड़ता है।" फिर ज़रा-सा हँसते हुए बोले, "जहाँ तक दिमाग़ का ताल्लुक है, वो मुझ पर नहीं, शायद अपनी माँ पर पड़ी है। दो बार मैट्रिक में फ़ेल हो चुकी है, लेकिन मेरी बहुत ख़्वाहिश है कि वो किसी-न-किसी तरह बी० ए० कर ले। डिग्री तो वो शायद ले नहीं सकती, पर मैं चाहता हूं कि तीन बरसों में 'रतन', 'भूषन' और 'प्रभाकर' का इम्तहान दे कर, सिर्फ़ अंग्रेजी में मैट्रिक, एफ़० ए० और बी० ए० कर ले और यूँ डिग्री न सही, बी० ए० का डिप्लोमा तो ले ही ले।"

एकदम बात को संस्था के चन्दे से ट्यूशन की ओर मोड़ने में चेतन को कुछ अटपटा-सा तो लगा, पर उसने फ़ौरन कहा, "आप चाहें और मुझे मौका दें तो मैं ही उसे हिन्दी 'रतन' करा दूँगा।"

"आप तो सोसाइटी चला रहे हैं और मैं ऐसा ट्यूटर चाहता हूँ, जो मेरे साथ शिमला जा सके," लाला जी ने क़द्रे बेसब्री से कहा।

चेतन ने सोचा कि यह तो और भी अच्छा है, वह दिल से चाहता था कि कविराज उसे इस वर्ष भी अपने साथ शिमला ले जायं और वह सोसा-इटी के चक्कर में न पड़े, लेकिन वे साफ़ टाल गये थे। वह जानता था, कविराज इस वर्ष भी ज़रूर शिमला जायेंगे, अगर लाला जी उसे अपने साथ ले जाते है तो किसी-न-किसी दिन माल पर उनसे आमना-सामना हो जायगा। कितना मज़ा आयेगा ! और वह उत्साहित हो आया, लेकिन तभी दूसरे पल उसे ख़याल आया कि उसे तो उतनी हिन्दी नहीं आती। लाहौर में तो दिन भर वह चातक जी अथवा नीरव जी की मदद से पाठ पढ़ कर चन्द्रा को पढ़ा सकता है, लेकिन शिमले में उसे कठिनाई होगी। तब उसने

सोच लिया कि चलने से पहले वह मोहनलाल रोड से किताबों के नोट्स ले आयेगा। शिमले में वह चन्द्रा को गद्य, पद्य, इतिहास और निबन्ध पढ़ा देगा। रही ग्रामर और छन्द-अलंकार वग़ैरा की बात, तो वह सब लाहौर आ कर पहले चन्दा से पढ लेगा, फिर चन्द्रा को पढा देगा।....दो-चार क्षण वह सोच की मुद्रा मे, माथे पर उँगली फेरता रहा, फिर उसने ऐसे पूछा, जैसे वह किसी और ट्यूटर के सिलसिले मे जानकारी चाह रहा हो।

"कितने महीने आपके ट्यूटर को शिमला रहना होगा ?"

"पाँच महीने—मई से तीस सितम्बर तक।"

चेतन के दिमाग़ मे गत वर्ष के शिमला-प्रवास का अपना अनुभव घूम गया। उसने कहा, "वहाँ खाने-रहने का क्या इन्तज़ाम होगा ?"

"जो भी जायगा, खाना हमारे साथ खायेगा," लाला जी ने कहा और समझाया, "याने जो हम खायेंगे, वही वो खायेगा और जहाँ हम रहेंगे, वहीं वो रहेगा।"

"ट्यूटर को आप कितने रुपये महीना देंगे ?"

"मै सोचता हूं, मैं चालीस रुपये महीना दे सकूंगा।" उन्होंने अंग्रेज़ी मे कहा।

चेतन ने जल्दी-जल्दी मन में हिसाब लगाया—कविराज उसे सूखे पचास रुपये देते थे। खाना उसे मील-डेढ-मील चल कर खाना पड़ता था। ढाबे के खाने से लाला जी के घर का खाना हर हाल में अच्छा होगा। रोटी और रिहायश के साथ चालीस रुपये बुरे नही, लेकिन उसने इस तरह कहा, जैसे वह किसी दूसरे की सिफ़ारिश कर रहा हो : "देने तो आपको पचास रुपये चाहिएँ...."

"नही, चालीस से एक पाई ज़्यादा नही दूँगा," लाला जी ने उसकी बात काट कर कहा, "मै सोच चुका हूँ।"

तब चेतन ने थोड़ा झिझकते हुए कहा, "आप मंजूर करें तो मैं चला चलूँगा।"

"लेकिन आपकी सोसाइटी का क्या होगा ?"

चेतन ने आँख उठा कर उनकी ओर देखा कि उन आँखों में व्यंग्य है अथवा महज़ जिज्ञासा। फिर उस ओर से आश्वस्त हो कर उसने कहा, 'सोसाइटी को उतने दिन जनरल सेक्रेट्री या असिस्टेण्ट सेक्रेट्री देख लेंगे। प्रेजिडेण्ट की मदद से वो सोसाइटी का काम चलायेंगे। वापस आ कर मैं सँभाल लूँगा।"

(हालाँकि चेतन के दिमाग में पहले किसी जनरल सेक्रेटरी या असिस्टेण्ट सेक्रेट्री की बात नहीं थी। वह स्वयं सोसाइटी का सेक्रेट्री होगा, यही उसने तय किया था, लेकिन लाला हाकिमचन्द से यह बात कहते ही उसने तय किया कि अगर उसे यह ट्यूशन मिल जाती है तो जाने से पहले वह सोसाइटी का उद्घाटन करके, उसी जलसे में हुनर साहब को जनरल सेक्रेट्री और शातिर को असिस्टेण्ट सेक्रेट्री बनवा देगा। जितने पैसे इकट्ठे हो गये हैं, उनकी एक शानदार पार्टी, मेम्बरों और सरपरस्तो को देगा और सोसाइटी की मुसीबत हुनर साहब के गले डाल, शिमला चला जायगा।)

"आपको कुछ पढने-पढाने का तजरुबा भी है?" सहसा लाला हाकिमचन्द ने प्रश्न किया।

(प्रकट ही लाला जी उससे पिण्ड छुड़ाना चाहते थे, लेकिन चेतन ने उनके इस प्रश्न को वरदान समझ कर, इसके सहारे अपनी बात आगे बढा दी।) लाला हाकिमचन्द के आर्य समाजी रुझान को जान कर उसने सबसे पहले जालन्धर के साईदास ऐंग्लो-संस्कृत हाई स्कूल और डी० ए० वी० कॉलेज का उल्लेख किया और इशारे से यह बताया कि वह प्राइमरी से बी० ए० तक, आर्य समाजी संस्थाओं मे पढ़ा है। फिर उसने कहा : "मैं तो बी० ए० का इम्तहान दे कर ही, अपने स्कूल मे आठवीं से दसवी तक के लड़कों को पढ़ाने लगा था। हेड मास्टर ने, पढाने में मेरी दिलचस्पी देख कर, मुझे दो ट्यूशनें भी ले दी थी।"

वह क्षण भर को रुका। फिर बोला, "यूँ नौकरी की मुझे कमी नहीं है। लगभग दो बरस मुझे अख़बारों में काम करते हो गये हैं। लेकिन वहाँ रात की ड्यूटी देनी पड़ती है और सेहत मेरी गिर गयी है। इसीलिए मैंने

अखबारों की नौकरी छोड़ दी है और आते सितम्बर में लॉ कॉलेज मे दाखिला ले लूंगा। आप मुझे मौका देंगे तो आपको शिकायत न होगी। आपकी लड़की को मैं यकीनन पास करा दूँगा।"

लाला जी चुपचाप उसकी बातें सुनते रहे। तब उत्साह पा कर चेतन ने उन्हे बताया कि ग्रैजुएट ट्यूटर, किसी शास्त्री-वास्त्री से किस तरह अच्छा होता है; कि हिन्दी 'रत्न' मे एक पेपर इतिहास का रहता है। उसका स्तर मिडल अथवा मैट्रिक मे पढ़ाये जाने वाले इतिहास से ऊँचा नही होता। पण्डित तो उतना ही पढायेगा, जितना पुस्तक में लिखा होगा। पर ऐसा ट्यूटर, जिसने बी० ए० तक इतिहास पढ रखा हो, छात्र को निश्चय ही ऐसे संकेत दे सकता है, जिससे कि वह ज़्यादा-से-ज़्यादा नम्बर पा जाय!

"मिसाल के लिए बादशाह बलबन ही को लीजिए।" चेतन ने कहा, "छोटे दर्जों के इतिहास में यह कही भी नही पढ़ाया जाता कि बलबन ने अपने उन चालीस दोस्तों को मरवा डाला था, जो जवानी मे उसके साथी थे और जिनके बल पर वह आगे बढ़ा और बादशाह बना था। अब अगर स्टूडेण्ट को इस बात की जानकारी हो और वो बलबन पर नोट लिखते समय एक पंक्ति मे यह बात लिख दे तो उसे चार मे से चार नम्बर मिल जायेंगे।"

और चेतन ने राणा साँगा, अलतमश, रज़िया सुल्ताना, शेरशाह सूरी, आदि, इतिहास के उन प्रसिद्ध व्यक्तियों के बारे मे, जिन पर प्रायः चार-चार अंकों के प्रश्न पूछे जाते थे, लाला हाकिमचन्द को कई ऐसी जानने-योग्य बातें बतायी। फिर उसने कहा : "छठा पेपर एस्से (निबन्ध) का होता है। मैं खुद कहानियाँ और नज़्में लिखता हूँ। आठवीं जमात मे जो एस्से मैंने लिखा था, वह हमारे पण्डित ने मैट्रिक के छात्रों को सुनाया था और मुझे पन्द्रह मे से पन्द्रह नम्बर दिये थे। मै आपकी लड़की को इतना सुन्दर एस्से लिखना सिखा दूँगा कि अगर वह ग्रामर मे कुछ कमज़ोर भी हुई तो एस्से के पेपर में सौ में से अस्सी नम्बर ले कर पास हो जायगी।"

लाला हाकिमचन्द काफ़ी प्रभावित हुए। लेकिन उन्होंने 'हाँ' की, न

'ना' और कहा कि वे ट्यूटर तो आचार्य देशबन्धु की राय ही से रखेंगे।

"एक हफ़्ते बाद आप मुझसे मिलियेगा," उन्होंने कहा, "इस बीच मैं आचार्य जी से राय ले लूँगा।"

"आचार्य देशबन्धु मुझे अच्छी तरह जानते हैं।" चेतन ने कहा, "आप जरूर उनसे पूछ लीजिए।"

और उस मुलाकात के लिए उन्हें धन्यवाद दे कर और लाला हाकिम-चन्द को 'नमस्कार' करके, वह बाहर निकला। हालाँकि बारह बज गये थे और उसे हल्की-सी भूख लग आयी थी, पर उसने तय किया कि वह सीधा आचार्य देशबन्धु के जायगा और इस ट्यूशन की बात को पक्का करके ही फिर कुछ और करेगा।






उनतीस

"कहने को मै तुम्हारी तारीफ़ में दस बातें कह दूँगा।" भाई साहब ने कहा, "लेकिन मै तुम्हे यह ट्यूशन लेने की सलाह नही देता।"

भाई साहब दुकान के पिछले हिस्से मे स्टूल पर बैठे हुए, छत से लटकने वाले एक मद्धम बल्ब की रोशनी में प्लास्टर के सेट से फालतू प्लास्टर छील रहे थे कि चेतन, दोनों पार्टीशन पार करता हुआ, आंधी की तरह दुकान में दाखिल हुआ था और अन्तिम पार्टीशन का पर्दा उठा कर सोत्साह चिल्लाया था : "लीजिए भाई साहब ! इस साली सोसाइटी के चक्कर से तो मुझे नजात मिल गयी और सौ नही तो पचहत्तर फ़ीसदी मै अगले महीने शिमला जा रहा हूं।"

भाई साहब उधर पीठ किये बैठे थे। चेतन की बात सुनते ही, उनका चाकू वाला हाथ जहाँ-का-तहाँ थम गया। वे ज़रा मुड़े और मुँह-बाये, उसकी ओर देखने लगे थे।

"लेकिन तुम तो लाला हाकिमचन्द से मिलने गये थे," क्षण भर बाद उन्होंने कहा।

"वही से आ रहा हूँ!" चेतन ने उत्तर दिया।

"मैंने सोचा, शायद कविराज की तरह निकल गये और पिछले साल की तरह वे ही तुम्हे शिमला ले जा रहे हैं।" भाई साहब ने कहा।

"वह साला क्या मुझे शिमला ले जायगा," चेतन व्यंग्य और ऊँचाई से हँसा था, "उसे किताब लिखवानी थी, सो लिखवा ली ! अब उसे मेरी

क्या ज़रूरत है ? सोसाइटी शुरू करते ही मैं उसके पास गया था कि अगर वह इस बार भी शिमला जा रहा हो तो उसके लिए एक और किताब लिख दूँ, लॉ कॉलेज के लिए दाखिला जुटा लूँ और सोसाइटी के चक्कर में न पड़ूँ, लेकिन साले ने 'हिम्मते-मर्दा-मददे-खुदा'[1] पर आध घण्टा भाषण पिला दिया और मतलब की बात साफ़ गोल कर गया। पर भगवान ने चाहा तो मै शिमला जाऊँगा और उन शर्तों से बेहतर पर जाऊँगा, जिन पर वह मुझे ले गया था।"

"तो फिर किस के साथ जा रहे हो ?"

"बात बन गयी तो लाला हाकिमचन्द के साथ !"

"तुम तो उन्हें सोसाइटी का मेम्बर बनाने गये थे !" भाई साहब ने किंचित आश्चर्य के साथ पूछा।

"सोसाइटी आज से खत्म समझिए !—याने जहाँ तक उसका मुझसे ताल्लुक है।" चेतन ने फ़ैसला-कुन अन्दाज़ में कहा और फिर अपने में गुम हो गया।

भाई साहब झुँझला उठे थे : "बताना है तो सीधी तरह सारी बात बताओ ! यह क्या कि चिड़िया के बच्चे को चोगा दे रहे हो," और पलट कर वे फिर चाकू से प्लास्टर खुरचने लगे।

तब चेतन ने बढ़ कर दूसरा स्टूल खींच लिया था। वहाँ से एक अख़बार उठा कर उस पर रख लिया था और भाई साहब के बराबर बैठ कर उसने चन्द्रा की ट्यूशन के सिलसिले में लाला हाकिमचन्द के साथ होने वाली बातचीत का पूरा ब्योरा दिया।

"वैसे तो लाला जी आचार्य देशबन्धु से राय लेंगे," सारी बात सुना कर चेतन ने कहा था, "लेकिन आपके पास आयें और मेरे बारे में पूछें तो उनकी तसल्ली कर दीजिएगा—यही कि उनकी लड़की को हिन्दी 'रतन' पास कराने में मुझे ज़रा भी मुश्किल पेश न आयेगी।" वह क्षण भर रुका,

---

१. **मर्द हिम्मत करे तो भगवान उसकी मदद करता है।**

फिर उसने कहा था, "कह दीजिएगा कि चेतन की बीवी 'हिन्दी रतन' पास कर चुकी है और इस साल 'प्रभाकर' की परीक्षा दे रही है और चेतन खुद उसे पढ़ाया करता है। वह आपकी लड़की को पढ़ायेगा तो वह बहुत अच्छे नम्बरों में पास हो जायगी।"

सेठ का फालतू धीरे-धीरे मुस्कराते हुए भाई साहब चुपचाप उसकी बात सुनते रहे थे। फिर हठात उन्होंने सिर उठा कर पूछा, "तो क्या तुमने सोसाइटी की बात ही उनसे नहीं की?"

"की क्यों नहीं," चेतन हँसा, "मैं तो पहले घण्टा भर उन्हें सोसाइटी के बारे में ही बताता रहा। लाला जी भी ऐसे सवाल पूछते रहे, जैसे सारी लोकलिटी को 'सोसाइटी फार यू एण्ड मी' का मेम्बर बना देंगे। लेकिन जब मैंने मेम्बर बनने के लिए कहा तो साफ टाल गये। असल में उनका दफ्तर मई में शिमला जा रहा है और पाँच महीने मुफ्त में चन्दा देना उन्हें मंजूर नहीं। फिर मैं नहीं समझता, उन्हें कल्चर-वल्चर से कुछ लेना है। मुझे सलाह देने लगे कि मैं सोसाइटी के स्टेज से स्वामी सत्यदेव और शुद्धदेव की कथा कराऊँ।" चेतन ने जोर का ठहाका लगाया। "वक्त तो मेरा लाला जी ने बहुत बरबाद किया, लेकिन ट्यूशन की बात करके उन्होंने सारी कसर निकाल दी।" और चेतन उठा था। जगह होती तो वह स्वभाव के मुताबिक वहाँ टहलता, लेकिन उस वक्त सीढ़ी के पाये में दायाँ कन्धा लगा कर खड़ा हो गया।

लेकिन भाई साहब उसकी खुशी में शरीक नहीं हुए। वे अभी सोसाइटी में ही उलझे थे। जब वे बोले तो उनके स्वर में हल्की-सी खीझ थी: "और ये इतने मेम्बर और सरपरस्त जो तुमने बना लिये हैं, वे किसकी जान को रोयेंगे?"

"उस सिलसिले में मैंने सोच लिया है," चेतन ने आश्वस्त भाव से कहा था, "अगर मेरा शिमला जाना पक्का हो गया—लाला जी ने एक हफ्ते बाद मुझसे मिलने को कहा है—तो जितना रुपया मैंने चन्दे में इकट्ठा किया है, उससे मेम्बरों और सरपरस्तों को एक शानदार पार्टी दूँगा, वहीं

एग्ज़िक्यूटिव का चुनाव करा दूँगा और हुनर साहब को जनरल सेक्रेट्री बना कर, सोसाइटी का भार उन्हें सौंप दूँगा। वे आजकल बेकार हैं। उन्हें भी काम मिल जायगा और मुझे भी सोसाइटी के चक्कर से मुक्ति मिलेगी। हुनर साहब ऐसे काम के लिए पूरी तरह फ़िट हैं। मेरे बस का यह रोग नहीं। इस काम के लिए गैण्डे की खाल वाला आदमी चाहिए—ऐसा, जो बेझिझक मुँह-देखी बात कर सके और बाद में दुखी न हो। देख लीजिएगा—हुनर साहब सोसाइटी के समन्दर में मछली की तरह तैरेंगे।" वह क्षण भर रुका फिर उसने कहा :

"बस आप लाला हाकिमचन्द से मेरी सिफ़ारिश मे दो बातें कह दीजिएगा। शायरों को लोग आम तौर पर गैर-ज़िम्मेदार समझते हैं। आप इस तरफ़ से ज़रा उनकी तसल्ली कर दीजिएगा कि...."

लेकिन उसे बात पूरी करने का अवसर दिये बिना, उन्होंने जो बेश-कीमत सलाह उसे दी थी, उससे चेतन ध्वस्त हो गया था।

"जी....?" उसके होंटों से अस्फुट-सी ध्वनि निकली।

"हाँ-हाँ," भाई साहब ने अपनी बात दोहरायी, "मैं तुम्हें यह ट्यूशन लेने की सलाह नहीं देता!"

वह क्या कहे, चेतन हठात तय न कर पाया। उसका ख्याल था कि भाई साहब उसकी इस कारगुज़ारी पर खुश होंगे और जिस तरह वह लाला हाकिमचन्द को ढर्रे पर ले आया, उसकी दाद देते हुए, अपने उस पेशेण्ट की सनकों का ज़िक्र करेंगे और उसकी भरपूर सिफ़ारिश करने का आश्वासन देंगे। लेकिन वे तो ट्यूशन की बात सुन कर ही भड़क गये।....'शायद अभी भाई साहब पर कल की घटना का असर बाकी है,' चेतन ने सोचा, 'इसीलिए उनका सेंस आफ़ ह्यूमर एक दम जवाब दे गया है और मैं लाला हाकिमचन्द की मुलाकात के सिलसिले में जो बात कहना चाहता हूँ, उसे वे सही रूप मे ले नहीं पा रहे।'....वह चुप खड़ा उनकी ओर देखता रहा कि शायद भाई साहब अपनी नेक सलाह का कोई कारण बतायें। जब इससे

ज्यादा उन्होंने कुछ न कहा तो वह स्टूल पर उनके सामने बैठ गया और उसने पूछा : "क्यों भाई साहब ?"

"तुमने लड़की देखी है ?" भाई साहब ने जैसे गोली दागी ।

"नहीं !"

"बहुत सुन्दर है ।"

चेतन चुप रहा ।

"और कई ट्यूटरों को पिटवा चुकी है ।"

वे क्षण भर रुके । फिर प्लास्टर के सेट को गोद में रख कर, अपने उस 'मूर्ख' छोटे भाई को समझाते हुए उन्होंने कहा, "चन्द्रा मेरे यहाँ कई बार आ चुकी है । लाड में पली हुई, सुन्दर और बेदिमाग़ लड़की है । दो बार मैट्रिक में फ़ेल हो चुकी है । लाला जी को उसकी शादी कर देनी चाहिए । पर वे उसे बच्ची समझते हैं और उसे बी० ए० कराने के पीछे पड़े हैं !" भाई साहब पल भर को रुके । फिर बोले, "लाला जी ने मुझसे भी किसी ट्यूटर का ध्यान रखने की बात की थी, लेकिन मुलतान रोड के सरकारी क्वार्टरों के कई लोग मेरे पेशेण्ट हैं, उनसे मुझे जो मालूम हुआ है, मैंने तुम्हें बता दिया है, अब तुम जानो ।"

और जैसे अपने कर्त्तव्य से छुट्टी पा कर, परम निर्लिप्त भाव से भाई साहब फिर चाकू की नोक से, सेट का फ़ालतू प्लास्टर खुरचने लगे ।

चेतन के सामने वह सारा तरद्दुद घूम गया, जो लाला हाकिमचन्द ही को नहीं, आचार्य देशबन्धु को भी अपने ढब पर लाने के लिए उसे करना पड़ा था ।

o

....वह लाला हाकिमचन्द से मिल कर सरकारी क्वार्टरों से निकला था तो उसकी तमाम वृत्तियाँ केवल इस एक बिन्दु पर केन्द्रित हो गयी थी कि वह क्या करे, जिससे आचार्य देशबन्धु लाला हाकिमचन्द से उसकी सिफ़ारिश कर दें ।

सरकारी क्वार्टरों से ले कर ठण्डी सड़क तक मुलतान रोड एकदम

सूनी और उजाड़ थी। न कोई पेड़, न कोई दुकान, न मकान। सिर्फ़ क्वार्टरों के पार सड़क के नीचे, शहर के किसी रईस का बाग़ था, जिसमें एक सफ़ेद इमारत खड़ी थी। एक उड़ती-सी नज़र उस पर डाल कर, चेतन सिर को थोड़ा झुकाये, गर्दन आगे बढ़ाये, पैडलों पर ज़ोर से पैर मारता हुआ बढ़ा आया था। सड़क पर दोनों ओर छतनार पेड़, दुकानें या इमारतें होतीं और खवे-से-खवा छिलता, तो भी शायद वह अपने ध्यान में मग्न, रास्ता बनाता, साइकिल दौड़ाये चला आता।

अपनी अनुभवहीनता, कमज़ोरी और झूठे अहं के कारण, वह सोसाइटी के चक्कर में तो फंस गया था, लेकिन चाहने पर भी ख़ुश-असलूबी से, बाइज़्ज़त तौर पर, उससे निकलने का कोई रास्ता उसे नज़र न आ रहा था। लाला हाकिमचन्द की बात सुन कर अचानक उसे रास्ता सूझ गया था।—यह ट्यूशन, घुप्प अँधेरे में दूर टिमटिमाती हुई रोशनी-ऐसी ही थी, पर चेतन को लगता था कि वही उसे सोसाइटी के जंगल से निकाल देगी, जिसकी भूल-भुलैया में वह हर नये दिन फँसता जा रहा था। उसे तो तभी इस बात का एहसास हुआ था, जब वह सूफ़ी हनुमान प्रसाद से मिल कर आया था। कविराज उसकी बाँह पकड़ लेते तो वह इस दलदल में धँसने से बच जाता, लेकिन उन्होंने पाँच रुपये और धैर्य का उपदेश उसे थमा कर, अपना दामन बचा लिया था और उसे दलदल में धकेल दिया था।

तब उसने अपने पिता के उपदेश का सहारा लिया था—एक माई का लाल जो कर सकता है, दूसरी माँ का बेटा भी यकीनन वह सरअंजाम दे सकता है। इसी सूत्र को ध्रुव सत्य मान कर, उसने पल्ले बाँध लिया था; लेकिन वह नहीं जानता था कि सभी सूत्र और सत्य—समय, स्थिति, स्थान और व्यक्ति-सापेक्ष होते हैं। नेपोलियन की तरह जो दुनिया पर विजय पाना चाहे, उसमें नेपोलियन के गुण होने चाहिएँ और फ्रांस की-सी स्थिति। —चौधरी जिस काम को बड़ी आसानी से कर रहा था, वह भी उसे कर सकता था, यदि वह चौधरी जैसा होता; लेकिन वह चौधरी जैसा नहो था,

न किसी बीमा-एजेण्ट जैसा ही था ! वह उस तरह अपने आप को ढाल तो सकता था, पर किस लिए—दूसरों के मनोरंजन की खातिर सोसाइटी चला कर, खाते में अपनी रोज़ी-रोटी का जुगाड़ करने के लिए ! चेतन को लगा था कि लाला जीवनलाल ने कितनी भी तल्ख़ बात क्यों न कही हो और वह उसे सुन कर कितना भी क्यों न तिलमिलाया हो, पर थी वह सच । 'यह प्रॉस्टिट्यूशन[1] नहीं तो और क्या है ?' उसने सोचा, 'बल्कि प्रॉस्टिट्यूशन से भी गयी-गुजरी, खालिस दलाली !'—वह शायर, कथाकार, संगीतज्ञ, भाषणकर्ता इकट्ठे करेगा, उन्हें सोसाइटी के मंच पर लायेगा, उसमें लोगों की कल्चरल भूख मिटायेगा (दूसरे शब्दों में उनके ऊब-भरे क्षणों में उनका मनोरंजन करेगा) और उस खाते में अपनी रोजी-रोटी की डौल बैठायेगा—यह दलाली नहीं तो और क्या है ?. ..हाँ, उसके पास खूब धन होता, खूब वक्त होता और वह मन के सुख की खातिर अपने और दूसरों के सुख का सामान जुटाता; न दर-दर चन्दा माँगता, न हर बार अपमानित होता, तब बात दूसरी थी; लेकिन अब....अब....और चेतन को अपने आप पर क्रोध आया कि उसने स्थिति पर इस पहलू से पहले क्यों विचार नहीं किया । क्यों जानता हुआ भी, वह इस चक्कर में फँसता गया । इसके बदले अनारकली में आवाज लगा कर रूमाल बेचना, क्या हजार-हजार दर्जे बेहतर नहीं था ?....लेकिन वह क्या करता, एक बार इस चक्कर में फँस कर उसे निकलने का मार्ग दिखायी न देता था; वह हर बार सोचता, हर बार कसम खाता, तड़फड़ाता; लेकिन पण्डित रत्न क्या कहेंगे, कविराज क्या कहेंगे ?—यही प्रश्न उसके रास्ते की दीवार बन जाते....अब अगर यह ट्यूशन मिल जाय तो बड़ी खुश-असलूबी से वह इस चक्कर से निकल जायगा—जितना पैसा उसने लिया है, वह सोसाइटी के सदस्यों पर खर्च कर देगा और शिमला चला जायेगा । न पण्डित रत्न कुछ कह सकेंगे, न कविराज....अगर ट्यूशन उसे मिल जाय तो शिमला जाने से पहले, वह सोसाइटी के उद्घाटनोत्सव के कार्ड छपवायेगा । सब को जा

---

1. वेश्यावृत्ति

कर स्वयं दे आयेगा। उसी मीटिंग में एग्जिक्यूटिव का चुनाव करायेगा और हुनर साहब का नाम जनरल सेक्रेट्री के लिए प्रोपोज़ करेगा। वह उनकी ऐसी हवा बाँधेगा कि वे निर्विरोध चुन लिये जायँ. और विरोध भी कौन करेगा? कौन सौ-पचास मेम्बर हैं? जो लोग सरपरस्त बने हैं, जाने उनमें से कोई आता भी है या नहीं और जो अदीब और पत्रकार आयेंगे, उनकी तरफ़ से काला चोर सेक्रेट्री बन जाय! उन्हें चाय-पेस्ट्री, केक और नमकीन से ग़रज़ होगी।....भगवान ने कैसे आड़े वक्त हुनर साहब को भेजा है!....'यथेव विधाता वधीयति तथेव शुभाय' चेतन ने मन-ही-मन दोहराया। 'मह्यम शुभाय!' उसने जोड़ा....'जरूर ही विधाता ने ऐसे वक्त हुनर साहब को भेजा है, जब मै इस चक्कर में फंसता जा रहा था।'.... यकीनन विधाता ने लाला हाकिमचन्द को इस बात की प्रेरणा दी है कि वे उसी से ट्यूटर की बात पूछें। यदि वह इस सुअवसर का लाभ नही उठाता तो उस जैसा मूर्ख कोई दूसरा नही होगा और भगवान मूर्खों की सहायता करते है, इसमे चेतन को भारी सन्देह था....

सब तरफ़ से बेखबर, मुलतान रोड पर साइकिल चलाते हुए, वह यही सब सोचता, बढ़ा आया था और उसकी चाल अपने आप धीमी हो गयी थी ....वह भी अजब दिवास्वप्नी है—उसने बेज़ारी से सिर को झटका दिया था—अंग्रेज़ी कहावत के अनुसार वह अण्डे तिड़कने से पहले ही चूज़े गिनने लगता है। जब तक आचार्य देशबन्धु हामी न भरें, उसे भविष्य की कोई स्कीम न बनानी चाहिए। अपनी तमाम वृत्तियाँ उसे इस एक समस्या पर केन्द्रित करनी चाहिएँ कि वह कैसे आचार्य जी को अपनी सहायता के लिए तैयार कर दे....और फिर सिर को झुका कर, गर्दन आगे बढ़ा कर, वह पैंडलों पर ज़ोर-ज़ोर से पैर मारने लगा।

....वह आचार्य देशबन्धु से परिचित था। वे 'आर्य समाज कॉलेज सेक्शन' के आजीवन सदस्य थे, अविवाहित थे और उन्होने अपना जीवन वेदों के अध्ययन-मनन और शोध के लिए अर्पित कर दिया था। वेदों का उन-जैसा पण्डित, सारे प्रान्त में दूसरा नहीं था। कुछ वर्ष पहले आर्य

समाज के वार्षिक अधिवेशन पर उन्होंने घोषणा की थी कि वेद देववाणी नहीं हैं, वरन मानव-वाणी ही है; कि आर्य ऋषियों ने वेदों में आर्यों का इतिहास, उनकी प्रार्थनाएँ, उनके गीत और ज्ञान भर दिया है। इस पर कट्टर आर्य समाजियों में भयंकर बवण्डर मचा था, लेकिन आचार्य देश-बन्धु के अकाट्य तर्कों ने सब को निरुत्तर कर दिया था। चेतन के सामने उनका सरापा घूम गया—ठिगना-सा कद, पतला-छरहरा शरीर, श्याम वर्ण, मुँह पर शीतला के दाग, घुटन्ना पायजामा, कमीज़, बन्द गले का कोट और घुटी हुई आर्य समाजी पगड़ी। बहुत ही धीमा और मीठा स्वर! चातक जी और वेदालंकार जी के कारण वह उनसे दो-तीन बार मिल चुका था। वे डी० ए० वी० कॉलेज होस्टल में रहते थे और वहीं उनका शोध-कार्य चलता था। चेतन को पूरा विश्वास था कि वह ठीक ढंग से अपनी बात उनके सामने रखेगा तो उन्हें अपनी मदद पर आमादा कर लेगा।....

इन्हीं विचारों में गुम, वह कब मुलतान रोड और ठण्डी सड़क पार कर, डी० ए० वी० कॉलेज होस्टल पहुँच गया, उसे पता नहीं चला। वह साइकिल से उतर कर होस्टल के बड़े मेहराबदार गेट के अन्दर जाने लगा था कि उसे ख़याल आया, वह उनसे घनिष्ट नहीं है। कभी पहले अकारण उनसे मिला नहीं। ऐसे ही चले आने और सीधे अपनी बात कहने पर, हो सकता है, वे हामी न भरें। क्यों न वह अपनी कहानियों का संग्रह भेंट करने के बहाने उनके पास जाय और बात-बात में अपनी समस्या भी उनके सामने रखे....

और यह ख़याल आते ही वह पलटा। पहले उसने सोचा कि वह घर जाय और संग्रह की एक प्रति ले आये, लेकिन घर उसका दूर था। उसने तय किया कि वह लोहारी दरवाज़े के बाहर 'चमन बुक स्टॉल' से जा कर, संग्रह की एक प्रति लायेगा और उसने साइकिल मोड़ ली। भूख उसे लग-लग कर ख़त्म हो चुकी थी। तेज़-तेज़ साइकिल दौड़ाता, वह 'चमन बुक स्टॉल' पहुँचा। विधाता उसके अनुकूल लगता था। सौभाग्य से लाला

चमनलाल बैठे थे। उन्हें 'नमस्कार' कर, उनके पास बैठ, बिना इधर-उधर की ज़्यादा बात किये, उसने कहा कि वह उसी वक्त आचार्य देशबन्धु से मिलने जा रहा है और यदि लाला चमनलाल सलाह दें तो अपने कहानी-संग्रह की एक प्रति उन्हें भेंट कर आये!

"बात यह है," चेतन ने सरगोशी में कहा, "उनके यहाँ पंजाब के सभी शहरों के प्रिंसिपल और टीचर आते हैं। आचार्य जी ज़रा-सा भी ज़िक्र कर देंगे तो किताब का नाम हो जायगा। सभी डी० ए० वी० कॉलेज एक-एक किताब खरीदें तो सारा एडीशन बिक सकता है।"

लाल चमनलाल ने फ़ौरन एक प्रति, प्रकाशन के खाते में, उसे दे दी थी। हालांकि चेतन ने कहा कि वे चाहें तो एक प्रति स्वयं अपनी ओर से आचार्य जी को भेंट कर दें, लेकिन लाला चमनलाल ने जोर दिया कि नहीं, चेतन उन्हें अपनी पुस्तक की प्रति खुद भेंट करे, वे अपना काव्य-संग्रह 'चमनिस्तान' हस्ताक्षर करके उसे देते हैं, वह उसे अपनी पुस्तक के साथ देशबन्धु जी को उनकी ओर से दे दे। जब से पुस्तक छपी है, बहुत कम बिकी है। इस तरह कुछ प्रतियाँ बिक जायँ तो वे उसके बेहद मशकूर होंगे।

चेतन ने उन्हें विश्वास दिलाया था कि उनकी पुस्तक आचार्य जी को देते हुए, वह भरपूर प्रशंसा करेगा और कोशिश करेगा कि उसकी प्रतियाँ निकल जायँ। परम उत्साह से उसने उनकी पुस्तक ले ली थी और तीर की तरह उड़ता हुआ वापस आया था। डी० ए० वी० कॉलेज होस्टल पहुँचा तो उसकी साँस चढ़ी थी और माथे पर पसीना आ गया था।

वह क्षण भर तक, होस्टल के बड़े मेहराबदार गेट में खड़ा, साँस दुरुस्त करता रहा था। फिर अन्दर बढ़ गया था। आचार्य देशबन्धु वाले विंग में पहुँचा तो उसका दिल धड़क रहा था और वह सोच रहा था आचार्य जी कहीं गये न हों; दूसरों के साथ व्यस्त न हों; उसे मिल जायँ और बात कर लें।

सौभाग्य से आचार्य जी उसे सामने ही मिल गये। वे अपने कार्यालय के बाहर बरामदे में ही चटाइयाँ बिछाये, अपने शोध-छात्रों के साथ बैठे थे—उनके आगे एक डेस्क था और उनके शोध-छात्रों के सामने छोटी-छोटी चौकियाँ, जिन पर किताबें अथवा काग़ज़ रखे, वे कार्य-रत थे। होस्टल के चौड़े आँगन में साइकिल खड़ी कर, उन्हें 'नमस्कार' करता हुआ, चेतन उनके पास गया। उन्होंने आशीर्वाद दिया और उसे पास ही चटाई पर बैठा लिया।

"बहुत दिनों से आपके दर्शनों को आना चाहता था," चेतन ने धीरे-धीरे कहना शुरू किया, "मेरी कहानियों का एक संग्रह छपा है, मुन्शी चन्द्रशेखर ने उसकी भूमिका लिखी है, वही मैं आपको भेंट करना चाहता था, लेकिन मेरा संघर्ष इधर कुछ ऐसा भयंकर हो गया है कि मैं पहले नहीं आ सका।"

और चेतन ने अपनी अस्वस्थता; कविराज के साथ शिमला जाने; उन्हें पुस्तक लिखने में सहयोग देने; वापस आ कर नौकरी छूट जाने और दूसरी कोई स्थायी नौकरी न पा सकने का सविस्तार उल्लेख किया। (पुस्तक तो सारी-की-सारी उसी ने लिखी थी, लेकिन वह कविराज के नाम से छप रही थी और अपनी भूमिका में कविराज उसके 'सहयोग' की बात लिखने जा रहे थे, चूँकि वे भी आर्य समाज से सम्बन्धित थे, इसलिए चेतन ने सच्ची बात कहने से गुरेज़ किया।)

"पत्नी मेरी बच्चे से है," उसने अन्त में कहा, "और इसी साल 'प्रभाकर' की परीक्षा दे रही है। मैं लॉ कॉलेज में दाखिल होना चाहता हूँ। आज तो इसी सिलसिले में आपकी सेवा में आया हूँ।"

आचार्य देशबन्धु ने बड़े स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ रखते हुए पूछा था कि वे उसके लिए क्या कर सकते हैं।

"मेरे रास्ते में सबसे बड़ी मुश्किल, एकमुश्त दाखिले का इन्तज़ाम करने की है। मैं आज सुबह, एक काम के सिलसिले में, लाला हाकिमचन्द से मिला था। बातों-बातों में अपनी लड़की के लिए उन्होंने ऐसे ट्यूटर की

इच्छा प्रकट की, जो उनके साथ शिमला जा सके। मैंने उनसे कहा कि मैं उनकी लड़की को अच्छे नम्बरों से पास करा दूँगा—मेरी अपनी पत्नी ने 'रतन' कर रखा है और मैं ही उसकी मदद करता रहा हूँ। लेकिन वे जो भी फ़ैसला करेंगे, आपकी राय से करेंगे। आप मेरी सिफ़ारिश कर दें तो आपका बड़ा एहसान होगा। न सिर्फ़ दाख़िले का प्रबन्ध हो जायगा, बल्कि और कुछ नहीं तो एफ़० ई० एल० के ख़र्च की समस्या हल हो जायगी। ज़िन्दगी भर आपका आभार मानूँगा। मैं बेहद कमर-तोड़ जद्दो-जेहद से गुज़र रहा हूँ और आपकी सहायता और आशीर्वाद मुझे चाहिए।" जैसे एक ही साँस में यह सब कह कर, चेतन चुप हो गया और धड़कते दिल से आचार्य जी के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा।

आचार्य देशबन्धु के होंटों पर बड़ी प्यारी-सी मुस्कान आ गयी थी और उन्होंने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा था कि वह चिन्ता न करे, हाकिमचन्द उनसे पूछेंगे तो वे ज़रूर उसकी सिफ़ारिश कर देंगे।

तब चेतन ने लम्बी साँस ली थी और हिन्दी में उनका नाम लिख कर और हिन्दी में ही हस्ताक्षर कर के बड़े आदर और श्रद्धा से अपना संग्रह उन्हें भेंट किया था। पहले उसका जी हुआ था कि लाला चमनलाल का संग्रह गोल कर जाय, लेकिन उसका काम हो गया था, इसलिए परम उदारता से अपने प्रकाशक की कविताओं का संग्रह भी उसने आचार्य जी को भेंट कर दिया था।

भाई साहब चुपचाप चाकू से प्लास्टर खुरच रहे थे और चेतन सोच रहा था, उसे पहले मालूम होता कि ट्यूशन में कोई घपला है तो वह क्यों उसके लिए इतना परेशान होता। आचार्य जी के आश्वासन के बाद उसे लगा था, जैसे ट्यूशन उसकी जेब में आ गयी है, इसीलिए वह भागा-भागा सीधा भाई साहब की दुकान पर उन्हें यह ख़ुश-ख़बरी देने आया था और उन्होंने उसके उत्साह पर पानी के छींटे मार दिये। अफ़सोस के लहजे में उसने कहा : "मैं तो आचार्य देशबन्धु से भी मिल आया हूँ और उन्होंने

यकीन दिलाया है कि वो लाला हाकिमचन्द से मेरी सिफ़ारिश कर देंगे।"

"वो सिफ़ारिश कर देंगे तो लाला हाकिमचन्द तुम्हें ज़रूर शिमले ले जायेंगे," भाई साहब ने कहा, "लाला जी एक बरस से मेरे पेशेण्ट हैं—मैं उनके पिता का सेट लगा चुका हूँ, बुआ का सेट लगा चुका हूँ, खुद उनका, उनकी बीवी और लड़की का इलाज कर चुका हूँ। मैं उन्हें खूब जानता हूँ। लाला हाकिमचन्द और आचार्य देशबन्धु, न सिर्फ़ वतनी हैं, बल्कि इकट्ठे पढ़ते रहे हैं। लाला जी पर उन का बहुत असर है। वो उनको बहुत मानते हैं। लेकिन मैं तुम्हें राय नहीं देता कि तुम कुएँ से निकल कर खाई में गिरो। सोसाइटी के चक्कर से जी घबरा गया हो तो उसे छोड़ दो और कोई दूसरा काम अपना लो, लेकिन लाला हाकिमचन्द के साथ शिमला मत जाओ।"

कुछ क्षण भाई साहब फिर चुपचाप प्लास्टर खुरचते रहे और चेतन सोचता रहा कि अगर वह ऐसी खतरनाक लड़की होती तो आचार्य देशबन्धु ही उसे ख़बरदार न कर देते। इतना तरद्दुद करने के बाद वह अब यह ट्यूशन कैसे छोड़ सकता है?—ख़ास तौर पर उस वक्त, जब उस ट्यूशन से लॉ कॉलेज में उसके पहले वर्ष का ख़र्च सुनिश्चित हो जाता है।....

तभी भाई साहब, उसी तरह काम करते हुए, बिना उसकी तरफ़ देखे, जैसे अपने आप को सुनाते हुए, बड़बड़ाये...."कहीं ऐसी-वैसी बात हो जाय....चन्द्रा लाड में पली, खुदसर और खूबसूरत लड़की है....तुम भी जवान हो....हाकिमचन्द बड़े ज़ालिम आदमी हैं ...सख्त डिसिप्लिनेरियन.... मेरे मोतबर पेशेण्ट हैं और उनके ज़रिये उस कॉलोनी के बहुत-से लोग मेरे यहाँ आने लगे हैं...."

'तो यह बात है!' चेतन ने मन-ही-मन कहा, 'भाई साहब को मेरी नहीं, अपनी चिन्ता है।' वह तमक कर उठा और ख़ासे व्यंग्य और आक्रोश से बोला, "ठीक है, तब आप मेरी सिफ़ारिश न कीजिएगा! मैं नहीं चाहता कोई बात आप पर आये और मेरी खातिर आप झूठे पड़ें। हाकिमचन्द

अगर मेरे बारे में आपसे कुछ पूछें तो कोई नॉन-कमिटल-सी[1] बात कह दीजिएगा कि मेरा भाई है, ग्रेजुएट है, उर्दू-हिन्दी दोनों में लिखता है, पर मैं इस मामले में आपको कोई सलाह नहीं दे सकता ।''

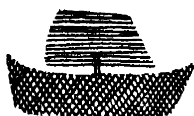
वह चलने के लिए मुड़ा, लेकिन फिर रुक कर उसने इतना और कहा, ''मैं तो शिमला ज़रूर जाऊँगा भाई साहब—याने अगर देशबन्धु मेरी सिफ़ारिश कर दें, आप भैंगी न मारें और लाला हाकिमचन्द मुझे ले जाने को तैयार हों !....उन्होंने मुझसे एक हफ़्ते बाद मिलने को कहा है....लड़की सुन्दर है तो क्या मुझे खा जायेगी ?....मैं अपनी तरफ़ से कोई मौका न दूँगा तो मुझे कैसे पिटवा देगी ?....और फिर वो कोई चुटियाधारी पण्डित होंगे, जो लाला हाकिमचन्द से पिट गये; मेरी तरफ़ वे टेढी नज़र से भी न देख सकेंगे, इसका मैं आपको यकीन दिलाता हूं ।''

भाई साहब का मुँह लटक आया था । चेतन ने उनकी ओर देखा तो इतना और जोड़ दिया, ''मुझे आपकी पोजीशन का पूरा एहसास है भाई साहब, मैं इस बात का खयाल रखूंगा कि अपने छोटे भाई की वजह से आपको निगाहें नीची न करनी पड़े ।''

वह पलटा और खट-खट करता हुआ, दोनों पार्टीशन पार कर, चिक उठा कर बाहर निकल आया ।



१. अनिश्चयात्मक



तीस

आम तौर से जब चेतन दुकान से उतरता और घर के लिए साइकिल पर सवार होता तो सरीता हुआ, महीलाल स्ट्रीट से निकल कर, नीला गुम्बद के पँचरस्ते पर, आगे-पीछे दायें-बायें से आने वाली कारों, ताँगों और साइकिलों से बचता हुआ, ज़ोरों से पैर मारता, फर्राटे से मेयो हस्पताल रोड की चढाई चढ जाता और 'ट्रिब्यून ऑफिस रोड' पर ही जा कर दम लेता; लेकिन उस वक्त, जब वह भन्नाया हुआ, भाई साहब के क्लिनिक की सीढ़ियाँ उतरा और साइकिल पर सवार हुआ तो उसका दिमाग बेहद तना था, उसकी आँखें सामने देख कर भी न देख रही थीं। महीलाल स्ट्रीट पार करते ही, वह साइकिल से उतर गया। उसने ध्यान से लम्बा पँचरस्ता पार किया और मेयो हस्पताल की चारदीवारी के साथ-साथ अपने ध्यान में मग्न, सडक की चढाई चढने लगा।

वह तो अपने बडे भाई की परेशानी और मुसीबत से एकदम विचलित हो जाता है और उसे दूर करने के लिए जी-जान लगा देता है और ये उसके बडे भाई हैं कि अपने स्वार्थ के आगे दो कदम भी नहीं जाते!—यही खयाल उसके दिमाग को धुँधला रहा था और वह कुढता-भुनता, दायें हाथ से साइकिल का हैण्डल पकडे, सडक के किनारे-किनारे पैदल चढाई पार कर रहा था। घण्टे भर तक वह लाला हरिभजनन्द पर अपनी योग्यता का सिक्का जमाता रहा था; बिना खाने की परवाह किये, वह मुलतान रोड से लोहारी दरवाज़े पहुँचा था; फिर वहाँ से अपना कहानी-संग्रह ले कर आचार्य देशबन्धु से मिला था और उन्हें अपनी परिस्थिति बता कर उसने उनसे

सिफ़ारिश करने का वचन लिया था और यहाँ भाई साहब ने उसे ट्यूशन लेने से ही मना कर दिया....उन्हें उसकी नहीं, अपनी चिन्ता थी और चेतन के सामने पिछले दिन की घटना घूम गयी, जब भाई साहब एकदम चकरा गये थे और उन्हें नहीं सूझ पा रहा था कि वे क्या करें, तब उसी ने डॉ० लखनपाल के यहाँ जाने की सलाह दी थी, खुद भी साथ गया था और लखनपाल से वेदालंकार जी की दाढ़ें निकलवा कर, उन्हें घर छोड़ कर, अपने खाने-पीने की चिन्ता न करके, उन्हें सेंक दे कर और उन्हें आराम से सुला कर आया था।....यह ठीक है, वापस वह हुनर साहब की मौजूदगी में, उन पर बमकने लगा था, लेकिन वह उनकी ख़ातिर कितना परेशान हुआ था!....और फिर जब उसने देखा था कि वे बेहद उदास और हतोत्साह हो आये हैं और लाला हाकिमचन्द को उन्होंने लौटा दिया तो उनका साहस बढ़ाने और उनका मूड ठीक करने के लिए उसने हुनर साहब के साथ मिल कर, कितना तरद्दुद न किया था।....चेतन के सामने पिछली शाम की सारी घटना घूम गयी....

लाला हाकिमचन्द को रास्ते में रोक, उनसे मिलने का समय ले कर, जब वह वापस लौटा था तो भाई साहब, वैसे ही काउच के कोने में, हाथ माथे पर रखे, पसरे हुए थे और हुनर साहब अपनी तमाम चौकड़ियाँ भूल कर, अपने स्वभाव के एकदम विपरीत, दूसरे कोने में चुप बैठे थे। चेतन खामोशी में क्षण भर उन्हें देखता रहा था, फिर उसने कहा था, "भाई साहब देखिए, सुबह जो लस्सी का गिलास पिया है सो पिया है, उसके बाद मुँह में दाना भी नहीं गया और वेदालंकार जी के यहाँ से पैदल आया हूँ। भूख लग कर मर चुकी है। सिर में हल्का-सा दर्द होने लगा है, आपने भी कुछ नहीं खाया। जो हो गया, सो हो गया। चलिए, उठिए, सिन्धी होटल...."

"अब तो शाम हो गयी," भाई साहब ने वैसे ही पसरे हुए, उसकी बात काट कर बेदिली से कहा, "अब कुछ खा लेंगे तो रात का खाना बर-बाद हो जायगा।"

"मैं खाना खाने को थोड़ी कहता हूँ।" चेतन ने कहा, "चलिए, आलू-छोले की एक-एक प्लेट के साथ दो-दो कुलचे खा आयें।"

"हाँ-हाँ उठो।" हुनर साहब ने स्वयं उठते और भाई साहब का हाथ पकड़ कर उन्हें उठाते हुए कहा, "तुम्हारा मूड बदल जायगा। अब एक ठोकर लग गयी तो ज़मीन पर चारों खाने चित थोड़ी पड़े रहोगे। फ़रसूदा शे'र है, लेकिन सच्चा है :

गिरते हैं शहसवार ही मैदान-ए-जंग में
वह तिफ़्ल क्या करेगा जो घुटनों के बल चले !"

भाई साहब उठे। बड़े उदास भाव से उन्होंने कहा, "मैं सोचता हूँ, अच्छा हुआ गुप्ता काम सीख कर कुछ दिन पहले चला गया। नहीं तो उस पर क्या असर पड़ता...."

"असर क्या पड़ता, उसे भी तजरुबा हो जाता।" और हुनर साहब ने एक खोखला ठहाका लगाया था।

भाई साहब चुपचाप उनके साथ चल पड़े थे। रास्ते भर चेतन, हुनर साहब की मदद से, उनका ध्यान बटाये रहा था और जब वे आध-पौन घण्टे बाद 'सिन्धी होटल' से (जो उनके क्लिनिक के निकट ही, अनारकली में था) वापस आये थे तो चेतन ने देखा था कि भाई साहब श्री वेदालंकार और उनकी क्षत-विक्षत दाढ़ी का यकसर भूल चुके थे।

रात वह हुनर साहब को साथ ही लेता आया था और जब वे तीनों रसोई-घर में, चन्दा के सामने, खाने पर बैठे थे तो फिर वहाँ किस्सा शुरू हो गया था। भाई साहब डॉक्टर लखनपाल को गालियाँ देने लगे थे, कि साला उनका पक्ष लेने के बदले उन पर व्यंग्य कस रहा था, लेकिन चेतन को वेदालंकार के आभिजात्य पर हँसी आ रही थी, जिन्हें अत्यन्त शारीरिक कष्ट में भी क्लिनिक के पिछले हिस्से की गन्दगी, तकिये की सख्ती और चेतन के रूमाल के मैले होने का ध्यान रहा था।

तब भाई साहब ने चेतन को याद दिलाया था, 'तुम्हीं तो कहते थे कि अपने घर को जाते हुए, वे मोहनलाल रोड के छोटे, लेकिन भीड़-भरे गन्दे

रास्ते के बदले, माल और गोलबाग की तरफ़ से घूम कर जाते है।"

"सच ?" हुनर साहब ने पूछा था।

"हाँ, यह ठीक है।" चेतन ने कहा था।

"तब ऐसे नाजुक-मिजाज से तुम इसकी तो उम्मीद रख ही सकते हो," हुनर साहब ने कहा था, "यकीन रखो, मरने के बाद उन्हे चिता पर लिटाया जायगा तो लकडियो की सख्ती की शिकायत करते हुए, वे उठ कर बैठ जायेगे।"

इस पर दोनो भाइयों ने ठहाका लगाया था।

"ऐसे ही नाजुक मिजाजो के बारे मे किसी ने कहा है," हुनर साहब ने कहा और एक शे'र सुनाया :

> **"शायर का बाँकपन न गया बाद-ए-मर्ग[1] भी**
> **तख्ते पर आपको जो लिटाया, अकड गये।"**

शे'र सुनाते हुए 'अकड गये' पर उन्होंने ऐसी भगिमा से हाथ अकडाया कि रोटिया पकाते हुए चन्दा ने अपने मोती बिखेर दिये थे और दोनो भाइयो ने ठहाके लगाते हुए, उनसे कई बार यह शे'र सुना था।

चेतन ने वेदालकार जी के साथ व्यंग्य-भरी हमदर्दी प्रकट की थी, "बेचारे वेदालकार जी को इस गन्दे, मैले गरीब और फटे-हाल हिन्दुस्तान मे रहना पड रहा है," उसने कहा था और दिन को जो वह सोचता रहा था, मुखर हो कर उसके होटो पर आ गया था, "उन्हे चाहिए कि अपने पिता के आँखे बन्द करते ही, उनकी जमीदारी बेच कर, विलायत चले जायँ ताकि उन्हे फिर जिन्दगी भर इस गन्दगी और गलाजत का सामना न करना पडे।"

और जाने रसोई-घर मे बैठे, वे तीनो कब तक उस दुखद स्थिति पर हँसते, अगर चन्दा का स्वयं भोजन करना और रसोई का बाकी काम निबटाना न होता और वह चेतन को जरा-सा अलग बुला कर यह बात समझा न देती।

१. मरने के बाद

खाना खाने के बाद चेतन, भाई साहब, के साथ हुनर साहब को मेयो हस्पताल तक छोड़ने गया था। सोसाइटी के बारे में विस्तार से उन्हें बताते हुए, उसने कहा था, "मैंने यह तय किया है हुनर साहब कि सोसाइटी का इफ़्तिताही जलसा हो जाय तो फिर मैं एक खास मजलिस आपके लिए रखूँगा, जिसमें सिर्फ़ आप ही का कलाम सुना जायगा।" और हँसते हुए उसने कहा था, "आप कम-से-कम इतनी गजलें और नज़्में जमा कर लें कि डेढ़-दो घण्टे तक सुनने वालों को हिलने न दें।"

"इसकी तुम फ़िक्र न करो," हुनर साहब ने सोत्साह कहा था, "मैंने इतना लिखा है कि दो घण्टे क्या, मैं दस घण्टे तक लगातार सुनाता रहूँ तो लोग जिस करवट बैठे हों उसी करवट बैठे रहें।"

हुनर साहब तो वहीं मेयो हस्पताल के चौरस्ते पर उन्हें रोक कर, अपना सारा कलाम सुना देते, लेकिन चेतन ने देखा था कि उसके भाई की आँखें खड़े-खड़े झपकी जा रही हैं, इसलिए उसने हुनर साहब को विदा दी थी और वादा किया था कि वह दो-एक दिन में आयेगा उनका कलाम सुनेगा और वे मिल कर तय करेंगे कि कौन-कौन-सी गजलें और नज़्में, उस खास मजलिस में सुनायी जायें। हुनर साहब को छोड़ कर, वे लोग लौटे थे तो दिन की असफलता का गम भाई साहब के दिल और दिमाग़ से एकदम मिट गया था।

हस्पताल की चारदीवारी के साथ-साथ, दायें हाथ में साइकिल पकड़े, सड़क की चढ़ाई धीरे-धीरे चढ़ते हुए, चेतन को यह सोच कर बेहद तकलीफ़ हुई कि अपने जिस भाई के लिए उसने दिन का चैन और रात की नींद हराम कर रखी है, उन्हें उसकी उतनी भी चिन्ता नहीं कि ज़बान से दो लफ़्ज़ कह कर, उसके संघर्ष को कुछ आसान बना सकें।....चेतन की समझ में यह बात न आती थी कि अगर भाई साहब उसकी सिफ़ारिश कर देते हैं, उसे ट्यूशन मिल जाती है और मान लो कोई घपला भी हो जाता है तो उससे उनकी प्रैक्टिस में क्या धक्का पहुँचेगा ?....'लेकिन नहीं, उन्हें अपनी

इज्जत की फ़िक्र है; लाला हाकिमचन्द की फ़िक्र है; उनकी लोकैलिटी के दूसरे लोगों की फ़िक्र है, अपने छोटे भाई की फ़िक्र नहीं है,' चेतन ने सोचा, 'पूछे कोई, अगर आपका छोटा भाई कुछ गड़बड़ करता है तो उससे आपके पेशेण्ट कैसे आपके यहाँ आना छोड़ देंगे ? वे छोड़ेंगे, अगर वेदालंकार की तरह आप दो-चार और केस ख़राब कर लें ।'

वह मन-ही-मन इसी तरह खदबदाता, खौलता चला जा रहा था कि सहसा उसके कानों में भाई साहब का वाक्य घूम गया—'वो ख़ुदसर और ख़ूबसूरत है और कई ट्यूटरों को पिटवा चुकी है।'....और चेतन की विचार-धारा दूसरी ओर बह चली ।

'... हो सकता है, भाई साहब ने मेरी ही चिन्ता से यह बात कही हो—परदेस मे जा कर मै किसी मुसीबत में न फँस जाऊँ, इस ख़याल से—लेकिन अगर मैं अपनी तरफ़ से कोई मौका ही न दूँगा तो वह कैसे मुझे पिटवा देगी ?....मैंने इस ट्यूशन के लिए इतना तरद्दुद किया है, अब अगर यह मिलती है तो मै इनकार तो नहीं करूँगा !....मैं शिमला तो ज़रूर जाऊँगा, चाहे जो भी हो; लेकिन मैं इस बात का ख़याल रखूँगा कि लाला हाकिमचन्द मुझे कुछ कह न सकें । मुझे पूरी इज़्ज़त दें और ऐरा-ग़ैरा टुट-पूँजिया ट्यूटर न समझें !....'

और चेतन ने तय किया कि वह जालन्धर से अपनी वह रेशमी रज़ाई-दुलाई ले आयेगा, जो उसे दहेज़ में मिली थी और गत वर्ष शिमले से आ कर जिसे उसने जालन्धर ही मे फिर ट्रंक मे बन्द कर दिया था । वह माँ से कहेगा कि जैसे भी हो, उस पर मलमल का एक झालरदार ग़िलाफ़ चढ़ा दे....ओवरकोट तो वह नया नहीं सिला सकता, लेकिन पच्चीस-तीस रुपये का जुगाड़ करके, एक नया गर्म सूट ज़रूर सिलवायेगा और एक नयी फ़ेल्ट हैट लेगा ! टाई तो उसके पास है ही । वह यूँ टिप-टॉप और अपने को लिये-दिये रहेगा कि ट्यूटरों को पिटवाने वाली वह लड़की और उसका बाप, उससे किसी तरह की आज़ादी न ले सकें; जब बात करें, आदर से करें....

चेतन मन-ही-मन हँसा—'मैं भाई साहब को दिखा दूँगा कि मैं शिमला

हो आया हूँ, दाखिले का प्रबन्ध भी कर लाया हूँ और पिटा भी नहीं'....वह सडक पर चलते-चलते होटों मे बुदबुदाया....लेकिन दूसरे क्षण वह उदास हो आया वह इतने रुपये कहाँ से पायेगा ?....क्षण भर के लिए उसे ख़याल आया कि जो चन्दा उसने इकट्ठा किया है, उसमें से एक सूट सिलवा ले !....लेकिन उसके मन ने उसे धिक्कारा !....नही, वह ऐसा नहीं करेगा, सोसाइटी के चन्दे की एक पाई अपने ऊपर खर्च नहीं करेगा....तीन महीने वह शिमला रहेगा, चालीस के हिसाब से उसे एक सौ बीस रुपये मिलेंगे, वह पहले महीने की तनख्वाह इस मद मे खर्च कर सकता है ? क्या वह लाला हाकिमचन्द से कुछ पेशगी माँगे ?... सोचने पर उसे लगा कि यह ठीक नहीं होगा....

मेयो हस्पताल रोड की चढाई खत्म हो गयी थी। उसके पिता कहा करते थे—'ह्वेयर देयर इज़ अ विल, देयर इज अ वे'—याने जहाँ चाह है, वहाँ राह है। उसकी ट्यूशन पक्की हो जाय, लाला हाकिमचन्द हामी भर लें....वह कोई-न-कोई रास्ता निकाल लेगा। न होगा, माँ से कुछ रुपये माँग लेगा और जाते ही पहले महीने के वेतन मे उसे रुपये भेज देगा....

और यह सोच कर उसने साइकिल पर पाँव रखा और उड़ चला।

चेतन घर पहुँचा तो उसने देखा, उसकी पत्नी किताबें बग़ल में दबाये, सीढियाँ चढ़ रही है। शायद वह तभी विद्यालय से आयी थी। बढ़ कर उसने साइकिल चौतरे से टिकायी और उसे आवाज़ दी।

चन्दा ऊपर के कमरे की कुण्डी खोल रही थी कि उसकी आवाज़ सुन कर पलट आयी। चेतन ने देखा, उसकी बत्तीसी खिली हुई है और चेहरा दगदग कर रहा है। उसका सातवाँ महीना था; हालाँकि उसका पेट काफ़ी बढ़ आया था, पर उसका गेहुँआ रंग गोरा हो आया था और वह सुन्दर लग रही थी। "चन्दा, तुम सीढ़ियाँ चढ़ते-उतरते ध्यान रखा करो, कहीं फिसल गयीं तो...."

"मैं ध्यान रखती हूँ, आप चिन्ता न करें।"

"नहीं, तुम अभी तेज़-तेज़ उतरी थीं," चेतन ने प्यार से डाँटा, "तुम्हारा शरीर भारी है, तुम्हें और भी ध्यान रखना चाहिए।" फिर कुछ रुक कर, साइकिल ऊपर चढ़ाते हुए, उसने कहा, "तुम तो अभी आयी हो और मुझे बेहद भूख लगी है!"

"आप ज़रा अपने कमरे में पाँच-दस मिनट लेटिए! मैं अभी खाना तैयार कर देती हूँ। घर मे कोयले नहीं है, लेकिन आप चलिए, मैं अभी सब प्रबन्ध कर दूँगी।"

चेतन झल्लाया, "तुमने मुझसे सुबह कोयलों की बात क्यों नहीं कही। लाओ पैसे दो, मैं पहले कोयले ला दूँ।"

"आप तो सुबह आठ बजे ही निकल गये थे। मुझे बाद में पता चला। लेकिन आप चिन्ता न कीजिए, सब हो जायेगा....दोपहर मे आपने खाना नहीं खाया?"

"नही। तब का गया, अभी आया हूँ।" चेतन ने कहा।

"खाना ठण्डा हो गया होगा। बस आप जा कर दस मिनट आराम कीजिए, मैं अभी आती हूँ।" और वह कान्ता बहन के घर चली गयी।

चेतन ने साइकिल ऊपर चढ़ायी, उसे यथास्थान दीवार के साथ सटा कर रख दिया, फिर वह कमरे मे जा कर, वैसे ही बिस्तर पर लेट गया। 'यह साली कैसी ज़िन्दगी है,' वह मन-ही-मन खीझा, 'जब से लाहौर आये हैं, ढंग का मकान मयस्सर नही हुआ। चंगड़ मुहल्ले और कृष्णा गली में गर्मियों में सोने की जगह नही थी, भले ही दो-दो कमरे थे; और यहाँ सोने के लिए छत है तो रिहाइश के लिए एक ही कमरा।'....यही सब सोचते हुए, वह ऊँघ गया। चन्दा ने खाना तैयार करके, उसे आवाज़ दी तो हड़-बड़ा कर उठा और रसोई-घर में गया।—चन्दा ने अँगीठी में कोयले दहका दिये थे, तरकारी गर्म कर दी थी और वह रोटियाँ सेंक रही थी।

चेतन मूढ़े पर बैठ गया तो उसने देखा कि थाली में दो सब्ज़ियाँ हैं; वह आश्चर्य से बोला, "ये दो सालन कहाँ से आ गये? आलू-बैंगन तो

तुम्हें पकाने ही नहीं आते ।"

"कान्ता बहन ने ज़बरदस्ती आपके लिए कटोरी मे दे दिये ।" चन्दा ने कहा, "खट्टेदार हैं । वो बहुत अच्छा पकाती हैं ।"

खाना खाते हुए चेतन अपनी पत्नी की ओर देखने लगा । यह अजीब बात थी कि वह खुद ही दिन भर न हँसती रहती थी, जिस मुहल्ले में जाती थी, वहाँ भी हँसी बिखेर देती थी; इर्द-गिर्द के घरों मे पड़ोसिनों मे ऐसा अपनापा कायम कर लेती थी कि घर में चार-छै दिन की तंगी का पता न चलता था....वह चुपचाप खाने लगा ।

"आपने बड़ी देर कर दी," चन्दा ने मोती बिखेरते हुए कहा, "कहाँ-कहाँ घूम आये ?"

"लाला हाकिमचन्द के गया था, वही से आचार्य देशबन्धु के गया, फिर दुकान से होता हुआ, घर आया हूँ ।....कुछ ऐसा डौल बन रहा है कि शायद मैं अगले महीने शिमला चला जाऊँ ।"

"शिमला !"

खाना खाते-खाते चेतन ने अपनी पत्नी को सारी कारगुज़ारी सुना डाली । फिर गर्व से बोला—"मौके को आगे बढ़ कर पकड़ो—मैं इसी में विश्वास करता हूँ । मौके ज़िन्दगी मे सब को मिलते है—कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो उन्हे देख कर भी पहचान नहीं पाते । कुछ तत्काल उन्हे पहचान कर थाम लेते हैं । पर तीसरी तरह के आदमी ऐसे भी होते है, जो अपने लिए अवसर पैदा करते है । मौका मेरा रास्ता काटे और मैं पहचान न पाऊँ, यह हो नहीं सकता ।....तुम देख लेना, यह ट्यूशन मै ले कर रहूँगा । मैं रोज आचार्य जी के जाऊँगा और उस वक्त तक चैन न लूँगा, जब तक वे मेरी सिफ़ारिश न कर दें ।"

"आपको जरूर ट्यूशन मिल जायगी," चन्दा ने कहा, "मुझे पूरा विश्वास है ।"

"लेकिन भाई साहब इस ट्यूशन के हक में नहीं हैं," सहसा चेतन ने कहा ।

"क्यों ?"

"लड़की सुन्दर है, खुदसर है, लाड में पली है और ट्यूटरों को पिटवा देती है।"

चन्दा हँसी।

"मज़ाक नहीं करता, भाई साहब ने मना कर दिया है।"

"ऐसी बात है तो न कीजिए!"

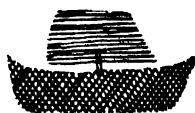
"नहीं, ट्यूशन तो मैं ज़रूर करूँगा," चेतन ने निवाला तोड़ कर, सालन से छुला कर, मुँह में रखते हुए कहा, "मुझे इस साल लॉ कॉलेज में दाखिल होना है और मुझे दाखिले के लिए रुपये चाहिएँ। जब मैं कोई मौका ही नहीं दूँगा तो वो मुझे कैसे पिटवा देगी ?"

"यही मैं सोचती हूँ!" चन्दा ने कहा, "आप अपनी तरफ़ से कोई ऐसी-वैसी बात न करेंगे तो क्या वे पागल हैं, जो पीट देंगे।"

वह सरल भाव से उसकी ओर देख रही थी, जब अपनी पत्नी का मन जानने को उत्सुक, चेतन की निगाहें उससे मिलीं—कोई शंका नहीं, सन्देह नहीं, ईर्ष्या नहीं—एक अपार, अगाध, अथाह विश्वास!....चेतन अभिभूत, अपनी पत्नी की ओर देखता रह गया।




आठवाँ खण्ड



इकतीस

हफ़्ता भर चेतन लगातार डी० ए० वी० कॉलेज के फेरे लगाता रहा था। आखिरकार आचार्य देशबन्धु ने लाला हाकिमचन्द से उसकी सिफ़ारिश कर दी थी और लाला जी ने खाने-रहने की सुविधा के साथ, चालीस रुपये महीने पर उसे अपने साथ शिमला ले जाना स्वीकार कर लिया था।

जब चेतन की ट्यूशन पक्की हो गयी तो उसके सामने पहाड़ जाने के सिलसिले में, मुनासिब कपड़ों और बिस्तर की समस्या आ खड़ी हुई। पिछले वर्ष, जब वह कविराज के साथ शिमला गया था और खादी के पायजामे-कुर्ते पर ओवरकोट पहने, शिमले की सड़कें नापता फिरा था, न उसने बारिश की चिन्ता की थी, न सर्दी की; लेकिन लाला हाकिमचन्द को सुन्दर और उद्दण्ड (तेज़-तर्रार तो वह होगी ही, ऐसा उसने सोच लिया था) लड़की की ट्यूशन स्वीकार कर, उनके साथ फटे-हाली में रहना उसे मंज़ूर न था। इसलिए दूसरा कोई काम करने से पहले, वह जालन्धर के लिए रवाना हो गया।

उसने माँ को बताया कि लॉ कॉलेज की फ़ीस और दाख़िला जुटाने के लिए, उसने शिमला में चार महीने की एक ट्यूशन स्वीकार कर ली है और वह बिस्तर लेने आया है। दहेज़ में आयी रेशमी रज़ाई-दुलाई उसने सन्दूक से निकलवायी, उसे धूप दिखवायी और माँ से कहा कि वह एक बड़े आदमी के साथ जा रहा है, अगर वह किसी तरह रज़ाई पर ग़िलाफ़ चढ़ा दे तो बहुत अच्छा हो।

चेतन के पिता को वर्दी के साथ मिलने वाली (और सहेज कर रखी

हुई) मलमल की दो सात-गज़ी पगड़ियों को जोड़ कर माँ ने रज़ाई का ग़िलाफ़ तैयार कर दिया और उसी कपड़े में से झालर निकाल दी। दरियाँ, खेस, चादरें और तकिये, दहेज़ में दो-दो आये थे। चेतन एक सेट लाहौर ले गया था। एक, सन्दूक में बन्द पड़ा था। रजाई-दुलाई के साथ, उसने नयी दरी, नया तकिया, चादरों का जोड़ा और नया खेस भी ले लिया; तब उसने माँ से कहा कि अगर वह किसी तरह पच्चीस-तीस रुपये का जुगाड़ कर दे तो उसकी बड़ी चिन्ता दूर हो जाय। उसके पास कोई गर्म सूट नहीं है और बिना गर्म सूट के, उसे जाना मुश्किल लगता है।

"तू पिछले साल भी तो तीन महीने शिमला रहा था।" माँ ने कहा, "ओवरकोट जो है तेरे पास !"

अब चेतन माँ से कैसे कहता कि वह एक बड़े आदमी की सुन्दर लड़की की ट्यूशन ले कर शिमला जा रहा है और नहीं चाहता कि उनके सामने किसी तरह दयनीय और हेय दिखायी दे और असली बात कहने के बदले, उसने शिमला की घनघोर ठण्डक का ज़िक्र किया, "मई मे तो बिना स्वेटर या कोट के, चल सकता है माँ," उसने कहा, "लेकिन जहाँ पानी पड़ा कि सर्दी बेहद बढ़ जाती है। पिछले साल भी मुझे बहुत तकलीफ़ हुई थी। ओवरकोट हर वक्त तो नहीं पहना जा सकता।"

लेकिन माँ अपना रोना ले बैठी कि बाऊ जी पूरी तनख्वाह नही भेजते। उसके भाइयों की फ़ीसों और कपड़ों-किताबों का प्रबन्ध करने के लिए उसे बड़ी मुश्किल पेश आती है।

"परसराम क्या कुछ नहीं देता ?" चेतन ने सहसा पूछा, "उसकी तो नौकरी लग गयी है। चालीस रुपये महीना वो पाता है। उतनी रक़म तो वो ला कर तुम्हारे हाथ मे रखता होगा।"

माँ के चेहरे पर दर्द और व्यंग्य की बहुत ही क्षीण मुस्कान खेल गयी। "तूं अपने भ्रा नूं ताँ नई जानदा नाँ !"[1] उसने सिर्फ़ इतना कहा।

चेतन के होंटों से लम्बी साँस निकल गयी। उसने फिर माँ से एक

---

१. तू अपने भाई को तो नहीं जानता ना ?

शब्द नहीं कहा और बिस्तर बाँध कर चला आया।

लाहौर पहुँच कर उसने रज़ाई के गिलाफ़ को धोबी से धुलवा लिया और जब उसने उसे अपनी रेशमी रज़ाई पर चढ़ाया तो प्रसन्नता से उसे रोमांच हो आया। तब उसने नयी दरी, खेस, रज़ाई-तुलाई, चादर और नया तकिया, बिस्तरबन्द में बाँध कर, उसे तैयार कर दिया।

बिस्तर की समस्या से सुलटने के बाद चेतन दूसरी सुबह, साइकिल उठा कर, रास्ते में सब्जी मण्डी के चौरस्ते पर लस्सी का गिलास पीता हुआ, डी० ए० वी० कॉलेज हॉस्टल में हुनर साहब से मिलने चल दिया कि उन्हें अपने शिमला जाने का सुसमाचार दे और बताये कि सोसाइटी का कार्य-भार अब उन्हें अपने कन्धों पर लेना होगा। शातिर के कमरे पर पहुँच कर, अपने उत्साह में उसने ज़ोर से दस्तक दी।

यद्यपि डी० ए० वी० कॉलेज और गवर्नमेण्ट कॉलेज, दोनों के छात्रों, उनके कमरों की साज-सज्जा और उनके रहन-सहन में महान अन्तर था, लेकिन शातिर के कमरे का दरवाज़ा खुलने पर चेतन ने जो देखा, उसकी तो उसे कल्पना तक न थी।—कमरे में से चारपाई निकाल दी गयी थी। छोटी-सी मेज़-कुर्सी दरवाज़े के दायीं ओर की दीवार के साथ लगा दी गयी थी, (क्योंकि जब शातिर ने दरवाज़ा खोला तो वह चेतन को कहीं दिखायी नहीं दी) दरवाज़े के पास थोड़ी-सी जगह जूतों के लिए छोड़ कर, सारे कमरे में बिस्तर बिछे थे, जिनकी चादरें उतनी ही मैली थीं, जितनी लालड़ों के लालाओं की गद्दियाँ! सामने खिड़की के नीचे, बिस्तरों के मैले तकिये अपनी गोरी नंगी कोहनी के नीचे रखे, शरीर पर सिर्फ़ खादी की बण्डी और धोती पहने, हुनर साहब पसरे हुए थे। उनके सामने सिर्फ़ तहमदें या निक्करें और बनियानें या कमीज़ें पहने, शातिर और फिगार के अलावा, चार-पाँच और युवक बैठे थे। हुनर साहब धारा-प्रवाह बोल रहे थे और वे लोग दत्त-चित्त हो कर उनके मुँह से निकलने वाला हर शब्द, जैसे पी रहे थे। चेतन के अन्दर आ जाने पर शातिर ने दरवाज़ा लगा दिया तो क्षण

भर को अपना भाषण-प्रवाह रोक, हुनर साहब ने कहा, "आइए 'दाग़' साहब।" उन्होंने पहली बार चेतन को उसके उपनाम से (शायद अपने चेलों पर रोब डालने की ग़रज़ से) पुकारा, "आप की बड़ी उम्र है। मैं सोच ही रहा था कि आप होते तो मज़ा आ जाता। आइए, इधर आ जाइए।"

वे उठ कर बैठ गये और अपने पास ही उन्होंने चेतन के लिए जगह बना दी और बोले, "मैं ज़रा इन लोगों को उर्दू शायरी में मय[1] की माहीयत[2] समझा रहा था। बैठिए! अभी ख़त्म करता हूँ।"

चेतन पैण्ट-कमीज़ पहने था। उसे बैठने में थोड़ी दिक्कत हुई; अफ़सोस हुआ कि वह क्यों निक्कर-कमीज़ पहन कर नहीं आया। (जब से उसने सोसाइटी का काम शुरू किया था, वह अपने कपड़ों की ओर ख़ास ध्यान देने लगा था। उसे हमेशा इस बात का ख़दशा[3] लगा रहता था कि सोसाइटी का कोई मेम्बर या सरपरस्त रास्ते में न मिल जाय! और जबसे चन्द्रा की ट्यूशन की बात चली थी, उसकी यह सावधानी और भी बढ़ गयी थी। वह नहीं चाहता था कि लाला हाकिमचन्द कहीं सामने पड़ जायें तो उसे लोफ़रों की तरह घूमते देख कर, बिदक जायें!)

चेतन घुटनों के बल बैठ गया तो हुनर साहब ने अपनी बातों का तार, जहाँ से छोड़ा था, वहीं से पकड़ लिया। चेतन की निगाह मेज़ के नीचे तारों के गिलासदान में पड़े, चाय के गिलासों, काली-सी केतली और उन पर भिनभिनाती मक्खियों की ओर चला गया।—शातिर को अभी शहर की हवा नहीं लगी थी। वह कमरा लाहौर के किसी कॉलेज का कमरा नहीं, देहात के किसी घर का ही कमरा लगता था—मैला-कुचैला, गन्दा और अस्त-व्यस्त। उसमें जमा होने वाले लड़के भी, एक को छोड़ कर, सारे देहाती ही लगते थे। शातिर और फ़िगार से तो चेतन पहले ही मिल चुका था। उनके अलावा, चार लड़के और बैठे थे। मुगदर की तरह मोटा-ठिगना एक लड़का, तहमद और बनियान पहने, गले में काले धागे के तावीज़ बाँधे, ऐसे बैठा था, जैसे अखाड़े में बैठा हो।

---

१. शराब २. हकीकत, महत्व ३. आशंका, डर

एक यतीम-सूरत लड़का, निक्कर-कमीज़ पहने था, जिसका टेटुग्राँ बहुत नुमाइयाँ दिखायी दे रहा था; लेकिन उसने बाल बढ़ा रखे थे, सँवार भी रखे थे; अपने आप को ज़रूर ही यूसुफ़ समझता होगा। उसके साथ ही नंगे बदन पर निक्कर पहने हुए, एक हृष्ट-पुष्ट लड़का था—चौड़ा-सा चेहरा, उभरे कल्ले; कॉलेज के होस्टल में बैठा था, इसलिए छात्र लगता था, वरना कहीं सड़क पर मिल जाता तो सम्भ्रान्त घर का मुण्डू लगता। उन दोनों के पीछे, मुँह ज़रा-सा खोले और निचला होंट लटकाये—अर्ध-पगला-सा दीखने वाला एक युवक बैठा था; इतना ही ग़नीमत था कि उसके चेहरे पर मक्खियाँ नहीं भिनभिना रही थी और वह साफ़ कमीज़-पायजामा पहने था। उनसे ज़रा हट कर, लट्ठे की तहमद और बण्डी पहने, एक अपेक्षाकृत गोरा युवक, दीवार से पीठ लगाये, अलग-थलग दीखता था; उसकी कलाई पर रिस्ट-वाच थी; लम्बे बाल सुरुचि से कढ़े थे और चेहरे पर कुछ अजीब-सा मूर्खता-भरा गर्व था, जैसे वह कमरे में बैठे सभी दूसरों को मूर्ख समझता हो। 'किसी बड़े बाप का बिगड़ा बेटा है,' चेतन ने मन-ही-मन कहा, 'हुनर साहब ने अपना रंग जमा लिया है, ये ही सोसाइटी चलाने के काबिल हैं, मैं बेकार ही उस चक्कर में फँस गया।'

लेकिन वह ज़्यादा देर डी० ए० वी० कॉलेज होस्टल के उस कमरे और उसमें जमा उन नये शायरों का जायज़ा नहीं ले सका। सहसा हुनर साहब की तेज़, लेकिन मीठी आवाज ने उसका ध्यान खींच लिया—अपने गोरे रंग, सुन्दर नुकीले चेहरे और पतले होंटों के साथ, अपनी प्रवहमान भाषा से, वे अपने श्रोताओं को बाँधे थे। चेतन ने सुना, वे कह रहे थे : "शराब से मतलब उस अंगूर की बेटी से ही नहीं, जिसके बारे में उस्ताद 'ज़ौक' ने कहा है :

"ऐ 'ज़ौक' देख दुख़्तर-ए-रज़ को न मुँह लगा
छुटती नहीं है मुँह से यह काफ़िर लगी हुई।

"शे'र में मुहावरे की ख़ूबी है।" हुनर साहब ने अदा से शे'र पढ़ कर व्याख्या की, " 'मुँह लगाना' का मतलब 'होंटों से लगाना' भी है और

'ढील देना' या 'प्यार करना' भी। और यहाँ उस्ताद 'ज़ौक' ने दोनों ही म'आनी भर दिये हैं। लेकिन दुख्तरे-रज़—यानी अंगूर की बेटी—से मुराद यहाँ किसी और चीज़ से नहीं। यहाँ उसका मतलब अंगूर के खिंचे हुए अर्क ही से है, जो बाद में सरूर चाहे जितना देता हो, लेकिन ज़बान से लगते ही, मुँह को कड़वाता और जिगर को चीरता चला जाता है। 'अमीर' ने क्या ख़ूब कहा है :

"अंगूर में थी यह मय पानी की चार बूँदें
पर जब से खिंच गयी है तलवार हो गयी है।"

और हुनर साहब ने ख़ुद ही दूसरा मिसरा दोहराया—"पर जब से खिंच गयी है तलवार हो गयी है—क्या हक़ीकत बयान की है।" और अपनी बात जारी रखते हुए बाले, "और जिसके बारे में 'ग़ालिब' ने लिखा है :

"ग़ालिब छुटी शराब, पे अब भी कभी कभी
पीता हूँ रोज़-ए-अब्र-ो-शब-ए-माहताब[1] में

"या :

"पिला दे ओक से साक़ी जो हम से नफ़रत है
प्याला गर नहीं देता, न दे, शराब तो दे

"या फिर वो मशहूर शे'र :

"क़र्ज़ की पीते थे हम, लेकिन समझते थे कि हाँ
रंग लायगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन

"यह मय, यह दुख्ते-रज, यह बादः, यह सहबा—ये सब उसी शराब के नाम हैं, जिसे आज ह्विस्की कह लीजिए या ब्राण्डी या ठर्रा। है वो शराब ही। और इसी शराब पर उर्दू शायरों ने हज़ारों शे'र कहे हैं।"

हुनर साहब पल भर को रुके। फिर बड़ी प्यारी-सी जानकारी-भरी मुस्कान होंटों पर ला कर, उन्होंने कहना शुरू किया : "लेकिन उर्दू शायरी में शराब सिर्फ़ यही शराब नहीं, वह नश्शा[2] भी है, जो महबूब की आँख-

---

१. बादल भरे दिन और चाँदनी रात २. शुद्ध शब्द नश्शः है। उर्दू काव्य में 'नशा' और 'नश्शा' दोनों इस्तेमाल होते हैं। जहाँ शब्द पर ज़ोर देना हो, वहाँ 'नश्शा' इस्तेमाल होता है।

ड़ियों में है; साकी की अदाओं में है; बरखा की घटाओं में है, महबूब के प्यार में है या खुदा की मुहब्बत में है। जैसे शायरों ने इश्क को हज़ार म'आनो में इस्तेमाल किया है, वैसे ही शराब को। यह ज़रूरी नहीं कि शराब के शे'र कहने वाला शायर, पीता ही हो। 'रियाज' खैराबादी जैसे भी शायर हैं, जिसने अपने बारे मे लिखा :

"है रियाज़ इक जवान-ए-मस्त-ख़िराम[1]
न पिये और झूमता जाय।

"जिसने जिन्दगी भर शराब को मुंह नहीं लगाया, लेकिन इस मज़मून पर अपने जौहर के करिश्मे दिखा दिये। इस मज़मून में ज़रा उस पारसा[2] की नाज़ुक-खयालियाँ देखिए :

"जाम है तौबः-शिकन, तौबः मेरी जाम-शिकन[3]
सामने ढेर है टूटे हुए पैमानों का।"

चेतन प्रकट हुनर साहब का धारा-प्रवाह भाषण सुन रहा था और उसकी आँखें शातिर के कमरे में उपस्थित उन नौजवान शायरों की ओर लगी थी, जो मुँह-बाये मूर्खों की तरह, हुनर साहब की तकरीर सुन रहे थे, लेकिन वास्तव में उसका दिमाग़ लगातार इस समस्या को सुलझाने में लगा था कि वह कैसे पच्चीस-तीस रुपये जुटाये और शिमला जाने के लिए एक नया सूट सिलवाये। चेतन का दिमाग़ हाज़िर होता तो वह 'ग़ालिब,' 'ज़ौक' और 'अमीर' के शे'रों की दाद देता और हुनर साहब शायद उस्तादों ही के शे'र सुनाते। लेकिन चेतन चुप सुनता रहा था और 'ग़ालिब' तथा 'ज़ौक' के शे'र, उन आर्य समाजी और सनातनी शायरों के सिर पर से गुज़र गये थे। हुनर साहब का मांझा ढीला हो रहा था। उन्हे खुद ही 'अमीर' का शे'र दोहराना पडा था और सुनने वालों की समझ के मुता-

१. मस्त चाल वाला, २. नेक, ३. शराब का प्याला मेरी तौबः (न पीने की प्रतिज्ञा) को तोड़ने वाला है और मेरी प्रतिज्ञा प्याले को तोड़ने वाली है।

बिक, वे 'रियाज़' ख़ैराबादी के शे'र सुनाने लगे थे। जब उन्होंने 'रियाज़' ख़ैराबादी का नाम लिया था तो चेतन पहली बार चौंका था। 'यह किस मरदूद[1] को हुनर साहब कब्र से निकाल लाये है,' उसने मन में कहा था और वह ध्यान से सुनने लगा था। जब हुनर साहब ने 'रियाज़' का परिचय उसी के शे'र मे दिया था तो यद्यपि चेतन ने सोचा था कि जो साला कभी शराब पीता नहीं, वह उसके सरूर को क्या जानेगा, पर वह चुप रहा। फिर जब हुनर साहब ने दूसरा शे'र पढ़ा तो चेतन ने खुल कर दाद दी :

"वाह्-वा ! 'सामने ढेर है टूटे हुए पैमानों का !' क्या बात कही है ! तौबः और फिर जाम-शिकन तौबः ! वाह्-वा, वाह्-वा !"

हुनर साहब खुश हो गये और उसकी ओर देख कर बोले—'एक शे'र और सुनिए :

"इतनी पी ली है बाद तौबः भी
बे-पिये बेख़ुदी-सी रहती है।"

'अब ये रियाज़ का सारा दीवान ही सुना देंगे,' चेतन ने मन में कहा, लेकिन प्रकट उसने फिर दाद दी। हुनर साहब ने तीसरा शे'र पढ़ा :

"बातें मा'शूक[2] की कानों में, नज़र में शक्लें
नश्शा-ए-बादः-ए-गुलनार[3] तेरा क्या कहना।"

निहायत हल्का-फुल्का शे'र ! चेतन की देखा-देखी मुगदर ने बढ़ कर इस शे'र की दाद दी। लेकिन 'वाह्-वा' और 'खूब-खूब' के अलावा, वह और कुछ न कह सका। हुनर साहब जोश में बोलने लगे : "लेकिन उर्दू शायरों के यहाँ सदहा[4] ऐसे शे'र मिल जायेंगे, जहाँ शराब, मयख़ाना, वाइज़[5] और मुहतसिब[6] सब के म'आनी बदल जाते हैं। 'जिगर' मुरादाबादी का ही यह शे'र देखिए :

---

१. बहिष्कृत, तिरस्कृत २. प्रेयसी ३. अनार के फूल के रंग की शराब ४. शत-शत ५. उपदेशक ६. पूछ-ताछ करने वाला।

"यूँ तो साकी, हर तरह की तेरे मयख़ाने[1] में है
वह भी थोड़ी-सी, जो इन आँखों के पैमाने[2] में है।"

चेतन ने मिसरा दोहराया, "वह भी थोड़ी-सी जो इन आँखों के पैमाने में है," और दाद दी—"वाह-वा ! क्या बात कही है !"

हुनर साहब ने अपनी बात जारी रखी, "और 'असग़र' के यहाँ, घटा ही मयखाना बन गयी है। शे'र सुनिए :

"हाथ से किसने साग़र[3] पटका मौसम की बेकैफ़ी[4] पर
इतना बरसा टूट के बादल डूब गया मयख़ाना भी।"

आसान शे'र। सभी ने झूम कर एक साथ 'वाह-वा' की। हुनर साहब ने ऐसे हाथ माथे पर ले जा कर 'आदाब' किया, जैसे उन्हो के शे'र पर दाद मिल रही हो। फिर बोले, "लेकिन रियाज तो अपने शे'रों मे और गहरे म'आनी भर देता है। जरा देखिए उसका यह शे'र :

"बाद तौबः के भी फेंका नहीं जाता मुझसे
मैं लिये बैठा हूँ टूटे हुए पैमाने को

"बज़ाहर शे'र आम शराब और उससे तौबः, इस पर भी उसकी चाहत के म'आनी देता है, लेकिन ज़रा शराब के बदले इस जिन्दगी को रख लीजिए और पैमाना इस जिस्म को समझिए और देखिए, कैसे गहरे और दर्द-भरे म'आनी पैदा हो जाते हैं। आदमी ज़िन्दगी की लज़्ज़तें उठा चुका है, और जीने से तौबा कर चुका है, लेकिन मर नहीं सकता। उसी टूटे हुए पैमाने (याने जिस्म) को लिये बैठा है।"

चेतन जानता था कि हुनर साहब को दूसरे शायरों के दीवान-के-दीवान याद है, लेकिन वे शे'रों की ऐसी व्याख्या कर सकते हैं, यह उसके लिए नयी बात थी। वह सचमुच प्रभावित हुआ और उसने बेइख़्तियार दाद दी—"वाह-वा। क्या तफ़सीर[5] की है ! जिन्दगी से तौबा भी है और जिस्म छोड़ा भी नहीं जाता। ज़िन्दगी के नशे को शराब की लत से मिला दिया है : 'मैं लिये बैठा हूँ टूटे हुए पैमाने को !' वाह-वा, वाह-वा !"

---

१. मदिरालय २. प्याले ३. प्याला ४. नीरसता ५. व्याख्या।

हुनर साहब ने उसकी तरफ़ विनम्रता-भरे गर्व से देखा, बड़ी प्यारी-सी मुस्कान होंटों पर ला कर और सिर झुका कर 'आदाब' किया और फिर अपनी बात जारी रखी : "ग़ालिब का एक मशहूर शे'र है, जिसमें ज़िन्दगी के इसी प्यार को, और भी गहरे अल्फ़ाज़ में अदा किया गया है :

"गो हाथ को जुम्बिश नहीं आँखों में तो दम है
रहने दो अभी साग़र-ो-मीना[1] मेरे आगे ।"

चेतन ने पहले भी कई बार यह शे'र पढ़ा था । लेकिन उसने बिस्तरे-मर्ग पर पड़े हुए शराबी को और उसके सामने रखे हुए प्याले और सुराही को ही देखा था, लेकिन हुनर साहब की उस व्याख्या के बाद, शे'र सुनते ही उसने जाना कि साग़र-ो-मीना से मुराद, ज़िन्दगी की लज़्ज़तों से है और आदमी की बे-किनार जिजीविषा के सन्दर्भ में यह शे'र उसे दोहरा मज़ा दे गया और उसने जी भर कर दाद दी । उसकी देखा-देखी, कॉलेज के वे नये शायर भी दाद देने लगे ।

हुनर साहब बड़ी अदा से 'आदाब-अर्ज़,' 'आदाब-अर्ज़' करते हुए दुगुने जोश से शे'र सुनाने लगे और उस क्षण चेतन उस कमरे की गन्दी-मैली फ़िज़ा, वे मैले बिस्तर और दरवाज़े के पास ढेर-से जूते और चाय के ख़ाली गिलासों पर भिनभिनाती मक्खियाँ—सब भूल गया । हुनर साहब की आवाज़ के जादू ने उसे बाँध लिया । उन्होंने दूसरा शे'र पढ़ा । " 'अमीर' का एक शे'र है" उन्होंने कहा :

"तेरा मयकदा सलामत, तेरे ख़ुम[2] की ख़ैर साकी
मेरा नश्शा क्यों उतरता, मुझे क्यों ख़ुमार होता

"मैं जब इस शे'र को पढ़ता हूँ," हुनर साहब बोले, "मुझे हमेशा लगता है कि शायर ने, न आम साकी से ख़िताब[3] किया है, न आम मयकदे की बात की है—उसका साकी ख़ुदा है और मयकदा यह सारा जहान है, जहाँ घटाओं के भी ख़ुम हैं और हवाओं के भी ख़ुम हैं, जहाँ सारी कायनात[4]

---

१. प्याला और सुराही २. शराब का मटका ३. सम्बोधन ४. ब्रह्माण्ड, दुनिया, प्रकृति ।

एक, कभी-न-खत्म-होने-वाला खुम लुँढा रही है। शे'र का दूसरा मिसरा—मेरा नश्शा क्यो उतरता मुझे क्यों खुमार होता—आम मयकदे के सिलसिले मे पूरा नही उतरता। कुदरत के कारखाने की ही बात है कि उसके देखने वाले का, न नशा उतरे, न खुमार चढ़े।"

और हुनर साहब ने खुद ही दाद दी थी—"वाह-वा, वाह-वा!" और फिर बोले : "रियाज ही का एक और शे'र सुनिए :

"सद-साला[1] दौर-ए-चर्ख़[2] था साग़र का एक दौर
निकले जो मयकदे से तो दुनिया बदल गयी

"यूँ पहली नज़र मे तो यहाँ आम मयकदे और आम सागर की बात है।" हुनर साहब ने व्याख्या की, "मै भी पहले इसके यही म'आनी लगाता था, लेकिन पिछले दिनों मैं लालड़ो के साईं के हुजूर मे गया और मैंने देखा कि ज्ञान की शराब के दो घूँट, लोगो की दुनिया बदल देते है और इस शे'र के गहरे म'आनी मेरी पकड़ में आ गये। अब यहाँ शराब के बदले मा'रिफ़त[3] के दो घूँट रख दीजिए और मयकदे की जगह किसी ज्ञानी का आश्रम या किसी पहुँचे हुए फ़कीर का तकिया, और शे'र पढ़िए; ! देखिए, पूरी तरह मौज़ूँ उतरता है या नहीं ! आसमान की सौ साल की गर्दिश के बराबर है ज्ञान की शराब का एक दौर और :

"निकले जो मयकदे से तो दुनिया बदल गयी।"

और उन्होंने एक और शे'र पढ़ते हुए कहा : " 'अंजाम' का एक शे'र है, जिसका कोई दूसरा कलाम मैने नही पढ़ा, लेकिन यह शे'र इसीलिए ज़बाँ-ज़द-आम[4] है कि इसमे भी मयकदा किसी एक म'आने मे इस्तेमाल नही हुआ :

"दूर से आये थे साकी सुन के मयख़ाने को हम
पर तरसते ही चले हैं एक पैमाने को हम

"अब इस में साकी की जगह, फिर किसी सन्त को रख लो, मयखाने की

---

१. सौ साल का २. आसमान का दौर ३. अध्यात्म-ज्ञान
४. लोगों की ज़बान पर चढ़ने वाला, लोकप्रिय

जगह, उसके आश्रम को और शराब चाहने वाले की जगह, ज्ञान की इच्छा करने वाले ऐसे भक्त को, जिसे उस सन्त-महात्मा के उपदेश से शान्ति नहीं मिलती और वह तरसता चला जाता है तो शे'र उस सूरते-हाल पर पूरा उतरता है; लेकिन अगर साकी की जगह, ख़ुदा कर दो और मयख़ाने के बदले, दुनिया और तरसते जाने वाले शराबी की जगह, कोई नाकाम इन्सान, तो शे'र उस ग़रीब के दर्द की तस्वीर बन जाता है, जो ख़ुशी के एक जाम को तरसता हुआ, इस दुनिया से चला जाता है।"

चेतन ने शे'र की भरपूर दाद दी।

"रियाज़ ही का एक और प्यारा शे'र है," हुनर साहब बोले : "जिसमें अगर साकी की जगह ख़ुदा को रख दें तो मतलब और भी गहरा उतरता है :

"ले जाम लबालब भर देना, फिर साकी को कुछ ध्यान नहीं
यह साग़र पहुँचे दोस्त तलक या हाथ लपक ले दुश्मन का

"भगवान अपनी बरकतों के सागर भर-भर कर देता है और नहीं देखता कि आस्तिक उनसे लुत्फ़ उठाते है या नास्तिक !"

हुनर साहब रुके। चेतन तथा कमरे मे बैठे, दूसरे नौजवान शायरों ने इस शे'र की बहुत दाद दी। चेतन ने देखा कि लगातार बोलने से हुनर साहब थक गये है और उनके होंट सूख गये हैं। उसे जाने की जल्दी थी, इसलिए उसने उनके कान में कहा, "मैं चलना चाहूँगा। आपसे ज़रूरी बात कहनी थी। फिर आ जाऊँगा।"

"नहीं बैठो !" उन्होंने कहा, "अभी खत्म करते हैं।" और उन्होंने अपनी बात जारी रखी :

"अलफ़ाज़ अपने में बेजान होते हैं। शायर अपनी तबियत की जौलानी[1] से उनमें नये म'आनी भर देते हैं। मैं आपको एक शे'र सुना कर इस मज़मून को ख़त्म करता हूँ। यह शे'र इसी खाकसार का है। मैंने उस वक्त कहा था, जब मैंने सूट-बूट को तिलांजली दी थी, खादी को

---

१. तेज़ी, दौड़

अपनाया था और तहरीके-आज़ादी[1] में शामिल हुआ। शे'र में न कहीं तहरीके आज़ादी है, न खादी है, लेकिन ग़ौर से देखिए तो सब कुछ है :

"चलने लगा बिल्लौर का साग़र[2] किनार-ए-जू[3]
पत्थर में जान फूंक दी फ़सल-ए-बहार[4] ने।"

चेतन ने दाद दी, "वाह क्या बात पैदा की है, 'पत्थर में जान फूंक दी'..."

हुनर साहब ने 'आदाब' किया और बोले : "किनारे-जू को अगर हिन्दुस्तान समझ लीजिए और फ़सले-बहार को तहरीके-आज़ादी, जिसने पत्थर-सिफ़त हिन्दुस्तानियों में जान फूंक दी, तो देखिए शे'र कैसे जदीद म'आनी का हामिल[5] हो जाता है।"

और वे चुप हो गये। फिर जरा रुक कर बोले : "अब शराब-अराब तो हम छूते नहीं, सिर्फ़ मा'रिफ़त की पीते हैं, लेकिन गला सूख गया है, इसलिए चाय का एक दौर हो जाय।" और उन्होंने उस मुगदर की ओर देखा, "क्यों 'शैदा' साहब, क्या आपके मयकदे से हम तश्ना[6] ही जायेंगे।"

मुगदर उठा और केतली की तरफ़ बढ़ा।

"ये शिरी पूरनचन्दर शर्मा 'शैदा' कपूर्थलवी, सनातन धर्म कालेज के स्टूडेण्ट हैं," हुनर साहब ने उस युवक का परिचय दिया, "आजकल रोज़ सवेरे आ जाते हैं और हम प्यासों को चाय के जाम पिलाते हैं। कल तक अखाड़े में अपने जौहर दिखाते थे, अब शे'र के अखाड़े में उतरे हैं तो पहली ही ग़ज़ल में इन्होंने अपनी शायरी के झण्डे गाड़ दिये हैं।"

अपनी तारीफ़ सुन कर उस मुगदर ने, चाय का गिलासदान और केतली उठाते हुए, कनखियों से चेतन की ओर देखा। कुछ अजीब-सी प्रसन्नता और लाज-भरी मूर्खता उसके चेहरे पर झलक गयी। हुनर साहब ने दूसरे युवकों से चेतन का परिचय कराया। उभरे टेंटुए वाला पतला-दुबला युवक, रामप्रसाद 'नसीम' था; नौकर नज़र आने [illegible], दीवानचन्द 'गौहर' था

१. स्वातन्त्र्यान्दोलन २. शीशे का प्याला ३. नदी-किनारे ४. वसन्त का मौसम ५. आधुनिक अर्थों को वहन करने वाला ६. प्यासे

और रिस्ट-वाच वाला, अनारकली की मशहूर दवाइयों की दुकान, मेसर्ज़ दौलतराम एण्ड सन्ज़, केमिस्ट्स एण्ड ड्रगिस्ट्स के मालिक, लाला दौलतराम 'साग़र' का सुपुत्र, कैलाशनाथ 'फ़रहत' था। हुनर साहब ने उसका परिचय देते हुए, खासे दाँत निपोरे और उसकी ही नही, उसके पुरखों की भी कलाकारिता बखान डाली।

"वो पीछे कौन साहब बैठे हैं ?" चेतन ने उस मुँह-खोले, होंट-लटकाये, बे-चेहरे के-से युवक की ओर संकेत कर, पूछा।

"वो बहुत पहुँचे हुए शायर है—ए० एम० दीवाना ! नाम तो अमृत-सरिया मल्ल है, इसी नाम से पहले पंजाबी में बैत कहते थे, पर उर्दू मे आये हैं तो इनका मुख़फ़्फ़फ़[1] नाम मैंने ए० एम० कर दिया है। 'दीवाना' तखल्लुस रखते है।"

अपने शागिर्दों का परिचय देने के बाद हुनर साहब ने बढ़ा-चढ़ा कर चेतन का परिचय दिया : "और जनाब चेतनानन्द 'दग्ध,'" वे बोले, "रोज़नामा 'भीषम', 'बन्दे मातरम', और 'वीर भारत' के रुक्ने अदार:[2] रहे हैं। ज़बरदस्त अफ़साना-निगार और शायर हैं। (और यह कहते हुए उन्होंने पुराना वाक्य दोहराया :) कभी ये मेरे शागिर्द थे, लेकिन अब मै इनका शागिर्द हूँ।" वे हँसे और चेतन की ओर झुक कर बोले, "चाय का दौर खत्म हो जाय तो आपको इन नौवारिदान-ए-मैदान-ए-इश्क[3] के कार-नामे सुनवाता हूँ—शे'र-ो-शायरी का मैदान, इश्क के मैदान ही का दूसरा नाम है," उन्होंने पत्ता लगाया और बोले, "आप की सोसाइटी की मज-लिसें, इनके बल पर, देखिए, कैसी कामयाब होती है !"

चेतन को अपनी बात कहने का मौका मिला। "मैं तो इसीलिए आपके पास आया था," उसने कहा, "मै चार महीने के लिए शिमला जा रहा हूं और चाहता हूँ कि सोसाइटी का इफ़्तिताही जलसा कर दूँ, ताकि आप जन-रल सेक्रेट्री चुन लिये जायँ और सोसाइटी को अपने हाथ में ले लें।" और

---

१. संक्षिप्त २. सम्पादन विभाग के सदस्य
३. इश्क के मैदान के नवागन्तुक।

उसने उनके कान में बहुत धीरे से कहा, "मुझे अभी गर्म कपड़ों का इन्त-ज़ाम करना है, ओवरकोट तो है, पर मुझे एक सूट दरकार है, पच्चीस-तीस का जुगाड़ करना होगा, इसलिए...."

"क्यों, डॉक्टर रामानन्द से...." हुनर साहब ने कहना चाहा।

"नहीं, वो इतने रुपयों का इन्तज़ाम नहीं कर सकते !" चेतन ने उनकी बात काट दी, "इसलिए अभी मैं चलूंगा। कहीं रुपयों का इन्तज़ाम करूँगा। या तो आज शाम आप मेरे यहाँ आ जाइए, या कल सुबह मैं आपके पास सोसाइटी के ब्रोशर वग़ैरह ले कर चला आऊँ; जिनको बुलाना हो, उनकी फ़ेहरिस्त और इन्वीटेशन कार्ड का मज़मून बना लें और जलसे की जगह वग़ैरह—सब तय कर लें।"

हुनर साहब उठे और उसे साथ ले कर पिछली खिड़की में जा खड़े हुए। "कितने में तुम्हारा सूट बन जायगा ?" उन्होंने धीरे से बाहर की तरफ़ को मुंह करके पूछा।

"सूट क्या, ट्वीड का एक कोट और वर्स्टेड की पैण्ट सिलवा लूंगा, टाई तो ख़ैर भाई साहब की ले जाऊँगा, लेकिन एक नयी फ़ेल्ट हैट ज़रूर चाहिए ! तीस रुपये तो उठ ही जायेंगे। सिलवाई अलग !"

"सिलवाई तो ख़ैर यूनीवर्सिटी टेलर्ज से उधार हो सकती है," उन्होंने कहा, "हरगोविन्द शे'र-ो-शायरी का दिलदादा[1] है। मेरा वाकिफ़ है। तुम्हें भी जानता होगा। रामानन्द की दुकान के पास ही तो कचहरी रोड पर उसकी दुकान है। हाँ, गर्म कपड़ा ख़रीदने का मसला है।" वे कुछ क्षण सोचते रहे, फिर बोले, "सोसाइटी का कितना चन्दा तुम्हारे पास है ?"

"गिना तो नहीं, पाँच-दस ख़र्च भी किये हैं, तो भी साठ-पैंसठ तो होंगे ही !"

"तीस में तुम सूट सिलवा लो ! और पैंतीस मुझे दे दो। सोसाइटी चलाने की ज़िम्मेदारी मेरी रही।"

---

१. प्रेमी

लेकिन चेतन को सोसाइटी का एक पैसा भी अपने ऊपर खर्च करना स्वीकार न था। उसने निश्चयात्मक स्वर में उनसे कहा, "चन्दे का तो एक पैसा भी मैं अपने ऊपर खर्च नहीं कर सकता। उससे तो मैं सोसाइटी के मेम्बरों और सरपरस्तों को पार्टी दूँगा। वहीं एग्जिक्यूटिव वग़ैरह का चुनाव हो जायगा," वह क्षण भर रुका था, फिर उसने लगभग सरगोशी में उन्हें समझाया, "बात यह है कि पण्डित रत्न, सूफ़ी हनुमान परशाद, कविराज रामदास, शत्रुघ्नलाल 'तीर' और दूसरे कई लोगों से मैं ख़ुद रुपये लाया हूँ और मैं नहीं चाहता, गुप-चुप सोसाइटी का भार आपको सौंप कर शिमला चला जाऊँ। इसमें मेरी भी बदनामी है, आपको भी आगे काम करने में दिक्कत होगी। सब के सामने आपका नाम जनरल सेक्रेट्री के तौर पर प्रोपोज़ करूँगा। आपके शागिर्द रहेंगे, दूसरे दोस्त रहेंगे। आप य-यक-ज़बान[1] चुन लिये जायेंगे, इसका मुझे यकीन है। वही आपको सब मेम्बरों और सरपरस्तों से—याने जिन्हें आप नहीं जानते—मिलवा दूँगा। आगे हर महीने आपको चन्दा इकट्ठा करने में आसानी रहेगी।....मैं तो चार-पाँच महीने शिमला रहूँगा। आप चाहेंगे और अपने शागिर्दों की मदद से काम करेंगे तो काफ़ी पैसा आता रहेगा। आप बड़ी आसानी से लाहौर का अपना खर्च निकाल सकेंगे, सोसाइटी के जलसे अपने मन के मुताबिक रख सकेंगे और लाहौर की कल्चरल लाइफ़ में भी इजाफा कर सकेंगे।"

हुनर साहब कुछ क्षण सोचते रहे। वे सोसाइटी को अपने शागिर्दों की मदद से बखूबी चला सकते थे और उन बड़े आदमियों की उन्हें कुछ वैसी ज़रूरत न थी। लेकिन चेतन की बातों में उन्हें काफ़ी वजन लगा। उन्हें किसी दैनिक अख़बार के दफ़्तर में जगह भी देखनी थी, इस अवसर पर वे कुछ पत्रकारों को बुला लेंगे। फिर वे चेतन को बिदकाना भी नहीं चाहते थे। थोड़ी देर सोच कर उन्होंने कहा, "मैं अपने शागिर्दों से बात करके, तुम्हारे सूट के रुपयों का इन्तज़ाम करूँगा। बाकी तो सब खुश्क हैं, लेकिन शातिर और फ़रहत से मुझे उम्मीद है। ज़रा सोसाइटी में उनकी दिल-

---

१. एक स्वर से

चस्पी पैदा करनी होगी।"

"मैं उनके रुपये शिमला जाते ही लौटा दूँगा।" चेतन ने कहा।

"उसकी तुम फ़िक्र न करो।" हुनर साहब ने उसकी पीठ थपथपायी, "अभी तुम ठहरो, बैठो। कुछ सुनो-सुनाओ और मुझे सिर्फ़ आज का दिन दो। कल मैं सुबह तुमसे घर पर मिलूँगा।"

इस बीच 'शैदा' चाय ले आया था। हुनर साहब पलट कर अपनी जगह जा बैठे।






बत्तीस

हुनर साहब से बात करके, बिना एक भी मिनट और गँवाये, चेतन वहाँ से चला आना चाहता था। लेकिन जब हुनर साहब अपनी जगह जा बैठे और उसने कहा, "अच्छा तो हुनर साहब, मुझे इजाज़त दीजिए, मै चलूँगा, मुझे तैयारी करनी है," तो वे उछल कर उठे। उसका हाथ थाम, उन्होंने उसे खींच कर अपने पास बैठा लिया। "तुम से कहा न," उन्होंने उसके कान में कहा, "अभी कुछ देर रुको, ज़रा इन लोगों की एक-एक चीज़ सुन लो। मुझे इनसे बात करने में आसानी होगी।"

चेतन चुपचाप उनके पास बैठ गया। शैदा ने सब के आगे चाय का एक-एक गिलास रख दिया। चेतन तो चाय पीता नहीं था। हुनर साहब ने अपना गिलास खत्म किया और जब उन्हे मालूम हुआ कि वह चाय नही पियेगा, तो वे उसका गिलास भी पी गये।

चाय खत्म हो गयी और गिलास और केतली अपनी जगह चले गये तो हुनर साहब ने आसन बदला। दोनों घुटनों को ज़रा मोड़ कर, उन्हे बायीं ओर फैलाते हुए, तकियों को बग़ल के नीचे ले कर, वे बैठ गये और चेतन की ओर देख कर, उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "लीजिए 'दाग़' साहब, अब आपको इन नौवारिदान-ए-इश्क के कारनामे सुनवाते है।" फिर कमरे में उपस्थित युवकों की ओर मुख़ातिब हो कर बोले : "क्यों भई, पहले कौन पढ़ेगा ?—फ़रहत साहब, आप पढ़ेंगे या शैदा साहब को तकलीफ़ दी जाय ?"

इससे पहले कि फ़रहत कोई जवाब देता, हुनर साहब खुद ही बोले :

"यूँ तो मुशायरों में अच्छे शायर सबसे पहले पढ़ते हैं या सब के बाद ! लेकिन दोनों हालतों में थोड़ा ख़तरा है ।—कई बार मुशायरे में ख़ास लोग देर से पहुँचते हैं । अगर अच्छे शायर से शुरू में पढने को कह दिया गया तो न सिर्फ़ वे लोग उसे सुनने से महरूम रह जाते हैं, शायर भी उनको अपना कलाम नही सुना पाता । यही खतरा दूसरी सूरत मे भी है । मुशायरे देर तक चलते हैं । इस दौरान कई बार इतने बेकार के शायर, यके-बाद-दीगरे[1] पढ़ते चले जाते हैं कि खुश-ज़ौक लोग, बोर हो कर उठ जाते हैं और जब आखिर मे ख़ास शायर पढ़ता है तो कोई सुखन-फ़हम उसके शे'रों की दाद देने वाला नहीं होता ।"

अपनी बात का असर अपने शागिर्दों पर देखने के लिए हुनर साहब पल भर रुके, फिर बड़ी प्यारी-सी हँसी के साथ बोले, "लेकिन यहाँ उस तरह का कोई ख़तरा नहीं । न यहाँ कोई देर मे आयेगा, न पहले जायगा । इसलिए मेरा खयाल है कि फ़रहत साहब, आप ही पहले कुछ गुल-अफ़शानी कीजिए[2] !"

फ़रहत ने एक सेकेण्ड तक असमंजस में हुनर साहब की तरफ़ देखा । फिर वह अपनी जगह उठा; सिर के ऊपर खूँटी से उसने बोस्की की कमीज़ उतारी, पहनी, हाथ से देखा कि उसके कालर ठीक हैं और दीवार से ज़रा-सी टेक लगा कर, खड़ा हो गया । (चेतन को आश्चर्य हुआ कि उसकी नज़र उस कमीज़ पर पहले क्यों नहीं गयी । यह बात भी उसकी समझ में नहीं आयी कि ग़जल सुनाने के लिए फ़रहत ने कमीज़ पहननी क्यों जरूरी समझी ?)

"मतला[3] अर्ज़ है ।" फ़रहत ने हाथ बढा कर ऐसे कहा कि चेतन को लगा, जैसे वह किसी ग्राहक को दवा की शीशी या गोलियों का पैकेट देता हुआ, कह रहा हो—'दवा हाज़िर है ।'

"इरशाद इरशाद[4] !" हुनर साहब फिर फसकड़ा मार कर, ऐसे बैठ

---

१. एक के बाद दूसरा २. फूल बरसाइए ।
३. ग़जल का पहला शे'र ४. फ़रमाइए

गये, जैसे फरहत के मुँह से झरने वाला हर फूल, वे दोनों हाथों में लोक लेंगे।

फ़रहत ने मिसरा पढ़ा :

"जो तुझ को बुरा समझे, जो तुझ को बुरा जाने।"

हुनर साहब ने मिसरा उठाया—"वाह ! जो तुझ को बुरा समझे, जो तुझ को...."

फ़रहत ने फिर वही मिसरा पढ़ते हुए शे'र पूरा किया :

"जो तुझ को बुरा समझे, जो तुझ को बुरा जाने
वो हुस्न को क्या समझे, वो इश्क को क्या जाने।"

हुनर साहब ने दाद दी—"क्या मतला कहा है, वाह-वा...."

फ़रहत ने हाथ बढा कर सब तरफ़ घुमाते हुए कहा—"शे'र अर्ज़ है।"

"इरशाद....इरशाद !" हुनर साहब ने कहा। फ़रहत ने शे'र पढा :

"हम-सा भी कोई नादाँ अब तक न हुआ होगा
ज़ालिम की जफ़ाओं को अन्दाज़-ए-वफ़ा जाने।"

(जब हुनर साहब झूमते हुए दाद दे रहे थे और कह रहे थे 'वाह, क्या हकीकत बयान की है—ज़ालिम की जफ़ाओं को अन्दाज़-ए-वफ़ा जाने !' चेतन मन-ही-मन शायर को गाली दे रहा था कि क्या फ़र्सूदा शे'र कहा है, हज़ार बार का रौंदा हुआ !) तभी फ़रहत ने तीसरे शे'र का मिसरा पढा :

"जो अपना पता खो दे, जो अपना निशाँ खो दे"

"हाय-हाय क्या मिसरा कहा है," हुनर साहब ने कहा—"जो अपना पता खो दे, जो अपना निशाँ...."

फ़रहत ने दूसरा मिसरा कहा :

"वो तेरा निशाँ जाने, वो तेरा पता जाने।"

और हुनर साहब झूमने लगे—"वाह-वा, क्या लाजवाब शे'र कहा है।"

चेतन को शे'र निहायत मामूली लगा था। वह चुप बैठा था कि हुनर

साहब उसकी ओर झुके, " 'दाग़' साहब दाद दीजिए, क्या मा'रिफ़त का शे'र कहा है फ़रहत साहब ने ?" और मुड़ कर झूमते और 'वाह-वा' करते हुए फ़रहत से कहा, "एक बार फिर पढ़िए हुज़ूर फरहत साहब !"

फ़रहत ने फिर शे'र पढ़ा। चेतन ने भी फ़रमाइशी दाद दी। तब फ़रहत ने मक्त'ा अर्ज़ किया :

"इस इश्क-ो-मुहब्बत को जो ऐब समझता है
'फ़रहत' को वो क्या समझे, 'फ़रहत' को वो क्या जाने।"

'फ़रहत को अपनी माँ का यार जाने,' चेतन ने और भी चिढ़ कर मन में कहा, लेकिन प्रकट उसने हुनर साहब के साथ मिल कर दाद दी 'मुकर्रर इरशाद,' 'मुकर्रर इरशाद,' की गर्दान पढ़ दी। दूसरी बार मक्त'ा पढ़ कर फ़रहत बैठने लगा था कि हुनर साहब ने कहा, "कुछ और सुनाइए फ़रहत साहब, आपने तो तश्नगी बढ़ा दी है।"

और फ़रहत ने, विभिन्न ग्राहकों के लिए काउण्टर पर अलग-अलग पैकेट फेंकने की तरह, तीन शे'र कह दिये :

सामने मेरे रकीबों से मुलाकातें हैं
ख़ाक में मुझको मिलाने की यही बातें हैं
आपने आँख जो बदली तो ज़माना बदला
अब न वो दिन ही रहे और न वो रातें हैं
बात करता है कभी हँस के जो 'फ़रहत' से वो
हमको मालूम है दिल लेने की ये घातें हैं

शे'र पढ कर कैलाशनाथ 'फ़रहत' ने फिर कमीज उतार कर खूँटी पर टाँग दी और अपनी जगह उसी तरह—सबसे अलग-थलग—लेकिन जरा पसर कर, बैठ गया।

'साला बनिये का बेटा है ना,' चेतन ने मन में कहा, 'डरता है कि उसकी इस्त्री की हुई कमीज़ मुचड़ जायगी। और बैठा ऐसे है, जैसे लाट साहब का बाप हो।'

हुनर साहब ने तब तक उस बे-चेहरे के पहुँचे हुए शायर, ए० एम०

'दीवाना' से अपना कलाम सुनाने की फ़रमाइश कर दी थी।

'दीवाना' अपनी जगह खड़ा हो गया। चेतन को वह सचमुच दीवाना लगा—पूरा नहीं तो आधा। मुँह उसका खुला था, निचला होंट लटका था, यदि उसकी नाक से रेंट भी बह रही होती तो वह सचमुच 'पहुँचा हुआ' भी लगता। उसने शे'र पढ़ा :

"हम न बोलें तो बुलाये न कोई क्या मा'नी
हम जो रूठें तो मनाये न कोई क्या मा'नी"

और शे'र पढ़ कर वह मुँह खोल, निचला होंट लटका, जरा सिर झुका कर प्रशंसा पाने की इच्छुक निगाहों से सबकी ओर देखने लगा।

"वाह दीवाना साहब ! क्या शे'र पढ़ा है, फिर पढ़िए, मुकर्रर इर्शाद, मुकर्रर इर्शाद !"....कमरे में बैठे सभी लोग उस दीवाने को बनाने लगे और वह दीवाना फिर शे'र पढ़ने लगा। चेतन को उस पर दया हो आयी। 'इसे पहले अपनी नाक का ऑपरेशन कराना चाहिए कि इसका मुँह खुला और होंट लटका न रहे, फिर शे'र कहने चाहिएँ,' चेतन ने मन-ही-मन कहा, 'वरना यह अच्छे शे'र भी कहने लगेगा और ऐसे ही पढ़ेगा तो लोग इसे मज़ाक का निशाना बनाते रहेंगे।'

'दीवाना' के बाद हुनर साहब ने बारी-बारी रामप्रसाद 'नसीम', दीवान चन्द 'गौहर', बनवारी लाल 'शातिर' और कन्हैया लाल 'फ़िगार' की ग़ज़लें सुनवायीं। जब 'नसीम' ने ग़ज़ल पढ़ी तो चेतन का ध्यान उसके हद से बढ़े हुए टेंटुए पर लगा रहा, जो उसके स्वर की घबराहट के साथ ऊपर-नीचे होता रहा था। 'गौहर' जब तक पढ़ता रहा, उसका बाँया घुटना काँपता रहा और उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ती रहीं। हालाँकि शातिर को हुनर साहब ने खूब बढ़ावा दिया, लेकिन उस देहाती से एक शे'र भी ठीक से नहीं पढ़ा गया। पहला ही शे'र था :

आशिक-ए-रू-ए-यार[1] है शातिर
कुश्तः-ए-सद-बहार[2] है शातिर

---

१. प्रिय के चेहरे को देखने वाला। २. सौ बहारों का जला हुआ

लेकिन जब शातिर ने पढ़ा :

आशिके रो-ए-यार है शातिर
किश्ता-ए-सद बहार है शातिर

तो चेतन का जी हुआ ज़ोर से ठहाका मारे। लेकिन तभी उसके दिमाग़ में कुछ बरस पहले की घटना घूम गयी, जब उसने भी ऐसी ही हास्यास्पद ग़लती की थी और वह चुप रह गया। उस वक्त, जब हुनर साहब ठीक उच्चारण से मिसरा उठाते हुए, शातिर को दोबारा शे'र पढ़ने के लिए कह रहे थे, चेतन के सामने अपने उस्ताद का चेहरा घूम गया जिन्होंने इसी तरह उसकी ग़लती को सुधार दिया था।

चेतन ने उर्दू केवल छठी तक पढ़ी थी और पंजाबी काव्य का दामन छोड़ने के बाद, हुनर साहब की मुलाकात से पहले उसने जालन्धर के उस्ताद 'आज़र' की शागिर्दी की थी। उनकी मदद से उसने कुछ ग़ज़लें लिखी थीं और 'मुशायरा-ए-गिरामी' में सुनायी थीं। उर्दू शब्दों का ठीक उच्चारण न जानने की वजह से उसे एक बार मुशायरे में उपहास का शिकार बनना पड़ा था। तब पहली बार उसने सोचा था कि जिस भाषा का उसे ज्ञान नही और लाख कोशिश करने पर भी जिसका शुद्ध उच्चारण वह नही कर सकता, उसमें वह क्यों कविता करता है? करता है तो पढ़ता क्यों है?.... और मुशायरों में ग़ज़ल पढ़ने से उसे अरुचि-सी हो गयी थी।

उन दिनों वह एफ़० ए० मे पढ़ता था, कुन्ती से प्रेम करता था और दिन-रात ग़ज़लें लिखता था। वह कॉलेज से आ कर, घर मे किताबें वग़ैरा पटक कर, माई हीरां गेट जा खड़ा होता। उसके उस्ताद 'दोआबा हाई स्कूल' से (जहाँ वे पढ़ाते थे) बस्ती ग़ुज़ां के अड्डे को जाते हुए, वहाँ से गुज़रते। चेतन उनके रास्ते मे जा खड़ा होता। उन्हें अपनी ग़ज़ल देता या लेता और बस्ती के अड्डे तक उन्हें छोड़ आता। एक दिन उसने एक ग़ज़ल लिखी और उस्ताद को दे आया। उसमें एक शे'र था :

जौर-ो-जबर करो हज़ार मुझ पे महजबीं
इस इश्क की सज़ा मुझे क्या-क्या न चाहिए

प्रकट ही उसने ये शे'र कुन्ती को ध्यान में रख कर लिखा था, लेकिन चूंकि वह पंजाबी में बैंत कहता था, इसलिए नहीं जानता था कि पजावी भाषा में जो शब्द—'जबर'—ठीक है, वह उर्दू में गलत है। ठीक शब्द 'जब्र' है और उसने शे'र में 'जबर' बाँध दिया था। जब दूसरे दिन वह उस्ताद से मिला तो बिना कुछ कहे, उन्होने उसे संशोधित ग़ज़ल वापस कर दी। उसने वैसे ही तह किया हुआ कागज़ जेब मे रख लिया। उन्हे बस्ती के अड्डे पर छोड कर, जब वह घर पहुंचा तो उसने देखा, शे'र का पहला मिसरा काट कर उस्ताद ने उसके ऊपर नया मिसरा लिख दिया है :

जौर-ो-जफ़ा[1] करो सितम-ए-नारवा[2] करो
इस इश्क की सज़ा मुझे क्या-क्या न चाहिए

प्रकट ही उस्ताद ने शे'र के हकीकी[3] इश्क को इश्के-मजाज़ी[4] मे बदल दिया था, अब उसका सम्बोधन किसी युवती मे उतना नही, जितना ख़ुदा मे था। लेकिन चेतन को उसे पढने मे कठिनाई हुई। पंजाबी मे उर्दू का का शब्द 'सितम', 'सित्म' हो जाता है (उर्दू लिपि मे 'सितम, 'सित्म' भी पढ़ा जा सकता है।) और चेतन 'सितम' का ठीक उच्चारण न जानता था, उसने सोचा जल्दी में उस्ताद 'या' लिखना भूल गये है। उस्ताद से पूछने का वक्त नही था। उसने उसमे 'सितम' मे पहले 'या' जोड दिया। जब उसने मुशायरा-ए-गिरामी में, जो सिविल लाइन्ज़ में एक एडवोकेट की कोठी पर जमता था, यह शे'र पढा :

जौर-ो-जफ़ा करो या सित्म-ए-नारवा करो

तो आगे बैठे हुए लोगो ने व्यंग्य से 'सित्म' पर ज़ोर दे कर अतिरिक्त दाद देते हुए कहा : 'वाह वा क्या मिसरा कहा है—जौरो-जफ़ा करो या सित्मे-नारवा करो।' मंच पर बैठे हुए चेतन को एहसास हुआ कि वह ग़लत पढ़ रहा है। उसके उस्ताद भी मंच के पास ही बैठे थे। वे बहुत अच्छा पढ़ते

---

१. अत्याचार २. अनुचित ज़ुल्म ३. लौकिक प्रेम ४. अलौकिक प्रेम।

थे। उन्होंने बुलन्द आवाज़ में दाद देते हुए मिसरा उठाया—'फिर से पढ़िए—जौरो-जफ़ा करो, सितम-ए-नारवा करो !'

चेतन को अपनी ग़लती मालूम हो गयी थी। उसने दूसरी बार उस्ताद की नकल में ठीक मिसरा पढ़ा, लेकिन अपनी ग़लती पर वह इतना शर्मिन्दा हुआ था कि उसने मुशायरे में जाना छोड़ दिया था। उसे लगा था—सब को इस बात का पता चल गया होगा कि उसका यह शे'र उसके उस्ताद का लिखा हुआ है और उसके अहं को यह स्वीकार नहीं था।

चेतन के सामने सारी-की-सारी घटना घूम गयी। 'उस्तादों को पूरे शे'र अपने शागिर्दों को लिख कर नहीं देने चाहिएँ,' उसने सोचा, 'अगर वे उनके शे'रों को ठीक करें तो उनकी गलतियाँ उन्हें समझाते हुए, उन्हें शब्दों का ठीक उच्चारण ज़रूर सिखाना चाहिए।' अपने अनुभव से चेतन ने यह भी जाना था कि जिन लोगों को उर्दू बाकायदा नहीं आती और जिन्हें उस लिपि के ज़ेर-जबर का ज्ञान नहीं, उन्हें उर्दू में शायरी नहीं करनी चाहिए। सनातन धर्म और आर्य समाजी कॉलिजों के छात्रों को तो, जो बाकायदा उर्दू न पढ़े हों, बिल्कुल ही नहीं करनी चाहिए; इस भेड़-चाल में सिवा शर्मिन्दगी के कुछ हासिल नहीं। 'मैंने शायरी छोड़ कर नस्र[1] का दामन पकड़ा तो ठीक ही किया' चेतन ने मन-ही-मन कहा। 'नस्र को पढ़ना नहीं पड़ता।....लेकिन मैं उर्दू छोड़ कर हिन्दी में लिखूँगा। हिन्दी मेरे लिए उर्दू से आसान है और उसके रस्मुलखत में ज़ेर-ज़बर की भद्दी गलतियाँ होने का इमकान नहीं।'

वह इन्हीं विचारों में गुम था, जब फ़िगार की पुर-सोज़, सुरीली आवाज़ कमरे में गूंज उठी। अपने बालों पर हाथ फेरता हुआ, वह गा रहा था :

तू ही बता ऐ दिलरुबा
तू ही बता ऐ बे-वफ़ा

---

१. गद्य

दिल को सँभालूँ किस तरह
अरमाँ निकालूँ किस तरह
अब ज़ब्त की ताक़त नहीं
आहें हुई हैं आतशीं[1]
अश्कों का अब तूफ़ान है
चश्म - ए - वफ़ा हैरान है

नज्म के शे'र तो निहायत सतही थे, लेकिन फ़िगार कुछ ऐसे सोज़-ो-गुदाज़[2]-भरे लहजे में पढ़ रहा था कि चेतन मन्त्र-मुग्ध-सा सुनने लगा—और जब :

सीना फ़िगार अपना करूँ
दर पे मैं तेरे मर मिटूँ

कह कर फ़िगार बैठ गया तो कमरा तालियों से गूँज उठा; 'एक और, एक और' का शोर मच गया। लेकिन शायद हुनर साहब ने एक ही नज़्म उसे लिख कर दी थी, इसलिए न फ़िगार ने दूसरी नज़्म पढ़ी, न हुनर साहब ने उस पर ज़ोर दिया। 'यह अगर अच्छा कहने लगे,' चेतन ने सोचा, 'तो यह सचमुच लाहौर के मुशायरों पर हफ़ीज़ की तरह छा जायगा... लेकिन अच्छा कहने लगे....यही मुश्किल है। अच्छा लिखने के लिए अच्छे उस्ताद की शागिर्दी और अच्छे शायरों की सोहबत ज़रूरी है और वह सब इस फ़िज़ा में फ़िगार कहाँ से पायगा।'

हुनर साहब जैसे मिसरा उठाते थे और जैसे दाद देते हुए, दूसरा मिसरा और तुक शायर से पहले ही धीरे से बोले देते थे, उससे चेतन समझ गया था कि उन सभी नौजवान शायरों को हुनर साहब ने खुद ग़जलें लिख कर दी हैं। मौलिक ही लिख कर दी हों, यह ज़रूरी नहीं। वह हुनर साहब का तरीक़ा जान गया था। किसी पुराने गुमनाम शायर की ग़ज़ल में फेर-बदल कर के और उसी ज़मीन में दो-एक वैसे ही शे'र चुस्त कर के, वे

१. आग-भरी २. दर्द-भरे, दिल को पिघला देने वाले

पाँच मिनट मे गजल तयार कर देते थे और शायर का उपनाम बदल कर अपने शागिर्द का तखल्लुस फिट कर देते थे। इस बात का वे पूरा खयाल रखते थे कि किसी जाने-माने, मशहूर शायर की गजल न चुराये। उनसे गजले लिखवा कर अपनी आवाज के तमाम साज-ो-गुदाज के बावजूद, फिगार कुछ कर सकेगा इसमे चेतन को सन्देह था।

अब हुनर साहब के शागिर्दों मे सिर्फ एक रह गया था, सो उन्होंने उस मुगदर-सिफत नौजवान से कहा, "हा भई शर्मा, अब आओ मैदान मे और अपने जौहर दिखाओ। वही गजल पढो—'मिल गये खाक मे हम खाक मे पैदा हो कर'।"

शैदा बाकियो की तरह उठ कर खडा नही हुआ, वह सिर्फ घुटने जोड कर बैठ गया और ऐसे पढने लगा, जैसे बाकी सबको पकड के लिए ललकार रहा हो

कुछ मिला तो यह मिला बन्दा-ए-दुनिया हो कर
मिल गये खाक में हम खाक से पैदा हो कर

"वाह-वा," हुनर साहब ने दाद दी, "क्या शे'र कहा है, मुकर्रर इरशाद!" लेकिन सनातन धर्म कॉलेज के उस पहलवान ने शायद हुनर साहब का मतलब नहीं समझा। बिना शे'र को दोहराये, वह आगे बढ गया।

'अरे मियाँ, तू जा कर अखाडे मे डण्ड पेल, यह कहा शायरी के मैदान मे घुस आया है,' चेतन ने मन-ही-मन कहा। लेकिन वह चुप बैठा उस मुगदर की हरकते देखता रहा, जो शे'र पढते हुए ऐसे हाथ और सिर हिलाता था, जैसे मुगदर भांज रहा हो। हुनर साहब हर शे'र पर मिसरा उठाते और दाद देते रहे। चेतन को उस गजल का एक और शे'र अच्छा लगा

तूर[1] कुछ दूर न था, हम कोई मजबूर न थे
गर हमे देखना होता तुझे मूसा[2] हो कर

---

१. वह पहाड़ जिस पर मूसा को खुदा के दर्शन हुए २. एक पैगम्बर

हुनर साहब ने इस शे'र की खूब दाद दी थी। चेतन ने भी दाद थी और यह समझ कर कि 'मुकर्रर इरशाद' का मतलब वह पहलवान नहीं समझता, दाद देते हुए उसने कहा था, "फिर पढ़िए शैदा साहब, क्या शे'र कहा है : 'तूर कुछ दूर न था, हम कोई मजबूर न थे'—वाह-वा, वाह-वा !"

उस मुगदर के चेहरे से लगता था कि वह न 'तूर' को समझता है, न 'मूसा' को, लेकिन जब चेतन ने दोबारा पढ़ने को कहा तो उसने दुगुने जोश से शे'र पढा और हुनर साहब ने (कि जिन्होंने वह गज़ल अपने उस नये शागिर्द को लिख कर दी थी) जैसे अपने आपको दाद देते हुए झूम कर कहा, "वाह-वा, कयामत तक पढ़ते जाइए !"

शैदा ने बड़े बेढंगे तरीके से 'आदाब' किया। दो-एक और शे'र पढ़ कर उसने मक्त'ा पढ़ा था :

क्या क़यामत है कि महरूम-ए-तमाशा[1] हूँ मैं
तेरा आशिक, तेरा 'शैदा,' तेरा शर्मा हो कर

चेतन का जी हुआ था, ज़ोर से ठहाका मार दे, लेकिन हुनर साहब ने परम गम्भीरता से दाद दी थी : "वाह-वा, क्या बात पैदा की है, एक ही मिसरे में अपने तख़ल्लुस और ज़ात को बांध दिया है और 'शर्मा' को शैदा के म'आनी अता कर दिये है।"

तभी फ़रहत अपनी जगह हिला। उसकी आँखों मे शरारत की चमक झलकी, "सनातन धर्म कॉलेज के एक मुशायरे में 'शैदा' साहब ने यह गज़ल पढ़ी," उसने कहा, "तो जो बेपनाह दाद मिली सो मिली, उसी दिन से कॉलेज के लडके लफ़्ज 'आशिक' की बजाय 'शर्मा' इस्तेमाल करने लगे है।"

चेतन हालाँकि प्रकट रूप मे नहीं हँसा था, लेकिन शे'र की दाद सुन कर उस मुगदर के चेहरे पर, मूर्खता-भरे सुख का जो भाव आया, वह चेतन को लुत्फ़ दे गया। फ़रहत की प्रशंसा के साथ अपनी प्रशंसा मिलाते

---

१. दर्शनों से वंचित

हुए, मन-ही-मन हँसते, लेकिन ब-जाहिर पूरी संजीदगी से उसने कहा : "अगर शर्मा साहब ने और दो-चार गजलो मे 'शैदा' के साथ 'शर्मा' बाँध दिया तो वह दिन दूर नही, जब लुगत[1] मे 'शैदा' का मतलब आशिक के साथ-साथ 'शर्मा' भी लिखा जायगा !'

हुनर साहब ने मजा लेते और झूमते हुए कहा था, "क्यो नही ! क्यों नही ।"

इस पर उस मुगदर के चेहरे पर कुछ अजीब-सी झेंप-भरी खुशी झलक उठी । गदगद भाव मे उसने हुनर साहब की ओर संकेत करके कहा "हम तो कई बार गुरू जी से अर्ज कर चुके कि कुछ हमारे होस्टल मे भी चरन रखिए । इनके चरनो मे बैठ कर हम एक क्या, दस ऐसी गजले लिख लगे ।"

हुनर साहब हंसे । चेतन की ओर देख कर बोले, 'शैदा साहब मेरे पीछे पड़े है कि उस होस्टल मे रहते हुए मुझे काफी दिन हो गये है अब कुछ दिन इनके होस्टल मे रहूँ, रोज सुबह आ जाते है । इधर फरहत साहब जोर दे रहे है कि कुछ दिन इनकी सोहबत मे बसर करूँ । इनके वालिद बड़े आर्ट-प्रेमी है, शे'रो-शायरी से उन्हे बहुत लगाव है . "

चेतन ने उनके शागिर्दो की नजर मे उनकी साख और बढाते हुए, रद्दा जमाया, "तब हमारी बारी तो अगले जनम मे आयेगी ।"

हुनर साहब खुश हो गये, "अरे भाई, तुम्हारा घर तो अपना ही घर है, अभी तुम शिमला जा रहे हो .."

"मै शिमला जा रहा हू, लेकिन भाई साहब.. "

बात काटते हुए, हुनर साहब ने कहा, "अभी तो शातिर ही नही छोड़ते । यहा से शर्मा जी के यहाँ जाऊँगा, फिर कुछ दिन फरहत के साथ गुजारूगा, फिर कही और ठिकाना न मिला तो अपना घर तो है ही, जब चाहूँगा तुम्हारे यहा चला आऊँगा ।"

"आप कयामत तक हमारे साथ रहे तो आपको न छोड़ेगे," गद्गद

---

१. शब्द-कोश

भाव से शर्मा ने कहा ।

'यकीनन हुनर साहब यहाँ वालों को पूरी तरह चूस कर ही 'शैदा' के होस्टल में डेरा जमायेंगे,' चेतन ने मन में कहा, 'उसे ग़ज़लें लिख कर देंगे, उसके नाम का डिड्डम पीटेंगे, और बदले में बड़ी सफ़ाई से उसकी और उसके दोस्तों की जेबें हल्की करेंगे ।' और उसने उस मुगदर की तरफ़ बड़े दया-भाव से देखा । तभी हुनर साहब ने हज़रते 'दाग़'—याने चेतन—के शे'रों की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करके, उससे अपना ताज़ा कलाम सुनाने की फ़रमायश की ।

हालाँकि चेतन को जाने से रोकते हुए हुनर साहब ने कहा था कि बैठो चाय के बाद कुछ सुनें-सुनायेंगे, लेकिन उसे भी सुनाना पड़ेगा, इसका चेतन को ज़रा भी गुमान नहीं था ।

"मैंने तो इधर बरसों से कोई ग़ज़ल नहीं लिखी," उसने क्षमा चाही ।

लेकिन हुनर साहब ऐसे नहीं छोड़ने वाले थे । "अरे भाई, जब हम पहली बार मिले थे तो तुम ने एक ग़ज़ल सुनायी थी," उन्होंने कहा, "हर वक्त जिनको जल्वा-ए-जानाना चाहिए ! वही सुना दो । या वही, जो चिरंजीलाल के घर, लालड़ाँ में सुनायी थी ।"

चेतन उनकी याददाश्त पर हैरान हुआ । वह भूल गया था, लेकिन उन्हें उस पहली मुलाकात पर सुना शे'र भी याद था । हालाँकि तब उसने इब्तिदाई कोशिश[1] के तौर पर उन्हें वह ग़ज़ल सुनायी थी । उसके साथ ही 'सितम' और 'सित्म' वाला वह दुखद प्रसंग भी जुड़ा था । चेतन ग़ज़ल पढ़ना नहीं चाहता था, पर वह यह भी जानता था कि हुनर साहब अपना कलाम तभी पढ़ेंगे, जब वह पढ़ देगा । उसे पूरी ग़ज़ल याद भी नहीं थी । बिना कुछ ज़्यादा नखरा-वखरा किये, उसने कहा, "मुझे पूरी ग़ज़ल तो याद नहीं, चन्द शे'र याद हैं, उनमें भी उस्ताद साहब की तरमीम[2] है, लेकिन आपके हुक्म की ता'मील[3] में पढ़ देता हूँ ।"....

---

१. प्रारम्भिक प्रयास २. संशोधन ३. आदेश का पालन ।

लेकिन शे'र चेतन ने बेदिली से नहीं पढे। चूंकि वह एक ही आसन मे बैठे हुए थक गया था, इसलिए जब वह शे'र पढने लगा तो वह फिर घुटनों के बल बैठ गया और पूरे हाव-भाव के साथ उसने ग़ज़ल सुनायी :

हर वक्त जिनको जल्वा-ए-जानाना[1] चाहिए
हर घर नजर में उनको सनमख़ाना[2] चाहिए
जौर-ो-जफ़ा करो सितम-ए-नारवा करो
इस इश्क की सज़ा मुझे क्या-क्या न चाहिए
वहशी हूँ मैं अगर तो बला से यूँ ही सही
वहशी मुझे कहो, तुम्हें ऐसा न चाहिए
यह तुर्फा माजरा[3] है हर इक होशियार से
कहते है वो कि इक दिल-ए-दीवाना चाहिए
रोता है तू तो हंसते हैं अग़्यार[4] देख कर
ऐ 'दाग़' इनके सामने रोना न चाहिए।

'हुनर' साहब ने हर मिसरा उठाया और हर शे'र दोबारा सुना। उनकी देखा-देखी, बाकी लडकों ने भी खूब दाद दी। चेतन ने गज़ल को बिलकुल अपने उस्ताद की तरह, एक-एक लफ्ज का अलग उच्चारण करते हुए पढ़ा था। जब उसने गज़ल ख़त्म की तो उसे खुद भी लुत्फ़ आ गया और उसने सोचा, अगर 'हुनर' साहब उससे अनुरोध करेंगे तो वह अपनी पहली ग़ज़ल सुनायेगा, जिस पर 'मुशायरा-ए-गिरामी' मे उसे खूब दाद मिली थी और जो हुनर साहब ने उसमें लालडो मे चिरंजीलाल के घर सुनी थी।

गजल की समाप्ति पर हुनर साहब ने उसे खूब दाद दी कि : 'एक दम मुरस्स'।[5] गजल पढी है,' 'क्या उस्तादाना रंग है,' वगैरा-वगैरा....और उन्होंने चेतन से एक और गजल पढ़ने को कहा। इस उम्मीद मे कि वे फिर उससे अनुरोध करेंगे, जब चेतन ने आगे दिल से कहा कि, 'नही, अब

१. प्रिय के दर्शन २. मन्दिर ३. अजीब बात ४. शत्रु ५. जड़ाऊ, रत्नों से जड़ी।

आप पढिए' तो हुनर साहब ने फिर तकाजा नही किया; वे फसकड़ा मार कर बैठ गये और उन्होने कहा, " 'दाग' साहब मेरे शागिर्द ही नही, मेरे उस्ताद भी है और इनका हुक्म मै टाल नही सकता, मै आपको पहले एक ताज़ा चीज सुनाता हूं, जो मैने कल रात ही लिखी है। उनवान[1] है 'फिर न कहना हमे खबर न हुई' !"

चेतन थोड़ा हतोत्साह और उदास हो गया था, लेकिन उनकी बात सुन कर वह मन मे हस दिया। जब वह उनसे पहली बार मिला था, तब भी उन्होने इसी भूमिका के साथ यही नज्म सुनायी थी। चेतन को यह नज्म तब इतनी अच्छी लगी थी कि जब वह उन्हे स्टेशन पर छोड़ने गया था तो उसे लिख लाया था और महीनो गाता फिरा था। यह और बात है कि अपनी गजलो की तरह, वह भी उसके मन से उतर गयी थी। लेकिन हुनर साहब उसे अपनी मास्टरपीस नज्म समझते थे। नज्म पढने से पहले, उन्होने जो दो-एक शब्द भूमिका-स्वरूप कहे, उनमे यह शक जाहिर किया कि चाहे उन्होने सर्र से नज्म लिख दी है, लेकिन उन्हे लगता है कि शाहकार[2] चीज बनी है उनका शक कहा तक सही है, इसका फैसला तो सुखन-फ़हम ही करेगे और डी० ए० वी० कालेज होस्टल के उन सुखन-फहमो' के आगे, जिनमे सनातन धर्म कॉलेज का एक चैम्पियन पहलवान भी था, हुनर साहब बड़ी अदा से नज्म सुनाने लगे

तेरे दिल मे जगह बना लेते
तेरे कूचे की गर्द पा लेते
हम भी डेरा वही जमा लेते
जिन्दगी अपनी यूं बसर न हुई

वलवले सब मिटा दिये दिल के
जोश जिसने दबा दिये दिल के
जिसने पुर्जे उड़ा दिये दिल के
फिर वो बरछी हुई नज़र न हुई

१. शीर्षक, २. मास्टरपीस, सर्वोत्कृष्ट

तेरे घर पर नज़र हुई अ
तेरे दर पर नज़र हुई अपनी
ज़िन्दगी क्या बसर हुई अपनी
तेरे दर पे अगर बसर न हुई
अबके ख़ंजर सँभाल कर रहना
अबके हसरत निकाल कर रहना
आज से देख भाल कर रहना
फिर न कहना हमें ख़बर न हुई

उन शायरों के मुकाबिले में, जिनके इतने शे'र उन्होंने शुरू में सुनाये थे, यह रचना चेतन को निहायत बोगस लगी, लेकिन उसने जी खोल कर दाद दी। 'ज़िन्दगी क्या बसर हुई अपनी, तेरे दर पर अगर बसर न हुई' की तारीफ़ में, यह कहते हुए कि 'क्या ज़बान का शे'र है,' उसने बार-बार उसे सुना और उसकी देखा-देखी, दूसरों ने भी खूब 'वाह-वा' की। हुनर साहब रंग में आ गये। लेकिन इससे पहले कि वे कोई दूसरी चीज़ शुरू करते, चेतन उठ खड़ा हुआ। "मुझे इजाज़त दीजिए!" उसने बड़ी विनम्रता से कहा था, "चार महीने के लिए शिमला जा रहा हूँ। कई तरह की तैयारी करनी है!"

दूसरा मौका होता तो हुनर साहब, न सिर्फ़ उसके साथ होस्टल में दरवाजे तक आते, बल्कि उसे ठण्डी सड़क तक छोड़ आते। लेकिन तब उन्होंने इतना ही कहा, "ठीक है, आप चलिए, बहुत देर तक आपकी समा'-ख़राशी[1] की। मैं कल सुबह आऊँगा।"

चेतन ने उन्हें 'आदाब' कहा और हाथ माथे के पास रखे, सिर घुमाते हुए, उसने उन सब नये शायरों से विदा ली और कमरे के बाहर आ गया।

बरामदे में आ कर चेतन ने सुख की लम्बी साँस ली। 'लम्पट कहीं के!' उसने हुनर साहब को लक्ष्य कर, निहायत उपेक्षा से मन-ही-मन कहा

१. श्रवणों को कष्ट पहुँचाया।

'न कभी सुराही देखी, न साग़र, न मीना, न सहबा! घासी राम के ढाबे की कड़वी-कसैली चाय पी कर, ख़याल ही में ख़ुम-के-ख़ुम लुंढा रहे है और सर-ता-सर झूठी शायरी करके, कॉलेज के लौडो को ठग रहे है। स्साले! उन चार लौडों में बैठ, जज्बात से यकसर खाली नज्मे पढ कर समझते होंगे कि 'ग़ालिब' और 'जौक' की कब्र पर लात मार रहे है। और ये चूतिए!' चेतन के सामने एकदम अभिभूत बैठे, आर्य समाजी कॉलेज के उन लौडों की सूरत घूम गयी, 'ये समझते है कि न जाने कौन शेक्स-पियर ख़ुशकिस्मती से उनके बीच आ गया है, कमबख्तों को तब मालूम होगा, जब उनकी जेबें एकदम ख़ाली करके वे अगले ठिकाने चले जायेंगे!'

और सिर के एक झटके से उस सारे दृश्य को दिमाग से निकाल कर वह तेज़-तेज होस्टल के बाहर आ गया।



तैंतीस

डी० ए० वी० कॉलेज होस्टल की गोष्ठी के दूसरे ही दिन, हुनर साहब, ठिगने और लम्बू—अपने दोनों शागिर्दों को साथ ले कर, सुबह-सुबह अमृत-धारा मुहल्ले, चेतन के घर पहुँचे और उन्होंने नीचे गली से उसे आवाज दी।

चन्दा विद्यालय जा चुकी थी और वह मन लगाने को 'कारवाँ' के पन्ने पलट रहा था। उसने खिड़की में झाँका, 'आदाब' किया और कहा कि सीढ़ियाँ चढ़ आइए। हुनर साहब के पीछे उनके दोनों चेले सीढ़ियाँ चढ़ आये। चेतन ने ईजी-चेयर अपनी मेज के पास खींच कर, हुनर साहब को तशरीफ़ रखने और फ़िगार को चारपाई पर बैठने के लिए कहा।

हुनर साहब बैठे नहीं। उसे ज़रा अलग सीढ़ियों पर ले गये। एक बन्द लिफ़ाफ़ा उसकी ओर बढ़ाते हुए, उन्होंने सरगोशी में कहा : "शातिर शाह-खर्च लड़का है; उसके वालिद पहली को रुपये भेजते हैं और वह पन्द्रह-बीस तक बराबर कर देता है। महीने का आखीर है, वह सिर्फ़ दस रुपये का ही इन्तज़ाम कर सका। दस का, फ़िगार ने किया है। पन्द्रह मैंने फ़रहत से लिये हैं। ये पैंतिस रुपये हैं! मेरा खयाल है, इतने में तुम्हारे कोट-पैंट और फ़ेल्ट हैट का इन्तज़ाम हो जायगा। मैंने उन तीनों से कह दिया है कि उन्हें सोसाइटी में अहम ओहदों पर चुना जायगा और वे मेरे साथ काम करेंगे।"

चेतन की भारी चिन्ता दूर हो गयी। लिफ़ाफ़ा लेते हुए, उसने परम उदारता से यह वचन दे दिया कि न सिर्फ़ उन तीनों को सोसाइटी की

एग्ज़िक्यूटिव में चुन लिया जायगा, वरन हुनर साहब की मदद के लिए, उन्हें ज़िम्मेदार ओहदे भी दे दिये जायेंगे। तब हुनर साहब चेतन के साथ कमरे में लौट आये। शातिर और फ़िगार वहाँ चारपाई के साथ टेक लगाये खड़े थे। चेतन ने उन्हें चारपाई पर आराम से बैठने के लिए कहा। हुनर साहब आराम-कुर्सी पर बैठ गये और वह स्वयं मेज़ के पीछे अपनी कुर्सी पर जा बैठा। "भाई, मैं आप दोनों का बहुत मशकूर हूं," उसने हुनर साहब के दोनों शागिर्दों से कहा, "आपने मेरी एक बड़ी मुश्किल आसान कर दी। मैं अपनी पहली तनख्वाह से आपके पैसे लौटा दूंगा।"

"उसकी आप फ़िक्र न करें।" शातिर ने शरमाते और मुस्कराते हुए कहा, "हमें अफ़सोस है, हम ज़्यादा नहीं कर सके....महीने का आख़िर था....लौटाने की आप बात न कीजिए।"

"नहीं-नहीं, भाई यह तो...."

"वो सब हिसाब आप उस्ताद साहब से कर लीजिएगा," फ़िगार बोला, "आप लौटायेंगे तो हमें बुरा लगेगा।"

"ठीक है 'दाग़' साहब!" अपने स्वर में अतिरिक्त सत्कार भर कर हुनर साहब ने कहा, "उसकी फ़िक्र छोड़िए; आपका दिल न माने तो जब आपको सहूलत हो, मुझे दे दीजिएगा।" इतना कह कर बात का रुख़ पलटते हुए, वे शातिर और फ़िगार की तरफ़ मुड़े, "मैंने 'दाग़' साहब से कह दिया है," वे साधिकार बोले, "कि आप लोगों को न सिर्फ़ सोसाइटी की एग्ज़िक्यूटिव में ले लें, बल्कि जिम्मेदार ओहदे भी आपको दें। अब यह ज़िम्मेदारी आपकी है। सोसाइटी को आप लोग ऐसे चलायें कि जब 'दाग़' साहब शिमला से वापस आयें तो अश-अश कर उठें।"

"बस आप ज़रा हमें गाइड करते रहिएगा, मेहनत से हम कन्नी नहीं काटेंगे।" दोनों ने लगभग एक ही साथ कहा।

दोनों लड़के चारपाई पर टाँगें लटकाये, बैठ गये तो चेतन ने अलमारी से सोसाइटी के ब्रोशर और रसीद-बुकें उठायीं। चालू रसीद-बुक और कुछ ब्रोशर उसने वहाँ रहने दिये, "ये रसीद-बुकें और ब्रोशर आप

सँभालिए।" चेतन ने वह सब उन्हे सौंपते हुए कहा, "मैंने अपने साथ सिर्फ़ चालू रसीद-बुक और कुछ ब्रोशर रख लिये है। शिमले में पंजाब के बड़े-बड़े अफ़सरों से मिलने का मौका मिलेगा। मुमकिन हुआ तो वहाँ कुछ मेम्बर बनाऊँगा।"

"यह तो बहुत ही अच्छा होगा।" हुनर साहब ने किसी बेशकीमत खज़ाने की तरह रसीद-बुकें और ब्रोशर अपनी गोद में सँजोते हुए कहा, "जरूरत समझना तो शिमले मे सोसाइटी की एक ब्राञ्च खोल देना। उसके इफ़्तिताह पर हमे बुलाना। हम सब आयेंगे। मज़ा रहेगा। वहाँ तो बड़े-बड़े लोग जाते है, 'डेविको' या 'गेटी थियेटर' मे उस ब्रान्च की ओपनिग सेरेमनी रखेंगे।"

चेतन मन-ही-मन हँसा। यहीं से नजात पाने मे उसे दाँतों पसीना आ गया और वे शिमले मे सोसाइटी की ब्रांच खोलने की फ़रमायश कर रहे थे, लेकिन प्रकट उसने यही कहा : "यहाँ खुश-असलूबी से इफ़्तिताह हो जाय, आप मुझे यहाँ की सरगर्मी के बारे मे लिखिएगा, मै वहाँ काम चालू कर दूँगा। शिमला एमेचर ड्रैमेटिक क्लब के मेम्बरों से मिलूँगा। भगवान ने चाहा तो 'डेविको' बॉल-रूम मे एक मुशायरा रखेंगे।"

हुनर साहब खुश हो गये। "यहाँ इफ़्तिताह मे क्या देर है?" उन्होंने कहा, "लाओ, जिनको मेम्बर या सरपरस्त बनाया है, उनके नाम दो; जिन्हे पार्टी पर बुलाना है, उनकी लिस्ट बनाओ, कुछ को डाक से दावतनामे भेज देंगे, बाकियो को शातिर, फ़िगार और दूसरे दोस्त दे आयेंगे।"

"पहले जगह का तो तय कीजिए!" चेतन ने कहा, "फिर इन्वीटेशन कार्ड छपवाइए। लिस्ट बनने मे क्या देर लगती है। मै सोचता हूँ, माल के किसी होटल मे पार्टी दूँ। मुमकिन हो तो 'लोरेंग्ज' मे, नही तो किसी और जगह। अभी माल पर एक नया होटल खुला है, जनरल पोस्ट ऑफ़िस से उधर, दयाल सिह मैन्शंज़ से इधर, बड़ी मरकज़ी[1] जगह है, लेकिन

---

१. केन्द्रीय

जाने वहाँ कोई इतना बड़ा हॉल है या नहीं, जिस में पचास-साठ लोगों को चाय पिलायी जा सके।"

"आप एलफ़िन्स्टन की बात करते हैं," सहसा शातिर ने कहा, "वहाँ बहुत बड़ा हॉल है, हम दो-एक बार वहाँ गये हैं। मालिक हर ग्राहक का खयाल रखता है और बेहद सफ़ाई-पसन्द है। बादशाही असा[1] की तरह उसके हाथ में मक्खी-मार रहता है।"

"तो चलो, पहले होटल देख आयें!" हुनर साहब ने उठने का उपक्रम किया।

"हाँ, जगह तय हो जाय, इन्वीटेशन कार्ड छप जायँ तो फिर जिन्हें दावतनामे जाने हैं, उनकी फ़ेहरिस्त बनायें।" चेतन उठा। फिर वहीं खड़े-खड़े उसने कहा, "लेकिन इससे पहले कि हम माल की तरफ़ जायें, मेरा एक काम कर दीजिए। रुपये का इन्तज़ाम तो आपने कर दिया, बस आप लोग जरा चल कर अनारकली से मुझे कोट-पैंट का कपड़ा खरीद दीजिए! हरगोविन्द से सिफ़ारिश कर दीजिए कि वह जल्दी सिल दे। उसका रुपया मैं जाते ही भेज दूँगा।"

"जरूर-ज़रूर!" हुनर साहब उठते हुए बोले, "सरे-तस्लीम ख़म है, जो मिज़ाजे यार में आये!" और उन्होंने अपने चेलों से कहा, "चलो भाई, जरा चेतन जी को अनारकली से कपड़ा ख़रिदवा दें। हमने तो छोड़ दिया चन्दन का लगाना! खादी का कुर्ता-धोती पहनते हैं और महात्मा गान्धी को दुआएँ देते हैं, जिन्होंने सादा जीवन और उच्च विचार का उपदेश दिया और कपड़े चुनने और बढ़िया दर्ज़ी ढूंढते फिरने की परेशानी से नजात दिला दी। लेकिन तुम लोग नये जमाने के हो, ज़रा 'दाग़' साहब को ऐसा कपड़ा ख़रिदवा दो, जो उनके तन पर फबे और जब ये सूट-बूट पहन कर और टूटल टाई लगा कर, टेढ़ा फ़ेल्ट-हैट सर पर सजाये, शिमले की माल पर निकलें तो वहाँ कुश्तों के पुश्ते लग जायँ[2]।"

---

१. राज-दण्ड २. लाशों के ढेर लग जायँ।

और फिर अपने इस मज़ाक की ख़ुद ही दाद लेते हुए, मुस्कराते और चेतन की ओर झुकते हुए उन्होंने कहा, "आदाब-अर्ज़ है !"

यह कह कर, अपने चेलों को इशारा करते हुए, वे सीढ़ियों की तरफ़ बढ़े।

हुनर साहब ने फिगार की सलाह से चेतन को, बारीक चारख़ाने की ट्वीड का कपड़ा कोट के लिए और गहरी ग्रे वर्स्टेड का, पेंट के लिए ख़रीद दिया। चार रुपये का एक फ़ेल्ट हैट और डेढ़ रुपये की एक टूटल टाई भी ले दी। हुनर साहब ने उसे सलाह दी थी कि वह पाँच रुपये का नया जूता भी ले ले, लेकिन चेतन ने पिछले बरस जो जूता ख़रीदा था, वह ज़रा भी ख़राब नहीं हुआ था, क्योंकि वह प्रायः नंगे पाँव रहता था या पुरानी पेशावरी चप्पल फट-फटाता घूमता था। हाँ, आठ आने में उसने पालिश का किट ले लिया—नया ब्रश, किवी की छोटी पालिश की डिबिया और पीली फ़लालेन का टुकड़ा। पैंतिस में से पाँच रुपये उसके पास फिर भी बच गये थे। उधर से निबट कर, वे चारों कचहरी रोड पर 'यूनीवर्सिटी टेलर्ज़' पहुँचे। हुनर साहब ने चेतन का परिचय मास्टर हरगोविन्द, प्रोप्राइटर, यूनीवर्सिटी टेलर्ज़ से कराया, उसकी शायरी और अफ़सानों की तारीफ़ की।—लम्बा कद; गठा, कसरती शरीर; चौड़ा, हमेशा हँसता चेहरा और कुशल कारी-गर की-सी तेज़ी—चेतन को मास्टर हरगोविन्द अच्छा लगा था। सौभाग्य से उसने चेतन की एक कहानी 'भीष्म' के सण्डे एडीशन में पढ़ रखी थी। हुनर साहब इस बात का उल्लेख करना भी नहीं भूले कि निकट ही बाइबल सोसाइटी के सामने, उसके भाई का डेण्टल क्लिनिक है। "ये तो लोहारी दरवाज़े के अन्दर अहमद जान टेलर मास्टर के जा रहे थे," हुनर साहब ने कहा, "मैंने इन्हें समझाया कि मास्टर हरगोविन्द जैसा कटर तो सारे लाहौर में नहीं है, तुम किस अहमद जान को लिये फिरते हो ?"

"यह आपकी ज़र्रानिवाज़ी है।" मास्टर ख़ुश हो गया और नाप लेने के लिए उसने कन्धों पर लटकता फीता खींचा।

उस जमाने में कमर के ज़रा नीचे, चूतड़ों का जरा-सा हिस्सा ढंकते, छोटे कोट, और चौड़ी मोहरी की, पायँचों पर झूलती पैंटों का फ़ैशन था ! चेतन चुपचाप नाप देने लगा। हुनर साहब दो क्षण को रुके। मास्टर हरगोविन्द नाप ले चुका तो बोले, "असल में अहमद जान से इनका पुराना हिसाब है, वो वक्त पर इनका काम कर देता है और ये तनख्वाह मिलने पर उसे पैसे दे देते हैं ! चूंकि इसी हफ़्ते ये शिमला जा रहे है, इसलिए सूट इन्हें तीन दिन मे चाहिए।"

"मिल जायगा !"

"पैसे ये आपको महीने बाद तनख्वाह मिलते ही भेज देंगे।"

रंग जमाने के लिए चेतन ने जेब में पैंतीस में से अन्तिम पाँच का नोट निकाला था, "नहीं, पांच रुपये आप रखिए !" उसने कहा, "बाकी पाँच मै आपको वहाँ से भेज दूंगा या आप चाहे तो डॉक्टर साहब से मँगा लीजिएगा, मै कहता जाऊंगा।"

"अरे भाई, मास्टर साहब हरगोविन्द बड़े सुखन-फ़हम आदमी है।" हुनर साहब ने रद्दा जमाया, "ये तो खुद भी कभी शे'र कहा करते थे। तुम शहर के मशहूर शायर और अफ़साना निगार हो, अब ऐसी भी क्या बे-यकीनी है कि डॉक्टर साहब को तकलीफ़ दो। वहाँ से भेज देना या आ कर दे देना।"

"शायरों का कौन एतबार करता है ?" चेतन हँसा, "हमारे आम शायर मस्त-मौला और मुफ़लिस होते हैं। भाई साहब डेण्टिस्ट हैं; इनके चार कदम पर उनकी दुकान है, इसलिए मैंने उनकी बात की थी।"

मास्टर हरगोविन्द न शे'र कहता था, न समझता था और सच ही शायरों पर विश्वास करना उसके लिए मुश्किल था। (यह हुनर साहब का एक ढंग था कि दूसरे में अदेखे गुणों का उल्लेख कर देते थे—ऐसे कि दूसरा लुक्मा निगल ले और इनकार न कर सके) लेकिन एक तो कॉलेजो के छात्र अभी परीक्षाओं की तैयारी मे रत थे और कपड़े सिलाने का उन्हें होश न था और हरगोविन्द अपेक्षाकृत खाली था; दूसरे, न सिर्फ़ उसने

चेतन की कहानी पढ़ रखी थी और उसे याद रह गयी थी, बल्कि उसने चेतन को उसके बड़े भाई की दुकान के बाहर, लकड़ी के चौड़े तख़्ते पर खड़े, कई बार देखा था। फिर उसके मसूढ़ों में हल्का-सा खून आता था। उसने उस तकलीफ़ का जिक्र किया तो चेतन ने तत्काल उसे अपने भाई से मिलाने का वायदा कर लिया और कहा कि वह सस्ते-से-सस्ते में उसका इलाज करा देगा। तब मास्टर हरगोविन्द ने तीन दिन में सूट तैयार करके देना स्वीकार कर लिया, और यह भी आश्वासन दे दिया कि बाकी पैसे वह सहूलत से भेज दे। चेतन तो उसी वक्त मास्टर को साथ ले जा कर भाई साहब से मिलाने के लिए तैयार था, लेकिन हरगोविन्द ने कहा कि चेतन डॉक्टर साहब से उसकी सिफ़ारिश कर दे, वह फ़ुरसत मिलते ही उन्हें जा कर दिखा आयेगा।

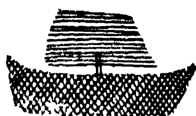
भला चेतन को इसमें क्या एतराज़ हो सकता था। मास्टर हरगोविन्द का शुक्रिया अदा कर, वे लोग बाहर निकले तो उन्होंने तय किया कि माल का एक चक्कर लगा कर सोसाइटी के उद्घाटनोत्सव के लिए मुनासिब जगह भी तय कर दे। जब वे वाइवर्स सोसाइटी के सामने पहुँचे तो उनसे एक मिनट के लिए छुट्टी ले कर चेतन भागा-भागा भाई साहब के क्लिनिक में गया। वे अन्दर किसी मरीज के साथ व्यस्त थे। उसने क्षण भर के लिए उन्हें बुलाया और सूट की सिलाई की सूचना देते हुए कहा कि मास्टर हरगोविन्द आदमी भला है। उसके मसूढ़ों में कुछ तकलीफ है। वह उससे वायदा कर आया है कि भाई साहब उसका सस्ते-से-सस्ता इलाज कर देंगे और खून आना बन्द हो जायगा। इस मरहले पर चेतन ने अपनी आवाज़ सरगोशी की हद तक धीमी कर ली, "अगर उसके मसूढ़ों में ज़्यादा तकलीफ़ न हो," उसने कहा, "तो आप उसे बारीक नमक-मिले सरसों के तेल की मालिश करने का अपना अचूक नुस्ख़ा बता दीजिएगा। कहिएगा कि आप अपने आदमी हैं, इसलिए आपको घरेलू नुस्खा बताता हूँ, जो मैं खुद इस्तेमाल करता हूँ और घर वालों को कराता हूँ, वरना कोई दूसरा पेशेण्ट होता तो बड़ी आसानी से सात-दस रुपये झटक लेता। नमक-मिले तेल की

मालिश से मसूढ़े लोहे-जैसे सख्त हो जाते हैं ।"

यह कह कर उसने हैट और टाई भाई साहब को दी कि अन्दर रख दें और उन्हें यह बता कर कि सोसाइटी की इनॉगरल मीटिंग[१] के लिए जगह देखने जा रहा है, वह जैसे भागा गया था, वैसे ही लौट आया ।

१ उद्घाटन-सभा



चौंतीस

चूँकि लिट्रेरी लीग की खास पार्टियाँ 'लोरेंग्ज' में होती थीं, जो माल पर काफ़ी दूर, क्वीन विक्टोरिया की मूर्ति के इधर था, इसलिए पहले वे लोग 'लोरेंग्ज़' गये थे।

बाहर से 'लोरेंग्ज' कोई खास भव्य नहीं लगता था। आधी सदी पहले उसे किसी अंग्रेज़ ने शुरू किया था और हालाँकि इस बीच उसमें किसी तरह का परिवर्तन-परिवर्धन न हुआ था लेकिन उसकी सम्भ्रान्तता और गरिमा समय के साथ बढ़ी ही थी। कोई ही दिन ऐसा जाता था, जब वहाँ कोई बड़ी पार्टी न हो। उसकी छत और दीवारों पर भित्ति-चित्र बने थे—पुराने प्रसिद्ध चित्रकारों की अनुकृतियाँ! सामने की दीवार में, जहाँ मैनेजर की मेज थी, एडवर्ड सप्तम का एक विशाल चित्र था; दायें-बायें क्वीन विक्टोरिया और जॉर्ज पंचम के चित्र टँगे थे (जॉर्ज पंचम का चित्र अपेक्षाकृत नया था।) बाहर से आने वाले दरवाजे के आगे, बर्मा टीक की नक्काशी-दार लकड़ी का फ़ोल्डिंग पर्दा था, जिसमें दरियाई का धूप-छाहीं रेशमी कपड़ा लगा था। हॉल में आबनूस की मेज-कुर्सियाँ थीं। छत से बिल्लौरी फ़ानूस लटक रहे थे और फ़र्श पर भारी ग़ालीचे बिछे थे। आधुनिक वहाँ कुछ नहीं था, लेकिन उसमें भव्यता, सम्भ्रान्तता और प्राचीनता का एक अनोखा आतंक था।

हॉल-कमरे में कदम रखते ही चेतन के मन में आकांक्षा जगी—काश, वह सोसाइटी की मीटिंगें वहाँ कर पाता! लेकिन तभी उसे इस बात का भी एहसास हुआ कि वह रेस्तराँ उनकी बिसात से परे है।....अजीब बात

थी कि वह उस सोसाइटी की मीटिंग 'लोरेंग्ज़' में करना चाहता था, जो मध्यवर्गीय बौद्धिकों के हितार्थ उसने स्थापित की थी और जिससे वह किनारा करने जा रहा था....चेतन ने एक बार कहा भी कि 'लोरेंग्ज़' उनके कद से बड़ा है, उन्हें वापस हो जाना चाहिए, लेकिन इतनी दूर आ कर 'लोरेंग्ज़' के मैनेजर से मिले बिना, हुनर साहब को लौटना स्वीकार न था। वे निःसंकोच भाव से अपने चेलों को लिये, इस तरह हॉल में दाखिल हुए, जैसे वे प्रायः बड़े रेस्तरांओं में जाने के आदी थे। जाते ही उन्होंने काफी दूर से मैनेजर को बड़े तपाक से 'गुड मॉर्निंग मिस्टर मैनेजर' कहा। मैनेजर क्षण भर उनकी ओर देखता रहा। फिर वह कुछ अनिश्चयात्मकता के साथ अपनी जगह खड़ा हो गया और उसने मुस्कराते हुए उनका अभिवादन किया। हुनर साहब के दोनों चेले उनके दायें-बायें और चेतन सबसे पीछे जा खड़ा हुआ।

सहसा चेतन की दृष्टि उस मैनेजर पर जा टिकी—गंजा सिर; अण्डाकार चेहरा; बाहर को निकलती हुई और गिलाफ़ी पलकों से ढँकी, बड़ी-बड़ी आँखें; गोरे रंग पर लाल-लाल चकत्ते—बढ़िया सूट और टाई में सुसज्जित, अपने दोहरे बदन के साथ, जाने चेहरे के किस भाव से वह चेतन को किसी बड़े होटल का हेड-बटलर लगा, जो तरक्की करके मैनेजर हो गया हो।

हुनर साहब ने बड़ी ऊँचाई से अंग्रेजी में कहा कि उन्होंने एक कल्चरल सोसाइटी स्थापित की है—सोसाइटी फ़ॉर यू एण्ड मी—वे उसकी इनॉगरल सेरेमनी करना चाहते हैं, पचास-साठ मेम्बरों और सरपरस्तों को चाय पर बुलायेंगे। कुछ मेम्बरों ने इच्छा प्रकट की है कि इनॉगरल मीटिंग 'लोरेंग्ज' में हो, इसलिए वे रेट पूछने आये हैं।

ग्रे रंग के बहुत बढ़िया सूट और गर्मी के बावजूद मोज़ों और पम्प शू से सुशोभित, गंजे मैनेजर ने क्षण भर तक उन चारों का जायज़ा लिया, फिर उसने अंग्रेज़ी ही में पूछा था कि वे कब पार्टी देना चाहते हैं।

"चार-पाँच दिन बाद; बीस-बाईस अप्रैल को!" हठात पीछे खड़े चेतन

ने कहा ।

एक चतुराई-भरी, विवश मुस्कान मैनेजर के होंटों पर खेल गयी । उसने अपनी बडी-बडी आंखें उनकी ओर उठायी और बेबसी से दोनों हाथ उलट कर सीधे करते हुए कहा कि उनका हॉल तो मई के पहले हफ्ते तक बुक्ड है, वे क्षमा चाहते है ।

चेतन को आश्चर्य नही हुआ । उसने तो हॉल देख कर ही कहा था कि 'लारेन्ज' उनकी बिसात के बाहर है । मैनेजर की बात सुन कर वह मुडने लगा था कि हुनर साहब ने कहा, "हम मई के पहले हफ्ते के बाद किसी दिन रख लेंगे । आप हमें अपना रेट और दो-तीन ऐसी तारीखें बता दीजिए, जब हॉल हमें मिल सकता है ।" और उन्होंने बडी बेपरवाही से बताया कि लाला हरकिशन लाल उनके प्रेजिडेण्ट है और वे उनसे पूछ कर कन्फर्म कर जायेंगे ।

हुनर साहब के पहले वाक्य से चेतन चौंका था । वह तो मई की पहली तारीख का जिमना मे बठा होगा ! उसने प्रतिवाद करने को होंट खोले ही थे कि हुनर साहब के अगले वाक्य से वह समझ गया कि वे यूं ही मनेजर को बना रहे ह । लेकिन मनेजर ने जो रेट बताये उनमे वह चकरा गया । पचास रुपये तो उसने एक शाम के लिए हाल की बुकिंग के मॉग लिये, बाकी जितने लोग आये और जो मेनू हो, उसका हिसाब अलग !

चेतन को लगा—उल्टा मनेजर उन्हे बना रहा ह । फिर उसने सोचा, 'लोरेन्ज' बडे लोगों—जजो, बेरिस्टरो, कौसिलरों—का रेस्तरां है, हो सकता है, उसके यही रेट हो । उसकी जेब मे तो इस खाते सिर्फ पैंसठ रुपये थे । वह चलने को हुआ । लेकिन हुनर साहब वहीं जमे थे—उनके चेहरे पर जरा भी असन्तोष अथवा निराशा का भाव नही था । रेट सुन कर जैसे वे बहुत सन्तुष्ट हुए हो, उन्होंने कहा : "रेट तो आपने निहायत वाजिबी बताये है । मै आज ही प्रेजिडेण्ट से मिलूंगा और मई के दूसरे हफ्ते की कोई डेट फ़िक्स कर के, दो-एक दिन मे आऊँगा ।"....उन्होंने विदा लेने के लिए मैनेजर की तरफ़ हाथ बढाया और अपनी पुरानी भंगिमा मे, मैनेजर के

हाथ को हाथों में ले कर, उसे ज़रा अपनी ओर खींचते और दाँत निपोर कर मुस्कराते हुए, उन्होंने मैनेजर को 'वेरी मैनी थैंक्स' दिये और फिर आ कर डेट फ़िक्स करने का वायदा करते हुए, मुड़े।

लेकिन मैनेजर ने उन्हें किसी रियासत का कांग्रेसी ज़मींदार समझा या किसी धनी कांग्रेसी नेता का सुपुत्र अथवा किसी बड़े आदमी का बिगड़ा बेटा—उसने उनका हाथ नहीं छोड़ा और वह हुनर साहब के साथ-साथ हॉल के दरवाज़े तक उन्हें छोड़ने आया।

बाहर निकल कर कहीं और जाने की अपेक्षा, पहले 'एलफ़िन्स्टन' को देखने के खयाल से वे लोग वापस घूमे। हुनर साहब 'लोरेंग्ज़' के मैनेजर की नकल उतारने लगे—कैसे उन लोगों को देख कर उसने आँखें मिच-मिचायी थीं; कैसे उसने उपेक्षा से उनकी 'गुड मॉर्निंग' का उत्तर दिया; कैसे दुविधा में उठा; कैसे उसने टाला कि मई के पहले हफ़्ते तक होटल बुक्ड है और कैसे लाला हरकिशन लाल का नाम सुन कर, उन्हें दरवाज़े तक छोड़ने आया और जब उन्होंने उससे विदा ली तो किस विनम्रता से उसने 'थैंक यू सर ! ऐट योर सर्विस सर !' कहते हुए सिर झुकाया।—हुनर साहब ने उसके स्वर की, उसकी एक-एक भंगिमा की, ऐसी नकल उतारी कि चेतन और उन के दोनों चेले, हँसते हुए लोट-पोट हो गये।

"क्या वह मैनेजर आप को हैड बटलर ऐसा नहीं लगता था ?" हँसी रोक कर चेतन ने कहा।

"लगता था नहीं," हुनर साहब ने कहा, "ज़रूर हैड बटलर से तरक्की करके मैनेजर बना होगा। लेकिन हमने न जाने कितने बड़े-बड़े लोगों को उल्लू बनाया है और वह साला हमी पर रोब गाँठता था।"

धूप तेज़ हो गयी थी, लेकिन हुनर साहब किस्से सुनाने लगे थे, कैसे उन्होंने बड़े-बड़े ठगों को मूर्ख बनाया। उन्होंने उस साधु का किस्सा भी सुनाया, जिसे उन्होंने जालन्धर स्टेशन के पास रोक लिया था और उसे भोजन कराने होटल में ले गये थे और सभी पकवानों और स्पेशल डिशों से भरा थाल उसके आगे रख कर, रबड़ी लाने के बहाने, होटल की कटोरियाँ

ले कर चम्पत हो गये थे।

चेतन उनसे ये तमाम किस्से पहले भी सुन चुका था। वह यह भी जानता था कि जितनी बार वे किस्सा सुनाते हैं, नये पत्ते लगा देते हैं। लेकिन हर किस्से के खात्मे पर हुनर साहब के नये चेले, हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते। हुनर साहब के चेहरे पर रौनक आ जाती और वे दुगुने जोश से दूसरा किस्सा शुरू कर देते।

माल रोड पर सैर करते हुए, दो-चार बार चेतन को नज़र 'एलफ़िन्स्टन होटल' के बोर्ड पर गयी थी। कई महीनों से वहाँ दो-मंज़िली इमारत बन रही थी। जब वह मुकम्मल हो गयी तो उस पर 'होटल एलफ़िन्स्टन' का बड़ा जहाज़ी बोर्ड लग गया। चूँकि माल रोड पर दुकानें सडक से काफ़ी अन्तर पर थीं—सडक के साथ पेड़ थे, फिर घोड़ों के जाने का रास्ता, जिस पर लकड़ी का बुरादा बिछा रहता, फिर फ़ुटपाथ, फिर फूलों के पेड़-पौधे—इसलिए आते-जाते, चेतन उस बोर्ड पर उचटती-सी नज़र डाल लेता था। बिसात उसकी इतनी नही थी कि वह कभी उस होटल के अन्दर जाने का साहस करता। यह ठीक है कि इन दो-ढाई वर्षों के दौरान उस चेतन में, जिसे लाहौर आने पर, एक आने की गज़क ख़रीदने का साहस न हुआ था, काफ़ी अन्तर आ गया था, पर इतना नहीं कि वह पुरानी अनारकली के ढाबे या अनारकली के 'सिन्धी होटल' से उठ कर, माल के होटलों और रेस्तराओं में जाता। शायद इसीलिए, जब उसकी जेब में पैसठ-सत्तर रुपये आये और उसने उन्हे सोसाइटी के उद्घाटन की पार्टी पर ख़र्च करने का फ़ैसला किया तो उसके मन में माल के किसी होटल पर पार्टी देने की इच्छा हुई। यह भी हो सकता है कि अगर उसने निम्न-मध्यवर्गीय बौद्धिकों के यहाँ असफल हो कर, बड़े लोगों को मेम्बर और सरपरस्त न बनाया होता तो उसके मन में माल के किसी होटल मे पार्टी देने का ख़याल ही न आता। हालाँकि हुनर साहब ने कहा था कि लाला हरकिशन लाल और राजा महेन्द्रनाथ वग़ैरा बड़े लोग चन्दा देने के बावजूद,

पार्टी में नहीं आयेंगे तो भी चेतन सोचता था कि एक प्रतिशत भी उनके आने की सम्भावना हो तो उसे माल के किसी होटल ही में चाय-पार्टी देनी चाहिए। अगर चेतन को शत-प्रतिशत विश्वास होता कि बड़े लोगों में से कोई नही आयेगा तो वह लाजपत राय हॉल मे उद्घाटन की मीटिंग रखता और किसी केटरर से तय करके, वहीं चाय का प्रबन्ध कर देता। लेकिन लाला हरकिशन लाल या राजा महेन्द्रनाथ चाहे न आयें, वह सोचता था, हफ़ीज़ जालन्धरी, तासीर साहब या मजीद मलिक मे से कोई ज़रूर आयेगा, इसीलिए इस बात के बावजूद कि चेतन सोसाइटी से किनाराकशी कर रहा था, वह चाहता था कि उसके कार्यकाल में सोसाइटी का उद्घाटन, माल के किसी होटल या रेस्तराँ मे हो जाय !

'एल्फ़िन्स्टन' पहुँच कर शातिर आगे हो गया, क्योंकि वह उस होटल में दो-एक बार चाय और डिनर ले चुका था। हुनर साहब ने उससे मालिक का नाम पूछा तो उसने कहा कि वह दो-एक बार ही आया है; एक आदमी बढ़िया सूट पहने, हाथ में मक्खी-मार लिये, हॉल की निगरानी करता है; वह मैनेजर है या मालिक उसे मालूम नही। तब हुनर साहब ने दरवाज़े पर खड़े, बावर्दी बैरे से होटल के मालिक का नाम पूछा। बैरे ने बताया कि लाला कर्मचन्द होटल के मालिक है और दरवाजा खोल कर उसने संकेत मे बता दिया था कि वो खड़े है।

चेतन ने देखा, एक बहुत बड़ा हॉल है—'लोरेंग्ज़' के हॉल से लगभग दुगुना—कुशादा, हवादार और एक-दम चम-चम करता हुआ। न उसकी दीवारों और छतों पर भित्ति-चित्र है, न फ़र्श पर ग़ालीचे, लेकिन मोज़ेक का फ़र्श शीशे की तरह साफ़ है और छोटी-छोटी मेज़ें और उनके गिर्द लगी चार-चार कुर्सियाँ—लगता था, जैसे अभी फ़र्नीचर मार्ट से आयी है।

होटल को खुले अभी ज़्यादा दिन नहीं हुए थे, इसलिए भीड़ नही थी। मेज़ों पर सफ़ेद मेज़-पोश बिछे थे, उन पर चम-चम करती प्लेटें, चमचे-काँटे और गिलास सजे थे, जिनमें दूध-धुले नैपकिनों के फूल बने हुए थे। दो-तीन मेज़ों पर बैठे लोग, लंच ले रहे थे। शेष मेज़ें खाली थीं। एक

अधेड़ उम्र का खुशपोश शख्स दायें हाथ में राजदण्ड की तरह मक्खी-मार लिये, एक ओर खड़ा था। उसी की तरफ़ बैरे ने संकेत किया था। वे लोग उसकी ओर आ रहे थे कि मुड़ कर वह तेज़-तेज़ एक मेज़ की तरफ़ गया और पट से उसने एक मक्खी को यमलोक पहुँचा दिया। यह कारनामा सरअंजाम दे कर, वह उनकी तरफ़ आया और उसने पूछा कि क्या हुक्म है।

हुनर साहब ने अपनी ज़रूरत बतायी।

"कितने लोग आयेंगे पार्टी में ?" लाला कर्मचन्द ने पूछा।

"पक्का तो कुछ नहीं कह सकते। हम चालिस-पचास को तो इन्वाइट करेंगे ही। आप यह बताइए कि इतने लोगों की चाय का इन्तजाम यहाँ हो सकेगा ?"

"इस हाल में तो सौ-सवा सौ लोगों की पार्टी हो चुकी है। हम तो केटरर भी हैं, आप चाहें तो तीन सौ मेहमानों को चाय पिला दें।"

"आप की बहुत तारीफ़ सुनी है, तभी तो हम आपको तकलीफ़ देने पहुँचे है...."

हुनर साहब की बात अभी पूरी भी न हुई थी कि लाला कर्मचन्द ने पलट कर, पास की एक मेज़ पर आ बैठने वाली मक्खी का सफ़ाया कर दिया। फिर हँस कर बोले, "किसने आपसे हमारा जिक्र किया ?"

हुनर साहब ने तो यूँ ही तारीफ़ कर दी थी, अब वे किसका नाम बताते, लेकिन बिना क्षण भर रुके, उन्होंने हँस कर कहा, "फूल जब खिलता है तो उसकी महक सारे बाग़ में फैल जाती है। हमने जब सोसाइटी की ओपनिंग सेरेमनी के लिए जगह की पूछ-ताछ की तो दोस्तों ने 'एलफ़िन्स्टन' का नाम लिया और बताया कि लाला कर्मचन्द बड़े ही एफिशिएण्ट और सफ़ाई-पसन्द होटेलियर हैं। आप रेट बताइए कि फ़ी कस[1] आप क्या लेंगे, तो हम तय करें कि कितने लोगों को बुलायें।"

"आप मीनू तय करें तो मैं बता सकता हूँ," लाला कर्मचन्द ने कहा,

---

१. प्रति व्यक्ति

"फ़ी कस एक रुपया भी हो सकता है, बारह आने भी !"

"हमारी सोसाइटी यूँ तो मिडल क्लास के अदीबों और अख़बार-नवीसों की सोसाइटी है," हुनर साहब ने कहा, "लेकिन इसके सरपरस्तों में बड़े-बड़े लोग भी हैं। आप क्या राय देते हैं, क्या मीनू होनी चाहिए, जो न ज़्यादा लगे, न कम !"

"एक केक पीस, एक पेस्ट्री, थोड़ी नमकीन दाल, एक समोसा—इतना तो होना ही चाहिए।"

"इसका कितना होगा।"

"चाय समेत बारह आना पर-हैड[1]।"

"और एक रुपये में।"

"एक पेस्ट्री का टुकड़ा और रख लीजिए और केक पीस, क्रीम वाला कर दीजिए।"

"निहायत मुनासिब है," हुनर साहब ने स्वीकार में सिर हिलाते हुए कहा, "हम आपको पाँच-दस मिनट में बताते है।" और वे चेतन को जरा एक तरफ़ ले गये। "दो-चार रुपये जेब में हैं ?" उन्होंने पूछा।

"हाँ !"

"ज़रा देख लें, केक-पेस्ट्री कैसी है। एक-एक पीस मँगा लें और एक-एक प्याला चाय पी लें। खाने का वक्त हो गया है, थोड़ी भूख लग आयी है, लेकिन इस काम को निबटाते चलें। यहीं बैठ कर तय कर लेंगे कि किस-किस को इन्वाइट करना है।"

चेतन ने हामी भर दी तो हुनर साहब पलटे। लाला कर्मचन्द हाथ में मक्खी-मार लिये, हॉल के दूसरे सिरे पर खड़े थे। हुनर साहब उनके पास गये। "आप ऐसा कीजिए लाला जी," उन्होंने कहा, "क्रीम वाला और बिना क्रीम का एक-एक पीस, एक पेस्ट्री, एक क्रीम रोल, एक समोसा और थोड़ी-सी दाल और चार प्याले चाय भिजवा दीजिए। हम ज़रा चख भी लेते हैं और मेहमानों की फ़ेहरिस्त भी बना लेते हैं। मैं चाहता हूँ, अभी

---

१. प्रति व्यक्ति

सब कुछ तय कर जायँ और आप को पेशगी दे जायँ ताकि इस काम के लिए दोबारा न आना पड़े। अभी हम को इन्वीटेशन कार्ड भी छपवाने हैं और मेम्बरों और सरपरस्तों को भिजवाने भी हैं।"

लाला कर्मचन्द, मक्खी-मार की जाली से अपनी पिंडली को धीरे-धीरे ठकोरते हुए, सोचते रहे, फिर उन्होंने कहा, "अब तो लंच का टाइम हो गया है; चाय तो हम चार से छै तक देते हैं," वे पल भर रुके, फिर बोले, "ख़ैर आइए, मैं आपके लिए स्पेशल इन्तज़ाम कर देता हूँ।"

वे उन्हें ले कर दरवाज़े के पास, कोने की एक ख़ाली मेज़ पर आये; दुर्भाग्य की मारी एक मक्खी वहाँ आ बैठी। टप से उन्होंने मक्खी-मार की जाली उस पर जमा दी; बैरे को बुला कर मेज साफ़ करने को कहा और क्रीम केक, साधारण केक, पेस्ट्री, क्रीम रोल, नमकीन और चाय लाने का आदेश दिया और उन्हें वहाँ बैठा कर, पूर्ववत अपना राजदण्ड हिलाते हुए, हॉल में घूमने लगे।

चेतन को 'एलफ़िन्स्टन' पसन्द आया। उसे लाला कर्मचन्द कुशल और सफ़ाई-पसन्द लगे। सबसे बड़ी बात यह थी कि अपनी तमाम चमचमाहट और स्वच्छता के बावजूद, वह होटल उसे मनोवृत्ति से निम्न-मध्यवर्गीय ही लगा था। चेतन को पूरा विश्वास था कि अगर वे उस वक्त 'लोरेंग्ज़' के मैनेजर से कहते कि उन्हें चाय दी जाय तो वह पहले उनकी ओर आँखें मिच-मिचाते हुए देखता कि क्या देहातियों की-सी बात कर रहे हो, यह 'लोरेंग्ज' है या कोई ढाबा—और फिर उपेक्षा-भरी विनम्रता से इनकार कर देता; लेकिन लाला कर्मचन्द ने उनके लिए बेवक्त भी विशेष प्रबन्ध कर दिया था।

पहले चाय की प्रतीक्षा करते और फिर केक-पेस्ट्रियाँ उड़ाते और चाय पीते-पिलाते, उन्होंने मेहमानों की एक अस्थायी सूची बना ली। चन्दा तो चेतन ने दस-बारह लोगों ही से वसूल किया था। उन्हें तो बुलाना अनिवार्य था, पर वह चाहता था कि जिन पत्रकारों अथवा साहित्यकारों से वह उस सिलसिले में मिला था, उन सब को भी बुलाया जाय। अपने बड़े भाई के

अलावा एक कार्ड वह लाला हाकिमचन्द को भी देना चाहता था। फिर उसका खयाल था कि चातक जी के साथ कम-से-कम नीरव जी, धर्म जी, शक्ला जी, करुण जी, वगैरा, कुछ हिन्दी साहित्यकारों को बुलाये। हुनर साहब अपने सभी चेलों को बुलाना चाहते थे; कुछ पत्रकारों के नाम भी उन्होंने बढाये थे; फरहत के पिता को बुलाना उन्होंने निहायत जरूरी समझा। सनातन धर्म और डी० ए० वी० कॉलेज के दो-एक छात्रों के नाम उन्होंने जोड दिये कि बड़े अच्छे शायर हैं, सोसाइटी के बहुत काम आयेंगे।

जब सूची बन गयी तो नाम कुछ ज्यादा हो गये। तब हुनर साहब ने चेतन को जैसे समझाते हुए कहा, "यह जो बडे-बडे लोग हैं उन्हें इन्वीटेशन भेजना एक रस्म की अदायगी भर है। वो लोग आयेंगे थोड़ी। मेरी राय है कि उतने आदमी तुम बिला-झिझक ज्यादा इन्वाइट कर सकते हो।"

लेकिन इस तरह की रियाकारी में चेतन का विश्वास नहीं था। उसका कहना था, अगर किसी को दावतनामा भेजा जाता है तो उसकी चाय का इन्तजाम रहना चाहिए।

"ठीक है," हुनर साहब ने कहा "मैं लाला कर्मचन्द से बात करता हूँ कि हम पचास-साठ इन्वीटेशन इशू करेंगे, जितने लोग आये, उतने रुपये हम आपको दे देंगे।"

पर लाला कर्मचन्द को यह मंजूर नहीं हुआ। "हम पचास मेहमानों के लिए मेजें लगायें और आपके सिर्फ बीस आदमी आयें तो, गर्मियों का मौसम है, तीस लोगों के लिए जो सामान पक चुका होगा वह कहाँ जायगा? हमारी कोई बेकरी तो है नहीं, आप अपना अन्दाजा कर लीजिए। कम-से-कम जितने मेहमानों के आने का पक्का हो, उतनी मेजें लगवाइए। न हमारा नुकसान हो, न आपका। दो-चार बढ़ जायें तो हम इन्तजाम कर देंगे, लेकिन बीस घट जायँ तो हमें बहुत नुकसान हो जायगा।"

हुनर साहब फिर दो मिनट के लिए क्षमा माँग कर चेतन से सलाह करने आये। चेतन ने जल्दी-जल्दी हिसाब लगाया। रसीद-बुकें और ब्रोशर

छपवाने, साइकिल बनवाने वगैरा के बाद, उसके पास पैंसठ रुपये बच गये थे। तीन रुपये हुनर साहब ने चाय पर खर्च करवा दिये, क्रीम केक उन्हें बहुत अच्छे लगे, एक-एक उन्होंने सब के लिए मंगवा दिया था। जब उन्हें उदरस्थ कर चुके तो बोले, "मुँह बहुत मीठा हो गया है, एक-एक समोसा और मंगा लो।" चेतन तो चाय पीता नहीं था, उसके लिए (उसके लाख रोकने के बावजूद) उन्होंने ताजा निम्बू का शर्बत मंगा दिया था। "अब होटल का तय हो जाय तो जा कर कार्ड छपवा देते हैं," उन्होंने कहा, "खाना गोल कर देते हैं, एक बार झंझट खत्म हो।...."

चेतन जानता था कि उनसे पार पाना कठिन है। जैसे वे कहते गये, वह करता गया। उसके पास बाकी बासठ रुपये बचे थे। उसने यही रकम हुनर साहब को बता दी।

"मुझे इन्वाइट करना होता तो साठ लोगों को इन्वीटेशन भेजता और चालिस का इन्तजाम करता, लेकिन तुम किसी तरह का रिस्क नहीं लेना चाहते...."

"नहीं यह बात नहीं," चेतन ने कहा था, "मुझे झूठ और तकल्लुफ़ से नफ़रत है। दिखावा मेरे बस का नहीं। अगर मैं किसी को इन्वाइट करता हूँ तो यह सोच कर इन्वाइट करता हूं कि वह आयेगा। लाहौरियों जैसी—'रोटी वी तयार ए ते गड्डी वी तयार ए' वाली बात मुझे पसन्द नहीं। मै जानता हूँ, कई लोग शायद नहीं आयेंगे, लेकिन लोगों को दावत देना और उनकी चाय का प्रबन्ध न करना, मेरे मजहब मे गुनाह है।"

"ठीक है," हुनर साहब ने बिना उसकी बात काटे कहा, "अगर हम पचास आदमियों को बुला लें तो तुम्हारे पास दस-बारह रुपये इन्वीटेशन कार्ड छपवाने और डाक से भेजने के लिए रह जाते है। सो काफ़ी है। क्या खयाल है ? दो-चार बच ही जायेंगे।"

"हां, आप पचास आदमियों के लिए कह दीजिए। लिस्ट को हम दोबारा देख लेते हैं, ग़ैर-ज़रूरी नाम काट देते है। अगर दस-बारह लोग बुलाने पर नहीं आते तो आठ-दस, बिन-बुलाये भी आ सकते हैं, यहाँ के

अदीबों और अखबार-नवीसों को तो आप जानते ही हैं।''

हुनर साहब फिर लाला कर्मचन्द के पास गये थे और उन्होंने पचास मेहमानों के लिए चाय का ऑर्डर दे दिया।

चेतन का सुझाव था कि बीस-बाइस अप्रैल को पार्टी रख दी जाय। २८ को लाला हाकिमचन्द शिमला जा रहे थे। पहली मई को उन्हें दफ़्तर मे हाज़िरी देनी थी और वह चाहता था कि कुछ दिन तैयारी करने और दोस्तों से मिलने-मिलाने के लिए बच जायें। लेकिन लाला कर्मचन्द ने कहा कि २६ तक उनकी शामें बुक्ड है। सिर्फ २७ अप्रैल को वे ख़ाली हैं। विवश, २७ तारीख को उसने पार्टी रखने का फ़ैसला कर दिया। एक तरह से उसे वह तारीख़ ठीक भी लगी थी। २७ को सोसाइटी का उद्घाटन करके वह एग्जिक्यूटिव का चुनाव करा देगा और २८ को गाड़ी में बैठ कर शिमला चला जायगा। न पण्डित रत्न कुछ कह पायेंगे, न सूफ़ी साहब; न कविराज और न कोई दूसरा। उसकी गैर-हाजिरी में हुनर साहब सोसाइटी चलाते है तो वह उनका सिर-दर्द होगी, नही चलाते तो वह असफलता उनके मत्थे जायगी। तीन महीने बाद लोग, सोसाइटी और उससे चेतन का सम्बन्ध—सब भूल चुके होंगे, उसे इस बात का पूरा विश्वास था।

लाला कर्मचन्द ने पचास रुपये पेशगी माँगे। हुनर साहब सिर्फ दस रुपये पेशगी देना चाहते थे। आखिर चेतन ने पच्चीस रुपये निकाल कर उनके सामने रखे और कहा कि बाकी, पार्टी की शाम उन्हें मिल जायेंगे; वे निशाखातिर रहे। उसने अपने डेण्टिस्ट भाई का हवाला दिया, हुनर साहब ने राजा महेन्द्रनाथ और मियाँ बशीर अहमद के नाम उछाल दिये और लाला कर्मचन्द मान गये।

''आप इस बात का खयाल रखिएगा,'' उन्होंने रुपये लेते हुए कहा था, ''साढ़े सात बजे शाम से हम रात के डिनर का इन्तज़ाम शुरू कर देते हैं। कुछ रोज़ाना ग्राहक भी चाय के लिए आते है। आप पाँच से सात बजे तक पार्टी रख लीजिए!''

''इनॉगरल सेरेमनी है,'' हुनर साहब ने चाटुकारी-भरी मुस्कान के

साथ कहा, "आप आध-एक घण्टे का मार्जिन जरूर दीजिए! हम आपके बहुत मशकूर होंगे। अगर मेम्बरों को आप का इन्तज़ाम पसन्द आ गया तो हम सभी पार्टियाँ आपके यहाँ करेंगे।"

लाला कर्मचन्द तैयार हो गये और उन्होंने रसीद काट दी। हुनर साहब ने उनके हाथ को दोनों हाथों में ले कर, बगल में दबाते हुए, उनका बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया और उस वक्त, जब लाला कर्मचन्द उनसे छुट्टी पा कर मेजों पर बैठने वाली मक्खियों के फ़िराक़ में गश्त करने लगे थे, वे लोग एलफ़िन्स्टन से बाहर आ गये।





पैंतीस

चेतन ने मन-ही-मन, उद्घाटनोत्सव के इन्वीटेशन कार्ड का मज़मून अंग्रेजी में तैयार कर रखा था। जब वे लोग एलफ़िन्स्टन होटल से गनपत रोड पर, 'खुराना प्रिंटिंग प्रेस' पहुँचे और हुनर साहब ने कार्ड-लिफ़ाफ़े पसन्द कर लिये तो चेतन ने निमन्त्रण-पत्र के दो नमूने बना कर, हुनर साहब को दिखाये। एक सीधा-सादा था :

डियर मिसेज़/मिस्टर ________________________________

द अण्डर-साइन्ड रिक्वेस्ट्स द प्लेज़र ऑफ़ योर कम्पनी ऐट द इनॉगरल सेरेमनी ऑफ़ 'द सोसाइटी फ़ॉर यू एण्ड मी,' टु बी हेल्ड ऐट 'होटेल एलफ़िन्स्टन,' द माल, ऑन ट्वेण्टी सेवन्थ एप्रिल, ऐट फ़ाइव पी० एम० शार्प.

चेतनानन्द

कन्वीनर

दूसरा ज़रा बेहतर था :

रिस्पेक्टेड मिसेज़/मिस्टर - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

द इनॉगरल सेरेमनी ऑफ़ 'द सोसाइटी फ़ॉर यू एण्ड मी' विल टेक प्लेस ऐट 'होटेल एलफ़िन्स्टन,' द माल, ऑन ट्वेण्टी सेवन्थ एप्रिल, ऐट फ़ाइव पी० एम०. मेनी सेलिब्रेटेड उर्दू-हिन्दी लिट्रेच्योर्ज़ आर एक्स्पेक्टेड टु अटेण्ड द फ़ंक्शन. योर पार्टिसीपेशन इज़ कॉर्डियली सॉलिसिटेड.

चेतनानन्द

कन्वीनर

हुनर साहब कुछ क्षण दोनों को पढ़ते रहे, फिर उन्होंने राय दी, 'पहला ठीक नहीं है, वह शादी-ब्याह मे शामिल होने वाले रिश्तेदारों के लिए मुनासिब है, जिनमे करीबी ताल्लुक हो। इस मौके के लिए दूसरा ही ठीक है। उसमे थोड़ी दूरी और फ़ॉर्मेलिटी है....'' फिर कुछ क्षण सोचने के बाद वे बोले, ''लेकिन तुम अंग्रेजी मे दावतनामा छपवाने पर क्यों ज़ोर देते हो ? महात्मा गान्धी अंग्रेज़ों और अंग्रेजी को हिन्दुस्तान से बाहर निकालना चाहते हैं और तुम अंग्रेज़ी के पीछे पड़े हो। दावतनामा तुम उर्दू में क्यों नहीं भेजते ?''

''बात यह है,'' चेतन ने उन्हें समझाते हुए कहा, ''सोसाइटी, उर्दू-हिन्दी—दोनों जबानों के अदीबों के लिए है। लेकिन न उर्दू अदीब हिन्दी जानते है, न हिन्दी वाले उर्दू ! टूटी-फूटी अंग्रेजी दोनों ही जानते है। ओशर छपवाते वक्त इस बात पर ग़ौर किया था, इसीलिए उसे अंग्रेज़ी में छपवाया। यूं भी यहाँ के पढ़े-लिखों की ज़बान अंग्रेज़ी है। यहाँ लोग बोलते पंजाबी है और लिखते अंग्रेज़ी मे है। मादरी-ज़बान तो यहाँ की पंजाबी है—न उर्दू, न हिन्दी ! और काम-चलाऊ ज़बान अंग्रेज़ी है।''

''क्या मजहका-खेज़[1] बात कहते हो,'' हुनर साहब ज़रा गर्म हो कर बोले, ''पंजाबी सूबे की भाषा है, लेकिन उर्दू या हिन्दुस्तानी तो सारे देश की ज़बान है। महात्मा गान्धी कहते है कि इस देश की कौमी-ज़बान हिन्दुस्तानी है, जिसे उर्दू-हिन्दी, दोनों रस्मुलखतूत[2] मे लिखा जाता है। यह तो निहायत शर्मनाक बात है कि उर्दू-हिन्दी अदीबों का जलसा हो और दावतनामे अंग्रेजी मे जायें।''

''लेकिन सोसाइटी में संगीत-सम्मेलन भी होंगे।'' चेतन ने कमज़ोर-सा प्रतिवाद किया। ''पंजाब तक मे क्लासिक संगीत के पण्डित, दक्खिन के है। मेरी बीवी जिस विद्यालय मे जाती है, उसे दक्खिन-भारती चलाते हैं, वो तो उर्दू बहुत कम समझ पाते है।''

१. हास्यास्पद   २. लिपियों

"ऐसे जो दो-चार ख़ुरासानी बोली वाले[1] होंगे, उन्हें जा कर अंग्रेज़ी में समझा देंगे, लेकिन उनकी ख़ातिर सभी को अंग्रेज़ी में दावतनामे जायें, यह सही नहीं।"

चेतन को सोसाइटी चलानी होती तो वह इस झगड़े में नहीं पड़ता और जिस जबान को ज़्यादा लोग पसन्द करते, उसमें इन्वीटेशन छपवा कर काम चलाता, लेकिन सोसाइटी तो हुनर साहब को चलानी थी, इसलिए उसने इस बात पर माथा-पच्ची करना व्यर्थ समझा।

"आप उर्दू में मुनासिब समझते हैं, तो उर्दू में छपवा लीजिए," उसने कहा, "सोसाइटी तो आप ही लोगों को चलानी है। चातक जी ज़ोर दे रहे थे कि हिन्दी मे ब्रोशर छपवाने चाहिएँ। उनको उर्दू में दावतनामा जायगा तो वे बुरा मानेंगे, इसीलिए मैंने ब्रोशर अंग्रेज़ी में छपवाये हैं।"

"उस सूरत मे दावतनामा एक तरफ़ उर्दू में और दूसरी तरफ़ हिन्दी में छपवाया जा सकता है। महात्मा गान्धी का हुक्म भी पूरा हो जायगा।" हुनर साहब ने इस समस्या का हल निकाल दिया।

"ठीक है," चेतन ने कहा, "आप हिन्दुस्तानी में दावतनामा तैयार कीजिए। प्रेस से रेट-वेट तय कर लीजिए। मुझे तो हिन्दी इतनी आती नहीं; यहीं बराबर में हस्पताल रोड पर चातक जी का दफ़्तर है। वो हिन्दी माहनामा 'मंजरी' के एडीटर हैं, वहाँ चलते हैं। आपसे तआरुफ़[2] भी हो जायगा और उनकी मदद से इन्वीटेशन कार्ड का हिन्दी मज़मून भी बन जायगा।"

तब हुनर साहब ने वहीं प्रेस में बैठ कर, उर्दू में (जिसे वो हिन्दुतानी कहते थे) दावतनामा लिखा :

मोहतरिमा/मोहतरिम ______________________

आपको यह जान कर मसरंत[3] होगी कि लाहौर के उर्दू-हिन्दी अदीबों[4]

---

१. पंजाब में उन देसी लोगों के लिए, जो मुग़लों के ज़माने में, अरबी-फ़ारसी बोलते थे, एक बहुत तीखा मुहावरा है—हुनर साहब का संकेत उसी की ओर था। २. परिचय ३. ख़ुशी ४. साहित्यकारों

की अंजुमन[1] **'सोसाइटी फ़ॉर यू एण्ड मी'** (कलम रोक कर हुनर साहब ने कहा : 'इसका नाम भी हिन्दुस्तानी जबान में होना चाहिए था !'—लेकिन चूँकि उस सिलसिले मे अब कुछ हो नही सकता था. इसलिए वे फिर लिखने लगे थे) **का इफ़्तताही जलसा 'होटल एल-फ़िन्स्टन,' माल, लाहौर में २७ अप्रैल को पाँच बजे मुनअक़द**[2] **होगा । शहर के मशहूर हिन्दी-उर्दू अदीब इसमें शिरकत करेंगे**[3] **। आपकी शमूलियत**[4] **हमारे लिए बायस-ए-इंबिसात-ो-इफ़्तिख़ार**[5] **होगी ।**

नियाज़मन्द[6]

चेतनानन्द 'दाग़'

दावतनामे का मजमून लिख कर हुनर साहब ने चेतन को सुनाया । फिर क्षण भर रुक कर बोले, "इस मे एक खामी है, इफ़्तिताही तक़रीब[7] किसके हाथों सरअंजाम होगी, इसका कोई जिक्र नही । आम तौर पर, ऐसे जलसों का इफ़्तताह, सोसाइटी के किसी मुअज़्ज़िज सरपरस्त के हाथो सरअंजाम होता है ।"

"हाँ, इस सिलसिले में मैंने नहीं सोचा ।" चेतन ने कहा, "वक्त नहीं है, वरना मैं राजा महेन्द्रनाथ के यहाँ जाता ।"

"अरे, इन राजा-नवाबो के चक्कर मे मत पड़ो," हुनर साहब ने कहा, "साइकिल दौड़ाते-दौड़ाते तुम्हारी हालत खस्ता हो जायगी ! फिर बड़े लोगों को बुलाओगे तो दरवाज़े बड़े करने पड़ेंगे । हमारी सोसाइटी अभी उनका बोझ नही सँभाल सकती ।"

चेतन ने तो कोई दूसरा नाम याद न आने से राजा महेन्द्रनाथ का नाम ले दिया था, वरना उनके यहाँ का अनुभव बहुत अच्छा नही था । वह कहना चाहता था कि वे रिवायती[8] राजा नही है, स्वभाव से बनिया है

---

१. संस्था २. संयोजित होगा ३. सम्मिलित होंगे ४. उपस्थिति ५. प्रसन्नता और गौरव का विषय होगी ६. दर्शनाभिलाषी ७. उद्घाटनोत्सव ८. परम्परागत ।

और शायद अंग्रेज़ो ने उन्हे राजा का ख़िताब दे दिया है। लेकिन उसने यह नही कहा और हफ़ीज़ जालन्धरी का नाम सुझाया।

"तुम हफ़ीज को नही जानते," हुनर साहब ने प्रतिवाद किया, "वो तुम्हे ख़ुश करने को 'हाँ' कर देंगे, लेकिन कभी नहीं आयेंगे। रंग गाँठने का उनका यह पुराना ढंग है। मै उनके साथ रह चुका हूँ और उन्हें ख़ूब जानता हूँ।"

तभी अचानक चेतन को अख़्तर शीरानी का ख़याल आ गया और उसने ललक कर उनका नाम लिया और कहा कि वह ख़ुद जा कर उन्हे ले आयेगा, इसका हुनर साहब विश्वास रखें। हुनर साहब इतने जोर से हँसे कि प्रेस के प्रोप्राइटर तक चौक गये। "कभी शाम को तुमने अख़्तर शीरानी को देखा है ? वो इतनी पिये होते हैं कि अगर तुम उन्हे ले भी आओ तो कोई भरोसा नही कि सोसाइटी का इफ़्तताही जलसा, मैदान-ए-कारज़ार बन जाय और एल्फ़िन्स्टन होटल के पिर्च-प्याले माल पर उड़ते दिखायी दें।"

चेतन चुप हो गया था। वह समझ नही पा रहा था कि किसका नाम उद्घाटनकर्त्ता के रूप मे सुझाये। तभी फ़िगार ने कहा, "चेतन जी, आप उस्ताद साहब मे क्यों नहीं सोसाइटी का इफ़्तिताह करने को कहते ?"

चेतन ने आँख उठा कर, उस लम्बू की ओर देखा। एक निमिष को यह ख़याल उसके दिमाग़ मे आया कि क्या ये पहले से मता पका कर तो नही आये ! हुनर साहब ने उसके सूट का प्रबन्ध कर दिया था, उसे कपड़ा ख़रीदवा दिया था, सुबह मे वे उसके साथ तपती धूप मे घूम रहे थे। वह क्या उत्तर दे, वह हठात समझ न पाया। मन मे उसने यह भी सोचा कि जब वह सोसाइटी मे किनाराकशी कर रहा है, तो कौन उसका उद्घाटन करता है, कौन सभापतित्व, वह क्यों इसके चक्कर में पड़े ! और लड़कपन मे 'एलफ्रेड थियेटर कम्पनी' के स्टेज पर सुना हुआ शे'र उसके दिमाग़ में घूम गया :

बुलबुल ने आशियाना चमन से उठा लिया
उसकी तरफ़ से बूम[1] बसे या हुमा[2] रहे !

वे तीनों उसके उत्तर की प्रतीक्षा में चुप थे। "हुनर साहब सोसाइटी का इफ़्तिताह भी करें और फिर जनरल सेक्रेट्री चुने जायँ," चेतन ने कहा, "यह कुछ वाजिब नहीं लगेगा। यूँ, जो आप लोग ठीक समझें ! सोसाइटी तो आप ही को चलानी है।"

"दाग़ साहब बिल्कुल बजा फ़रमाते हैं," हुनर साहब ने पुनः अपने स्वर में औपचारिक सत्कार भरते हुए, अपने चेले को टोका, "जनरल सेक्रेट्री बनने वाले को, सोसाइटी का इफ़्तिताह नहीं करना चाहिए।" और फिर जैसे अचानक उन्हें एक लाजवाब नाम सूझा हो, उन्होंने अतिरिक्त जोश से कहा, "मैं समझता हूँ, हमें इस काम के लिए फ़रहत साहब के वालिद, जनाब लाला दौलतराम 'सागर' को तकलीफ़ देनी चाहिए। वो ख़ुद भी शायर और सुख़न-फ़हम हैं और फिर वक़्त पड़ने पर सोसाइटी को माली इमदाद[3] भी कर सकते हैं।"

क्षण भर के लिए चेतन को ऐसे लगा, जैसे वह पहाड़ की चोटी से अचानक खड्ड में आ गिरा हो। लेकिन सिर्फ़ क्षण भर को ही। दूसरे पल, कुछ अजीब-सी अनासक्ति उसके मन पर छा गयी। जब उसे सोसाइटी चलानी ही नहीं तो उसे क्यों बुरा लगे—'उसकी बला से बूम बसे या हुमा रहे !'—उसने मन-ही-मन दोहराया। दौलतराम सोसाइटी का उद्घाटन करते हैं या गरीबदास—उसे क्यों चिन्ता हो ? 'चूढ़े दी धी चमार लै जाए, तूँ की लैणा एँ[4]।' उसने मन में पंजाबी कहावत दोहरायी और परम निरपेक्ष भाव से कहा, "मैं तो उन्हें जानता नहीं, आप ही को उनके पास जाना होगा।"

"इसकी तुम फ़िक्र न करो !" हुनर साहब बेहद उत्साहित हो उठे।

---

१. उल्लू २. एक कल्पित पक्षी, जिसकी छाया पड़ने से आदमी राजा हो जाता है। ३. आर्थिक सहायता ४. भंगी की लड़की चमार ले जायँ, तुम्हें क्या लेना है।

"तुम्हें इस बात की फ़िक्र थी कि सोसाइटी का सदर कौन हो, अगर तुम मुनासिब समझो तो मैं इस सिलसिले में भी उनसे बात करूँ।"

"सदर तो मेम्बरों या सरपरस्तों में से ही चुना जायगा," अपनी निरपेक्षता के बावजूद चेतन ने कहा।

"मै उन्हें कल ही सरपरस्त बना लूंगा।"

"जैसा आप मुनासिब समझें।"

"तो ठीक है, मैं दावतनामे में यह सतर बढ़ा देता हूँ कि 'मशहूर शायर और अदब-नवाज़, जनाब दौलतराम साहब 'साग़र,' प्रोप्राइटर, 'दौलतराम एण्ड सन्स, केमिस्ट्स एण्ड ड्रगिस्ट्स,' सोसाइटी की इफ़्तिताही रस्म अदा करेंगे।" और उन्होंने तत्काल दावतनामे में यह संशोधन कर दिया।

"एक ही बात है," अपनी अनासक्ति के बावजूद चेतन ने कहा, "हिन्दी वालों को बुरा ज़रूर लगेगा। कुछ ऐसा कीजिए कि दोनों ज़बानों के अदीब, सोसाइटी की सरगर्मियों में पूरा हिस्सा ले सकें।"

हुनर साहब क्षण भर सोचते रहे। फिर उन्होंने कहा, "ऐसा क्यों न करें कि सोसाइटी के हिन्दी-उर्दू शो'बों[1] का इफ़्तताह एक ही जलसे में करा दें। आप तो सोसाइटी के दो विंग खोलना चाहते थे ना...."

"मैं तो ख़ैर तीन विंग खोलना चाहता था, एक संगीत का...."

"वो बाद में होता रहेगा। अभी हिन्दी-उर्दू दोनों विंग्ज़ का इफ़्तताह हो जायगा। उर्दू विंग का, लाला दौलतराम 'साग़र' कर दें; हिन्दी के बारे मे आपके दोस्त, हज़रत 'चातक' से मशविरा कर लेते हैं।"

और प्रेस के मालिक, खुराना से यह कह कर कि वे थोड़ी देर में आते हैं, ज़रा दावतनामे का हिन्दी मज़मून बनवा लाय, हुनर साहब प्रेस से बाहर निकल आये।

१. विभागों

चातक जी सफ़ेद-बर्राक खादी का कुर्ता-धोती पहने, बालों की गुस्ताख लट माथे पर छिटकाये, पत्रिका के लिए किसी लेख की प्रेस-कॉपी तैयार कर रहे थे, जब चेतन, हुनर साहब और उनके चेलों के आगे-आगे, कमरे में दाखिल हुआ। सीढ़ियों से ही उसने कहा, "चातक जी नमस्कार! देखिए मैं किसे आपसे मिलवाने लाया हूँ।"

कलम छोड़ कर चातक जी अपनी जगह खड़े हो गये और माथे की लट को उन्होंने दायें हाथ से पीछे किया। तभी हुनर साहब लपक कर आगे बढ़े और चातक जी के हाथ को गर्म-जोशी से अपने दोनों हाथों में ले कर, बड़े स्नेह और सत्कार से बग़ल में दबाते और मिस्कीन मुस्कराहट होंटों पर बिखेरते हुए, उन्होंने कहा, "ख़ाकसार को राम प्रकाश 'हुनर' कहते हैं। 'दाग़' साहब आप का बराबर ज़िक्र किया करते थे, आज नियाज़ हासिल हुआ।"

"दाग साहब?" चातक जी विस्मय से बुदबुदाये।

चेतन हँसा। "उर्दू में मेरा उपनाम 'दाग' है," उसने कहा, "अब तो अर्से से मैंने गज़ल कहना छोड़ दिया है, लेकिन कभी, जब कहता था तो 'दाग' तख़ल्लुस रखता था।"

"आप हिन्दी वालों ने साहब, हमारा एक बहुत अच्छा शायर हम से छीन लिया," हुनर साहब ने शिकायत की।

"हिन्दी भी इसी देश की भाषा है," चातक जी हँसे, "कहीं बाहर की नहीं।"

और उन्होंने कुर्सी की ओर संकेत किया, "बैठिए, बैठिए।" चेतन को उन्होंने दायीं ओर और हुनर साहब के चेलों को बायीं ओर बैठने के लिए कहा।

जब सब बैठ-बैठा गये तो चेतन ने अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में हुनर साहब का परिचय दिया कि वे उर्दू के बहुत बड़े शायर हैं; ज़बान और बयान पर उन्हें वैसा ही कमाल हासिल है, जैसा चातक जी को हिन्दी में। चाहें तो अभी बैठ कर, एक ही ज़मीन में, दो-ग़ज़ले और सह-ग़ज़ले

चुस्त कर दें! कुछ वर्ष पहले बाकायदा लाहौर मे गरजते रहे है, घरेलू परेशानियों के कारण अपने घर चले गये थे, इसी महीने वापस आये हैं। चातक जी ने उनसे मिलने पर 'हार्दिक प्रसन्नता' प्रकट की। तब चेतन ने उनके चेलों का परिचय दिया और अपने आने का मन्तव्य बताया: "हुनर साहब और इन दोस्तों ने सोसाइटी के सिलसिले में मेरी बड़ी मदद की है चातक जी," उसने कहा, "मैं तो सात-दस दिन बाद, तीन-चार महीने के लिए, शिमला जा रहा हूं। जाने से पहले सोसाइटी की ओपनिंग सेरेमनी कर जाना चाहता हूँ। इस सिलसिले में माल रोड के एलफ़िन्स्टन होटल मे इसी २७ की शाम को पाँच बजे एक चाय-पार्टी रखी है। उसी मे एग्ज़िक्यूटिव का चुनाव भी हो जायगा। हुनर साहब ने संस्था के उर्दू-विंग को सँभालने का वादा किया है, आप हिन्दी-विंग की ज़िम्मेदारी ले लें तो मै इत्मीनान से शिमले जा सकूं।"

"शिमला किस सिलसिले में जा रहे हो?" चातक जी ने पूछा था।

चेतन ने संक्षेप मे उन्हें ट्यूशन की बात बता दी।

"मुझसे क्या मदद चाहते हो?" उन्होंने पूछा।

तब हुनर साहब ने कुर्सी ज़रा आगे खिसकायी थी, "बात यह है हुज़ूर चातक साहब, कि इफ़्तिताह की तारीख़ तो मुकर्रर हो गयी है...."

"इफ़्तिताह?" चातक जी ने आँखें झपकायी!

"उर्दू में उद्घाटन को इफ़्तिताह कहते है," चेतन हँसा।

"दाग़ साहब ने दावतनामा अंग्रेज़ी मे लिखा था," हुनर साहब ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "लेकिन मै समझता हूँ कि उन लोगों को, जो उर्दू-हिन्दी पढ़ सकते है, अंग्रेज़ी मे दावतनामे भेजना, अपनी और उनकी तौहीन करना है। महात्मा गान्धी अंग्रेज़ों के साथ ही अंग्रेज़ी को भी सात समन्दर पार भेज देना चाहते हैं और हम अपनी गुलामी की याद दिलाने वाली इस ज़बान को गले का तौक बनाये हुए है।"

"तौक का मतलब हँसली होता है," चेतन ने चातक जी को बताया, "हुनर साहब का मतलब उस लोहे की हँसली से है, जो कैदियों के गले में

डाली जाती है ।"

"यही बात मैंने संस्था का परिपत्र देख कर कही थी," चातक जी ने कहा ।

"खैर, दाग साहब मान गये हैं," अपनी बात जारी रखते हुए हुनर साहब ने कहा, "मैंने एक दावतनामा लिखा है । आप सुन लें और उसका तरजुमा हिन्दी मे कर दें । इन्वीटेशन-कार्ड के एक तरफ उर्दू में छप जायगा, दूसरी तरफ हिन्दी मे !"

"यह अत्युत्तम विचार है," चातक जी ने दाद दी । हुनर साहब ने दावतनामा सुनाया तो वे बोले, "यह बहुत ही कठिन भाषा मे है । हमारे पल्ले तो कुछ नही पड़ा । मैं सरल हिन्दी मे एक निमन्त्रण-पत्र लिख देता हूँ, लेकिन उसमे एक त्रुटि है...."

"त्रुटी," हुनर साहब बुदबुदाये ।

"खामी !" चेतन ने समझाया ।

"और वह यह कि आपने उद्घाटनकर्त्ता का नाम तो दिया है, लेकिन सभापतित्व कौन करेगा, यह इसमें नही लिखा ।" चातक जी ने कहा ।

हुनर साहब अपनी कुर्सी मे उछले, "वाह चातक साहब, आपने तो हमारा मसला ही हल कर दिया । हम सोच रहे थे कि उर्दू का अदीब सोसाइटी का इफ्तिताह करेगा तो हिन्दी दोस्तों को बुरा न लगे । अब उर्दू का अदीब सदारत कर देगा और हिन्दी का—वो क्या लफ़्ज़ आपने बोला....?"

"उद्घाटन !" चेतन ने लुक्मा दिया ।

"या इसका उलट भी हो सकता है ।" हुनर साहब ने कहा, "मैं समझता हूँ, दौलतराम साहब को सदर बना देते हैं । अमीर आदमी हैं । सुखनफ़हम हैं," और आवाज को सरगोशी की हद तक धीमा करते हुए बोले, "अकेले दम सोसाइटी चला सकते है । इफ्तिताह करने के लिए हिन्दी के किसी मुअज़्ज़िज अदीब का नाम तजवीज कीजिए । मैं दावतनामे मे उनका नाम शामिल कर लेता हूँ । वही दोनो नाम आप हिन्दी वर्शन में शामिल कर लीजिए ।"

"नीरव जी कैसे रहेंगे ?" चेतन ने हठात कहा।

चातक जी चुप रहे।

"श्री वेदालंकार !" चेतन ने दूसरा नाम सुझाया।

"नहीं," चातक जी ने कुछ सोचते हुए कहा, "वे दोनों तो हमारे साथी है, कार्यकारिणी मे रखे जा सकते हैं; उद्घाटनकर्त्ता तो कोई विद्वान और वयोवृद्ध व्यक्ति होना चाहिए !" वे कुछ क्षण चुप रहे। फिर उन्होंने उद्घाटनकर्ता के रूप में प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह का नाम लिया।

चेतन मन-ही-मन हँसा। प्रोफ़ेसर साहब को साहित्य-वाहित्य से कुछ लेना नहीं था। हाँ, वे पंजाब विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम बोर्ड के कन्वीनर थे। 'चातक जी अपनी पुस्तकों के लिए मैदान बनाना चाहते है,' उसने सोचा, 'लेकिन लाला दौलतराम 'साग़र' ही कौन तोप अदीब है ? अगर हुनर साहब, लाला दौलतराम को सभापति बना कर, अपने दाल-दलिये का जुगाड़ करना चाहते है तो चातक जी शौक से प्रोफ़ेसर साहिब को खुश कर के अपनी पुस्तकों के लिए रास्ता बना लें, मुझे क्या लेना है ?' लेकिन प्रकट उसने यही कहा था, "नाम तो आपने बढ़िया सुझाया है, लेकिन मेरा उनसे वैसा परिचय नहीं। नाम देने से पहले आप उनसे पूछ लीजिएगा।"

"इसकी तुम चिन्ता न करो," चातक जी ने सोत्साह कहा, "उन्हें लाना मेरा जिम्मा है। मै ज़रा हिन्दी मे निमन्त्रण-पत्र लिख लूं। उसे प्रेस में दे देते हैं, जितने में वह कम्पोज़ होगा, मै जा कर उनसे अनुमति ले आऊँगा। तुम उधर से निश्चिन्त रहो। जब मै संस्था के हिन्दी-पक्ष का कार्य-भार अपने ऊपर ले रहा हूं तो उसे ठीक से चलाने का उत्तरदायित्व भी मेरा है।" और यह कह कर, उन्होंने निमन्त्रण-पत्र बनाना शुरू किया :

मान्य श्रीमती/श्री——————————————

आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि आपकी और हमारी संस्था (सोसाइटी फ़ॉर यू एण्ड मी) का उद्घाटनोत्सव २७ अप्रेल १६३४ को सायं पाँच बजे 'एलफ़िन्स्टन होटल,' माल, लाहौर में आयोजित

होगा। गोष्ठी का सभापतित्व नगर के गण्य-मान्य नागरिक एवं प्रसिद्ध उर्दू कवि, श्री दौलतराम 'साग़र' (प्रोप्राइटर, 'दौलतराम एण्ड सन्स केमिस्ट्स एण्ड ड्रगिस्ट्स') करेंगे एवं संस्था का उद्घाटन, मूर्धन्य नृत्तत्व शास्त्री, प्रो० दिलबहार सिंह (अध्यक्ष, पुरातत्व एवं इतिहास विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय) के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न होगा। नगर के प्रमुख साहित्यकार एवं कवि, गोष्ठी में भाग लेंगे। आशा है, आप सभा में सम्मिलित हो कर, हमें गौरवान्वित करेंगे और आभार का अवसर देंगे।

स्नेहाधीन

चेतनानन्द 'दाग़'

निमन्त्रण-पत्र लिख कर उन्होंने कहा, "'दाग' का हिन्दी तो 'कलंक' होता है, कहो तो इसका भी अनुवाद कर दूँ।" और वे हँसे!

"आप उर्दू दावतनामे में भी तख़ल्लुस हटा दीजिए हुनर साहब।" चेतन ने खीझ कर कहा, "सिर्फ़ चेतनानन्द रहने दीजिए!"

"हमारी समझ में तो आपकी यह आसान भाषा नहीं आयी चातक साहब," हुनर साहब बोले, "लेकिन ठीक है, हिन्दी-उर्दू, दोनों में छप रहा है। किसी को दिक्कत नहीं होगी।"

"क्या आप ऐसी जबान में निमन्त्रण-पत्र नहीं लिख सकते, जो उर्दू-हिन्दी, दोनों में चल जाय? सिर्फ़ लिपि ही बदलनी पड़े!" चेतन ने पूछा, "महात्मा गान्धी तो हिन्दुस्तानी को देश की भाषा मानते हैं। उनके ख़याल में भाषा का नहीं, सिर्फ़ लिपि का भेद है!"

"महात्मा गान्धी ठीक कहते हैं," चातक जी ने कहा, "लेकिन वे आम बोल-चाल की भाषा की बात करते हैं! साहित्यिक भाषा की नहीं।"

"आपने बजा फ़रमाया हुज़ूर चातक साहब," हुनर साहब उनके समर्थन में चहके, "हिन्दुस्तानी में अदब की तख़लीक[1] नहीं हो सकती।" क्षण भर रुक कर हुनर साहब बोले, "क्या नाम बताया प्रोफ़ेसर साहब

---

१. सर्जना

का, मैं उनका नाम उर्दू दावतनामे मे जोड़ दूँ।" फिर चेतन की ओर पलट कर बोले, "तख़ल्लुस रहने दो, उसमें तुम्हे क्या एतराज है ?"

"नहीं," चेतन ने कहा, दोनो दावतनामो मे नाम एक-सा रहना चाहिए ! उर्दू में तो ठीक है, लेकिन हिन्दी मे यह तखल्लुस अटपटा लगता है। मै तो अब ग़ज़ल-वज़ल लिखता नही। क्या जरूरत है तख़ल्लुस की ? सीधा नाम रहने दीजिए।"

हुनर साहब ने तख़ल्लुस काट दिया। चातक जी ने प्रो० दिलबहार सिह का नाम बता दिया तो हुनर साहब ने दोबारा दावतनामा लिखा, पढ कर सुनाया और फिर बोले, "'दाग़' साहब तो शिमला जा रहे है, सोसाइटी को चलाना अब आपके-हमारे ज़िम्मे है।"

"मुझ से जो सहयोग बनेगा, दूँगा।" चातक जी ने कहा।

"देखिए, सोसाइटी का सदर लाला जी को रहने दें, आपको उनसे मिला दूँगा. बेनज़ीर आदमी है, आप बहुत खुश होगे। शे'र-ो-शायरी के दिलदादा है, आपको सुनेंगे और आप उनकी सोहबत पसन्द करेंगे। 'दाग़' साहब मुझे जनरल सेक्रेट्री बनाना चाहते है। दौड़-धूप का काम है। आप चाहे, आप हिन्दी-विंग के सेक्रेट्री बन जाइए ! आप जनरल सेक्रेट्री बनना चाहते हो तो मैं उर्दू-विंग का सेक्रेट्री बन जाता हूं। दो-दो जायंण्ट सेक्रेट्री रहेंगे। आप अपने मतलब के साथी चुन लीजिए। नाम मुझे दे दीजिएगा, ताकि कसरत-राय[1] से इन्तख़ाब[2] हो जाय !"

चातक जी क्षण भर सोचते रहे। फिर बोले, "ठीक है, आप जैसे कहेंगे, कर लेंगे। जरा सोचने और मित्रों से बात करने का अवसर दीजिए।" और उन्होने हुनर साहब के निवास का पता पूछा, लेकिन हुनर साहब ने कहा कि वे दो दिन बाद उनसे 'मंजरी' के दफ़्तर ही मे मिल लेंगे।

"अवश्य पधारिए ! मुझे बडी प्रसन्नता होगी।" चातक जी ने कहा।

---

१. बहुमत २. चुनाव

जब मतलब की बात तय हो गयी तो हुनर साहब कुछ खुल कर बैठ गये थे।

" 'दाग़' साहब आपकी शायरी की बहुत तारीफ़ करते है," उन्होंने चातक जी से कहा, "एक-आध चीज सुनायें तो हमें भी मालूम हो, हिन्दी में कैसी आ'ला शायरी होती है।"

चेतन भी पसर कर बैठ गया। वह जानता था कि हुनर साहब बिना सुने-सुनाये, अब नही उठेंगे। उसने चातक जी से 'बेचैनी के बीज' सुनाने को कहा। चातक जी ने एक-आध बार नख़रा कर के, दराज से स्लिपें निकाली और 'बेचैनी के बीज' ही नही 'बेचैनी के प्याले' तक पिला डाले। बीच-बीच मे वे हुनर साहब को समझाते भी गये। दो कविताएँ सुना कर, उन्होंने हुनर साहब से अपनी कोई रचना सुनाने को कहा। हुनर साहब तो इसका इन्तज़ार ही कर रहे थे। ग़ज़ल-पर-ग़ज़ल और नज़्म-पर-नज़्म—वे सुनाते चले गये। जब दो घण्टे बीत गये तो चेतन ने कहा कि प्रेस बन्द हो जायगा, अब दो दिन बाद फिर मजलिस रखी जाय। तब हुनर साहब उठे। चातक जी ने भी काम समेट दिया कि चल कर प्रेस वाले को टाइप-आइप का समझा दें और प्रो० दिलबहार सिंह की अनुमति ले आयें!

और जब 'मंजरी' के दफ़्तर से उतर कर वे लोग गनपत रोड की ओर को चलने लगे तो खादी के कुर्ते-धोती पहने, हुनर साहब और चातक जी, जुड़वाँ भाइयों की तरह आगे-आगे थे, उनके पीछे शातिर और फ़िगार थे और चेतन सब के पीछे घिसटता जा रहा था।



छत्तीस

यद्यपि चेतन का मन बुझा हुआ था और वह 'एलफ़िन्स्टन होटल' में होने वाले, 'सोसाइटी फ़ॉर यू एण्ड मी' के उद्घाटनोत्सव में जाने को ज़रा भी उत्सुक न था, लेकिन उसने लाला हाकिमचन्द को बुला रखा था, उसका ख़याल था कि शायद पण्डित रत्न और कविराज भी आ जायँ, इसलिए दोपहर को, कुछ आराम करने के बाद, तीन बजे के करीब वह उठा और 'एलफ़िन्स्टन' चलने की तैयारी करने लगा।—जब तक सोसाइटी का उद्घाटनोत्सव नही हो जाता और दूसरे लोग उसके स्थान पर नही आ जाते, तब तक सब काम सँभालना, उसकी ज़िम्मेदारी थी और कारण कुछ भी क्यों न हो, इस जिम्मेदारी मे कन्नी काटना उसे ग़लत लगता था। अपना एक मात्र सूती सूट, जो लगातार पहनने मे एक साल ही में घिस गया था और जिसे उसने धोबी से धुलवा लिया था, ट्रंक मे निकाल कर उसने चारपाई पर फैला दिया। कमीज़ और टाई निकाल कर रख ली। तब नहाने और कपड़े बदलने से पहले, उसने अपने जूते निकाले और बड़े मनोयोग से उन पर पालिश करने लगा।

००

हालाँकि चेतन, सोसाइटी का उद्घाटन और कार्यकारिणी का चुनाव स्वयं करा के, अपनी ज़िम्मेदारी बाकायदा हुनर साहब को सौंपना चाहता था, लेकिन जिस दिन उसने हुनर साहब से सूट के पैसे (भले ही उधार) ले लिये थे और उन्हें चातक जी से मिलाने ले गया था, सोसाइटी पर से जैसे उसका अधिकार उठ गया था और उसकी ज़िम्मेदारी को बड़ी सफ़ाई से,

उर्दू और हिन्दी के उन दोनों 'महारथियों' ने अपने कन्धों पर ले लिया था। यूँ, हर बात में उसकी सलाह ली गयी थी, लेकिन उसकी स्थिति रण-क्षेत्र में अनिच्छापूर्वक डटे हुए किसी ऐसे सेना-नायक की-सी थी, जिसके हाथ से युद्ध का संचालन निकल गया हो। नीचे से फ़ौजी अफ़सर आते हों, उसे अपनी योजनाएँ बताते हों और इसकी परवाह किये बिना कि वे योजनाएँ एक-दूसरी को काट तो नहीं रही, रण-नीति के अनुकूल हैं या प्रतिकूल, वह एक अवश स्वीकार में सिर हिला देता हो।

उसे लाभ इतना ही हुआ था कि शातिर और फ़िगार के रूप में, दो फोकट के मुसाहिब उसे मिल गये थे, जो रोज सवेरे उसके घर आ जाते थे, लेकिन काम वे सब हुनर साहब की हिदायत से करते थे। उन्होंने हुनर साहब के साथ मिल कर निमन्त्रण-पत्र छपवाये थे (हालाँकि हर स्टेज पर चेतन को दिखाये थे) और जिस दिन वे छप गये थे, हुनर साहब भी उनके साथ उसके यहाँ आये थे, उसे अपने साथ गनपत रोड पर 'खुराना प्रिंटिंग प्रेस' ले गये थे। बिल के पैसे चेतन ने हुनर साहब को दे दिये थे, जो उन्होंने खासी खिट-खिट के बाद खुराना को दिये और जो एक रुपया बच गया था, वह सोसाइटी के लिए दिन भर दौड़-धूप करने की एवज़ शर्बत-पानी के लिए रख लिया था।

प्रेस से निमन्त्रण-पत्र और लिफ़ाफ़े ले कर, वे लोग 'मंजरी' के दफ़्तर की ओर चल दिये थे कि वहाँ चातक जी की सलाह से हिन्दी-उर्दू के साहित्यिकों और पत्रकारों को निमन्त्रण-पत्र भेजे जायं। लेकिन वहाँ पहुँचने से पहले हुनर साहब अनारकली में केसरी की सोडावाटर फ़ैक्ट्री में रुक गये थे और उन्होंने एक-एक लेमोनेड का आर्डर दिया था। चेतन को लेमोनेड ज़रा भी पसन्द नहीं था। उसमें सोडा मिला हो और उसकी मिठास कम हो जाय तो वह पी लेता था, लेकिन उस वक्त उसका मन इतना खिन्न था कि वह अपनी उस इच्छा को भी दबा गया था और अपने लिए उसने सिर्फ़ एक गिलास पानी मँगाया था। तब हुनर साहब ने उसके लिए मँगाया हुआ लेमोनेड, शातिर, फिगार और अपने गिलासों में

उलट लिया था। और यूं तृप्त और ताज़ा-दम हो कर, वे अगली मुहिम पर चल दिये थे। चातक जी से उनका (जैसा कि शातिर और फ़िगार की बातों से चेतन को आभास मिला था) सब कुछ पहले से तय था। वे इस बीच बराबर उनसे मिलते रहे थे और काफ़ी घनिष्ट हो गये थे। चातक जी ने अस्पष्ट-सा वचन भी हुनर साहब को दे दिया था कि यदि कोई मित्र उनकी ग़ज़लों और नज़्मों पर एक बढ़िया-सा लेख हिन्दी में तैयार कर दे तो चातक जी उसे सहर्ष 'मंजरी' में छाप देंगे। और दोनों में ख़ूब घुटने लगी थी।

हुनर साहब के परामर्श से यह तय हुआ कि चेतन ने जो सदस्य और सरपरस्त बनाये हैं और जिन लेखकों, कवियों और पत्रकारों से मिला है और उनमें से जिनको वह निमन्त्रण-पत्र भेजना चाहता है, उनकी सूची बना ले। निमन्त्रण-पत्रों और लिफ़ाफ़ों पर उनके नाम-पते लिखने, उन्हें डाक से भेजने अथवा स्वयं जा कर देने में शातिर और फ़िगार उसकी सहायता करेंगे। चातक जी ने हिन्दी के कुछ नाम और सुझाये थे, जिनमें से अधिकांश हिन्दी पाठ्य-क्रम समिति के सदस्य थे और यह सुझाव दिया था कि यदि चेतन आ जाय तो दोनों जा कर स्वयं उन लोगों से मिल भी आयें और निमन्त्रण-पत्र भी दे आयें।

चूंकि यह पहले से तय था कि पचास से ज़्यादा निमन्त्रण नहीं बाँटे जायेंगे और यदि किसी ने आने में स्पष्ट रूप से असमर्थता प्रकट की, तभी उसके बदले में किसी और को निमन्त्रित किया जायगा, इसलिए जब चेतन और चातक जी की सूचियों को मिला कर गिना गया तो अड़तीस के करीब नाम हुए। हुनर साहब ने बाकी निमन्त्रण-पत्र और लिफ़ाफे बग़ल में दबाये थे तथा शातिर और फ़िगार को चेतन की सहायता करने और अगर किसी ने पार्टी में आने से इनकार किया तो फ़ौरन उन्हें ख़बर देने का आदेश दिया था। चातक जी और चेतन, दोनों से उन्होंने कहा था कि उन्हें कम-से-कम पन्द्रह निमन्त्रण-पत्र दरकार थे, अगर कुछ लोग पार्टी में न आयें तो इत्तला मिलने पर वे और दो-चार को इन्वाइट कर लेंगे!

और यह कह कर, अपने चेलों को चेतन की मदद के लिए छोड़ कर, वे चले गये थे।

चेतन ने जूतों को अच्छी तरह साफ करके, मलमल के बारीक कपड़े को दो उँगलियों पर लपेट कर, उनसे जूतों पर बड़ी सफाई से पालिश लगाया था। एक जूता उठा कर, वह उस पर ज़ोर-ज़ोर से ब्रश कर रहा था और उसके दिमाग में पिछले हफ़्ते की घटनाएँ घूम रही थीं....

....वह सब कुछ जैसे हुआ और मेम्बरों और सरपरस्तों को एक शानदार पार्टी देने के सिलसिले में, आसमान पर उड़ता हुआ उसका सपना, हुनर साहब से मिलने के बाद जैसे पर-कटे पक्षी की तरह ज़मीन पर आ गिरा, उससे चेतन का मन बेहद उदासीन हो उठा था। पहले उसने तय किया था कि जिन लोगों से उसने रुपया लिया है, उन्हें स्वयं जा कर, न सिर्फ निमन्त्रण-पत्र दे आयेगा, बल्कि यह सूचना भी देगा कि वह चार-पाँच महीनों के लिए शिमला जा रहा है और उसके पीछे सोसाइटी का काम बदस्तूर चलेगा और वे सोसाइटी के उद्घाटनोत्सव में जरूर शरीक हों। उसके मन में यह भी ख़याल था कि हो सकता है, उनमें से किसी से उसकी फिर मुलाकात हो जाय। वह उनसे मिल लेगा तो किसी के सामने उसे आँखें नीची न करनी पड़ेंगी। पार्टी देने में उसका उद्देश्य भी यही था, वरना यदि वह सारा चन्दा हड़प जाता तो कोई उससे पूछने न आता।....लेकिन हुनर साहब ने जिस सफ़ाई और चाबुक-दस्ती से, वह सब जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी और सात-दस दिन की प्रतीक्षा भी नहीं की थी कि वह कार्यकारिणी का चुनाव करके, कार्य-भार उन्हें सौंप देता, उससे चेतन को लगा था कि अब मेम्बरों और सरपरस्तों के यहाँ जा कर, उन्हें स्वयं निमन्त्रण-पत्र देने का कोई तुक नहीं। उसने चन्दे के रुपये खा-उड़ा नहीं दिये और सोसाइटी पर ही खर्च किये हैं—इस बात का पता तो उन लोगों को निमन्त्रण-पत्रों से चल ही जायगा।....सच्ची बात यह है कि निमन्त्रण-पत्र में सभापति के नाम ने उसका सारा जोश ठण्डा कर दिया था। लाला

हरकिशन लाल और राजा महेन्द्रनाथ की बात तो दूर रही, लाला दौलत-राम, केमिस्ट एण्ड ड्रगिस्ट की अपेक्षा तो कविराज रामदास और शत्रुघ्नलाल 'तीर' ही बेहतर सदर होते। ऐसे अनाम व्यक्ति की अध्यक्षता में, वे लोग क्या अपमानित महसूस न करेंगे ?—चेतन बार-बार यही सोचता था। पहले उसने तय किया था कि लाला हरकिशन लाल, राजा महेन्द्रनाथ, मियाँ बशीर अहमद, वग़ैरह के निमन्त्रण-पत्र वह भले ही डाक से भिजवा देगा, लेकिन शेष सब से स्वयं जा कर मिलेगा। लेकिन अपनी उस उदासीनता में, उसने बड़े लोगों को निमन्त्रण-पत्र डाक से भिजवा दिये, बाकी सब शातिर और फ़िगार को सौंप दिये कि वे जा कर दस्ती उन्हें दे आयें! इस-लिए भी कि हफ़ीज़ जालन्धरी, अख़्तर शीरानी, मजीद मलिक, वग़ैरा शायरों और महाशय देवदर्शन, 'तीर' जी, पण्डित 'शाही' तथा चौधरी साहब, आदि पत्रकारों से वे दोनों स्वयं मिलना चाहते थे। उसने सिर्फ़ यह सावधानी बरती थी कि जिन लोगों के लिफ़ाफ़े उन्हें सौंपे, उनके नाम एक फ़ुलस्केप काग़ज़ पर लिख दिये थे और उन्हें हिदायत दे दी थी कि वे जिसे निमन्त्रण-पत्र दें, उसके हस्ताक्षर सूची पर कराते लायें।

सरदार जगदीश सिंह (लैण्ड-लॉर्ड ऐण्ड हाउस प्रोप्राइटर) को चेतन स्वयं जा कर, उनका और सरदारनी का कार्ड दे आया। उन्होंने श्रीमती राधारानी को कार्ड भेजे जाने के बारे में ख़ास तौर पर पूछा था और चेतन ने कह दिया था कि उसके साथी स्वयं इन्वीटेशन कार्ड ले कर उनके यहाँ जायेंगे। उनसे छुट्टी पा कर, वह एक कार्ड लाला हाकिमचन्द के घर देने गया। मुण्डू ने बताया था कि लाला जी दफ़्तर चले गये हैं, तब चेतन ने लिफ़ाफ़े के साथ एक चिट लगा दी थी कि यदि कुछ मिनट भी वक्त निकाल सकें तो वे सपरिवार २७ की शाम को 'एलफ़िन्स्टन होटल' में तश-रीफ़ लायें। एक निमन्त्रण-पत्र और लिफ़ाफ़े पर बाकायदा अपने बड़े भाई का नाम लिख कर, उसने ख़ुद उन्हें पेश किया।

अन्य उर्दू वालों में से उसने केवल तीन पत्र स्वयं जा कर देने के लिए चुने थे—'ज़ख़्मी' साहब का, कविराज का और पण्डित रत्न का! 'ज़ख़्मी'

को वह उनके दफ़्तर में जा कर कार्ड दे आया था और उनसे वायदा भी ले आया था कि वे 'एलफ़िन्स्टन' की पार्टी में ज़रूर आयेंगे। लेकिन कविराज रामदास और पण्डित रत्न का सामना करने का साहस उसे नहीं हुआ था। कविराज के यहाँ वह दोपहर को गया था, जब वे औषधालय से चले जाते थे और उनकी जगह वैद्य रामलाल बैठते थे। उसने कविराज के नाम एक चिट लिखी कि वह सोसाइटी के उद्घाटनोत्सव की तैयारियों मे लगा रहा है और पहले उनके दर्शन नहीं कर सका। जैसे भी हो, अपने व्यस्त समय से कुछ पल निकाल कर, वे ज़रूर आयें, वह शुक्रगुजार होगा। चिट को निमन्त्रण-पत्र के साथ पिन से टाँक कर वह उसे उनकी मेज़ पर पेपर-वेट के नीचे रख आया था।

पण्डित रत्न के यहाँ भी वह जान-बूझ कर सुबह साढे दस बजे के करीब पहुँचा था, जबकि वे दफ़्तर को जा चुके थे। उनके नाम भी उसने एक चिट्ठी लिखी थी कि उसे एक ट्यूशन मिल गयी है और वह चार महीने के लिए शिमला जा रहा है। चूँकि उसे तैयारी करनी थी, इसलिए वह उनके यहाँ पहले नहीं आ सका। सोसाइटी के चन्दे के पैंसठ-सत्तर रुपये इकट्ठे हुए थे, सो उन रुपयों से वह एक चाय-पार्टी २७ अप्रैल को, माल पर 'एलफ़िन्स्टन' मे दे रहा है। उसे बहुत-सा काम निबटाना है, शायद वह फिर न आ सके, इसीलिए वह स्वयं निमन्त्रण-पत्र देने आया था, लेकिन अमृतधारा रोड से शीश महल रोड पैदल पहुँचने मे उसे थोड़ी देर हो गयी। अन्त मे उसने आशा प्रकट की थी कि वे इसे खातिर मे न लायेंगे और सोसाइटी के इफ़्तिताही इजलास मे ज़रूर शरीक होंगे। पत्र के नीचे पी० एस०[1] लिख कर, उसने दो पंक्तियों मे उन्हें यह सूचना भी दे दी थी कि सोसाइटी चलाने का भार वह उर्दू के मशहूर शायर और दैनिक 'समाज' के पुराने उप-सम्पादक, जनाब रामप्रकाश 'हुनर' के कन्धों पर रखे जा रहा है। क्योंकि वह तो चार महीने लाहौर से बाहर रहेगा, इसलिए वह नहीं चाहता कि इस बीच सोसाइटी का काम ठप्प हो जाय (मन में

---

१. पोस्ट स्क्रिप्ट, पुनश्च

उसने कहा कि ठप्प होना तो उसके भाग्य में लिखा है) और उसने उम्मीद प्रकट की थी कि पण्डित जी हुनर साहब को अपना पूरा सहयोग देंगे।

लाला दौलत राम 'सागर,' केमिस्ट एण्ड ड्रगिस्ट की अध्यक्षता के सिलसिले में जो धर्म-संकट चेतन के सामने उर्दू अदीबों को ले कर था, वह उद्घाटनकर्ता के सम्बन्ध मे हिन्दी साहित्यकारों के सिलसिले में नहीं था। चातक जी ने प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह का नाम सुझाया था; चूँकि वे हिन्दी बोर्ड के कन्वीनर थे, इसलिए चेतन जानता था कि शुक्ला जी और करुण जी की बात तो दूर रही, नीरव जी और वेदालंकार तक को उनके नाम में आपत्ति न होगी। इसीलिए जब चातक जी ने चाहा कि वह हिन्दी साहित्यकारों को निमन्त्रण-पत्र देने उनके साथ चले तो वह मान गया था। चार-छै निमन्त्रण-पत्र, जो उसने अपने लिए रखे थे, बाँट कर और शेष को हुनर साहब के चेलों द्वारा भिजवाने की व्यवस्था कर, वह 'मंजरी' के दफ़्तर जा पहुँचा था और वे दोनों सभी हिन्दी साहित्यकारों से मिले थे। यद्यपि संयोजक के स्थान पर उसका नाम छपा था, लेकिन वह खुद पीछे रहा था और उसने चातक जी को ही सब से बात करने दी थी।

वही सब सोचते हुए, चेतन ने एक जूता चमका कर, दूसरा उठा लिया और उस पर ज़ोर-ज़ोर से पालिश करने लगा। चातक जी के साथ गुजारे गये उस दिन की एक-एक घटना उसके दिमाग में आने लगी....

....सबसे पहले चातक जी उसे प्रो० दिलबहार सिंह के ले गये थे।—सीढ़ियाँ एक बड़े खुले, हवादार बरामदे में खुलती थी, जो प्रोफ़ेसर साहब के ड्रॉइंग-रूम का काम भी देता था। जब वे पहुँचे तो प्रोफ़ेसर साहब नहीं थे। उन के महा-मोटे सुपुत्र, (जो डील-डौल में हास्य-रस की अंग्रेज़ी फ़िल्मों के अभिनेता हार्डी—लॉरेल एण्ड हार्डी वाले—के भी चाचा दीखते थे) अपना स्थूल उदर छत की ओर उठाये, एक स्पशल आराम-कुर्सी पर पसरे हुए थे और उनके पैरों के नीचे एक चौकी पड़ी थी। चातक जी ने बरामदे में दाख़िल होते ही उसे 'नमस्कार' किया था और वह भयानक मोटा युवक

उत्तर में जिस तरह हँसा था, चेतन को लगा कि उसके दिमाग़ का कोई पुर्ज़ा खासा ढीला है। वह एक बार पहले भी वहाँ आ चुका था, लेकिन तब चूँकि प्रोफ़ेसर साहब अपने मुसाहिबों में घिरे बैठे थे, इसलिए उसका ध्यान उधर ज़्यादा न गया था। उस अकेले बरामदे में, उस महा-मोटे, पागल युवक की उपस्थिति में चेतन को अजीब-सी घबराहट हुई और उसका जी चाहा था, प्रोफ़ेसर साहब आ जायँ तो उनसे मिल कर वह जल्दी वहाँ से खिसक जाय। सौभाग्य से तभी नौकर आ गया था। चातक जी ने उसके हाथ चिट भेजी तो प्रोफ़ेसर साहब आ गये। चातक जी ने (उनकी देखा-देखी चेतन ने भी) उठ कर उन्हें 'नमस्कार' किया।

बरामदे में एक और आराम-कुर्सी पड़ी थी। उनके 'नमस्कार' का जवाब देते हुए, प्रोफ़ेसर साहब उस पर जा बैठे थे। उन्होंने धोती और कमीज़ के ऊपर बन्द गले का कोट पहन रखा था। विश्वविद्यालय जाते वक्त वे धोती की जगह पतलून पहन लेते थे। कभी वे काफी लम्बे-तगड़े, गोरे और हृष्ट-पुष्ट रहे होंगे, लेकिन अत्यधिक अध्ययन अथवा चिन्ता-फ़िक्र ने उनका शरीर सुखा दिया था; लम्बे तो वे अब भी वैसे ही थे, पर रंग उनका बेहद पीलापन लिये हुए था। लगता था, जैसे कोई शव कुर्सी पर आ बैठा हो।

चातक जी ने दोनों हाथों से, बड़े सत्कार के साथ, उन्हें निमन्त्रण-पत्र दिया। प्रोफ़ेसर साहब ने लिफ़ाफ़ा ले कर खोला, ध्यान से पढ़ा, फिर बोले कि उस दिन शाम को एक मीटिंग है, वे सारे समय जलसे में नहीं रह सकेंगे। संस्था का उद्घाटन कर के चले आयेंगे।

"आप बस आ भर जाइएगा। उतने से हम कृतार्थ हो जायेंगे," चातक जी ने माथे की लट को पीछे हटाते और दाँत निपोरते हुए कहा था।

"आप समय से लेने आ जाइएगा। चले चलेंगे। ताँगा तैयार रहेगा।"

"मैं आ जाऊँगा," चातक जी ने कहा था, "सम्भव हुआ तो नीरव जी को भी लेता आऊँगा।"

"और कहिए, क्या लिख-लिखा रहे हैं ?" प्रोफ़ेसर साहब ने पूछा था।

चेतन का ख़याल था, अब चातक जी दो-एक कविताएँ सुनाये बिना, न उठेंगे। लेकिन उन्होंने किसी कविता का ज़िक्र तक न किया था। वे अपने नाटक की बात करते रहे थे कि उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर एक नाटक उठाया है, लिखा जाय तो वे सुनाने आयेंगे। यदि प्रोफ़ेसर साहब भूमिका-स्वरूप दो शब्द उस पर लिख देंगे तो बड़ा आभार होगा। और प्रोफ़ेसर साहब को धन्यवाद दे कर वे उठे थे।

....डेवढ़ी में आ कर उन्होंने कहा था कि धर्म जी हों तो उनको भी मिलते चलें और वे आँगन मे बँधी कुतिया, घोड़ी और भैस से बचते हुए ऊपर चढ़ गये थे। वेदालंकार जी चाय पर बैठे थे। चेतन तो चाय पीता नही था। उसके लिए उन्होंने केवड़े का शर्बत मँगाया था। चातक जी के लिए उन्होंने चाय का प्याला बना दिया। चातक जी ने नीलिमा भाभी (श्रीमती वेदालंकार) का हाल-चाल पूछा था कि वे दिखायी नही देतीं तो मालूम हुआ था कि रात क्लब में बहुत देर तक संगीत और नृत्य का कार्यक्रम रहा, थक गयी, सोई हुई हैं।

तब चातक जी ने उन्हे सोसाइटी के उद्घाटनोत्सव का निमन्त्रण-पत्र दिया और संस्था के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए कहा, "चेतन जी ने संस्था शुरू की थी, पर ये तो शिमला जा रहे है; अब इसका भार मेरे दुर्बल कन्धों पर आ पड़ा है। हिन्दी की कोई संस्था हो और आपका सहयोग न रहे, यह कैसे सम्भव है ? सो आपकी सेवा में उपस्थित हुए है। आपको उद्घाटनोत्सव पर अवश्य पधारना है।"

वेदालंकार जी ने बड़े ध्यान से निमन्त्रण-पत्र का पारायण किया था। इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की थी कि प्रोफ़ेसर दिलबहार सिह संस्था का उद्घाटन कर रहे है। फिर बड़ी ऊँचाई से बात करते हुए, उन्होंने सूचना दी थी कि उसी शाम लॉरेंस बाग़ में 'लायन क्लब' की मीटिंग है; वे सपत्नीक उसके सदस्य हैं; उनकी पत्नी को वहाँ संगीत और नृत्य का कार्यक्रम देना है और उन लोगों का वहाँ जाना बहुत ज़रूरी है।

"एलफ़िन्स्टन तो लॉरेंस के रास्ते में है," चातक जी ने कहा था, "आप पाँच मिनट को भी आ जायेंगे तो हम आभार मानेंगे।"

और उन पर एहसान का बोझ लादते हुए, धर्म जी मान गये थे कि नीलिमा जी (धर्म जी की पत्नी) को ताँगे में ही बैठा छोड़ कर, वे कुछ क्षण के लिए ज़रूर आयेंगे। तब चेतन को अपने कर्त्तव्य का ध्यान आया था और उसने उनकी दाढ़ का हाल पूछा था। धर्म जी ने डॉक्टर लखन-पाल की प्रशंसा की थी और बताया था कि फिर उन्हे कोई तकलीफ़ नहीं हुई और चेतन ने उस सिलसिले में जितना कष्ट किया, उसके लिए वे आभारी हैं।

"भाई साहब असल में मेरी वजह से नर्वस हो गये थे," चेतन ने वही बात दोहरायी थी, "वरना नहर-डिपार्टमेण्ट के सुपरिण्टेण्डेण्ट, लाला हाकिम-चन्द, जो मुझे अपने साथ शिमला ले जा रहे हैं, भाई साहब के भक्त है। न सिर्फ़ उनके माता-पिता और बुआ के दाँत भाई साहब ने निकाले है, बल्कि पूरे सेट भी लगाये है।"

वेदालंकार जी ने कोई उत्तर न दिया था। तब चेतन ने चातक जी को सुझाया था कि उन्हें अभी और भी निमन्त्रण-पत्र देने हैं; अब उन्हें वेदालंकार जी से विदा लेनी चाहिए। और चातक जी प्याले का आख़िरी घूंट ख़त्म कर के, उठ खड़े हुए थे।

....टैप रोड से वे दोनों ऋषि नगर और सन्त नगर से होते हुए 'शुक्ल साहित्य सदन' और 'करुण काव्य कुटीर' पहुंचे थे। वहाँ विजया देवी के सेवन की तैयारियाँ हो रही थीं और किसलय, कण्टक, करुण, तरुण, विकल तथा नीरव जी जमे हुए थे। चातक जी का काम आसान हो गया था। हालाँकि चेतन उन सब से पहले मिल चुका था और उन्हे संस्था के उद्देश्य भी समझा चुका था, लेकिन चातक जी ने अपनी ओर से संस्था के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला था और उसके हिन्दी-पक्ष को उर्दू-पक्ष की अपेक्षा मज़बूत और सुदृढ बनाने पर ज़ोर दिया था। भाँग का एक गिलास चढ़ाने के बाद, यह बताते हुए कि उन्होंने संस्था के हिन्दी-पक्ष की अध्यक्षता के

लिए भी प्रोफेसर दिलबहार सिंह का नाम सोचा है, परम उदारता से अपने प्रतिद्वन्द्वी, श्री नीरव को संस्था का उपाध्यक्ष पद देना मान लिया था ।

चेतन तो भाँग का 'सेवन' करता नहीं था । उसने सादी ठण्डाई का गिलास पी लिया था और चातक जी की लनतरानियाँ सुनता रहा था । जब वे काफ़ी शाम गये उठे थे तो सब ने शिमला के ठण्डे स्वास्थ्य-वर्धक वातावरण में गर्मियाँ काटने का अवसर पाने के लिए चेतन को बधाई दी थी और शुक्ला जी ने खैनी फटक कर निचले होंट में भरते हुए, बड़ी प्यारी-सी मुस्कान होंटों पर ला कर, आँख दबाते हुए कहा था, "भाई, चेतन जी के मज़े है, लाहौर की भयानक गर्मी से दूर, शिमले की शीतल हवाएँ और काव्य का स्रोत, एक सुन्दर लड़की का संग ! काश हमारे भाग्य मे भी ऐसी ट्यूशन लिखी होती !"

और इस पर सारी मण्डली में एक नशीली हँसी गूंज गयी थी । चेतन को शुक्ला जी की वह भंगिमा और मज़ाक, दोनों फूहड़ लगे थे, लेकिन उसने कुछ भी नहीं कहा था और 'नमस्कार' कर, 'शुक्ल साहित्य सदन' से बाहर आ गया था ।

००

पालिश करके और कपड़े से चमका कर, चेतन ने जूतों को चारपाई के पास रखा । बूट-पालिश का सामान उसने डिब्बे में सँभाल कर, ट्रंक में बन्द किया और तौलिया-बनियान उठा कर, गुसलखाने में नहाने चला गया । सोसाइटी के सम्बन्ध में चातक जी का सपना अचानक उसके सामने आ गया और उसके होंटों पर एक व्यंग्य-भरी मुस्कान खेल गयी....

....वापसी पर चातक जी शॉर्ट-कट से 'शुक्ल साहित्य सदन' के सामने खेतों में से निकल कर, सन्त नगर के पोस्ट ऑफ़िस से होते हुए, घोड़ा हस्पताल के पास आ निकले थे । डी० ए० वी० कॉलेज रोड पर एक बार उन्होंने सोचा था कि हुनर साहब से मिलते चलें । लेकिन चेतन बेहद थक गया था, इसलिए उसने अपनी पत्नी का बहाना कर दिया था कि वह

वच्चे से है और वह नहीं चाहता कि बहुत देर से घर पहुँचे। चातक जी चल पड़े थे। ठण्डी सड़क पर पहुँच कर हठात उन्होंने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया था कि चेतन ने सोसाइटी के उद्घाटनोत्सव में अधिक महिलाओं को नहीं बुलाया।

"आज महिलाएँ महात्मा गान्धी की कृपा से घर की चारदीवारी से बाहर निकल आयी हैं," चातक जी ने कहा था, "और स्वतन्त्रता आन्दोलन में बढ़-चढ़ कर योग दे रही है। सांस्कृतिक पुनर्जागरण भी उनके योग के बिना अधूरा है।"

चेतन ने उन्हे समझाया था कि लाहौर के उर्दू-समाज में बहुमत मुस्लिम अदीबों का है और मुसलमानो के यहाँ सख्त पर्दा है, इसलिए किसी अदबी अंजुमन मे किसी उर्दू कवयित्री अथवा कहानी-लेखिका का आना असम्भव है। ऊँचे वर्ग की दो-एक हिन्दू-मुस्लिम महिलाएँ, जरूर सभा-सोसाइटियों मे आती-जाती है, लेकित मध्यवर्ग की किसी शायरा या अफ़साना-निगार को उसने किसी अदबी अंजुमन में नहीं देखा।

"संस्था के उर्दू-विंग में चाहे कोई महिला साहित्यकार न आये," चातक जी ने मोहनलाल रोड की ओर मुड़ते हुए घोषणा की थी, "लेकिन हम हिन्दी विंग के मन्त्री बनेंगे तो लाहौर की हिन्दी लेखिकाओं और कवयित्रियों को संस्था की हिन्दी गोष्ठियों में जरूर आमन्त्रित करेंगे।"

चेतन क्या कहता। वह चुप-चाप उनकी बातें सुनता रहा था।

"उर्दू-काव्य का आलम्बन नारी नहीं है," चातक जी ने कहा था, "उर्दू कवि अपनी प्रेरणा सुन्दर और कमसिन लड़कों से लेते है, इसलिए अपनी गोष्ठियों मे महिलाओं की अनुपस्थिति उन्हे नहीं खटकती, लेकिन हम हिन्दी वाले, न तो वैसा अस्वाभाविक प्रेम कर सकते हैं, न वैसा काव्य ही रच सकते हैं। बिना नारी के, काव्य कैसे सम्भव है? हिन्दी काव्य का आलम्बन ईश्वर है (और ईश्वर अर्ध-नारीश्वर है) या प्रकृति, (जो नारी ही का रूप है) या हाड़-माँस की जीती-जागती, पग-पग पर प्रलय मचाती, सहस्र रूपिणी नारी...."

चेतन कहना चाहता था, कविता तो हर चीज पर लिखी जा सकती है—सारा समाज और हर आदमी उसका विषय है ! जो कवि कल्पना में नहीं रहता, जिसके पाँव ठोस धरती पर टिके हैं और जिसमें अपनी अनुभूतियों को कलम की नोक पर रखने की शक्ति है, वह अपनी प्रेरणा के लिए नारियाँ नहीं ढूँढता-फिरता।... लेकिन उसका मन खिन्न और उदासीन था; वह चुपचाप चातक जी का भाषण और युवतियों के सम्बन्ध में (जो उनकी कविताएँ सुन कर उनके प्रेम-पाश में बंध जाती थीं) उनकी लनतरानियाँ तथा सोसाइटी के हिन्दी-पक्ष को नारियों के सहयोग से जीवन्त बनाने के सम्बन्ध में उनके सपने सुनता रहा था। जब वह उनके घर के पास उनसे अलग हुआ था तो उसने सिर्फ़ इतना कहा था :

"मैं तो शिमला जा रहा हूँ। सोसाइटी को अब हुनर साहब और आप ही चलायेंगे। वो उर्दू-विंग को देखेंगे, आप हिन्दी-विंग को ! जैसे आप चाहें, इसे चलायें और अगर आपकी कोशिश से लाहौर के हिन्दी-क्षेत्र में लेखिकाएँ और कवयित्रियाँ पैदा हो जायें तो संस्था की सफलता का इससे बड़ा और क्या सबूत होगा ?"

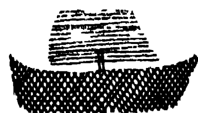
चेतन नहा कर अपने कमरे में वापस आया तो कपड़े पहनते हुए, उसके सामने हुनर साहब और चातक जी—दोनों की आकृतियाँ घूम गयी। उसने पहले कभी इस बात पर ध्यान न दिया था, पर इस के बावजूद कि एक उर्दू का शायर था और दूसरा हिन्दी का कवि, उन दोनों में कुछ अजीब-सा साम्य था। उनके काव्य में भी और व्यक्तित्व में भी। दोनों के काव्य में लफ़्फ़ाज़ी थी, शब्द-जाल था, सस्ती और थोथी भावुकता थी। दोनों की रचनाएँ, न मन को छूती थीं, न दिमाग़ को कोंचती थीं और वे दोनों ज़िन्दगी की नदी में बिन बूड़े, बिन भीगे, चिकने पत्ते के समान बहे चले जाते थे। हुनर साहब ज़रा ठिगने और दोहरे बदन के होते या चातक जी ज़रा लम्बे और पतले, तो दोनों जुड़वाँ भाई लगते।....चेतन मुस्कराया—'अजीब बात है,' उसने सोचा, 'दोनों की शक्ल मोमनी है और दोनों अन्दर

से कहीं निहायत काइयाँ और चालू हैं। बस इतना ही फ़र्क है कि हुनर साहब थोड़े दबंग हैं और चातक जी दब्बू, वरना बाकी सब गुण उन में एक-समान हैं।'

कमीज़-पैंट पहन कर, चेतन ने अपने लम्बे घुंघराले बाल सँवारे तो आईने में कमीज़ के खुले कॉलरों के साथ उसे अपना रूप बहुत सुन्दर लगा। उसने कोट पहन लिया। लेकिन तभी उसे ख़याल आया कि वह लाला हाकिमचन्द को बुला आया है और हो सकता है, वे आ जायँ। यह सोच कर उसने कोट उतार दिया; टाई लगायी, आईने में देख कर उसकी गिरह बाँधी; दोबारा कोट पहना; मैले कपड़े यथास्थान रखे; सोसाइटी के खाते में जो शेष पच्चीस-छब्बीस रुपये उसके पास थे, उन्हें निकाल कर, कोट की अन्दरूनी जेब के हवाले किया और ट्रंक को चारपाई के नीचे ठेल दिया। यूं सज-सँवर कर चेतन ने आईने में एक बार फिर अपनी शक्ल देखी। दोबारा कोट पहनते वक्त बाल ज़रा बिखर गये थे; उन्हें ठीक किया और कमरे को ताला लगा कर नीचे उतरा। चाबी कान्ता बहन को दे कर, वह सीधा भाई साहब के क्लिनिक पहुँचा।

भाई साहब ने पहले तय किया था कि दुकान दो घण्टों के लिए बन्द कर देंगे, लेकिन सौभाग्य से उनका शागिर्द, गुप्ता, सामान लेने लाहौर आया हुआ था। भाई साहब ने दो-तीन घण्टे के लिए दुकान उस पर छोड़ दी थी और दोनों भाई ख़रामाँ-ख़रामाँ 'एलफ़िन्स्टन' को चल दिये।



सैंतीस

फ़िगार और शातिर, होटल के बाहर खड़े थे। चेतन को उनसे मालूम हुआ कि हुनर साहब चन्द मिनटों के लिए आये थे, लाला कर्मचन्द को कुर्सियों की तरतीब समझा गये हैं और उनकी हिदायत के मुताबिक 'शैदा' साहब अन्य साथियों के साथ साहबे-सदर,[1] मेहमाने-खुसूसी[2] और दूसरों के लिए मेज़-कुर्सियाँ लगवा रहे हैं।

'एलफ़िन्स्टन होटल' के अन्दर जाने वाला दरवाजा बायें कोने में था। चेतन उसमें दाखिल हुआ तो बायीं ओर काउण्टर पर लाला कर्मचन्द खड़े थे और काउण्टर के साथ दौड़ती चली गयी पैण्ट्री पर बैरे मिठाई और नमकीन की प्लेटें सजा रहे थे। दायीं ओर, काउण्टर के सामने, पूरा हॉल था, जिसमें 'शैदा' साहब अद्धा का कुर्ता और लट्ठे का चौड़ा पायजामा पहने, बड़ी निष्ठा से, व्यवस्था में संलग्न थे। काउण्टर के बिल्कुल सामने, हॉल की परली दीवार के साथ, चार मेज़ें इकट्ठी जोड़ दी गयी थीं। चार कुर्सियाँ पीछे की तरफ़ और दो अगल-बगल रखवा कर, शैदा ने वहाँ सभापति और उद्घाटनकर्ता, आदि के बैठने का प्रबन्ध कर दिया था। उन मेजों के दायें-बायें, (हॉल के बीचों-बीच आने-जाने का रास्ता छोड़ कर) काउण्टर तक, दोनों ओर, मेज-कुर्सियों की दो कतारें लगवा दी गयीं। देखते-देखते, शैदा ने सब व्यवस्था कर दी। तभी उसकी नज़र चेतन पर पड़ी। पास आ कर उसने 'आदाब' किया और बताया कि हुनर साहब अभी साहबे-सदर को ले कर आते हैं—वे बैठें।

---

१. सभापति २. मुख्य अतिथि

'हमको उस्ताद साहब हिदायत दे गये हैं,'' शैदा ने कहा, ''कि जैसे-जैसे लोग आते जायँ, उन्हें आगे बैठाया जाय; देर से आने या न आने वालों की मेजें पीछे रहेंगी। इस तरह यह जानने में आसानी रहेगी कि कौन आया और कौन नहीं आया और कुल कितने लोग आये।''

''हम अभी बैठ जायँगे,'' चेतन ने कहा, ''जरा देर को बाहर खड़े होते हैं।''

''बाहर शातिर और फ़िगार खड़े हैं, आप फ़िक्र न करें।''

चेतन का जी हुआ, एक ऐसा मुक्का कस कर उस मुगदर की कनपटी पर दे कि एक बार तो वह पहलवान भी चकरा जाय। (कल्पना-ही-कल्पना में उसने ऐसा किया भी) लेकिन बड़े धैर्य से उसने सिर्फ़ इतना कहा, ''मेरा नाम इन्वीटेशन कार्ड पर मेजबान के तौर पर छपा है, मेहमानों के स्वागत के लिए तो मुझे ही बाहर रहना चाहिए।''

और उसने मुगदर को भाई साहब का परिचय दिया और भाई साहब को बताया कि ये पूरन चन्द्र साहब 'शैदा' हैं—सनातन धर्म कॉलेज के चैम्पियन पहलवान और बहुत अच्छे शायर! दोनों ने हाथ मिलाये। भाई साहब को शैदा के पास छोड़ कर, चेतन बाहर जा खड़ा हुआ। धीरे-धीरे लोग आने लगे। शुक्ला जी की पूरी पार्टी आ गयी। उस पार्टी में लगभग वे सारे लोग थे, जो पिछले वर्ष 'करुण काव्य कुटीर' में करुण जी की सतसई सुनने के लिए इकट्ठे हुए थे। सब खादी के धोती-कुर्ते अथवा कुर्ते-पायजामे में सुशोभित थे, सिर्फ श्री वरुण (जो नये-नये कम्यूनिस्ट हुए थे) पतलून-कमीज़ पहने थे। शुक्ला जी बदस्तूर निचले होंठ में सुरती दबाये थे! चेतन ने सब का स्वागत किया, शातिर और फ़िगार से उन का परिचय कराया और सब को अन्दर ले जा कर शैदा को सौंप आया।

तभी पण्डित 'शाही' और 'जख्मी' और चौधरी साहब, अपने एक-एक उप-सम्पादक के साथ आये। उन्हीं में गोरखा और प्रीतम बारबटनी—गूँगे और महात्मा—भी थे, जिनके साथ लाहौर में अपने शुरू के दिनों में चेतन काम कर चुका था। चेतन ने सब का स्वागत किया। वह अभी

उनसे बातें कर ही रहा था कि सहसा उसने माल पर एक ताँगे में सरदार जगदीश सिंह और उनकी सरदारनो को बैठे देखा। पत्रकारों को फ़िगार और शातिर के हवाले कर, चेतन उधर भागा।

बढ़िया सूट पहने और दस्तार सजाये, रूमाल से माथे का पसीना पोंछते हुए, सरदार जगदीश सिंह (लैण्ड लॉर्ड एण्ड हाउस प्रोप्राइटर) ताँगे से उतर कर, उसकी ओर लपके आ रहे थे। चेतन ने दूर ही से 'सत श्री अकाल' बुलाया, लेकिन सरदार साहब को 'सत श्री अकाल' का उत्तर देने का होश नहीं था। ज़रा-सा सिर हिला कर, चेतन से हाथ मिलाते हुए उन्होंने सरगोशी में पूछा कि श्रीमती राधारानो को इन्वीटेशन गया था या नहीं। गया था तो उन्होने क्या जवाब दिया ? वे आ रही हैं या नही ?

"मेरे दो साथी, खुद इन्वीटेशन कार्ड ले कर उनके यहाँ गये थे," चेतन ने सफ़ाई दी, "श्रीमती जी से तो मुलाकात नहीं हुई। इन्वीटेशन कार्ड के साथ एक चिट्ठी वहाँ छोड़ आये थे कि चाहे पाँच मिनट के लिए ही क्यों न हो, वो पार्टी में तशरीफ़ जरूर लायें। अब वो आती है कि नहीं, मैं कह नहीं सकता।"

तब सरदार जगदीश सिंह ने चेतन से हाथ मिलाया और जल्दी-जल्दी कहा कि लॉरेंस मे 'लायन क्लब' की पार्टी है। श्रीमती राधारानी वहाँ जरूर होंगी। मुमकिन हुआ और ज़रा पहले छुट्टी मिल गयी तो वे थोड़ी देर को आयेंगे और राधारानी को भी साथ लायेंगे। राधारानी के नाम और उनसे मिलने के खयाल ही से सरदार जगदीश सिंह की आँखो में चमक और पैरों मे गति आ गयी। घनी दाढ़ो मे छिपी अपनी चमकती आँखों को लिये हुए, वे तेज-तेज़ चले गये।

उनके जाने के कुछ देर बाद हुनर साहब, लाला दौलतराम 'साग़र' तथा उनके सुपुत्र के साथ, उनके ताँगे पर आये। चेतन उनके स्वागत को आगे बढ़ा और सत्कार-पूर्वक उन्हे दरवाज़े के अन्दर छोड़ आया। उनकी आमद के कुछ ही देर बाद चातक जी, प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह के ताँगे में, उनके साथ पधारे। नीरव जी भी ताँगे पर बैठे थे। उनको भी अन्दर

पहुँचा कर चेतन फिर बाहर ग्रा गया।

होटल के दायें-बायें, ज़रा परे को खड़े, दोनों ताँगे ग्रपने मालिकों की प्रतीक्षा करने लगे। साईसों ने घोड़ों के गलों में तोबडे बाँध दिये; घोड़े मज़े से दाना चरने लगे; दोनों साईस एक पेड़ के नीचे बैठ गये। लाला के साईस ने जैब से लैम्प की डिबिया निकाल ली, दोनों ने सिगरेट सुलगाये ग्रौर बतियाने लगे। चेतन काफ़ी देर तक उनको देखता रहा। हुनर साहब ग्रौर चातक जी ने जिन लोगों को निमन्त्रण दिया था, वे सब ग्रा गये थे; लेकिन उन लोगों में से, जिनके ग्राने की प्रतीक्षा चेतन को थी, एक भी न था। लाला हरकिशन लाल, राजा साहब या मियाँ बशीर ग्रहमद तो क्या ग्राते; बहुत बड़े लोग थे; उन्हें लाने के लिए कई बार जाना पड़ता; लेकिन न उर्दू के बड़े शायरों में से कोई ग्राया था, न सूफ़ी साहब, कविराज, 'तीर' जी या देवदर्शन ग्रादि में से कोई ग्राया। ग्रौर-तो-ग्रौर, पण्डित रत्न तक न ग्राये। चेतन को उन के ग्राने की बहुत उम्मीद थी। शातिर ग्रौर फ़िगार ग्रन्दर चले गये। ग्रागत लोगों को चाय दी जाने लगी। हुनर साहब ने कह दिया था कि मिठाई ग्रौर नमकीन की प्लेटें पचास मेहमानों के लिए लगा दी जायँ; जो ग्रा गये हैं, उनको चाय दे दी जाय; जो लोग नहीं ग्राये, उनकी जगह दरवाजे की तरफ़ वाली मेज़ों पर ख़ाली छोड़ दी जाय ताकि लोग ग्रायें तो वहीं बैठते जायँ ग्रौर कार्रवाई में खलल न पड़े।

चेतन ग्रकेला बाहर खड़ा, बाकी लोगों के ग्राने की प्रतीक्षा करता रहा।

तभी वेदालंकार जी का ताँगा, होटल के सामने माल पर ग्रा कर रुका। उनके साथ सजी-सँवरी उनकी पत्नी बैठी थीं। जाने कितनी सुर्खी ग्रौर पाउडर उन्होंने चेहरे पर पोत रखा था। रंग तो इनका पहले ही से गोरा था, पाउडर ग्रौर गाज़े से लाल-भभूका हो गया था। बाल ग्रजन्ता की सुन्दरियों-ऐसे बने थे ग्रौर ग्रप्सरा-सी वे ताँगे में बैठी थीं। लेकिन जाने उनके होंटों की बनावट में क्या बात थी कि जब भी वे उन्हें खोलती थी (ग्रौर वे प्रायः ग्रौपचारिक मुस्कान में दाँत चियार देती थीं) तो चेतन को

बहुत वितृष्णा होती थी । उस वक्त भी आगे बढ़ कर उसने उन्हें 'नमस्कार' किया तो हाथ जोड़ कर उन्होने केवल दाँत चियार दिये थे ।

चेतन को वेदालंकार जी पर दया हो आयी, जिन्हे दिन में न जाने कितनी बार उस तकल्लुफ-भरी मुस्कान का सामना करना पड़ता होगा। वह दन्तुल मुस्कान कहीं उसकी सौन्दर्य-प्रियता को बुरी तरह घायल करती थी। चेतन के 'नमस्कार' का जवाब देते हुए श्री वेदालंकार, उछल कर ताँगे से उतरे और यह कहते हुए कि उन्हे घर से चलने में देर हो गयी है और नीलिमा जी को लॉरेंस मे संगीत का कार्यक्रम देना है और वे लोग वायदे के मुताबिक दो मिनट को 'एलफ़िन्स्टन' रुक गये है, लेकिन ज़्यादा देर नही ठहर सकते, वे चेतन के आगे-आगे तेज़-तेज़ 'एलफ़िन्स्टन' मे दाखिल हुए । काउण्टर के बाहर, हाथ मे मक्खी-मार लिये, लाला कर्मचन्द उनके सामने पड़ गये । वे शायद उनसे परिचित थे। उन्होने वेदालंकार जी का स्वागत किया तो उनसे हाथ मिलाते हुए वेदालंकार जी ने बड़ी ऊंचाई से वही बात दोहरा दी कि वे सिर्फ़ हाज़िरी देने आये हैं, रुकेंगे नही; नीलिमा जी को लॉरेंस की पार्टी में संगीत का प्रोग्राम देना है और चलने में देर हो गयी है, आदि....आदि....और सगर्व यह सूचना दे कर, लाला कर्मचन्द से हाथ मिलाते और क्षमा माँगते हुए, मोज़ेक के फ़र्श पर 'खट-खट' करते, वेदालंकार जी सीधे वहाँ गये, जहाँ उनके मालिक-मकान और हिन्दी बोर्ड के कन्वीनर और सभा के मुख्य अतिथि, प्रोफ़ेसर दिलबहार सिह बैठे थे। खड़े-खड़े, काफ़ी झुक कर और दोनों हाथ जोड़ कर उन्हे 'नमस्कार' करते हुए, वेदालंकार जी ने इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की कि सस्था का उद्घाटन, उन जैसे इतिहासज्ञ और पुरातत्ववेत्ता करने जा रहे है, फिर उन्होंने लॉरेंस मे 'लायन क्लब' की पार्टी और उसमें नीलिमा जी के संगीत प्रोग्राम का उल्लेख किया और कहा कि उन्हे वहाँ जाना है, वे जल्दी प्रोग्राम निबटा कर आने की कोशिश करेंगे, न आ सके तो उन्हे क्षमा कर दिया जाय और दोनों जुडे हाथों को चातक जी, हुनर साहब, लाला दौलत राम और दूसरों की ओर घुमाते हुए, वे पलटे और जैसे 'खट-खट' आवाज़ करते

आये थे, वैसे ही चले गये।

चेतन उन्हें ताँगे पर छोड़ कर और चाहे दो मिनट ही के लिए सही, मीटिंग में आने के लिए उनको धन्यवाद दे कर फिर वापस 'एलफ़िन्स्टन' के दरवाज़े के बाहर आ खड़ा हुआ। अन्दर चाय ख़त्म होने को थी। वह सोच ही रहा था कि अब वह भी अन्दर चला जाय कि उसे लाला हाकिमचन्द अपने दो साथियों के साथ उधर ही को आते दिखायी दिये। अगले दिन उन्हें सपरिवार शिमला जाना था और चेतन को उनके आने की ज़रा भी आशा न थी। बढ़ कर उसने उनका स्वागत किया। लाला जी ने अपने साथियों से उसका परिचय कराया। अधेड़ उम्र के व्यक्ति, उनके हैड-क्लर्क थे और पगड़ी बाँधे हुए, छै फ़ुट लम्बे, हृष्ट-पुष्ट युवक, उनके मुँह-लगे क्लर्क (चेतन को उनको व्यवहार से ऐसा ही लगा) तेजभान थे। लाला जी के दोनों साथियों के हाथों मे लिफ़ाफ़े थे।

"हम कुछ ज़रूरी सामान खरीदने अनारकली आये थे।" लाला हाकिमचन्द ने कहा, "ये मेरे दोनो साथी आज शाम की गाड़ी से शिमला जा रहे हैं। मै इन्हें स्टेशन पर छोड़ कर घर जाऊंगा। गाड़ी चलने में अभी दो-ढाई घण्टे का समय है, अनारकली तक आये तो सोचा, आप से भी दो मिनट को मिलते चलें।"

"लेकिन ये लोग क्या अकेले जा रहे हैं ?" चेतन ने पूछा।

"नही, इनके घर वाले सामान वग़ैरा ले कर स्टेशन पहुँच जायेंगे। हम इधर से ये चन्द ज़रूरी चीजें लेते हुए स्टेशन जायेंगे," लाला जी ने कहा, फिर चेतन से पूछा, "आपने कल चलने की तैयारी कर ली है ना ?"

चेतन ने स्वीकार मे सिर हिलाते हुए 'जी हाँ' कहा।

"तो कल सुबह चन्द मिनट के लिए उधर आइएगा।" लाला हाकिम-चन्द बोले, "आपको मेरे परिवार के साथ सफ़र करना है, बीबी जी से मिलवा दूँगा। एक-दो ज़रूरी बातें भी करनी हैं।"

"मैं सुबह हाज़िर हो जाऊँगा।" चेतन ने विनम्रता से कहा।

लाला जी वापस चलने को मुड़े, लेकिन चेतन ने उन्हें जाने नहीं

दिया। बरबस वह उन तीनों को अन्दर ले गया। शैदा साहब ने बैरे से कह कर दो मेज़ें इकट्ठी करवा दीं और बड़े सत्कार से उन्हें बैठाया। बैरे से कहा कि उनके लिए चाय लाये। चेतन इस बीच हुनर साहब को बुला लाया और उन्हें उनसे मिलाया। उनका परिचय देते हुए, उसने लाला हाकिमचन्द को बताया कि वे ही उसकी ग़ैर-हाज़िरी में सोसाइटी का काम देखेंगे।

हुनर साहब ने सोसाइटी के इफ़्तिताही जल्से में आने के लिए लाला जी का शुक्रिया अदा किया और चूँकि जलसे की कार्रवाई शुरू होने वाली थी, इसलिए लाला जी से क्षमा माँगते हुए, वे पलटे। तब चेतन ने बढ़ कर उनके कान में कहा कि अपने भाषण में वे लाला हाकिमचन्द सुपरिं-टेण्डेण्ट इर्रीगेशन डिपार्टमेण्ट का ज़रूर शुक्रिया अदा करें, जो अपने बेहद मसरूफ़[1] औक़ात[2] में से वक्त निकाल कर, जलसे की रौनक़ बढ़ाने आये हैं।

वहीं खड़े-खड़े चेतन ने हॉल पर एक नज़र डाली। आँखों-ही-आँखों में उसने मेहमानों को गिना। लाला हाकिमचन्द और उनके साथियों-समेत, लगभग अड़तीस मेहमान आये थे। शैदा शर्मा और उसके साथियों ने सब को ऐसे बैठाया था कि एक किनारे छै मेज़ें ख़ाली रह गयी थीं।

बैरा चाय ले आया तो लाला जी के कहने पर चेतन उन्हीं के साथ बैठ गया। पहले उसने सोचा था कि स्वयं जलसे के सभापति का नाम प्रस्तावित करेगा, फिर उनके चुनाव के बाद, उनकी आज्ञा से, संस्था की स्थापना का संक्षिप्त इतिहास देते और उसके उद्देश्यों की चर्चा करते हुए, संस्थापक सदस्यों और सरपरस्तों के नामों का विशेष उल्लेख करेगा। वह मुख्य अतिथि का परिचय देगा और उनसे सोसाइटी का उद्घाटन करने को कहेगा। उद्घाटन की कार्रवाई सम्पन्न हो जायगी तो वह सोसाइटी की कार्यकारिणी का चुनाव करायेगा। उसके बाद वह आगत मेहमानों को यह सूचना देगा कि चार महीने के लिए वह शिमला जा रहा है और अब हुनर

१. व्यस्त २. घड़ियों

साहब संस्था को चलायेंगे और वे सब उन्हें सहयोग दें। लेकिन यह तो तब की बात है, जब लाला दौलतराम 'साग़र' की जगह राजा महेन्द्रनाथ या कविराज रामदास सभापति होते और उद्घाटन हफ़ीज़ जालन्धरी या अख्तर शीरानी के हाथों सम्पन्न होता। लेकिन अब उसका मन इतना खिन्न था कि सभापति का नाम प्रस्तावित करना तो दूर, वह आगे जा कर भी न बैठा था। यथासम्भव सफ़ाई के साथ चम्मच से क्रीम केक खाता हुआ चेतन, लाला जी को उपस्थित लोगों का परिचय दे रहा था कि हुनर साहब तेज़-तेज आये। उन्होंने कहा था कि देर हो रही है, प्रोफ़ेसर साहब चलने की जल्दी मचा रहे हैं, वह चले कि जलसे की कार्रवाई शुरू की जाय।

"आप और चातक जी सब कर लें," चेतन ने उदासीनता से कहा, "मुझे क्या करना है। मैं यहाँ लाला जी के पास बैठा हूँ।"

उसके स्वर में हल्का-सा आहत भाव था, लेकिन हुनर साहब के पास सूक्ष्म भावों को समझने का न समय था, न क्षमता! वे आश्वस्त हो कर चले गये और अपनी जगह जा कर उन्होंने सभा की सदारत के लिए लाला दौलतराम 'साग़र' (प्रोप्राइटर दौलतराम एण्ड सन्स, कैमिस्ट्स एण्ड ड्रगिस्ट्स, अनारकली, लाहौर) का नाम पेश कर दिया। लाला जी की शायरी और अदब-नवाज़ी की सराहना करते हुए, उन्होंने घोषणा की कि लाला जी ने सोसाइटी का लाइफ़ पेट्रन (आजीवन सरपरस्त) बनने का वायदा किया है। चातक जी ने फ़ौरन उठ कर हुनर साहब के प्रस्ताव का समर्थन किया।

तालियों के शोर में (जो अधिकाशतः हुनर साहब के चेलों ने बजायीं) लाला दौलत राम 'साग़र' ने उठ कर सब को 'नमस्कार' किया और उसी कुर्सी पर सदारत करने की ग़रज़ से बैठ गये, जिस पर वे इतनी देर से विराजमान थे। तब हुनर साहब ने काग़ज़ का एक पुर्ज़ा उनके आगे सरका दिया।

"अब हुनर साहब सोसाइटी के अग़राज़-ो-मकासद[1] के बारे में कुछ

---

१. उद्देश्य

कहेंगे," काग़ज़ का पुर्ज़ा अटक-अटक कर पढ़ते हुए, लाला दौलतराम 'साग़र' ने घोषणा की।

हुनर साहब अपनी जगह खड़े हुए और गम्भीरता से बोलने लगे : "साहबे सदर, मेहमाने-ख़ुसूसी, हिन्दी और उर्दू के अदब-नवाज़ दोस्तो और अदीब साथियो! आज आप जिस सोसाइटी के इफ़्तिताह के लिए इस हॉल में तशरीफ़ लाये हैं, मुझे हुक्म हुआ है कि मैं उसके अग़राज़-ो-मकासद के बारे मे दो लफ़्ज़ कहूँ। इस सोसाइटी के क़याम[1] का ख़याल मेरे पुराने शागिर्द और अब उस्ताद से भी बढ़ जाने वाले साथी और दोस्त, जनाब चेतनानन्द साहब 'दाग़' के दिमाग़ मे आया था। शहर में बहुत-सी सोसाइटियाँ है, लेकिन वो सब ऊँचे तबके के लोगों के लिए हैं। हम-आप जैसे मुतवस्सत[2] तबके के इंशापरदाज़ों,[3] अदीबों और अख़बार-नवीसों की कोई भी अंजुमन नहीं। हालाँकि आप में से अक्सर दोस्त सोसाइटी के अग़राज-ो-मकासद से रूशनास[4] हो चुके हैं, लेकिन फिर भी रस्मन मैं इन्हे आप सब के सामने पढ़ देता हूं।"

(यहाँ हुनर साहब ने ब्रोशर से सोसाइटी के उद्देश्य पढ़ कर सुनाये फिर उन्हे मेज़ पर रखते हुए उन्होंने अपनी तकरीर जारी रखी :)

" 'दाग़' साहब सोसाइटी के लिए लाहौर के तूल-अर्ज़ में घूमे; उन्होंने बड़े-बडे लोगों से ताल्लुक कायम किया और इमदाद का वायदा लिया है। वे ख़ुद एक ज़बरदस्त शायर और हर-दिल-अज़ीज़[5] अफ़साना निगार, एक कामयाब अख़बार-नवीस और एक मेहनती टीचर रहे है। (यह आखिरी बात उन्होने लाला हाकिमचन्द पर चेतन का रोब डालने की ग़रज़ से कही।) उनकी इसी काबलियत से मुतास्सिर[6] हो कर इर्रीगेशन डिपार्टमेण्ट के सुपरिण्टेण्डेण्ट लाला हाकिमचन्द, जो सुख़न-फ़हम ही नहीं, सुख़न-परवर भी है, और अपने मसरूफ़ औकात से वक्त निकाल कर जलसे की रौनक बढ़ाने आये हैं, जनाबे-दाग़ को चार-पाँच महीने के लिए अपने साथ शिमला ले जा रहे

१. स्थापना २. मध्यवर्ग ३. गद्य-लेखकों ४. परिचित
५. लोकप्रिय ६. प्रभावित।

हैं। चेतन जी ने अपनी ग़ैर-मौजूदगी में, इस सोसाइटी को चलाने की तमाम-तर ज़िम्मेदारी मेरे कमज़ोर कन्धों पर डाल दी है। वो तो हिन्दी-उर्दू के अदीब हैं। दोनो ज़बानों में उन्हे दस्तरस[1] हासिल है और उनके अफ़साने हिन्दी-उर्दू के मशहूर माहनामो मे छपते है। वो रहते तो सोसाइटी के दोनों शो'बों का काम संभालते। अब मैं उनकी ग़ैर-मौजूदगी में, आरजी तौर पर उर्दू-विंग का काम देखूंगा। हिन्दी-विंग के लिए जनाब चेतनानन्द के दोस्त और साथी, माहाना 'मंजरी' के एडीटर और हिन्दी के मशहूर शायर, शिरी 'चातक' ने अपनी खिदमात पेश की है, जिसके लिए हम उनके बेहद मशकूर हैं। हजरत चातक मशहूर शायर ही नहीं, काबिल जर्नलिस्ट और देश-भक्त भी हैं। हमें पूरी उम्मीद है कि आप हजरात इस नेक काम में हमें पूरी मदद देंगे और हमारे हौमले बढ़ायेंगे।"

सब ने तालियाँ बजायीं। क्षण भर रुक कर और सभापति से बात कर, हुनर साहब ने घोषणा की : "अब मै शिरी 'चातक' से दरख्वास्त करूँगा कि वो मेहमाने-खुमूसी, जनाब प्रोफ़ेसर दिलबहार सिह का तआरुफ़ करायें और उनसे सोसाइटी की इफ़्तिताही रस्म पूरी करने के लिए कहें।"

तब चातक जी अपनी जगह खड़े हुए। लेकिन इससे पहले कि वे कुछ कहते, लाला हाकिमचन्द अपने साथियों के साथ उठे। "हम चलेंगे। गाड़ी के स्टेशन पर लगने से पन्द्रह-बीस मिनट पहले हमें स्टेशन पर पहुँच जाना चाहिए।" उन्होंने सरगोशी मे चेतन से कहा, "कल आप से मुलाकात होगी।" और वे चल दिये। हालाँकि उन्होंने चेतन को वहीं बैठे रहने के लिए कहा, पर वह उन्हे दरवाज़े तक छोड आया और वापस आ कर वहीं पीछे अपनी जगह बैठ गया।

चातक जी तब इस बात पर प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे कि उर्दू के साथ-साथ, श्री चेतनानन्द हिन्दी में भी लिखने लगे हैं और यह उन्ही के कारण है कि लाहौर में पहली बार हिन्दी-उर्दू अदीब एक ही मंच पर

---

१. पैठ

इकट्ठे हो रहे हैं और पूरी आशा है कि आगे इसी तरह मिल कर साहित्य की समस्याएँ सुलझाते रहेंगे। क्षण भर रुक कर, उन्होंने होंटों पर ज़बान फेरी, दायें हाथ से बालों की लट को पीछे किया और बायें पैर से दायें टखने की खुजली मिटाते हुए, कहना शुरू किया : "हमें इस बात की अपार प्रसन्नता है कि आज हमारे बीच, नगर के प्रमुख नागरिक, इतिहास और पुरातत्व के महान वेत्ता, नृत्तत्व शास्त्री, प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह उपस्थित हैं। हमारे निवेदन को मान कर, अपने अति व्यस्त समय में उन्होंने थोड़े क्षण हमारी संस्था के उद्घाटनार्थ निकाले हैं। प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह का परिचय देना, सूरज को दीपक दिखाने के बराबर है, ('बिल्कुल आप ही की तरह,' चेतन ने मन-ही-मन कहा) वे महान पुरातत्व वेत्ता और विद्वान ही नहीं, महान शिक्षक भी है, उनसे शिक्षा पा कर देश-विदेश में न जाने कितने छात्र प्राचीन इतिहास मे नये अर्थ खोज रहे है।"

चातक जी इस मरहले पर रुके। 'ओ बस वी करो बौश्शाहो,' चेतन कहना चाहता था, 'बथेरा तेल लगा छड्डेया ई प्रोफ़ेसर साब नूँ। लग्ग जायगी तुहाड्डी किताब कोर्स विच्च[1]। फ़िकर न करो।' लेकिन मन-ही-मन यह कह कर वह मुस्कराता रहा। चातक जी ने फिर होंटों पर ज़बान फेरी, बालों की सरकश लट को दायें हाथ से पीछे सँवारा और भाषण जारी रखते हुए बोले : "आदि मानव से ले कर आधुनिक मानव तक, संसृति की एक अटूट कड़ी है; हम क्या हैं, कैसे प्रगति कर आज इस आधुनिक युग तक पहुँचे है, इसका पता हमें प्राचीन साहित्य और पुरातत्व से ही चलता है। प्राचीन नगरों के ध्वंसावशेषों में हमारी संस्कृति और हमारे कला-शिल्प के सूत्र छिपे पड़े है और इतिहास हमें राजाओं, महाराजाओं और सम्राटों की विजय-गाथा का ही पता नहीं देता, हमारी संस्कृति और हमारे कला-कौशल, हमारे काव्य और संगीत की विजय-यात्रा के भी सूत्र प्रदान करता है। महाराज विक्रमादित्य के राज्य में कला अपने

१. अब बस भी करो बादशाहो, प्रोफ़ेसर साहब को बहुतेरा तेल लगा दिया है। आपकी किताब लग जायगी कोर्स में।

किस उच्च शिखर पर पहुँच गयी थी, महाकवि कालिदास के ग्रन्थ इसकी साक्षी देते हैं। सम्राट समुद्रगुप्त ने संगीत को किस पराकाष्ठा तक पहुँचाया; राजा भोज एक-एक दोहे पर लाख-लाख स्वर्ण मुद्राएँ देते थे; महाकवि बिहारी और वीर-रस-शिरोमणि भूषण, राजा जय सिंह और महाराज शिवाजी द्वारा पोषित थे—इतिहास हमें यह सब भी बताता है और इसीलिए इतिहास और पुरातत्व के ऐसे महान विद्वान के हाथों हमारी इस सांस्कृतिक संस्था का उद्घाटन सम्पन्न होना, उसके भविष्य के लिए शुभ लक्षण है।"

"हियर ! हियर !" चेतन ने कहा। वह रह नहीं सका, एक दम बोर हो गया था वह ! कुछ लोगों ने पलट कर उसकी ओर देखा। चातक जी क्षण भर को रुके, होंटों पर ज़बान फेर कर उन्होंने फिर कहना शुरू किया : "इतिहास और पुरातत्व के अतिरिक्त, शिक्षा के क्षेत्र में प्रोफ़ेसर साहब ने जो योग-दान किया है, वह भी कम महत्व का नहीं। आप विश्वविद्यालय के हिन्दी बोर्ड के कन्वीनर हैं और जब से आपने यह कार्य-भार सँभाला है, हिन्दी परीक्षाओं के जड़ पाठ्य-क्रम में नये प्राण फूंक दिये हैं। अभी तक केवल संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद ही पढ़ाये जाते थे, आपके कार्य-काल में नये लेखकों की रचनाओं को पाठ्य-क्रम में स्थान मिला है। अपने इस साहसपूर्ण क्रान्तिकारी कदम से प्रोफ़ेसर साहब ने बता दिया है कि प्राचीन इतिहास और पुरातत्व-वेत्ता होने के बावजूद, मन-मस्तिष्क से आप कितने आधुनिक हैं।"

"हियर ! हियर !" चेतन की देखा-देखी दो-तीन आवाज़ें आयीं।

चातक जी इसी शैली में न जाने कब तक बोलते रहते और सुनने वालों को कितना बोर करते, पर तभी हुनर साहब ने (यह देख कर कि लोग पीछे से उठे जा रहे हैं) चातक जी की आस्तीन खींच कर उन्हें समय का ध्यान दिलाया। तब होंटों पर ज़बान फेर कर और उस क्रान्ति का उल्लेख कर, जो प्रोफ़ेसर साहब की कन्वीनरशिप के दौरान पाठ्य-क्रमों के क्षेत्र में आने वाली थी, उन्होंने अपना भाषण समाप्त किया।

इस बार हिन्दी वालों ने ख़ूब तालियाँ पीटीं। चेतन की ताली सबसे ज़ोरदार थी। चातक जी प्रोफ़ेसर साहब से संस्था का उद्घाटन करने के लिए कहने जा रहे थे कि नीरव जी उठे और उन्होंने 'सभापति महोदय' से 'दो शब्द' कहने की आज्ञा चाही।

('जगह ते कोई बची नई, तुसीं कित्थे तेल लगाओगे बाश्शाहो।'[1] चेतन ने मन-ही-मन कहा)

इस भाषणबाज़ी में उपस्थित लोग उठ कर ही न चले जायँ, इस भय से हुनर साहब ने घोषणा की कि सोसाइटी के इख़्तिताह के बाद एक छोटा-सा मुशायरा होगा और आप हाज़िरीन अपनी जगह बैठे रहें।

तब नीरव जी ने उद्घाटनकर्ता के रूप में प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह के नाम का हार्दिक स्वागत और समर्थन किया और इस बात का उल्लेख करते हुए कि बन्धुवर चातक जी उनके कृतित्व पर काफ़ी प्रकाश डाल चुके हैं और वे केवल उनके व्यक्तित्व के बारे में 'दो शब्द' कहेंगे, प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह के व्यक्तित्व की प्रशंसा में पूरा कसीदा पढ दिया। अन्त में नीरव जी ने कहा : "प्रोफ़ेसर साहब के व्यक्तित्व में सरलता, सहृदयता, सहिष्णुता और सदाशयता का अपूर्व सम्मिश्रण है। ऐसे उदार और सहृदय व्यक्ति के हाथों संस्था का उद्घाटन होने जा रहा है, यह हमारी संस्था के लिए बड़े सौभाग्य और गौरव की बात है और इस बात का शुभ लक्षण है कि संस्था दिन-दूनी रात-चौगुनी प्रगति करेगी।"

('क्यों नहीं, क्यों नहीं!' चेतन ने मन-ही-मन कहा और हँस दिया!)

अपना भाषण दे कर नीरव जी बैठ गये; जेब से पनवट्टी निकाल कर उन्होंने पान की एक गिलौरी मुँह में रखी; फिर गोल-सी डिबिया से थोड़ा-सा ज़र्दा मुँह में रखा और उँगली में ज़रा-सा चूना लगा कर उसे चाटते हुए, परम प्रसन्न और सन्तुष्ट भाव से पान चबाने लगे। तब चातक जी ने प्रोफ़ेसर साहब से संस्था का विधिवत उद्घाटन करने के लिए कहा।

सदियों से जैसे बर्फ़ के नीचे दबे रह कर निकले हुए, एकदम पीले

---

१. जगह तो कोई बची नहीं, कहाँ तेल लगायेंगे आप!

मुख के साथ प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह उठे। लगता था, जैसे किसी वैज्ञानिक ने डीप फ्रीज़ से निकाल कर, अभी-अभी उस शरीर में प्राण फूँक दिये हों। किसी पुरातन खण्डहर के शिखर पर बैठे हुए निरपेक्ष संन्यासी की तरह उन्होंने आगत अतिथियों की ओर देखा और उद्घाटनकर्ता का गौरव प्रदान करने पर चातक जी तथा संस्था के अन्य कार्यकर्ताओं को धन्यवाद दिया। फिर घड़ी देखते हुए उन्होंने कहा : "मेरे पास समय बहुत कम है, मेरा समय तो मेरा नाम प्रस्तावित करने वाले मेरे हितचिन्तकों ने ले लिया। (इस पर कुछ लोग हँसे) मुझे अभी एक मीटिंग में जाना है और मुझे पहले ही देर हो गयी है। मैं कोई लम्बा भाषण नहीं दूँगा। आपकी संस्था के उद्देश्य मैंने सुने हैं और उन्हें सुन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। यदि आप लोगों ने लगन के साथ काम किया तो आपकी संस्था अपनी सरगर्मियों से निम्न-मध्यवर्ग के ठहरे, रुके, बँधे जीवन में नयी हलचल पैदा कर देगी, इसका मुझे पूरा विश्वास है।"

प्रोफ़ेसर साहब क्षण भर रुके, उन्होंने घड़ी पर एक दृष्टि डाली, फिर चातक जी के कान में कुछ कहा। चातक जी धोती फटकाते हुए, तेज़-तेज़ बाहर की ओर को लपके। चेतन अपनी सीट से उठ कर उनके साथ हो लिया। बाहर निकल कर उन्होंने साईस से कहा कि वह ताँगा तैयार रखे, प्रोफ़ेसर साहब दो मिनट में आते हैं।

जब वे दोनों वापस हॉल में पहुँचे तो दिलबहार सिंह कह रहे थे : "कला की भूख मानव की बहुत पुरानी भूख है। कल्चरल हंगर इज़ ऐज़ ओल्ड ऐज़ द हिल्ज। संसार में जहाँ-जहाँ भी गुहा-मानव के अवशेष मिले हैं, गुफाओं की भित्तियों पर पशुओं के चित्र प्राप्त हुए हैं। तब से ले कर बराबर उन्नति करता हुआ मानव, आज जहाँ आ पहुँचा है, वहाँ उसकी शक्ल भी नहीं पहचानी जाती...." (चेतन का जी हुआ, ज़ोर से चिल्ला दे—'लेकिन आपकी पहचानी जाती है। आप उसी गुहा मानव के भाई-बन्द लगते हैं।' किन्तु बरबस अपने आप पर संयम रखे, वह बैठा रहा। प्रोफ़ेसर साहब बदस्तूर भाषण देते रहे :)...."आदि मानव की सीधी-सादी

कला और संस्कृति भी आज पेचीदा और बहुरूपिणी हो गयी है। वह कई दिशाओं में बढ़ रही है....''

चेतन का खयाल था कि अब प्रोफ़ेसर साहब मानव-संस्कृति और उसकी कला के विभिन्न रूपों का निरूपण करेंगे, लेकिन एक नज़र कलाई की घड़ी पर डाल कर, उन्होंने दो वाक्यों में अपना भाषण समाप्त कर दिया : ''आपकी संस्था ने आज के मानव की, भिन्न दिशाओं मे बढ़ती हुई, इस सांस्कृतिक भूख का ध्यान रखा है और अपने मंच से कवि-सम्मेलन, संगीत-सम्मेलन, चित्र-प्रदर्शनियाँ करने की योजना बनायी है। यह शुभ भी है, शिव भी है और संस्था के उज्जवल भविष्य की साक्षी भी देता है। इन चन्द शब्दों के साथ मैं संस्था का उद्घाटन करता हूं।''

और तालियों की गड़गड़ाहट में वे बैठ गये। बैठते ही उन्होंने चातक जी के कान में कुछ कहा। चातक जी उठे और उन्होंने बताया कि प्रोफ़ेसर साहब को बहुत जल्दी है। हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे केवल दो मिनट और दें और उन्होंने हुनर साहब से कहा कि वे प्रधान जी से आज्ञा ले कर कार्य-कारिणी की घोषणा कर दें।

हुनर साहब उठे। झुक कर उन्होंने लाला दौलतराम के कान में कुछ कहा और फिर जेब से काग़ज़ निकाल कर, हाज़िरीन-ए-जलसा[1] को बताया कि जब तक सोसाइटी के परमानेण्ट जनरल सेक्रेट्री, श्री चेतनानन्द 'दाग़' शिमला रहेंगे, सोसाइटी का काम एक टेम्प्रेरी एग्जिक्यूटिव चलायेगी। फ़िलहाल उसके सिर्फ़ दो विंग होंगे—एक उर्दू का, दूसरा हिन्दी का। उर्दू के सदर, लाला दौलतराम 'साग़र' होंगे और हिन्दी के सभापति, प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह! (इन नामों पर तालियाँ पीटी गयी) उर्दू के नायब-सदर श्री कैलाशनाथ 'फ़रहत' होंगे और हिन्दी के नीरव जी। उर्दू का सेक्रेट्री खाकसार होगा (उन्होंने अपनी ओर संकेत किया) और हिन्दी के शिरी चातक! उर्दू और हिन्दी के सेक्रेट्री अपनी मदद के लिए दो-दो जॉयण्ट सेक्रेट्री रखेंगे। उर्दू में जनाब फ़िगार और हज़रत शातिर मदद देंगे और

१. सभा में उपस्थित लोग।

हिन्दी में शिरी शुक्ल और शिरी करुण ! ये नाम एनाउन्स करके, उन्होंने उम्मीद ज़ाहिर की कि इस टेम्प्रेरी एग्ज़िक्यूटिव को सब मंज़ूर करेंगे।

सभी ने तालियाँ पीट कर अपनी सहमति प्रकट की थी तो प्रोफ़ेसर दिलबहार सिंह उठे थे और चातक जी, नीरव जी, शुक्ल जी, करुण जी और लगभग सारे हिन्दी वाले उन्हें ताँगे तक छोड़ने गये थे।

इस बीच हुनर साहब ने मुशायरा शुरू करा दिया और साहबे-सदर के कहने पर सबसे पहले श्री पूरन चन्दर शर्मा 'शैदा' को अपनी मशहूर गज़ल—'तेरा आशिक तेरा शैदा, तेरा शर्मा हो कर' सुनाने के लिए कहा।

शैदा साहब, जो पीछे खड़े, खाला मेज़ों पर रखी हुई मिठाई और नमकीन की तश्तरियों की निगरानी कर रहे थे, कुर्ते की बाँहें चढ़ाते हुए, सभापति की कुर्सी के पास पहुँचे और जैसे प्रतिद्वन्द्वी को अखाड़े में ललकार रहे हों, उन्होंने ग़ज़ल का पहला शेर पढ़ा :

कुछ मिला तो यह मिला बन्दा-ए-दुनिया हो कर
मिल गये खाक में हम खाक से पैदा हो कर

शैदा साहब अपनी ग़ज़ल का मक्ता पढ़ रहे थे, जब चातक जी अपनी पार्टी के साथ वापस आये, लेकिन इस बीच उर्दू के सारे जर्नलिस्ट, जिन्हें शाम को अखबार में ड्यूटी देनी थी, खिसक गये और सुनने वालों में ज़्यादातर हुनर साहब के चेले और चातक जी की पार्टी के हिन्दी वाले ही रह गये।

हुनर साहब ने एक के बाद एक, अपने चेलों की वही ग़ज़लें पढ़वायीं, जिनमें से चेतन अधिकांश डी० ए० वी० कॉलेज होस्टल में शातिर के यहाँ सुन चुका था। सब के बाद उन्होंने खुद भी अपनी 'ताजा नज़्म'—'फिर न कहना हमें खबर न हुई'—पढ़ी और नज़्म खत्म होने पर कहा : "हाज़िरीन में से कई दोस्त ज़ोर दे रहे हैं कि मैं एक और गज़ल पढ़ूँ लेकिन काफ़ी देर हो गयी है। सदर साहब को एक और मीटिंग में जाना है। इससे पहले कि हमारे हिन्दी शायर अपनी नज़्में पढ़ें, मैं साहबे-सदर से दरख्वास्त करूँगा कि वे तबर्रकन[1] दो अलफ़ाज़ कहें।"

---

१. प्रसाद-स्वरूप

तब लाला दौलतराम 'साग़र'—अपने तोंदियल शरीर को लिये हुए उठे। किसी मजलिस मे तकरीर करने का शायद उनका पहला मौका था। वे दो-तीन बार खाँसे। फिर यह भूल कर कि वे ही सभापति हैं, उन्होंने कहना शुरू किया : "साहबे सदर व हाज़िरीने-जलसा"....

वे क्षण भर रुके और दो बार 'मैं....मैं....' करने के बाद, उन्होंने रुक-रुक कर तीन बार 'आप....आप....आप....' की गर्दान पढ़ी और तब पहला वाक्य पूरा किया : 'आप लोगों ने मुझे जो यह इज़्ज़त और फ़ख़्र बख़्शा है, उसके लिए मैं आप सब का दिल से, तहे-दिल से मशकूर हूँ।"

वे फिर चुप हो गये। कुछ क्षण खाँसते रहे और फिर अटक-अटक कर उन्होंने जो दो-मिनटी तकरीर की, वह कुछ यूँ थी : "स्कूल के दिनों में मुझे भी शायरी का शौक था और मेरा तखल्लुस मेरे इस शौक का शाहिद[१] है, लेकिन मैं अपनी ता'लीम पूरी नहीं कर पाया और मुझे दूकान पर बैठना पड़ा और मेरी तमाम शे'र-ो-शायरी गुलदस्ता-ए-ताक-ए-निसियाँ[२] बन कर रह गयी। अब हुनर साहब लाहौर आये हैं और आपने मुझे अपनी अंजुमन की सदारत बख़्शी है तो मैं भी अपना यह पुराना शौक आप लोगों की सोहबत मे कुछ पूरा करूँगा। मैं तो केमिस्ट हूँ और आर्ट को ज़्यादा नहीं समझता। बस इतना जानता हूँ कि जैसे दो-तीन ज़हरीली दवाइयाँ, दूसरी दवाओं के साथ मिल कर एक ज़िन्दगी-बख़्श दवा में बदल जाती हैं, इसी तरह ज़िन्दगी के तल्ख़ और ज़हरीले तजरुबात, शायर के तख़ईल[३] के साथ तहलील[४] हो कर ज़िन्दगी-बख़्श और रूह-परवर शे'र की सूरत में रू-नुमा[५] होते है। शायर के अन्दर का केमिस्ट कैसे वह सब करता है, इसे कोई नही जानता!"

'वाह ओये केमिस्ट दिआ पुत्तरा! किन्नी लाजवाब सिमिली दित्ती ऐ[६]।' चेतन चिल्लाना चाहता था। लेकिन वह चुप रहा और जब हुनर साहब दोनों हाथ प्रशंसा में उठाये, यह कहते हुए अपनी जगह उछले कि :

---

१. साक्षी २. विस्मृति के आले का गुलदस्ता ३. कल्पना ४. घुल-मिल कर ५. प्रकट ६, वाह बे केमिस्ट के बेटे, कैसी लाजवाब उपमा दी है।

"वाह वा हुज़ूर 'साग़र' साहब ! क्या पते की बात कही है ! शायरी की उस कीमियागिरी[1] की क्या हक़ीक़ी तफ़सीर[2] पेश की है !"—तो चेतन समझ गया कि यह तकरीर भी हुनर साहब ही का कारनामा है ।

हुनर साहब की दाद के साथ ही उनके शागिर्द बेतहाशा तालियाँ पीटने लगे । लेकिन इस सराहना से 'हुज़ूर साग़र साहब' के ख़यालात का प्याला कुछ ऐसा छलका कि उसमे तलछट तक न बची । वे क्षण भर स्तम्भित-से खड़े रहे, फिर उन्होंने हाथ जोड़ कर सब से विदा ली और बाहर की तरफ़ चल दिये । कैलाशनाथ 'फ़रहत,' नायब-सदर भी अपने पिता के साथ हो लिये । तब हुनर साहब ने चातक जी के कान में कहा कि वे नीरव जी को सदारत करने के लिए कहें । वक्त बहुत थोड़ा बचा है, अगला प्रोग्राम जारी रखें । वे सदर साहब को छोड़ कर अभी आते हैं ।

और वे लपक कर लाला दौलतराम 'साग़र' के पीछे हो लिये ।

०

किसलय और कण्टक जी मिनमिनाते हुए अपने दो प्रेम-गीत पढ गये थे, जब लाला दौलतराम 'साग़र' को छोड़ कर, हुनर साहब अपने दल-बल सहित अन्दर आये । 'शैदा' शर्मा तो वही पीछे चेतन के साथ ड्यूटी पर खड़े हो गये कि इस मरहले पर भी कोई अतिथि आ जाय तो उसे उपयुक्त जगह बैठायें और चाय वग़ैरा पिलायें । हुनर साहब, शातिर और फ़िगार वग़ैरा आगे जा बैठे । शेष दो-तीन लड़के, जिन्हे चेतन नही जानता था, शैदा के साथ खड़े रहे । उस वक्त चातक जी ने करुण जी का नाम लिया और उन्हें—'छद्म सम्भ्रान्तता और पूँजीवाद का पर्दाफ़ाश करने वाले अपने ओजभरे दोहों से जनता को चकित और प्रभावित करने' के लिए कहा ।

करुण जी, विद्रोही की मुद्रा मे खड़े हुए और उन्होंने पहला दोहा, हॉल को अपनी आवाज़ से गुँजाते हुए, सुनाया :

इक शतरंजन में रमै मन-रंजन के हेत
एकहिं घोर कठोर श्रम, साँसहु लेन न देत

---

१. रसायन-कला २. यथार्थ व्याख्या ।

(अभी उन्होंने मुश्किल से दोहा पूरा किया था कि हुनर साहब कुर्सी से उछले और उन्होंने 'वाह, कैसी तल्ख़ हकीकत बयान की है, मुकर्रर इरशाद !' का नारा लगाया ।) करुण जी 'मुकर्रर इरशाद' का मतलब नहीं समझे और चुप हो गये तो हुनर साहब बोले, "खूब कहा है, फिर पढ़िए ।"

करुण जी ने और भी जोश से दोहा पढ़ा । वैसी दाद तो उन्हें कभी हिन्दी में मिली न थी । फिर तो यह हुआ कि करुण जी दोहा पढ़ते, हुनर साहब शे'र की तरह दोहे की पहली पंक्ति उठाते और वे ही नहीं, उनके साथी भी दाद देते । हुनर साहब की देखा-देखी, चातक जी भी पहली पंक्ति दोहराने और 'पुनः पढ़िए' की रट लगाने लगे ।

चेतन को पूरा विश्वास था, करुण जी की भाषा का एक शब्द भी हुनर साहब के पल्ले न पड़ता होगा । दोहे की पंक्ति दोहराते वक्त वे ख़ासे ग़लत उच्चारण से पंक्ति बोलते थे, लेकिन या तो वे बोर हो गये थे या अपने हिन्दी साथियों को बढावा देने के खयाल से, बढ कर दाद दे रहे थे । उनके चेले, प्रकट ही मज़ाक में, 'मुकर्रर इरशाद, वाह वा' का शोर मचाये थे; लेकिन करुण जी बेहद उत्साहित हो आये और चेतन को लगा कि वे पूरी सतसई सुना कर ही बैठेंगे । पर ऐन उस वक्त लाला कर्मचन्द, जो हॉल में होने वाली समस्त गति-विधि की निगरानी रखते हुए, काउण्टर और और कुर्सियों के बीच खाली जगह में घूम रहे थे, चुपचाप चेतन के पास आये और उसे ज़रा परे ले गये । उसके कन्धे पर आ बैठने वाली मक्खी को टप से जहन्नुम रसीद करते हुए, उन्होंने कहा, "साढ़े सात बजने वाले हैं, जो टाइम तय हुआ था, उससे आध घण्टा ज़्यादा हो गया है, आप अपनी मीटिंग बरख़ास्त कीजिए, मैं दस मिनट में हॉल ले लूंगा ।"

चेतन ने जा कर हुनर साहब के कान में यह बात कही । हुनर साहब ने चातक जी के कान में कही, चातक जी ने नीरव जी के और नीरव जी ने, दायें होंट में मुस्कराते हुए, करुण जी से कहा कि भाई समय बहुत हो गया है, अब चातक जी को एक कविता पढ़ लेने दो ।

करुण जी ने लगभग गरजते हुए दोहे की पंक्ति पढ़ी थी :

एक महा बाम्हन बनो, माल हरामी खाय

और हुनर साहब को मिसरा उठाने का मौका देने के लिए वे रुके थे। हुनर साहब यह पंक्ति दोहरा रहे थे कि नीरव जी ने श्री करुण से वह बात कही। कवि बिफर गये और बिना दूसरी पंक्ति पढ़े, बैठ गये।

तब चातक जी अपनी जगह उठे। रंग उनका एकदम पीला पड़ गया। बालों की लट को उन्होंने पीछे हटाया और 'मान्य सभापति और सज्जनों' को यह बताया कि चूंकि समय बहुत हो गया है, इसलिए वे लम्बी भूमिका नहीं बाँधेंगे और सभापति जी के आदेशानुसार एक नितान्त नयी कविता 'देवि तुम्हारी चुप कहती है' सुधी श्रोताओं को सुनायेंगे। और इस भूमिका के बाद, वे कविता पढ़ने लगे :

देवि तुम्हारी चुप कहती है—तुम अब मुझको भूल गयी हो
पता नहीं किस स्वर्ग-लोक का फूल प्राप्त कर फूल गयी हो
फूलों के बदले तुम मेरे मग में बो कर शूल गयी हो
मेरी अभिलाषाओं को अनजान बना कर धूल गयी हो

दिया जलाया था मैंने जो
तव उर में करने उजियाला
मेरे जीवन में सुलगा दी
उसने एक भयानक ज्वाला

उस वक्त, जब कवि भाव-भीने स्वर में कविता का तीसरा बन्द पढ़ रहे थे और उन्होंने वह बन्द मुश्किल से पूरा किया था, (और उनकी कविताओं में प्रायः नौ से ग्यारह बन्द रहते थे) तभी काउण्टर के पास जबरदस्त हंगामा हो गया। बात यह हुई कि ज्योंही कवि चातक कविता पढ़ने लगे, हुनर साहब ने आ कर चेतन से कहा कि वह लाला कर्मचन्द का हिसाब निबटा दे और उनसे रसीद ले कर, बाकी पच्चीस रुपये दे दे।

चेतन लाला कर्मचन्द से रसीद ले रहा था कि मुगदर और उसके

साथियों ने (हुनर साहब के संकेत पर ही) अपनी जेबों से, बड़ी सफ़ाई से तह किये हुए, ख़ाकी काग़ज़ के बड़े-बड़े लिफ़ाफ़े निकाले और पलक-झपकते, पाँच-छै मेज़ों पर शेष दस-बारह मेहमानों के लिए रखी प्लेटो से केक-पेस्ट्रियाँ और नमकीन उठा कर, अलग-अलग लिफ़ाफ़ों मे भर लिया। लाला कर्मचन्द चेतन को रसीद दे कर रुपये गिन रहे थे कि उनकी नजर उन लोगों पर गयी। रुपये जेब में ठूंसते हुए, वे उधर को लपके।

"यह क्या बदतमीज़ी है?" अपने राज-दण्ड को हवा में हिलाते हुए वे चिल्लाये।

मुगदर ने अपने हाथ का लिफ़ाफ़ा शातिर को दिया और आँख का हल्का-सा इशारा किया कि वे सब गोल हो जायँ। फ़िर बाँहे चढ़ा कर और सीना फुला कर, वह बमका—"ओये वड्डे होटलियर देया पुत्तरा, ज़रा जबान संभाल के गल्ल कर[1]!"

मुगदर ने यह बात इतने ज़ोर से कही कि चातक जी की कविता उनकी जबान पर जम गयी और सभापति-समेत सभी, कुर्सियाँ छोड़, उधर को भागे। लाला कर्मचन्द शातिर के हाथ से लिफ़ाफ़े छीनने के लिए बढ़े थे कि शैदा ने उनका रास्ता रोक लिया।

"बदतमीज़ किस पेऊ नूँ आक्खिया ई[2]।" वह गरजा।

'क्या बात है, क्या बात है,' कहते हुए नीरव जी, चातक जी और शुक्ला जी आ गये, हुनर साहब ने एक हाथ से शैदा को परे धकेला और दूसरा, लाला कर्मचन्द के कन्धे पर रखते हुए पूछा कि क्या मामला है!

होटल के बैरे भी अपने मालिक की मदद को आ गये थे।

"ये सब मिठाई और केक और नमकीन उठा कर लिये जा रहे है।" लाला कर्मचन्द ने मक्खी-मार वाली बाँह फ़रियाद में उठाते हुए कहा।

शैदा पीछे से गर्दन आगे को बढ़ा कर गरजा, "ते मुफ़्त लई जा रहे हाँ, लुट्ट के लई जा रहे हाँ! पैसे नही दित्ते पजाहाँ मेहमानाँ दे! ओहना

१. ओ बड़े होटलियर के बच्चे, ज़बान संभाल कर बात कर

२. बदतमीज़ किस बाप को कहा है?

दो हिस्से दा समान ही ताँ लीत्ता ई[1] !"

शातिर और फ़िगार अपने साथियों के साथ दरवाज़े के बाहर जा रहे थे कि एक बैरा उन्हें रोकने को बढ़ा। हुनर साहब की बाँह झटक कर शैदा उधर लपका और उसने बैरे की बाँह पकड़, उसे ज़ोर से घुमा कर छोड़ दिया; बैरा काउण्टर के साथ जा लगा और गिरता-गिरता बचा।

"अपने आदमियाँ नूँ सँभाल लओ वड्डे होटलियर साब, जे किसे ने हत्थ उठाया, जाँ साड्डे किसे साथी नूँ रोकेया ते इह सारे पिर्च-प्याले उठा के माल ते सुट्ट देयाँगे[2] !" शैदा ने धमकी दी।

"सुट्ट ताँ ज़रा इक प्याला[3] !" लाला कर्मचन्द, जो क्रोध में उर्दू के बदले पंजाबी बोलने लगे थे, उधर को लपके।

हुनर साहब ने फिर एक हाथ से शैदा को परे किया और दूसरे से कर्मचन्द के कन्धे को थपथपाते हुए बोले, "लाला जी, आप लड़कों के मुँह न लगिए, हमसे बात कीजिए। क्या दाग़ साहब ने आपको पूरे पैसे नहीं दिये ?"

अपनी तमाम खिन्नता और उदासीनता के बावजूद चेतन को मज़ा आ रहा था। उसने कहा, "मैंने पूरे पचास आदमियों के पैसे दे दिये हैं।"

"तो फिर आपको किस बात की शिकायत है ?" हुनर साहब ने मोमनी-सी सूरत बना कर लाला कर्मचन्द से पूछा।

"लेकिन...." लेकिन क्या ? लाला कर्मचन्द कुछ न कह पाये।

तब हुनर साहब ने कहा, "असल में बात यह है लाला जी कि हमारे दस-बारह मेम्बर पुराने ख़यालों के हैं। प्याले-पिरचों में नहीं खाते। उनका ख़याल था कि किसी घर में या खुले में पार्टी की जाय, होटल में न की

---

१. तो क्या मुफ़्त लिये जा रहे हैं, लूट कर ले जा रहे हैं ? पैसे नहीं दिये क्या पचास मेहमानों के ? उनके हिस्से का सामान ही तो लिया है !

२. अपने आदमियों को सँभालो, बड़े होटलियर साहब ! अगर किसी ने हाथ उठाया, या हमारे किसी साथी को रोका तो ये सब पिरच-प्याले उठा कर माल पर फेंक देंगे। ३. फेंक तो ज़रा एक भी प्याला।

जाय। आपका होटल बहुत अच्छा है, आप जब मक्खी नहीं बैठने देते तो हाइजीन[1] का भी पूरा ख़याल रखते होंगे, लेकिन आम तौर पर, होटलों में बर्तन ठीक से नहीं धोये जाते।"

"आप बिल्कुल ठीक कहते हैं," शुक्ला जी ने, सुर्ती को गिरने से बचाने के लिए निचले होंट का प्याला-सा बनाते हुए, मुंह को ज़रा ऊपर उठा कर कहा, "एक ही बाल्टी के पानी में बैरे बर्तन डाल देते हैं और उसी गन्दे पानी से धोये जाते हैं।"

"मैं उबले पानी से बरतन धुलवाता हूँ।" लाला कर्मचन्द गरजे।

"मैंने तो पहले ही कहा कि आप बहुत सफ़ाई-पसन्द हैं, लेकिन यह मिडल-क्लास के लोगों की अंजुमन है," हुनर साहब उन्हें समझाते हुए बोले, "हम में कुछ पुराने ख़याल के लोग भी हैं। अब उनसे चन्दा लिया है। उनका मुंह तो मीठा कराना ही होगा। आप को पूरे पैसे दे दिये। पचास-के-पचास मेम्बर आ जाते तो मिठाई-नमकीन के अलावा आप को चाय भी देनी पड़ती। चार-पाँच रुपये तो आपको बच ही गये। उनमें से आधे आप हमारी तरफ़ से बैरों को बख़्शीश दे दीजिएगा!" यह कह कर और बिना उन्हें कुछ भी आगे कहने का मौका दिये, हुनर साहब चातक जी की ओर मुड़े, "आप की नज़्म अधूरी रह गयी, इसका अफ़सोस है, असल में होटल वग़ैरा ऐसी मजलिसों के लिए मौज़ूं नहीं। लेकिन दाग़ साहब होटल ही में जलसा करना चाहते थे। ख़ैर चलिए, कहीं खुले में मजलिस जमाते हैं और जम कर सुनते-सुनवाते हैं।"

और लाला कर्मचन्द को, हाथ में मक्खी-मार लिये, हतप्रभ खड़े छोड़ कर, हुनर साहब सब के साथ माल पर आ गये।

१. सफ़ाई वग़ैरह, स्वास्थ्य के सिद्धान्त

नवाँ खण्ड



अड़तीस

"चन्दा, मैं खाना नहीं खाऊँगा, न भाई साहब ही खायेंगे! तरकारी-वरकारी तो तुमने पका ली होगी, पर रोटियां अपने ही लिए बेलना।" चन्दा रसोई-घर में बैठी रोटियाँ बना रही थी, जब साइकिल को सीढ़ियों मे यथा-स्थान टिका कर, चेतन सीधा किचन में गया और चौखट मे खड़े-खड़े, उसने अपनी पत्नी को यह सूचना दी।

चन्दा ने रोटी बेलना छोड़ कर आँखें उठायी। इससे पहले कि वह कुछ पूछती, चेतन हँसा, "हमने इतने केक-पेस्ट्रियाँ और समोसे उड़ाये है कि पेट में तिल धरने को जगह नहीं। तुम खा-पका कर ऊपर आ जाना। मैं जा रहा हूँ। थक गया हूं; लेटूंगा।"

और बिना उसका उत्तर सुने, वह कमरे में आया और कपड़े बदलने लगा।

'एलफ़िन्स्टन होटल' के बाहर निकल कर उन्होंने तय किया था कि वे लोग, गोल बाग़ मे मजलिस जमायेंगे। लाला कर्मचन्द को चकमा दे कर, पेस्ट्रियां और केक उड़ाने पर, वे लोग इतने प्रसन्न थे और उस मक्खी-मार होटलियर पर इतनी फब्तियाँ उन्होंने कसी थीं कि पुरानी अनारकली के चौरस्ते तक पहुँचते-न-पहुँचते, उनके पेट मे बल पड़ गये थे और आँखों मे पानी आ गया था। सोसाइटी की स्थापना के सिलसिले में महीनों की दौड़-धूप का अन्त ऐसे हास्यास्पद ढंग से हुआ था कि चेतन के मन में क्रोध भी था और खिन्नता भी; लेकिन उस सामूहिक उल्लास मे, वह अपनी तमाम खिन्नता

भूल गया था और उस क्षण, वह अपने साथियों की बात-चीत में योग देने और रस लेने लगा था।

चौरस्ते पर पहुँच कर भाई साहब ने प्रस्ताव किया था कि इतनी दूर, गोल बाग़ पर जा कर मजलिस जमाने में क्या तुक है। बाइबल सोसाइटी के इधर, सड़क के किनारे, मखमली घास का लॉन है। पानी का नल भी है। एकान्त है। क्यों न वे लोग वहीं बैठें। उन्हें भी दुकान बन्द कर के उनके साथ बैठने में आसानी होगी।

हुनर साहब और चातक जी फ़ौरन तैयार हो गये थे, लेकिन नीरव जी ने उनसे छुट्टी ले ली थी। उनकी प्रौढ़, अध्यापकीय गम्भीरता को, यूँ लौंडों की तरह, बर-लबे-सड़क बैठ कर गोष्ठी जमाना पसन्द नहीं था। करुण जी अभी तक बिफरे हुए थे। फिर, वे अपने काव्य का सिक्का जमा चुके थे और जानते थे कि अब चातक जी अपनी लम्बी, निर्जीव कविताएँ पढ़ कर बोर करेंगे, इसलिए 'करुण काव्य कुटीर' और 'शबल साहित्य सदन' की कृष्ण नगरी पार्टी को ले कर, वे चौरस्ते से अलग हो गये थे। शातिर, फ़िगार और मुग़दर के अलावा, हुनर साहब के चेलों ने भी चौरस्ते से छुट्टी ले ली थी। बाक़ी लोग लॉन पर आ बैठे थे। मिठाई और नमकीन के लिफ़ाफ़े खोले गये थे और हालाँकि सब ने, एलफ़िन्स्टन' में अपने हिस्से की चीज़ खायी थी, लेकिन माले-गनीमत[1] को उड़ाने में दूसरा ही लुत्फ़ था। ठहाके लगाते और लाला कर्मचन्द को दुआएँ देते हुए, सब ने बढ़-बढ़ कर हाथ मारे थे। जब तक सामग्री पूरी तरह खत्म नहीं हो गयी, भाई साहब भी बैठे रहे थे। फिर उन्हें सहसा गुप्ता का खयाल आ गया था और वे उनसे छुट्टी ले कर, दुकान बन्द करने चले गये थे और हुनर साहब के जोर देने पर चातक जी ने फिर अपनी वही कविता शुरू कर दी थी :

देवि तुम्हारी चुप कहती है....

सूट को तहा कर चेतन ट्रंक में रखने जा रहा था कि उसे ख़याल आया,

१. लूट का माल

सुबह उसे फिर लाला हाकिमचन्द से मिलने जाना है। उसने कोट को खूँटी पर टाँग दिया और पतलून को तहा कर चारपाई के सिरहाने रख दिया। कमीज़ और टाई उतार कर उसने दूसरी खूँटी पर टाँगी; फिर कुर्ता और तहमद पहनने लगा। सड़क के किनारे होने वाली उस गोष्ठी को याद आने पर वह सहसा मुस्करा दिया।...

चातक जी, एक लम्बी कविता सुना कर, दूसरी की भूमिका बाँध रहे थे, जब भाई साहब दुकान बन्द कर के आ गये थे। चेतन तत्काल उठा था।

"आप लोग जारी रखिए," उसने कहा था, "लेकिन मैं इजाजत चाहूँगा, मुझे लाला हाकिमचन्द ने कल सुबह अपने घर बुलाया है और शाम को मुझे गाड़ी चढ़ना है।" तब चातक जी को 'नमस्कार' कर के, हुनर साहब से उसने कहा था, "इन्शा अल्लाह चार महीने बाद मिलेंगे हुनर साहब! तब तक उम्मीद है, लाहौर के बाकी कॉलेजों के शायर भी सोसाइटी के मेम्बर बन जायेंगे।" उसके स्वर में हल्का-सा व्यंग्य था। लेकिन हुनर साहब ने उस पर ध्यान नहीं दिया।

"इन्शा अल्लाह!" उन्होंने बाँछें खिलाते हुए कहा, "लेकिन उससे पहले तो तुम हमें शिमला बुलाओगे—सोसाइटी की शिमला ब्राँच के इफ़्तिताह पर!"

"इन्शा अल्लाह!" चेतन हँसा था और 'आदाब' करते हुए, भाई साहब के साथ चला आया था।

घर के बाहर भाई साहब ने उसे बताया कि वे खाना नहीं खायेंगे और वह चन्दा से कह दे। वे कान्ता बहन के घर चले गये थे और चेतन साइकिल लिये, सीढ़ियाँ चढ़ आया था।

कपड़े बदल कर चेतन ने सीढ़ियों का दरवाज़ा बन्द किया और सीटी बजाता हुआ ऊपर को चला। वह किचन के सामने से जा रहा था, जब चन्दा ने उसे आवाज़ दी—"ज़रा सुनिए!"

वह किचन की चौखट में जा खड़ा हुआ ।

"मैंने छत पर दोनों बिस्तर बिछा दिये हैं !" चन्दा ने मुस्कराते हुए कहा, "बस आप यह कीजिए कि पानी की सुराही और गिलास लेते जाइए ।"

चेतन ने तहमद को ज़रा-सा उठा कर कमर में खोंस लिया कि सीढ़ियाँ चढ़ते वक्त पैरों में न फँसे और सुराही-गिलास उठा कर चल दिया । ऊपर पहुँच कर, सुराही उसने शहनशीन पर टिका दी, गिलास उसकी लम्बी गर्दन में फँसा दिया और जा कर धम से चारपाई पर बैठ गया ।

अप्रैल की अन्तिम रातें थीं; दिन चाहे काफ़ी गर्म हो गये थे, लेकिन रात को छत पर बड़ी प्यारी ठण्डक होती और पिछले पहर तो कम्बल की जरूरत पड़ जाती । चेतन का बिस्तर ठण्डा था । हल्केपन के कुछ अजीब-से एहसास के साथ उसने उचक कर पैर ऊपर कर लिये और पसर कर चित लेट गया—एक सुखद सरसराहट उसके सारे बदन में दौड़ गयी ।

छत पर अपूर्व एकान्त था । अमृतधारा मुहल्ले के इस मकान का आकर्षण यही छत थी । अव्वल तो मुहल्ले में अधिकांश मकान अभी एक-मंज़िले थे । पूरी पंक्ति में वही मकान दो-मंज़िला था, जिस में उसने एक कमरा और किचन किराये पर लिया था; फिर छत पर दो तरफ़ ऊँचा पर्दा था, तीसरी तरफ़ सीढ़ियों की दीवार थी और चौथी तरफ़ ऊँची शहनशीन !....बिस्तर पर आराम से पसर कर, चेतन ने दोनों हाथ सिर के नीचे रख लिये और चुपचाप आकाश की ओर देखने लगा । मई-जून में प्राय: गर्द-ग़ुबार नीचे से उठ कर, लाहौर के आकाश को बेतरह छा लेता है और रात को चाँद की बात तो दूर, दिन को सूरज भी उसकी निहायत मोटी तह को भेद कर अपनी चमक नहीं फैला पाता और बे-आब, लेकिन दहकती थाली-सा, आसमान में लटका रहता है । वह गर्द-ग़ुबार अप्रैल के इन अन्तिम दिनों में अभी धरती की गोद में सोया हुआ था और चाँद, निर्द्वन्द्व अपनी आभा लुटा रहा था ।

सुकून-भरी सुखद चाँदनी में, अपने ठण्डे बिस्तर पर बड़े आराम से लेटे

हुए, चेतन को सहसा पुरानी अनारकली और माल के चौरस्ते पर, सड़क के किनारे लॉन में बैठे, काव्य-गोष्ठी जमाये हुए कवियों का ख़याल आ गया—वे लोग अभी तक वहीं गोष्ठी जमाये होंगे । चातक जी अपनी कविताएँ सुना चुके होंगे, अब हुनर साहब उन्हें अपनी ग़ज़लें और नज़्में या किस्से-कहानियाँ सुना रहे होंगे और चातक जी अपने बीवी-बच्चों को भूल कर, दत्त-चित्त, उनकी बातें सुन रहे होंगे ।....हो सकता है, स्वयं कोई चोज़ सुनाने की बजाय हुनर साहब अपने चेलों की रचनाएँ चातक जी को सुना कर, उन पर रोब गालिब कर रहे हों । और चेतन के सामने एक-एक कर उनके सभी चेलों की सूरतें घूम गयीं—उसकी आँखों में अमृतसरिया मल 'दीवाना' का खुला मुख और लटका, निचला होंट उभरा....('उसे क्या तकलीफ़ है कि वह शायरी के पीछे यूँ दीवाना है और यह भी नहीं जानता कि जब वह शे'र पढ़ता है तो बेहद दयनीय लगता है ।' उसने सोचा....) फिर राम प्रसाद 'नसीम' का, ऊपर-नीचे होता टेंटुआ उभरा; दीवान चन्द 'गौहर' का काँपता घुटना, और अपने शे'रो की प्रशंसा सुन कर, लाज-भरी प्रसन्नता से दमक उठने वाला, उस मुगदर 'शैदा' का उल्लसित मुख; फिर अन्त मे, रणवीर ही की तरह हुनर साहब को प्रसन्न करने के लिए 'शातिर' की तत्परता उसके सामने आ गयी....तभी उसे ख़याल आया, वह खुद भी तो रणवीर और शातिर की तरह हुनर साहब से प्रभावित हुआ था । अगर वह शुरू के दिनों में कुछ वक्त उनके साथ मज़ंग मे न रहा होता तो कभी उनकी लम्पटता को न जान पाता, जिसे वे अपनी प्यारी मुस्कान और लच्छेदार बातों में छिपाये रहते थे ।....('शायद ये लोग भी जान लेंगे', चेतन ने मन-ही-मन हँसते हुए कहा, 'लेकिन तब तक हुनर साहब दूसरे चेले अपने गिर्द इकट्ठे कर चुके होंगे....')

और उसे हुनर साहब के बीवी-बच्चों का ख़याल आया । चातक जी के बारे में तो उसे मालूम था कि वे अपनी पत्नी की कुरूपता और अक्खड़ता से भाग कर, काव्य में आश्रय ढूंढते थे, लेकिन क्या हुनर साहब की यही स्थिति न थी । वह जब मज़ंग में उनके यहाँ कुछ दिन रहा था तो उसे उनकी

पत्नी के दर्शन हुए थे। उसका रंग तो गोरा था, लेकिन नाक चौड़ी और भद्दी और चेहरा दबा-दबा था—पतली-दुबली, सूखी-सड़ी और चिड़चिड़े स्वभाव की—अपने गोरे रंग के बावजूद वह चेतन को बदसूरत लगी थी। हुनर साहब भी प्रकट ही अपनी पत्नी से डरते थे, इसलिए वे अपने कस्बे और दुकान और घर से भाग कर जालन्धर और लाहौर के नये-नये शायरों की संगत में, महीनों काट देते थे....('लेकिन हुनर साहब एकदम प्रतिभाहीन तो नहीं हैं,' चेतन ने मन-ही-मन कहा, 'वे क्यों अपने वक्त को ऊँचे दर्जे की रचनाओं में नही लगाते—क्या वे आज से बीस साल बाद भी यही सब करते रहेंगे ? क्या वे कभी अपने आपको न पहचानेंगे ? चातक जी तो सिर्फ़ मैट्रिक पास हैं। पर हुनर साहब तो बी०ए० हैं....लेकिन न तो वे जर्नलिज़्म के मैदान में कुछ कर सके, न शायरी के....')

चेतन को उन पर दया हो आयी। फिर वह मन-ही-मन हँसा—अगर वे ऐसे न होते तो क्या वह इतनी आसानी से अपनी बला उनके गले मढ कर, इस चक्कर से आजाद हो जाता !....अब वह कभी ऐसे चक्कर में नहीं फँसेगा, उसने मन में प्रतिज्ञा की—सोच-समझ कर अपना प्रोग्राम बनायेगा और पूरी निष्ठा से उस पर चलेगा। हुनर साहब की तब तक की ज़िन्दगी, उनकी तमाम लम्पटता, उसके सामने घूम गयी। महज़ खाने-पीने के लिए वह सब दन्द-फन्द करना और कुछ भी महत्वपूर्ण काम सरअंजाम न देना, उसे केवल पशुओं की तरह जीना लगता था और बचपन में पिता द्वारा कण्ठस्थ कराया गया, संस्कृत का एक श्लोक उसके कानों मे गूँज गया, जिसे वर्षों बाद उसने मैट्रिक में अपने संस्कृत के पाठ्य-क्रम मे पढा था। वह धीरे-धीरे उसे गुनगुनाने लगा :

आहार, निद्रा, भय, मैथुनंच सामान्यमेतद् पशुभिर्नराणाम्
धर्मो हि तेषामधिकोविशेषः धर्मेणहीना पशुभिः समानाः

चेतन कितनी ही देर यह श्लोक गुनगुनाता रहा और मन-ही-मन प्रतिज्ञा करता रहा कि वह पशुवत नहीं जियेगा। इस वक्त उसका धर्म, लाला हाकिमचन्द की लड़की को हिन्दी 'रत्न' में पास कराना है; आगे शिक्षा

प्राप्त करना है; कानून की परीक्षा में डिस्टिंक्शन लेना है और साथ-साथ साहित्य-सेवा करना है। वह पूरी तरह अपना धर्म निबाहेगा और अपने ध्येय तक पहुँच कर ही दम लेगा ...

वह धीरे-धीरे श्लोक गुनगुना रहा था, जब उसने सीढियों में अपनी पत्नी के आने की पदचाप सुनी। उसने करवट बदल कर देखा—दायें हाथ मे थाली उठाये, बायें से साड़ी सँभाले, चन्दा सीढ़ियों से आ रही थी।

"यह क्या लायी हो!"

चाँदनी में चन्दा की बत्तीसी खिल गयी। उस क्षण चेतन को वह दुनिया की सुन्दरतम औरत लगी! वह उसके पास आ कर खड़ी हो गयी।

"आज मैंने चने की दानेदार दाल पकायी है," उसने झिझकते हुए कहा, "एक-एक दाना अलग है। कान्ता बहन ने आम का अचार भेजा है। मैं दो फुल्के लायी हूं।"

"अरे मैं सुबह खा लेता। अभी ऐसी गर्मी थोड़े ही पड़ने लगी है कि सुबह तक ख़राब हो जाय। वहाँ शहनशीन पर रख कर ढंक दो।"

"केक-पेस्ट्री से कोई पेट भरता है," चन्दा उसके सामने, अपनी चारपाई की पट्टी पर बैठ गयी और थाली उसने गोद में रख ली, "आधी रात को आप फिर भूख की शिकायत करेंगे। दो ही फुल्के लायी हूं, खा लीजिए। केक-पेस्ट्री क्या सबके हिस्से की आप ही खा गये?" और वह फिर हँसी।

"बात तो कुछ ऐसी ही है।" चेतन उछल कर उठा। नीचे पैर रख कर उसने चारपाई ज़रा परे सरका दी और टाँगें लटका कर, चन्दा के सामने बैठते हुए, उससे थाली ले कर अपनी गोद में रख ली।

"ठहरिए, मैं पानी ला कर आपके हाथ धुलवा दूँ।" वह उठी और सुराही से गिलास भर लायी। थाली गोद में रखे-रखे, सिरहाने की ओर बाँहें बढ़ा कर चेतन ने हाथ धोये। चन्दा ने साड़ी का आँचल बढा दिया। उसी से चेतन ने हाथ पोंछ लिये और रोटी का ग्रास तोड़ कर आम के

अचार को छुलाते हुए, दाल से भर कर मुँह में रखा।

चन्दा पाक-शास्त्र में निपुण नहीं थी। उसे ज़्यादा सालन-वालन पकाने नहीं आते थे, लेकिन गोश्त वह बहुत अच्छा पकाती थी और चनों की दाने-दार दाल तो उसकी अपनी विशेषता थी। हालाँकि चेतन को भूख नहीं थी, लेकिन पहला कौर मुँह में रखते ही उसे हल्की-सी भूख लग आयी।

"बहुत अच्छी दाल पकायी है," उसने खाना खाते हुए कहा।

मना करने के बावजूद, चन्दा का यूँ खाना ले आना चेतन को अन्दर-ही-अन्दर कहीं बेतरह छू गया। खाना शुरू करने से पहले हाथ धोने के लिए उसका ज़ोर देना भी उसे अच्छा लगा। पहले कभी वह इन बातों का ध्यान न रखती थी....चेतन के सामने चंगड़ मुहल्ले के दिन घूम गये, जब चन्दा की सबसे बड़ी खूबी, उसकी गहरी नींद थी। वह जब आधी रात को समाचार-पत्र के दफ़्तर से आता तो उसे जगाने के प्रयास में सारी गली को जगा देता था....प्रकट ही उसकी पत्नी अब बहुत बदल गयी थी। चन्दा फिर सुराही से गिलास भर लायी, उसके सामने बैठ गयी और पायँते से ज़रा-सा बिस्तर हटा कर, उसने गिलास को चारपाई की पट्टी पर टिका दिया।

"कैसी रही पार्टी ?" उसने मुस्कराते हुए पूछा।

"अच्छी रही !" चेतन हँसा, "अपनी सारी बला मैंने हुनर साहब के सिर डाल दी—सब के सामने—सबकी मर्ज़ी से ! और जितना पैसा इकट्ठा किया था, वह मेम्बरों, सरपरस्तों और लेखकों की चाय-पार्टी में खर्च कर दिया।....हुनर साहब ने मुझसे कहा था," सहसा चेतन ने गिलास उठा कर पानी का घूँट भरा, "कि मैं बेकार की पार्टी दे रहा हूँ। मुझे चाहिए कि पच्चीस-तीस में अपना सूट बनवाऊँ और बाकी पैसे उनके हवाले कर दूँ।...."

"हाँ, आपने बताया था !" चन्दा बोली।

"जो बात नहीं बतायी," गिलास को यथा-स्थान रखते हुए चेतन बोला, "वो यह है कि एक बार मेरा मन भी डोला था। भाई साहब ने

कहा था कि लडकी सुन्दर है और पिटवा देती है। तब मैंने सोचा था कि यह ट्यूशन न लूँ और सोसाइटी के लिए इकट्ठे किये गये रुपयों से दाखिला दे दूँ ! लेकिन मुझसे हुआ नहीं।"

"वह रुपया आप अपने ऊपर खर्च कर लेते तो आपको हमेशा अफ़सोस रहता," चन्दा ने अपने पति का समर्थन किया, "किसी दूसरे काम के लिए लिया गया रुपया अपने ऊपर थोड़ी खर्च किया जा सकता है !"

"बिल्कुल !" चेतन ने कहा, "यह सरासर अमानत में खयानत होती।"

वह चुपचाप खाना खाता रहा। फिर बोला, "माँ कहीं यहाँ होती और मैं अपने मन में आने वाली बात का ज़िक्र भर करता तो वह सिर्फ़ इतने से बुरा मान जाती।" और वह चुप हो गया। कुछ देर बाद फिर बोला, "सोचता हूँ, सोना तो सोना है, वह कब कूड़ा दीखने लगता है और आदमी चाहने पर भी उसे छू नहीं पाता, इसका जवाब उसके अपने अन्दर, उसकी सोच ही में है। इर्द-गिर्द देखता हूँ तो पाता हूँ कि लोग आये दिन धोखा-धड़ी करते हैं—उनमें लेखक भी हैं, कवि भी और पत्रकार भी, जो कि देश की मॉरैलिटी के रखवाले हैं। अभी 'बिहार रिलीफ़ फ़ण्ड' में लोगों ने कितना रुपया नहीं ऐण्टी किया !....ग़रीबों की मदद के लिए इकट्ठा किया गया रुपया...."

चाँदनी रात में चन्दा की बत्तीसी चमक उठी, "लोग तो चोरी करते हैं, डाके डालते हैं और दस तरह से लोगों का रुपया हज़म कर जाते हैं, लेकिन...."

"यही मैं कहता हूँ," चेतन ने जोश से कहा, "मन में लालच ज़रूर आया, लेकिन उसे दुत्कार कर भगा दिया। इसीलिए हुनर साहब की बात मैंने नहीं मानी। सोसाइटी की एक पाई अपने पास नहीं रखी। जितना चन्दा इकट्ठा किया था, उतना पार्टी में खर्च कर दिया। इतना बोझ मेरे सिर से उतर गया कि बता नहीं सकता...." और वह चुपचाप खाना खाने लगा।

क्षण भर बाद चन्दा ने कहा, "क्या सरदार जगदीश सिंह आये थे ?"

चेतन हँसा, "आये थे। लेकिन होटल के बाहर ही से जब उन्हें मालूम हुआ कि राधारानी नहीं आयी तो उलटे पाँव चले गये। लॉरेंस बाग़ में भी आज पार्टी थी। उन्होंने सोचा कि राधारानी ज़रूर वहाँ होगी। सो वे रुके नहीं। सच पूछो तो बड़े लोगों में से कोई भी नहीं आया, न लाला हरकिशन लाल, न राजा महेन्द्रनाथ, न मियाँ बशीर अहमद। और-तो-और, पण्डित रत्न, कविराज और सूफ़ी हनुमानप्रसाद भी नहीं आये और उनके न आने का फ़ायदा हुनर साहब और उनकी पार्टी ने उठाया। हमें भी घाते में भर-पेट केक-पेस्ट्रियाँ और समोसे मिल गये।" चेतन ज़ोर से हँसा, "सोसाइटी का उद्घाटन क्या हुआ, उसकी पैरोडी हुई।"

"पैरोडी !" चन्दा समझ नहीं पायी।

"पैरोडी अंग्रेज़ी का शब्द है," चेतन ने कहा, "तुम 'प्रभाकर' पास करके, जब अंग्रेज़ी पढ़ोगी और बी०ए० करोगी तब तुम इस शब्द के ठीक अर्थ जान लोगी। अभी इतना समझ लो कि किसी चीज़ की भौंडी नकल को पैरोडी कहते हैं। और एलफ़िन्स्टन में जैसे सोसाइटी का जलसा हुआ है, उसे उद्घाटन की पैरोडी के सिवा कुछ नहीं कहा जा सकता। कहाँ तो सोचता था कि मैं लाला हरकिशन लाल को प्रेज़िडेण्ट बनाऊँगा और राजा महेन्द्रनाथ से उद्घाटन कराऊँगा। वो न आयेंगे तो हफ़ीज़ जालन्धरी और अख़्तर शीरानी को तकलीफ़ दूँगा और कहाँ पार्टी की सदारत एक मोटे, ठिगने, तोंदियल केमिस्ट ने की, जिसे हुनर साहब सुख़न-फ़हम कहते थे, लेकिन जो इन शब्दों का मतलब तक न जानता था और सोसाइटी का उद्घाटन प्रो० दिलबहार सिंह ने किया, जो कैंची से महीन कटे बालों और लम्बी चोटी वाले सिर, एकदम पीले ज़र्द चेहरे और कानों की लवों के बाहर को निकले बालों की वजह से सदियों पुराने किसी खँडहर को खोद कर निकाले गये इन्सान दिखायी देते थे। उद्घाटन करते वक़्त वे काम के चार शब्द भी नहीं कह पाये। जो कसर रह गयी थी, वह हुनर साहब के

चेलों ने पूरी कर दी—जो लोग नहीं आये, उनके हिस्से की मिठाई और नमकीन ज़बरदस्ती उठा लाये। और होटल के मालिक से लड़ाई होते-होते बची।"

चन्दा हँसी, "वही माल आपने उड़ाया ?"

"इतने महीनों की दौड़-धूप का यही इनाम मिला !" वह हँसा। खाना खत्म करके, थाली उसने अपनी पत्नी को दी और गिलास उठा कर नाली पर कुल्ला किया। सुराही से फिर उसे भर कर उसने हाथ धोये और तह-मद के छोर से पोंछता हुआ वापस आया और बोला, "जो कुछ आज एलफ़िन्स्टन में हुआ, पैरोडी से भी कहीं ज़्यादा बेतुका था। तुम वहाँ होतीं तो जानतीं।" और वह फिर चारपाई पर लेट गया।

चन्दा थाली लिये हुए उठी। "मैं अभी दस मिनट में काम समेट कर आती हूँ," उसने कहा और सीढ़ियों में गायब हो गयी।

चेतन ने अपनी पत्नी को संक्षेप में उद्घाटनोत्सव की हास्यास्पदता बता दी थी, लेकिन चन्दा के वापस आने की प्रतीक्षा करते हुए, 'एलफ़िन्स्टन' की मीटिंग का एक-एक ब्योरा और उसमें हिस्सा लेने वालों के चेहरों की एक-एक भंगिमा चेतन के सामने आने लगी।

अब, जब सब कुछ खत्म हो गया था और उसे सोसाइटी के चक्कर से नजात मिल गयी थी, बार-बार सोचने पर उसे यही लगता था कि अपनी शक्ति और सामर्थ्य की सीमा जाने बिना, उसे पण्डित रत्न का सुझाव नहीं मानना चाहिए था। उसके सहज ज्ञान ने सोसाइटी के सन्दर्भ में जो संशय उसके मन में पैदा किया था, उसी को अपना पथ-प्रदर्शक मान कर, उस चक्कर से उसे निकल आना चाहिए था। वह उलझ भी गया था तो भले ही वह सोसाइटी के पैसों से सूट सिलवा लेता और वापस आ कर शिमला के अपने वेतन से वह रुपया चुका देता, लेकिन उसे हुनर साहब से रुपये नहीं लेने चाहिएं थे और यदि सोसाइटी का उद्घाटनोत्सव करना था तो स्वयं, अपने मन के मुताबिक, अपनी प्रतिष्ठा को बरकरार रखते हुए, करना

चाहिए था। अब उसने चाहे वे रुपये उधार लिये हों, पर हुनर साहब ने तो अपने जाने उसे रिश्वत दी थी और उससे सोसाइटी को ख़रीद लिया था। चेतन को सहसा इस कटु सत्य का एहसास हुआ कि एक समझौता, दूसरे को जन्म देता है, दूसरा तीसरे को और आदमी समझौतों का ग़ुलाम बनता चला जाता है और उसकी अपनी सत्ता समाप्त हो जाती है। आख़िर इस सब का नतीजा क्या निकला ? हुनर साहब ने लाला दौलतराम 'साग़र' और उनके सुपुत्र कैलाशनाथ 'फ़रहत' को सिद्ध कर लिया और चातक जी ने प्रो० दिलबहार सिंह को; और ख़ुद उसने (उन्हीं के माध्यम से) लाला हाकिमचन्द को ! (क्या यह काम उन्हीं की तरह का नहीं था, भले ही वह उसने स्वयं नही किया। उस कीचड़ के छींटों से कपड़े तो वह अपने भी नहीं बचा पाया। हुनर साहब ने अपने सहयोग की कीमत ली तो उसने भी अपनी ख़ामोशी की कीमत वसूल कर ली) और सोसाइटी अपने उद्-घाटन के दिन ही ठप्प हो गयी।...जब पण्डित रत्न ने उससे सोसाइटी शुरू करने के लिए कहा था तो उसने कैसी शानदार योजनाएं नहीं बना डाली थीं—कहानी, कविता, संगीत और चित्र-कला—वह संस्था के चार विंग खोलेगा। चारों के अलग-अलग अध्यक्ष, मन्त्री, और उप-मन्त्री होंगे और उसकी संस्था लाहौर ही मे नही, सारे प्रान्त—बल्कि सारे देश में प्रसिद्ध हो जायेगी....चेतन के सामने लाला दौलतराम 'साग़र' और प्रो० दिलबहार सिंह के भाषण घूम गये और फिर मक्खी-मार हाथ मे हुए लाला कर्मचन्द की फ़रियादी सूरत....

'फ्रॉम द सब्लाइम टु द रिडिक्युलस[१] !' उसने मन-ही-मन कहा और छत के सन्नाटे मे अपने आप ठहाका मार कर हँस उठा।

"किस बात पर हँस रहे हैं, अकेले-अकेले !"

चेतन ने करवट बदली। चन्दा सीढ़ियों पर आ रही थी। एक पाँव सीढ़ी पर और दूसरा छत पर रखे, वह साँस दुरुस्त कर रही थी।

"हँस रहा हूँ अपने सपनों और उनके बेतुके अंजाम पर !" चेतन ने

---

१. आकाश की ऊँचाइयों से बेतुकेपन तक

कहा और फिर अपनी सोच में ग़र्क हो गया। चन्दा उसके पास पायँते की पट्टी पर आ बैठी। वह ज़रा परे को खिसक गया कि चन्दा आराम से बैठ जाय।....

"मेरा दोस्त अनन्त मुझे कहा करता है कि मै हमेशा का चुग़द हूँ," सहसा वह धीरे-धीरे, आत्म-भर्त्सना के मूड में बोलने लगा, "मुझे उसका यह रिमार्क बुरा भी लगता रहा है। लेकिन कभी-कभी मै सोचता हूँ कि बात उसकी असलियत से दूर नहीं। मेरे स्वभाव मे ख़ासी बेवकूफ़ी है।" वह चुप हो गया। चन्दा अपने पति के इन मूड्स को समझने लगी थी। वह मौन बनी, प्यार से उसके बाल सहलाती रही।

अपनी सोच को मुखर करते हुए, चेतन फिर कहने लगा, "मैं एल-फ़िन्स्टन की पार्टी के उस दिलचस्प पहलू में यह भूल ही गया कि वह सब मेरी बेवकूफ़ी और नाकामी ही का पर्दाफ़ाश करता है। उस घटना पर मैं भाई साहब और हुनर साहब के साथ इतना हँसा कि मेरी आँखों में आँसू आ गये। लाला कर्मचन्द की ऐन नाक के नीचे, जब लड़के केक-पेस्ट्रियाँ उड़ा ले गये तो मुझे भी बहुत मज़ा आया और सड़क के किनारे लॉन में बैठ कर मैंने भी ख़ूब केक-पेस्ट्रियाँ उड़ायी। लेकिन अब सोचता हूँ तो मुझे लगता है कि मैं किसी दूसरे पर नहीं, अपनी नाकामी पर हँस रहा था, अपनी ही असफलता को झकोर रहा था। क्या वे कॉलेज के लौंडे और वे सब टुटपूँजिये शायर एलफ़िन्स्टन में पार्टी खाने के काबिल थे? लाला कर्मचन्द होटल चलाते है, केक-पेस्ट्रियों की दुकान तो नहीं करते। कॉण्ट्रैक्ट सिर्फ़ केक-पेस्ट्रियों का नहीं हुआ था, हॉल में पार्टी के बन्दोबस्त का था, यह तो ऐसी ही बात हुई कि मेहमान किसी बडे होटल मे नाश्ता करने जायँ और जो न खा सकें, वह जेबों मे भर लायँ! मैं तो कभी कर्मचन्द से आँख नहीं मिला सकता!"

वह चुप हो गया। चन्दा ने कोई उत्तर नहो दिया। वह धीरे से चार-पाई पर उसके साथ लेट गयी। चेतन ज़रा और परे हो गया। चन्दा ने हमेशा की तरह अपनी बाँह उसके सिर के नीचे दे दी और उसे हल्के-से

अपने गर्म-गुदाज़, और कोख के बच्चे के कारण भर आये, सीने से लगा लिया—बिल्कुल ऐसे, जैसे कोई माँ अपने दुखी और उदास और हतोत्साह बच्चे को अपनी छाती से लगा ले। चन्दा का सातवाँ महीना चल रहा था। उसका पेट काफ़ी बढ़ आया था। चारपाई थोड़ी कम चौड़ी पड़ रही थी। चेतन कुछ क्षण उसी तरह उसके सीने से सिर लगाये पड़ा रहा। फिर उसकी बाँह पर सिर रखे-रखे, वह चित लेट गया। क्षण भर वह चुपचाप आकाश की ओर देखता रहा, फिर जैसे अपने आपसे बात कर रहा हो, बोला :

"मैं इतने दिन से बाऊ जी के जिस उपदेश को रटता रहा हूँ, मैं जान गया हूँ कि वह सच नहीं है।"

"कौन-सा उपदेश!" चन्दा ने धीरे-से पूछा।

"यही कि हम सब कुछ कर सकते है; कि जो कारनामा एक माई का लाल सर-अंजाम दे सकता है, उसे कोई दूसरा भी कर सकता है—अ मैन कैन डू ह्वॉट अ मैन हैज़ डन ! मै जान गया हूँ, ज़रूरी नहीं कि वह दूसरा वही काम कर ले जाय। हम सब कुछ नहीं कर सकते। हम अपनी आदतों, संस्कारों, कमज़ोरियों और शहज़ोरियो से बँधे है। पण्डित रत्न ने जब मुझे सोसाइटी चलाने के लिए कहा था और चौधरी की मिसाल दी थी तो मुझे लगा था कि यह तो कुछ भी मुश्किल नहीं है; चौधरी जो कर सकता है, मै क्यों नही कर सकता ? लेकिन महीनों की सिर-तोड़ कोशिश और दौड़-धूप के बाद, मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मै नही कर सकता।....यह ठीक है कि मैं दिन-दिन भर साइकलिंग कर सकता हूं। मेम्बरों और सर-परस्तों के यहाँ दस चक्कर भी लगा सकता हूँ। एक-आध बार, जरूरत पड़ने पर, मैं दूसरे को पटा भी सकता हूँ, थोड़ी खुशामद और मुँह-देखी बात भी कर सकता हूँ—यानें यह सब कैसे किया जाता है, मैं जानता हूं। लेकिन मैं लगातार यह सब नही कर सकता। झूठ और खुशामद, छल और कपट से मुझे सख्त नफ़रत है। मुझे आता सब है, मुझसे होता नही। मैं बहुत पिनकी हूँ और मेरे स्वभाव के इस दोष ने मुझे सोसाइटी के सिल-

सिले में असफल बना दिया। हुनर साहब इस काम के लिए फ़िट है। मैं नहीं।"

"आपको ज़रूरत भी क्या है," चन्दा ने फिर बाँह के ज़ोर से उसे सीने से लगा लिया, "आप तो शुरू ही से नहीं चाहते थे। कई बार आपने इस झंझट से निकलने की सोची। अच्छा हुआ आप छुट्टी पा गये।"

"छुट्टी तो पा गया हूँ, लेकिन सोचता हूं कि यही जो दूसरा काम मैंने अपनाया है—यह ट्यूशन, जो मैंने ले ली है—क्या मैं इसे निभा पाऊँगा?"

"क्यों, इसमें क्या दिक्कत है?" चन्दा ने पूछा, "जब आप किताबों और कुजियों की सहायता से मेरी तमाम कठिनाइयाँ दूर कर देते है, तो क्या 'रतन' मे पढ़ने वाली लड़की ही को नहीं पढ़ा सकेंगे?"

"नहीं, उस तरफ़ से मुझे कोई मुश्किल नही दिखायी देती, पर मुझे यह आदमी—हाकिमचन्द—कुछ डिफ़िकल्ट लगता है। अफ़सर हो जाने के बावजूद, वह है बुनियादी तौर पर क्लर्क ही!"

चन्दा चुप उसकी बात सुनती रही। चेतन फिर सीधा लेट गया और धीरे-धीरे उसने अपने मन की शंका अपनी पत्नी के सामने रख दी: "एल-फ़िन्स्टन की पार्टी में लाला जी आये थे। देने को तो उन्होंने एक पैसा चन्दा नहीं दिया, लेकिन अपने साथ दो साथियो को ले आये।"

"आपने उन्हे बुलाया नही था?"

"मैं तो तकल्लुफ़न उनके घर इन्वीटेशन-कार्ड छोड़ आया था कि आप सपरिवार आयें, यह सोच कर कि उन्हे पार्टी के दूसरे दिन ही शिमला जाना है, उनके पास कहां टाइम होगा, एलफ़िन्स्टन मे आने का? लेकिन वे आ गये और डट कर खा गये। मै उनकी जगह होता तो जब चन्दा मैंने नही दिया था, लाख ज़ोर दिये जाने के बावजूद, मैं पार्टी में नही बैठता। ख़ास तौर पर उस वक्त, जब मेरे साथ द और साथी होते।" चेतन कुछ क्षण चुप रहा, फिर उसने कहा, "जाने क्यों चन्दा, मेरा मन इस ट्यूशन से ख़ुश नहीं है। मैंने हफ़्ता-डेढ़ हफ़्ता इसे पाने के लिए बर्बाद किया है,

लेकिन अब, जब मैं इसे पा गया हूँ, मेरे मन में हज़ारों शक-शुबहे उठते हैं। भाई साहब भी इस ट्यूशन के हक में नहीं हैं। वे कहते हैं कि लड़की सुन्दर है, लाड में पली है और ट्यूटरों को पिटवा देती है, लेकिन जिस वजह से वे डरते हैं, मैं नहीं डरता। मुझे डर उसके पिता से है। वहाँ परदेस का मामला है। परेशान न करे। कल उसने फिर बुलाया है।"

"क्यों ?"

"कहता है, मेरे परिवार के साथ आपको सफ़र करना है, ज़रा आ जाइएगा, बीवी-बच्चों से मिला दूँगा। शायद कुछ और बातें भी करना चाहता हो।"

"आप यूँ ही घबराते है," चन्दा ने तसल्ली दी, "भगवान सब ठीक करेगा।"

करवट ले कर चेतन ने अपनी पत्नी को बाँह में भर लिया। फिर उसके सिर और चेहरे पर प्यार से हाथ फेरते हुए बोला, "मुझे तुम्हारा भी खयाल है। मेरी ग़ैर-हाज़िरी में तुम इम्तहान दोगी, तुम्हारी डिलिवरी होगी। सब कुछ ठीक हो जाय!"

चन्दा हँसी, "आप बिल्कुल न घबराइए! सब ठीक हो जायगा। आप ही तो कहा करते हैं कि भगवान जो करता है...."

छत पर एक दम सन्नाटा था। मुहल्ले में अभी कोई इतना ऊँचा मकान न बना था। चारों ओर ऊँचा पर्दा था। चाँदनी में अपनी पत्नी का गोल-मटोल मुख चेतन को बहुत भोला और प्यारा लगा। उसने कुछ कहा नहीं, ज़रा-सा उठ कर प्यार से उसे चूम लिया। फिर वह बोला : "यूँ तो मैं बहन दयाल देवी से कह दूँगा कि वे तुम्हारा खयाल रखें। माँ का खत आ ही गया है, वह कल आ जायेगी। भाई साहब हैं, कान्ता बहन हैं, पर सबसे ज़्यादा तुम्हें खुद अपना खयाल रखना है। इस मकान की सीढ़ियाँ मुझे पसन्द नहीं हैं, तुम बहुत ध्यान से चढ़ा-उतरा करो।"

"आप बिल्कुल फ़िक्र न कीजिए, मैं खूब ध्यान रखूँगी।"

"तुम खत लिखने में बड़ी चोर हो," चेतन ने ज़रा हँस कर कहा,

"पहले तो तुम्हें चिट्ठी लिखने में कठिनाई होती थी, अब तो कोई ऐसी बात नहीं। मैं तुम्हे बाकायदा ख़त लिखता रहूँगा। तुम जवाब देने में ढील न करना।"

"नहीं, मैं बराबर उत्तर दूँगी।" चन्दा हँसी, "आप भी अपना ख़याल रखिएगा। मेरी तरफ़ से देर भी हो, लेकिन आप खत लिखने में देर न कीजिएगा।"

चेतन फिर सीधा लेट गया। चुपचाप आकाश मे ताकता रहा। फिर बोला, "कभी-कभी मैं सोचता हूँ, मैं यह ट्यूशन न लेता तो अच्छा था। लेकिन मुझे कोई दूसरा रास्ता नज़र नही आता। लॉ कॉलेज में मुझे ज़रूर दाख़िल होना है और अच्छे नम्बरों से पास हो कर कम्पीटीशन मे बैठना है और सब-जज बनना है....तुम्हारी माँ अगर सेठ वीरभान के यहाँ खाना पकाने और बर्तन-अर्तन मलने की नौकरी न करती या अमीचन्द की सगाई सेठ की लड़की कृष्णा से न हुई होती तो मैं कभी लॉ करने की न सोचता और बड़ा लेखक ही बनता। बड़ा लेखक मैं अब भी बनूँगा, लेकिन पहले सब-जजी करूँगा। मै नहीं चाहता, कृष्णा के सामने तुम्हारी हेठी हो।"

"आप बेकार परेशान होते है," चन्दा ने उसे फिर अपने सीने से लगा लिया, "अमीचन्द कलक्टर हो या कमिश्नर, हमें क्या लेना है ? आप लॉ कॉलेज का चक्कर छोड़िए। अपना लिखिए-पढ़िए ! आप ही तो कहा करते है कि किसी महान लेखक के सामने कलक्टर-कमिश्नर की कोई हस्ती नही। कलक्टर-कमिश्नर ज़िले के हाकिम होते है और लेखक हज़ारों-लाखों के दिलों पर राज करता है। आने वाली पीढ़ियाँ उसे याद रखती है। मुन्शी चन्द्रशेखर अगर नौकरी न छोड़ते तो ज़्यादा-से-ज़्यादा स्कूल इन्स्पेक्टर या डायरेक्टर हो कर रिटायर होते और आज सारे देश में उनका नाम है। घर-घर उनकी कहानियाँ पढ़ी जाती है।"

चेतन ज़ोर से हँसा। उसने अपनी पत्नी को हल्के-से भींच कर चूम लिया और फिर सीधा लेट गया, "तुम बहुत भोली और प्यारी हो," उसने कहा, "आज की दुनिया में ग़रीब लेखक की कोई कद्र नहीं। मुन्शी चन्द्रशेखर

ने, नाम चाहे जितना पाया हो, माली हालत उनकी खस्ता ही है, प्रेस और पत्रिका का पेट भरते-भरते, उनकी कमर टूटी जा रही है। लेकिन यह भी ठीक है कि सफल लेखक बनना, कलक्टर-कमिश्नर बनने से कहीं बेहतर है, मैं भी लेखक ही बनता, लेकिन यह अमीचन्द साला मेरे रास्ते में आ गया। अमीचन्द 'कोई' कलक्टर नहीं, मेरे साथ पढ़ने वाला, मेरे लड़कपन का साथी और मेरे मुहल्ले का पड़ोसी है; फिर वह उस घर में शादी करने जा रहा है, जहाँ मेरी सास खाना पकाती है। नहीं चन्दा, अमीचन्द को तो मुझे बताना ही होगा कि डिप्टी-कलक्टर बनना कोई बड़ा तीर मारना नहीं। सब-जज तो मैं ज़रूर बनूँगा।" और करवट ले कर प्यार से अपनी पत्नी के बालों को सहलाते हुए उसने कहा, "और तुम बेकार लेखक की नहीं, बाकार सब-जज की बीवी होगी।"

सहसा चन्दा सीधी हो गयी और बाँह उसने चेतन की गर्दन के नीचे से निकाल ली।

"क्या बात है," चेतन ने सहसा उठ कर पूछा।

चन्दा हँसी, "यह हिलता है?"

"कौन....बच्चा?"

"हाँ!"

चेतन ने उसकी कमीज़ ऊपर उठा दी। चाँदनी रात में चन्दा का गोरा, उभरा पेट चमक उठा। वह कुछ क्षण बड़े स्नेह से अपनी पत्नी के उभरे हुए गोरे, मुलायम पेट पर हाथ फेरता रहा। फिर उसने उसके पेट पर जगह-जगह कान रख कर, उसकी कोख में सोते बच्चे के दिल की धड़कन सुनने की कोशिश की। कई जगह कान लगाने के बावजूद, उसे वह धड़कन सुनायी न दी। फिर उस गोरे पेट पर प्यार से हाथ फेरते हुए वह उसे चूमता चला गया। शलवार ज़रा नीचे करके उसने नाभि के नीचे चूमा।

"न," चन्दा ने बरजा, "बच्चे को तकलीफ़ होगी।"

"नहीं होगी।" चेतन ने सिर उठाया और बायें हाथ से उसकी कमीज़

और ऊपर कर दी। दो बड़े-बड़े गोल चाँद उस सीने पर चमक उठे।

चेतन विमुग्ध-सा उन भरपूर, उभरे उरोजों को देखने लगा। पहली बार उसने अपनी पत्नी के निरावरण उरोज रोशनी में देखे थे। कभी जब वह प्राचीन मन्दिरों की मूर्तियों के चित्र देखता था, तो वह उन युवतियों के के मटकों-ऐसे उरोजों को देख कर सोचा करता था कि वह सब मूर्तिकारों की कल्पना है, इतने बड़े उरोज कहाँ होते हैं ? लेकिन यहाँ कोख के बच्चे के कारण भर आये, उसकी अपनी पत्नी के उरोज, उसे दो, छोटे-छोटे दूधिया मटकों के समान लगे। उसने झुक कर दोनों को बारी-बारी चूम लिया।

"बस !....बस !" चन्दा ने खींच कर अपने पति का सिर अपने उन्नत, धड़कते सीने से लगा लिया।

"लेट जाइए !" उसने भारी हो आयी आवाज़ में इतना ही कहा।

